राजस्थान के प्रमुख किलों का जल प्रबन्धन : ऐतिहासिक सन्दर्भ में

(WATER MANAGEMENT OF THE MAJOR FORTS OF RAJASTHAN : A HISTORICAL PERSPECTIVE)

कोटा विश्वविद्यालय – कोटा
को इतिहास विषय (समाज विज्ञान संकाय) में
डॉक्टर ऑफ फिलोसॉफी की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध
(2016)

शोध निर्देशक
डॉ. हुकम चन्द जैन
प्राचार्य, अकलंक गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कोटा
पूर्व विभागाध्यक्ष (सेवानिवृत) इतिहास विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा

शोधार्थी
अनुराग विजय

शोध केन्द्र
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा

CERTIFICATE

It is certified that

1. Thesis entitled "राजस्थान के प्रमुख किलों का जल प्रबन्धन : ऐतिहासिक सन्दर्भ में" submitted by Anurag Vijay, is an original piece of research work carried out by him under my supervision.
2. Literary presentation is satisfactory and the thesis is in a form suitable for publication.
3. Exhibit the capacity of the candidate for critical examination and independent judgment.
4. Candidate has put in at least 200 days of attendance every year.

I recommend the submission of the thesis.

Date Signature of Supervisor

Place

शोध प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि मेरे निर्देशन एवं परिवीक्षण में डॉक्टर ऑफ फिलोसॉफी की उपाधि हेतु प्रस्तुत "**राजस्थान के प्रमुख किलों का जल प्रबन्धन : ऐतिहासिक सन्दर्भ में**" नामक शोध प्रबन्ध भारत या विदेश में किसी भी विश्वविद्यालय में किसी भी डिग्री या डिप्लोमा हेतु प्रस्तुत नहीं किया गया है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है **अनुराग विजय** द्वारा प्रस्तुत किया गया यह शोध कार्य मौलिक है एवं विषय के प्रति नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

डॉ. हुकम चन्द जैन

दिनांक

प्राचार्य, अकलंक गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कोटा

स्थान

पूर्व विभागाध्यक्ष (सेवानिवृत), इतिहास विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा

प्राक्कथन

प्रस्तुत शोध कार्य ''**राजस्थान के प्रमुख किलों का जल प्रबन्धन : ऐतिहासिक सन्दर्भ में**'' वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विश्व की ज्वलन्त समस्या जल संकट को दृष्टिगत रखकर हमारे गौरवशाली इतिहास के प्रस्तुतिकरण हेतु कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की विद्या वाचस्पति (पीएच.डी.) उपाधि के निमित्त सम्पन्न किया गया है। जल जीवन की प्राथमिक आवश्यकता है। आधुनिक विज्ञान ने भी स्वीकार किया है कि धरती पर जल की उत्पत्ति के बाद ही जीवन की उत्पत्ति हुई, अर्थात जल ही जीवन का आधार है। हमारा ग्रह पृथ्वी एक जलीय ग्रह है जिसके 71 प्रतिशत भाग पर अथाह जल है, फिर भी वर्तमान विश्व घोर जल संकट से गुजर रहा है। इस जल संकट के अनेक रूप है। कहीं पर सूखा है, तो कहीं पर बाढ़ का पानी ही पानी, कहीं सुनामी बर्बाद कर रही है तो कहीं ग्लोबल वार्मिंग की वजह से देश के देश डूबने की कगार पर हैं। कहीं ग्लेशियर्स के समाप्त हो जाने से जीवनदायिनी नदियाँ ही लुप्त हो गयी तो कहीं नदियों ने अपने मार्ग परिवर्तित कर लिये। ये सभी जल संकट के प्रतिरूप हैं। ऐसा नहीं है कि जिस दौर से आज हम गुजर रहे है वैसे संकट का सामना भूतकाल ने नहीं किया गया। हमारे पूर्वजों को भी जल संकट से दो चार होना पड़ा था। वर्तमान अभियांत्रिकी कौशल एवं वैज्ञानिक उन्नति की तुलना में उस काल में संसाधनों की सीमितता के बाद भी सुदृढ़ जल प्रबन्धन की वजह से जल संकट जैसी समस्या का उन्होंने आसानी से हल निकाल लिया गया था। इतिहास की इसी उपलब्धि को इस प्रस्तुत अनुसंधान के माध्यम से दर्शाने का प्रयास किया गया है।

मेरे इष्ट देव भगवान शंकर एवं हनुमान जी महाराज तथा स्वर्गीय पिता श्री प्रभु लाल विजय, व्याख्याता भूगोल के आशीर्वाद से मैं अपना यह शोध कार्य पूर्ण कर पाया हूँ।

इस प्रसंग में सर्वप्रथम परम श्रद्धेय गुरूवर डॉ. हुकम चन्द जैन, सेवानिवृत कार्यवाहक प्राचार्य, राजकीय वाणिज्य महाविद्यालय, कोटा के प्रति नतमस्तक हूँ, जिनके निरन्तर प्रोत्साहन एवं स्नेहिल मार्गदर्शन के कारण ही यह शोध कार्य पूर्ण हो सका है। अपने व्यस्त क्षणों में उन्होंनें जितनी तत्परता, असीम स्नेह और बहुमूल्य परामर्शों से मुझे

विषय के वैज्ञानिक अध्ययन में उत्साहित किया है उसके लिए मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ एवं ऋणी हूँ।

इस अवसर पर मैं गुरूमाता श्रीमती मधुमति जैन, बैंक मैनेजर, का हृदय के अन्तःस्थल से आभारी हूँ, जिन से मुझे मातृत्व स्वरूप स्नेह एवं उत्साह मिला।

इसी प्रकार राजकीय महाविद्यालय, टोंक के उपप्राचार्य श्री आर.के. वर्मा, श्रीमती मधुबाला सक्सेना, सेवानिवृत विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग, डॉ. आर. एल. शर्मा सेवानिवृत्त व्याख्याता इतिहास के बहुमूल्य परामर्श व मार्गदर्शन ने मेरे शोध कार्य को नयी दिशा दी। साथ ही डॉ. जे. एन. शर्मा विभागाध्यक्ष अर्थशास्त्र ने शोधकार्य हेतु शोध–प्रविधि एवं लेखन सम्बन्धी उपयोगी जानकारी दी जिसके लिए मैं उनका आभारी रहूंगा। डॉ. सादिक अली, व्याख्याता ऊर्दू द्वारा दी गयी जानकारियों ने शोध कार्य को आगे बढ़ाया। रसायनशास्त्र विभाग के सभी व्याख्यातागण, डॉ. बीना अग्रवाल, डॉ. के. एल. गुर्जर, डॉ. गजेन्द्र सिंह, डॉ. प्रेमशंकर शर्मा द्वारा दिये गये प्रोत्साहन एवं मेरे साथियों श्री महेश किशोर सक्सेना, श्रीमती अनीता सिंह, श्री शिवराम महावर के प्रेरणादायी सहयोग को मैं भुला नहीं सकता।

राजकीय महाविद्यालय टोंक की प्राचार्य डॉ. निशा भट्‌ट, तथा पूर्व उपाचार्य डॉ. उमरजहाँ का भी धन्यवाद ज्ञापित करना चाहूंगा जिन्होंनें समय–समय पर शोधार्थी को आवश्यकतानुसार अवकाश प्रदान करने के साथ–साथ मार्गदर्शित एवं प्रेरित भी किया।

अपने शोध कार्य हेतु शोधार्थी ने विभिन्न शोध संस्थानों एवं पुस्तकालयों, अभिलेखागारों, संग्रहालयों का भ्रमण कर उपयोगी जानकारियाँ प्राप्त की । इन सभी संस्थानों के विद्वान अध्यक्षों एवं उनके स्टॉफ ने शोधार्थी का भरपूर सहयोग किया जिनका आभार प्रकट करना मेरा दायित्व है। इस क्रम में मैं धन्यवाद देना चाहता हूँ बनस्थली विद्यापीठ की पुस्तकालयाध्यक्षा, राजकीय अभिलेखागार, बीकानेर के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री सुरेन्द्र सिंह राजपुरोहित, रावत शम्भू सिंह स्मृति पुरा अभिलेखागार शोध संस्थान के अध्यक्ष एवं व्याख्याता इतिहास राजकीय महाविद्यालय, चित्तोड़गढ़ डॉ. एल. के. चूण्डावत, मेहरानगढ़ के महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश एवं शोध संस्थान के डॉ. विक्रम सिंह भाटी, का जिनके मार्गदर्शन, परामर्श एवं उपयोगी सामग्री के बिना शोध कार्य पूरा किया जाना सम्भव नहीं था।

शोधार्थी ने शोध सम्बन्धी प्राथमिक तथ्यों की जानकारी के लिए विभिन्न किलो एवं किलो से जुड़े संग्रहालयों का भ्रमण किया। वहाँ के गाइड, स्टॉफ एवं स्थानीय

व्यक्तियों ने शोधार्थी का भरपूर सहयोग किया। इस सन्दर्भ में मैं गागरोन दुर्ग के परिचारक श्री केसरी लाल जी, भटनेर दुर्ग के महाराज सिंह तथा शिव मन्दिर के पण्डित जी, आमेर दुर्ग के श्री विजय कुमार जी, जयगढ़ दुर्ग के श्री कमल झा एवं श्री छोटू जी, मेहरानगढ़ दुर्ग की डॉ. सुनयना एवं भँवर सिंह जी, सोनारगढ़ दुर्ग के मयंक जी, चित्तोड़गढ़ दुर्ग के श्री जगदीश जी सभी को धन्यवाद देता हूँ।

स्थानीय विद्वान जनों, व्याख्याताओं, प्रोफेसर्स ने भी अपने ज्ञान व अनुभव से शोधार्थी को उपयोगी जानकारियाँ व पुस्तकें, लेख आदि प्रदान किये। जिनकी सहायता से शोध कार्य को नयी दिशा मिली। उन सभी विद्वानों में झालावाड़ के ललित कुमार शर्मा, हनुमानगढ़ के श्री सुरेन्द्र पाल गुप्ता, बीकानेर के डॉ. एस. के. भनोट, जोधपुर के डॉ. एस. पी. व्यास, जैसलमेर के श्री एन. के. शर्मा जी एवं जयपुर के डॉ. जफरूल्लाह खाँ प्रमुख है, मैं सभी का सदैव आभारी रहूँगा।

परिवारजनों में पूज्य माताजी श्रीमती सीता देवी, धर्मपत्नी सीमा, भाई विकास, बहिन अर्चना, साली रेखा एवं नीतू विजय, पुत्री परी विजय ने मुझे समय–समय पर अतीव सहयोग, प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान किया है। परिवार के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए संकोच के साथ गौरव की अनुभुति होती है।

शोध कार्य में मित्रगणों एवं साथी शोधार्थियों श्री हेमन्त कुमार दीक्षित, श्री अन्त्योदय, श्री सुनील कुमार निमेश, श्री दीपेश यादव, श्रीमती अर्चना तिवारी, श्रीमती सरिता चौधरी, मीना एवं डॉ. आशुतोष ने उपयोगी सुझाव व सहयोग प्रदान किया, जिसके लिए मैं उनका कृतज्ञ रहूँगा।

इस सन्दर्भ में मैं डॉ. प्रमोद कुमार शर्मा, व्याख्याता हिन्दी का सदैव ऋणी रहूँगा जिन्होंनें प्रबन्ध का आद्योपान्त अध्ययन कर मात्रा, वर्तनी एवं वाक्य संरचना सम्बन्धी अशुद्धियों को दूर कर भाषा को परिमार्जित एवं बोधगम्य बनाया।

शोध कार्य को पूर्णता प्रदान करते हुए यद्यपि शोध प्रबन्ध की कम्प्यूटर टाइपिंग, फोटोग्राफ्स सेटिंग, टेबुलेशन एवं मैपिंग का सम्पूर्ण कार्य शोधार्थी द्वारा स्वयं किया गया परन्तु सुन्दर बाइण्डिंग के लिए नवजीवन ऑफसेट प्रिन्टर्स के श्री हुकम चन्द जैन साहब को धन्यवाद ज्ञापित किया जाना आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त जिन महानुभावों एवं संस्थाओं के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोग से यह शोध कार्य पूर्णत्व को प्राप्त कर सका है, मैं उन सभी का कृतज्ञतापूर्वक हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

स्थान शोधार्थी

दिनांक **(अनुराग विजय)**

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं	विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या
1	प्राक्कथन	iii - vi
2	विषयानुक्रमणिका	vii - xi
3	छाया चित्र सूची	xii
4	सारणी सूची	xiii
अध्याय प्रथम :	**प्रस्तावना**	1 - 24
1.1	परिचय	1
1.2	किलों का अर्थ, प्रकार तथा महत्त्व	1
1.3	विषय चयन का तात्त्विक आधार	5
1.4	अध्ययन के उद्देश्य	6
1.5	अध्ययन की प्रकृति	8
1.6	परिकल्पनाएँ	9
1.7	अनुसंधान का महत्त्व	10
1.8	अनुसंधान का क्षेत्र	11
1.9	स्रोतों की समीक्षा	12
1.10	अध्याय आयोजन	17
1.11	शोध प्रविधि	19
अध्याय द्वितीय :	**राजस्थान के इतिहास में जल प्रबन्धन की आवश्यकता एवं महत्त्व**	25 - 47
2.1	जल की उत्पत्ति	25
2.2	जल का महत्व	26
2.3	राजस्थान का भूगोल एवं जल प्रबन्धन की आवश्यकता	31
2.4	राजस्थान के इतिहास में जल प्रबन्धन का महत्त्व	34
अध्याय तृतीय :	**राजस्थान के किलों में जल प्रबन्धन की विधियाँ**	48 - 76
3.1	जल स्रोतों का निर्माण विकास एवं विशेषताएँ	48
3.2	जल स्रोत से जल प्राप्ति एवं वितरण प्रणाली	68
अध्याय चतुर्थ :	**उत्तरी राजस्थान के प्रमुख दुर्गों का इतिहास, स्थापत्य एवं जल प्रबन्धन**	77 - 116
4.1	**जूनागढ़ दुर्ग**	77 - 98
4.1.1	भौगोलिक स्थिति व जलवायु	77
4.1.2	किले का निर्माण व नामकरण	78

4.1.3	किले की भव्यता एवं शासकों का कलागत योगदान	79
4.1.4	दुर्ग रचना	82
4.1.5	किले का इतिहास	88
4.1.6	किले पर आक्रमण	90
4.1.7	किले के जल स्रोत	91
4.1.8	जल प्राप्ति एवं वितरण प्रणाली	96
4.1.9	जल का उपयोग	97
4.1.10	जल निकास प्रणाली	98
4.1.11	वर्तमान स्थिति	98
	4.2 भटनेर दुर्ग	99 - 112
4.2.1	भौगोलिक स्थिति व जलवायु	99
4.2.2	किले का निर्माण व नामकरण	99
4.2.3	किले का महत्त्व	100
4.2.4	भटनेर का इतिहास	100
4.2.5	दुर्ग रचना	105
4.2.6	किले के जल स्रोत	108
4.2.7	जल उत्थान (लिफ्ट) प्रणाली	108
4.2.8	जल वितरण प्रणाली	109
4.2.9	जल का उपयोग एवं प्रबन्धन	109
4.2.10	जल निकास प्रणाली	111
4.2.11	जल प्रबन्धन का महत्त्व	111
4.2.12	वर्तमान स्थिति	112
अध्याय पंचम :	**दक्षिणी राजस्थान के प्रमुख दुर्गों का इतिहास, स्थापत्य एवं जल प्रबन्धन**	117 - 164
	5.1 गागरोन दुर्ग	117 - 135
5.1.1	दुर्ग की स्थापना व नामकरण	117
5.1.2	भौगोलिक स्थिति व जलवायु	118
5.1.3	दुर्ग का उपयोग व महत्त्व	118
5.1.4	दुर्ग का इतिहास	119
5.1.5	दुर्ग संस्कृति व साहित्य	121
5.1.6	दुर्ग रचना	122
5.1.7	दुर्ग के जल स्रोत	127
5.1.8	जल का उपयोग	131
5.1.9	दुर्ग में जल संग्रहण	132
5.1.10	जल उत्थान प्रणाली	132

5.1.11	वर्षा जल संग्रहण प्रणाली	133
5.1.12	जल निकास प्रणाली	134
5.1.13	वर्तमान स्थिति	134
	5.2 चित्तौड़गढ़ दुर्ग	135 - 160
5.2.1	दुर्ग की स्थापना व नामकरण	135
5.2.2	दुर्ग कोटि	136
5.2.3	क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति व जलवायु	136
5.2.4	किले का महत्त्व	136
5.2.5	दुर्ग रचना	137
5.2.6	चित्तौड़गढ़ का इतिहास	143
5.2.7	दुर्ग के जल स्रोत	147
5.2.8	जल स्रोतों का आपसी जुड़ाव (लीकेज व सीपेज सिस्टम)	157
5.2.9	स्रोतों से जल प्राप्ति व्यवस्था	158
5.2.10	जल संग्रहण व्यवस्था	158
5.2.11	जल वितरण प्रणाली	159
5.2.12	जल का उपयोग	159
5.2.13	जलनिकास प्रणाली	159
5.2.14	वर्तमान स्थिति	160
अध्याय षस्तम :	**पूर्वी राजस्थान के प्रमुख दुर्गों का इतिहास, स्थापत्य एवं जल प्रबन्धन**	165 - 200
	6.1 आमेर दुर्ग	165 - 183
6.1.1	भौगोलिक स्थिति व जलवायु	165
6.1.2	दुर्ग निर्माण व नामकरण	166
6.1.3	दुर्ग का इतिहास	166
6.1.4	दुर्ग रचना	167
6.1.5	किले के जल स्रोत तथा जल संग्रहण व्यवस्था	169
6.1.6	जल उत्थान प्रणाली	171
6.1.7	जल वितरण प्रणाली	174
6.1.8	जल का उपयोग व प्रबन्धन	174
6.1.9	जल आधारित विशिष्ट तकनीक/प्रणालियाँ	178
6.1.10	जल निकास व वर्षा जल संग्रहण व्यवस्था	182
6.1.11	वर्तमान स्थिति	182
	6.2 जयगढ़ दुर्ग	184 - 197
6.2.1	दुर्ग की स्थापना व नामकरण	184
6.2.2	भौगोलिक स्थिति व जलवायु	185

6.2.3	दुर्ग का इतिहास	186
6.2.4	दुर्ग रचना	187
6.2.5	किले के जल स्रोत तथा जल संग्रहण व्यवस्था	189
6.2.6	वर्षा जल संग्रहण (रेन वाटर हारवेस्टिंग) तकनीक	192
6.2.7	जल उत्थान व वितरण प्रणाली	193
6.2.8	जल का उपयोग	193
6.2.9	जल निकास प्रणाली	196
6.2.10	वर्तमान स्थिति	196
अध्याय सप्तम :	**पश्चिमी राजस्थान के प्रमुख दुर्गों का इतिहास, स्थापत्य एवं जल प्रबन्धन**	201 - 254
7.1	**मेहरानगढ**	201 - 225
7.1.1	दुर्ग की स्थापना व नामकरण	201
7.1.2	क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति व जलवायु	202
7.1.3	किले का महत्त्व	203
7.1.4	दुर्ग रचना	203
7.1.5	दुर्ग का इतिहास	207
7.1.6	दुर्ग के जल स्रोत	209
7.1.7	जल संग्रहण व्यवस्था	217
7.1.8	जल उत्थान (वाटर लिफ्ट) प्रणाली	222
7.1.9	जल वितरण प्रणाली	223
7.1.10	जल निकास प्रणाली	223
7.1.11	वर्तमान स्थिति	224
7.2	**सोनारगढ़ दुर्ग**	225 - 250
7.2.1	दुर्ग की स्थापना व नामकरण	225
7.2.2	क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति व जलवायु	226
7.2.3	किले का महत्त्व	226
7.2.4	किले का इतिहास	227
7.2.5	दुर्ग में क्रमिक निर्माण	232
7.2.6	दुर्ग रचना	232
7.2.7	दुर्ग के जल स्रोत	236
7.2.8	जल स्रोतों की विश्वसनीयता	240
7.2.9	जल स्रोतों से जल प्राप्ति प्रणाली	241
7.2.10	जल संग्रहण व्यवस्था	242
7.2.11	जल का उपयोग	244

7.2.12	जल वितरण प्रणाली	247
7.2.13	जल निकास प्रणाली	247
7.2.14	जल प्रबन्धन का महत्त्व	248
7.2.15	वर्तमान स्थिति	249
अध्याय अष्टम :	**राजस्थान के प्रमुख किलों में जल प्रबन्धन का तुलनात्मक अध्ययन एवं महत्त्व**	255 - 267
अध्याय नवम :	**निष्कर्ष एवं मूल्यांकन**	268 - 275
9.1	निष्कर्ष	268
9.2	परिकल्पनाओं का परीक्षण व परिणाम	272
9.3	समस्यायें	273
9.4	सुझाव	274
9.5	नीति संगत निर्देश	275
सन्दर्भ सूची		276 - 289

छाया चित्र सूची

क्रम सं	विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या
1.	राजस्थान के प्रमुख किले	1
2.	ट्यूरिस्ट मेप ऑफ राजस्थान	17
3.	जूनागढ़ दुर्ग के विभिन्न भाग	82
4.	जूनागढ़ दुर्ग : सूरसागर झील, उद्यान, अस्तबल एवं खाई	95
5.	भटनेर दुर्ग : उद्यान एवं कुँए	108
6.	भटनेर दुर्ग : जल निकास प्रणाली	111
7.	गागरोन दुर्ग : कालीसिन्ध एवं आहू नदी तथा खाई	127
8.	गागरोन दुर्ग के भीतर के विभिन्न कुँए	130
9.	गागरोन दुर्ग में जल प्राप्ति के गुप्त मार्ग, अन्धेर बावड़ी एवं पानी की टंकियाँ	131
10.	चित्तौड़गढ़ दुर्ग के विभिन्न जलाशय I	147
11.	चित्तौड़गढ़ दुर्ग के विभिन्न जलाशय II	156
12.	आमेर दुर्ग में जल संग्रहण व्यवस्था	169
13.	आमेर महल में रहँट (जल उत्थान) प्रणाली	171
14.	आमेर महल के शाही उद्यान एवं जकूजी बाथ	177
15.	जयगढ़ दुर्ग : झील एवं टांके	190
16.	जयगढ़ दुर्ग : वर्षा जल संग्रहण एवं जल उत्थान प्रणाली	192
17.	मेहरानगढ़ : जल संग्रहण व्यवस्था I	213
18.	मेहरानगढ़ : जल संग्रहण व्यवस्था II	219
19.	मेहरानगढ़ : जल उत्थान प्रणाली	222
20.	सोनारगढ़ : घड़सीसर तालाब, कुँए, माटे एवं गुट नालियाँ	237

सारणी सूची

क्र.सं.	सा.सं	विवरण	पृष्ठ संख्या
1	4.1	रामसर एवं रानीसर के रखरखाव पर व्यय (सं 1807)	94
2	4.2	रामसर एवं रानीसर के रखरखाव पर व्यय (सं 1808)	95
3	8.1	सामान्य परिचय	255
4	8.2	दुर्ग कोटि	258
5	8.3	किले का महत्त्व	259
6	8.4	जल प्रबन्धन का आधार	259
7	8.5	किले के जल स्रोत/जलाशय	260
8	8.6	जल स्रोतों की स्थिति	260
9	8.7	जल स्रोतों का महत्त्व	261
10	8.8	जल स्रोतों का आकार	262
11	8.9	किले के कृत्रिम जल संग्रहक	262
12	8.10	स्रोतों से जल प्राप्ति तकनीक	263
13	8.11	जल का उपयोग	263
14	8.12	जल उपयोगकर्ता	264
15	8.13	जल प्रबन्धन तकनीक/अभियान्त्रिकी	264
16	8.14	जल वितरण प्रणाली	265
17	8.15	जल निकास प्रणाली	266
18	8.16	जल प्रबन्धन का महत्त्व	266

अध्याय प्रथम

प्रस्तावना

1.1 परिचय

प्रस्तुत शोध का विषय ''**राजस्थान के प्रमुख किलों का जल प्रबन्धन : ऐतिहासिक सन्दर्भ में**'' है।

वीर भूमि राजस्थान गढ़ एवं दुर्गों का प्रदेश है।[1] भारत में सर्वाधिक दुर्ग महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश व राजस्थान में हैं। एक अध्ययन के अनुसार महाराष्ट्र में कुल 656, मध्यप्रदेश में 330 तथा राजस्थान में 250 दुर्ग हैं। यहाँ प्रत्येक 12 कोस पर बोली बदल जाती है तथा 7–8 कोस पर कोई किला या गढ़ी नजर आ जाती है।[2]

आन, बान और शान की गौरव गाथाओं को अपने में संजोए राजस्थान की धरती जितनी शौर्य, पराक्रम, त्याग, बलिदान, स्वाभिमान, साहस और जय–पराजय के स्वर्णिम अतीत के लिए विख्यात है उतनी ही अपने आँचल में इतिहास को समेटने वाले अपने किलों, गढ़ों और दुर्गों के लिए भी जानी जाती है। इस धरा की गौरव गाथा सुप्रसिद्ध कवि कन्हैया लाल सेठिया की काव्य पंक्तियों में '**आ तो सरगा ने सरमावै इण पर देव.... ....**' व्यक्त होती है।[3]

कर्नल टॉड ने राजस्थान के बारे में कहा है – ''**राजस्थान में कोई जगह ऐसी नहीं है जिसमें थर्मोपोली जैसी रणभूमि न हो और शायद ही कोई ऐसा नगर मिले जहाँ ग्रीक वीर लियोनिडास के समान मातृभूमि पर बलिदान होने वाला वीर पुरूष उत्पन्न न हुआ हो।**''[4]

1.2 किलों का अर्थ, प्रकार तथा महत्त्व

किला, गढ़ तथा दुर्ग शब्द सामान्यतः एक दूसरे के पर्याय माने जाते हैं किन्तु सूक्ष्मतः इनके अर्थ में भिन्नता है। किला पहाड़ पर बनाया जाता है जबकि गढ़ का निर्माण भूमि पर किया जाता है। दोनो के इर्द गिर्द सुरक्षा प्राचीर बनायी जाती है किन्तु

गढ़ भूमि पर बना होने से उसके चारों तरफ खाई खोदी जाती है। धीरे–धीरे किले व गढ़ का अन्तर लुप्त हो गया।[5] इसके विशाल भवन में अनेक भव्य प्रवेश द्वार, चार बुर्ज अन्दर रहने के स्थान मन्दिर बने होते है। बड़े किलों में बस्तियाँ, खेत–खलियान, तालाब, झीलें, राजमहल, गुप्त मार्ग, सैनिकों के रहने के स्थान, अस्तबल, हाथीठाण आदि बने होते है।

'दुर्गा दुर्गति नाशनी' यानि दुर्ग के अन्दर रहने वालों की दुर्गा रक्षा करती है और शत्रु पक्ष की दुर्गति करती है। इसी मान्यता के आधार पर शासक अपने किलों में इष्ट देवी का मन्दिर अवश्य बनवाते थे इस तरह के किलों को दुर्ग कहा जाता है।[6] पुर शब्द दुर्ग का ही रूप है जब दुर्ग के समान बुर्ज युक्त सुरक्षा परकोटे से शहर को ही घेर दिया जाता है तो वह शहर दुर्ग रूपी बस्ती सहित पुर कहलाता है जैसे जयपुर, जोधपुर आदि। आज गढ़, किला, आसाल, कोट, बरण, आसद, दुर्ग, रावला, पुर व गढ़ी प्रायः सभी एक समान अर्थ वाले शब्द माने जाते है।[7]

भारत में दुर्ग निर्माण परम्परा काफी प्राचीन है। हड़प्पा व मोहनजोदड़ो की खुदाई में दुर्गों के अवशेष मिले हैं। ऋग्वेद में दुर्गों के सम्बन्ध में पुर शब्द का उल्लेख मिलता है, यहाँ पुर का तात्पर्य दुर्ग से ही है, इसमे कहा गया है कि आक्रमण अथवा उसकी सम्भावना होने पर अपने जन–धन की रक्षा हेतु आर्य विशिष्ट प्रकार से बने दुर्गों में शरण लेते थे, इन्हें वे पुर कहते थे। पुर पाषाण अथवा धातु निर्मित होते थे, इनके चारों ओर लकड़ी की बनी चारदीवारी बनी होती थी।[8] इन्द्र को दुर्गों का नाश करने वाला पुरन्दर कहा गया है।[9] इन्द्र तथा विष्णु ने शम्बर की 100 पुरियों को ध्वस्त किया था।[10]

वि दुर्गा वि द्विषः पुरो घ्नन्ति राजान एषाम्। नयन्ति दुरिता तिरः।।

एक अन्य मंत्र में कहा गया है कि राजा शत्रुओं के दुर्ग नष्ट करते हैं, साथ ही शत्रुओं का विनाश भी करते है।[11]

इन्द्रा विष्णुः दहिता शम्बरस्य नवपुरो नवतिश्चलार्थ।[12]

शतपथ में उल्लेख है कि असुर मृत्यु लोक में लोहे का, आकाश में चाँदी का तथा अन्तरिक्ष में स्वर्ण का दुर्ग बनाते हैं, देवगण इन दुर्गों का विनाश करते हैं। इसी से उनको उपासद नाम से अभिहित किया गया है।[13] पुराणों के अनुसार हस्तिनापुर गंगा की बाढ़ में नष्ट हो गया था, तब राजा परीक्षित के प्रपौत्र निचक्षु ने हस्तिनापुर छोड़कर इलाहाबाद से 52 किमी दूर कोशाम्बी में अपनी राजधानी बनायी थी और वहाँ एक किला

भी बनवाया था।[14] महाकाव्य काल में भी दुर्गों के बनाये जाने का उल्लेख मिलता है। लंका स्वयं नादेय दुर्ग थी जिसका अर्थ नदी या समुद्र से घिरा दुर्ग होता है। कृष्ण ने अपनी राजधानी द्वारिका बनायी थी जो समुद्र से घिरी होने के कारण एक प्रकार का नादेय दुर्ग थी।[15] पाण्डवों का इन्द्रप्रस्थ दुर्ग वहाँ बना था, जहाँ आज का दिल्ली का पुराना किला है।[16]

महाजनपद काल में मगध, चेदि, पांचाल सभी के अपने दुर्गम दुर्ग थे। पाटलिपुत्र नगर के सन्दर्भ में मेगस्थनीज बताता है कि पाटलिपुत्र स्वयं गंगा व शोण नदियों के संगम पर स्थित है तथा लकड़ी की मोटी व विशाल प्राचीर जिसमें 64 दरवाजे व 570 बुर्ज हैं नगर को सुरक्षा प्रदान करती है इस प्रकार यह नगर स्वयं एक दुर्ग था।[17] सिकन्दर के साथ आये यवन इतिहासकारों ने भारत की सीमा पर बने दुर्गम दुर्गों का वर्णन किया है जिन्होंनें सिकन्दर की सेना का भंयकर प्रतिरोध किया था।

पुरातात्त्विक उत्खननों में बहुत से किलों के अवशेष वहीं पाए गए हैं जहाँ पुराणों व प्राचीन ग्रन्थों में उनकी स्थिति बतायी गयी है, जो हमारे आदि साहित्य की सत्यता का जीवित प्रमाण है।[18]

प्राचीन ग्रन्थों मे दुर्ग के विभिन्न प्रकार बताए गए हैं। शुक्राचार्य की शुक्रनीति में दुर्ग के 9 भेद बताए गए है[19]

षष्ठं दुर्ग प्रकरणं प्रवक्ष्यामि समासतः। खात कण्टक पाषाणै र्दुष्पथं दुर्ग मैरिणम्।।
परितस्तु महाखातं पारिखं दुर्गमेव तत्। इष्टकोपल मृभ्दितिप्राकारं पारिधं स्मृतम्।।
महाकण्टक वृक्षौघैर्व्याप्तं तद्वनदुर्गमम्। जलांभावस्तु परितो धन्वदुर्ग प्रकीर्तितम्।।
जलदुर्ग स्मृतं तज्झैरा समन्तान्महाजलं। सुवारि पृष्ठोच्चधरं विविक्ते गिरिदुर्गमम्।।
अभेद्यं व्यूहविहीरव्याप्तं तत्सैन्यदुर्गमं। सहायदुर्गं तजज्येयं शूरानुकूलबान्धवम्।।

अर्थात (i) एरण दुर्ग– खाई काँटों व पत्थरों से जिसके मार्ग दुर्गम हो (ii) पारिख दुर्ग – जिसके चारों ओर बहुत बड़ी खाई हो (iii) पारिध दुर्ग – जिसके चारों तरफ ईंट पत्थर मिट्टी से बनी दीवार या परकोटा हो (iv) वन या धन्व दुर्ग– जो वन से घिरा हो (v) जल दुर्ग – जिसके चारों तरफ बहुत दूर तक फैली जलराशि हो (vi) गिरी दुर्ग – ऊँची पहाड़ी पर बना दुर्ग (vii)सैन्य या सहाय दुर्ग – जिसकी सुरक्षा हथियार बन्द सेना के हाथ में हो

शुक्रनीतिकार ने इनकी श्रेष्ठता का क्रम भी बताया है– (बढ़ते क्रम में)[20]

परिख दुर्ग < एरण दुर्ग < पारिध दुर्ग < वन दुर्ग < धन्व दुर्ग < जल दुर्ग < गिरी दुर्ग < सैन्य दुर्ग (सर्वश्रेष्ठ)

श्रेष्ठंतु सर्वदुर्गेभ्यः सेनादुर्गमः स्मृतं बुधः ।

नरपतिजयचर्या[21] में आठ प्रकार के किलों का वर्णन है (i) धूलकोट– मिट्टी की रक्षा प्राचीर (ii) जल कोट (iii) नगरकोट (iv) गिरि गह्वर – पहाड़ व गुफा युक्त (v) गिरि कोट (vi) डमरू कोट – डमरू की आकृति (vii) विषम भूमि कोट – ऊबड़ खाबड़ भूमि वाला (viii) विषमाख्य– टेढ़ी–मेढ़ी सुरंगो वाला।

चाणक्य ने चार प्रकार[22] के दुर्ग बताए हैं (i) औदक दुर्ग अर्थात् जल दुर्ग (ii) पार्वत दुर्ग यानि अर्थात् गिरी दुर्ग (iii) धान्वन दुर्ग (iv) वन दुर्ग। अर्थशास्त्र[23] में ही दुर्ग निर्माण के स्थान के आधार पर 7 भेद बताए है (i) नदी तट पर (ii) नदी संगम पर (iii) झील पर (iv) टापू पर (v) मरूस्थल में (vi) जंगल में (vii) पहाड़ पर

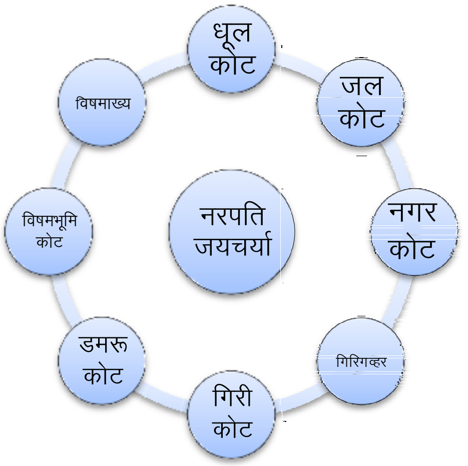

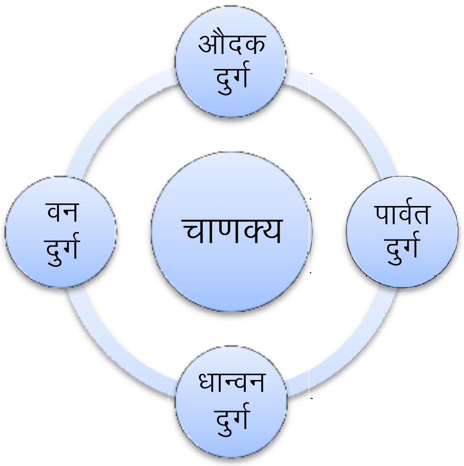

उक्त सभी ग्रन्थों में दुर्गों के महत्त्व एवं उनकी विशेषताओं के बारे में भी बताया गया है। शुक्रनीति के अनुसार राजा को ऐसे दुर्ग बनवाने चाहिए जो प्रहरियों से नित्य सुरक्षित हों, तोपो से युक्त हों, जिसके बाहर भीतर परकोटे बने हों तथा आस–पास अन्य पर्वत न हो, परकोटे के बाहर गहरी खाई हो, जिसकी चौड़ाई गहराई से दुगनी हो तथा चारों दिशाओं में चार द्वार हो। यह भी बताया गया है कि युद्ध कला में दक्ष सेना के बिना दुर्ग वैसे ही है जैसे बिना प्राणों के शरीर। साथ ही दुर्ग में जल की समूचित व्यवस्था का निर्देश देते हुए कहा गया है कि खाई सदैव जल से भरी हो एवं दुर्ग में ग्रामों से घिरी बावड़ी हो। इसी प्रकार कोटिल्य का दुर्ग विधान बताता है कि दुर्ग के परकोटे के अन्दर ऐसी अट्टालिका बनाई जाए जिसकी लम्बाई–चौड़ाई और ऊँचाई

परकोटे के बराबर हो, शस्त्रागार, देवस्थान आदि हो। साथ ही महलों के स्थापत्य एवं रक्षात्मक उपायों का भी विस्तार से विवेचन किया गया है।[24] राजधानी दुर्ग के भीतर हो, राजमहल के उत्तर में पुरोहित, मन्त्रियों के गृह तथा जलाशय हो।[25] मनुस्मृति में किलों के महत्त्व को वर्णित करते हुए कहा गया है कि किले में रहने वाला एक धनुर्धारी बाहर वाले सौ योद्धाओं का सामना कर सकता है और किले के एक सौ सैनिक दस सहस्त्र सैनिकों के साथ युद्ध कर सकते हैं।[26] किला अस्त्र–शस्त्र, धन धान्य, वाहन, ब्राह्मण, शिल्पी और जल से परिपूर्ण हो और दुर्ग के भीतर निर्मल जल से भरे हुए कुँओं और बावड़ियों से युक्त राजभवन बनवाये जाए।[27]

एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः।
शतं दशसहस्त्राणि तस्माद्दुर्गं विधीयते।।

मध्यकालीन राजस्थान के शासकों ने प्रदेश के विभिन्न भागों में अपना आधिपत्य स्थापित किया तथा अपनी सुरक्षा के लिए दुर्ग बनवाए। उपर्युक्त ग्रन्थों में दुर्गों की जो विशेषताएँ बतायी गयी हैं प्रायः वे सभी विशेषताएँ राजस्थान के दुर्गों में दृष्टिगत होती हैं। राजस्थान के दुर्ग शान्ति काल में उन्नति व वैभव का तथा अशान्ति काल में सुरक्षा का प्रतीक थे। साम्राज्य की सुरक्षा के लिए सैन्य चौकियों के रूप में दुर्गों की रक्षा पंक्ति बनायी जाती थी, ताकि शत्रु सेना उस कतार को चीरकर राजधानी तक प्रवेश न कर सके। इन दुर्गों का वास्तु विन्यास हमारी सभ्यता के क्रमिक विकास को व्यक्त करता है।

1.3 विषय चयन का तात्त्विक आधार

दुर्ग निर्माण की आवश्यकता मानव विकास की निरन्तरता से जुड़ी हुई है। प्रागैतिहासिक काल में मानव गुफाओं, कन्दराओं व वृक्षों पर रहकर अपनी रक्षा स्वयं करता था।[28] शनैः शनैः परिवार, कुटुम्ब, कबीले, समुदाय, जाति, धर्म, देश व सामाजिक मान्यताओं के क्रमिक विकास ने सुरक्षा की भावना को व्यापक रूप प्रदान किया इसी भावना ने दुर्ग निर्माण की धारणा को जन्म दिया। फलतः दुर्ग परम्परा राज्य की अनिवार्य आवश्यकता बन गयी। इसी प्रकार जल जीव जगत की प्राथमिक आवश्यकता है। विश्व की समस्त प्राचीन सभ्यताओं का विकास विभिन्न नदियों के किनारे हुआ तथा वहीं फलीभूत हुई। किन्ही कतिपय कारणों से जल की कमी हुई तो वहाँ की सभ्यता ही नष्ट हो गयी। जल पंचमहाभूतों में से एक है, जल के बिना जीवन सम्भव नहीं है। मनुष्य शरीर का 70–75 भाग जल से निर्मित है।[29]

राजस्थान के शासकों ने किलों एवं जल के महत्त्व को समझा तथा सुरक्षा हेतु दुर्ग तथा उनमें आवश्यकतानुसार जल की उपलब्धता को सुनिश्चित किया। अतः राजस्थान के किलों में जल प्रबन्धन पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से शोध किया जाना अपेक्षित है।

इतिहास का विद्यार्थी एवं राजस्थान का मूल निवासी होने के कारण राजस्थान की धरती को गौरवान्वित करते विशाल दुर्ग शोधार्थी को सदैव आकर्षित करते रहे हैं। प्रायः प्रत्येक दुर्ग के भग्नावशेष, अट्टालिकाएँ, महल इत्यादि अपने इतिहास का वर्णन स्वयं करते हैं। किले में कराया गया प्रत्येक निर्माण यथा खाई, बुर्ज, महल, टांका, तालाब, कुण्ड, कुँए, बावड़ी, सुरंग, शस्त्रागार आदि किसी न किसी प्रयोजन से बनाए गए थे। उन सभी ने इतिहास को प्रभावित किया। वह प्रत्येक घटना, निर्माण, परिस्थिति, व्यक्तित्व, सन्दर्भ, व्यक्तिगत या समूहगत क्रियाकलाप इत्यादि जो इतिहास को प्रभावित करते हैं, इतिहास के विद्यार्थी द्वारा उस पर शोध किया जाना चाहिए। किलों में जल प्रबन्धन ने भी इतिहास को प्रभावित किया है अतः यह शोध का आवश्यक विषय माना जा सकता है।

राजस्थान के दुर्गों ने न केवल राजस्थान के इतिहास को अपने ढंग से निरूपित किया बल्कि वे राजस्थान की राजनीति, संस्कृति, अर्थव्यवस्था, रणकौशल एवं अभियान्त्रिकी कौशल का केन्द्र भी बने रहे। वर्तमान में पर्यटन के दृष्टिकोण से आय अर्जन का प्रमुख स्रोत भी हैं।

जलवायु, भौगोलिक स्थिति एवं मौसमी पारिस्थितिकी तन्त्र के कारण राजस्थान में जहाँ कुछ सालों के अन्तराल पर अकाल पड़ते रहते हैं, वहाँ जल प्रबन्धन का विषय अपना अलग महत्त्व रखता है। अतः दुर्ग एवं जल प्रबन्धन पर विभिन्न दृष्टिकोण से शोध किए जाने की अपार सम्भावनाएँ मौजूद हैं।

अतः राजस्थान के किलों में इतिहास, स्थापत्य को दृष्टिगत रखते हुए जल प्रबन्धन पर शोध करने का पुनीत अवसर शोधार्थी को प्राप्त हुआ।

1.4 अध्ययन के उद्देश्य

पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के अभाव में किसी भी शोध कार्य को पूर्ण नहीं किया जा सकता। उद्देश्य निर्धारित करके इस क्षेत्र में मध्यकालीन विरासत तथा अभियान्त्रिकी कौशल को उजागर करते हुए किलों की दशा, वस्तुस्थिति एवं चुनौतियों को ज्ञात कर

पूर्ण करने प्रयास किया गया।

प्रस्तुत शोध विषय में चिंतन के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गए हैं –

i. राजस्थान के इतिहास के सन्दर्भ में जल के महत्त्व को उजागर करना।
ii. दुर्ग निर्माण में जल प्रबन्धन की आवश्यकता का अध्ययन करना।
iii. दुर्गों में जल प्रबन्धन का दुर्ग की सुरक्षा एवं जीवनयापन के दृष्टिकोण से विश्लेषण करना।
iv. दुर्ग में प्रबन्धित जल के संचयन, रख रखाव, शुद्धिकरण, पुनर्भरण एवं वितरण की तत्कालीन पद्दति और उसके पीछे छिपे मंतव्यों का वर्तमान संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन करना।
v. दुर्ग में प्रबन्धित जल का विभिन्न प्रकार से उपयोग का अध्ययन करना।
vi. दुर्ग में प्रबन्धित जल पर कर एवं जल के दुरूपयोग पर दण्ड के प्रावधानों की पड़ताल करना।
vii. दुर्ग में प्रबन्धित जल के धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक दृष्टिकोण से महत्त्व का पता लगाना।
viii. राजस्थान के इतिहास में विशेषतः दुर्ग में जल प्रबन्धन की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता का विस्तृत एवं गहन अध्ययन करना।
ix. उपर्युक्त सम्पूर्ण अध्ययन से राजस्थान क्षेत्र के छिपे हुए तथ्यों एवं नये ज्ञान की खोज करना।
x. दुर्गों के स्थापत्य, विशेषताओं व इतिहास का विश्लेषण करते हुए उस पर जल प्रबन्धन के प्रभाव का अध्ययन करना।
xi. राजस्थान के प्रमुख दुर्गों में जल प्रबन्धन का क्षेत्रवार तुलनात्मक अध्ययन करना।
xii. दुर्ग में जल प्रबन्धन के क्षेत्र में आयी कठिनाइयों का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययन करना एवं निराकरण सम्बन्धी उपायों को प्रकाश में लाना।
xiii. दुर्ग में जल प्रबन्धन की सामरिक उपयोगिता का अध्ययन करना।
xiv. दुर्ग के गुप्त रास्तों, सुरंगों आदि में जल के भराव, ठण्डक एवं फव्वारों में उपयोग की तकनीक का अध्ययन करना।
xv. दुर्ग में जल को लिफ्ट करने की तकनीक का अध्ययन करना।
xvi. जल प्रबन्धन, संरक्षण एवं उचित उपयोग हेतु आज के मानव समाज को प्रेरित

करना।

1.5 अध्ययन की प्रकृति

प्रस्तुत शोध विषय की प्रकृति की विवेचना निम्न प्रकार की जा सकती है।

1.5.1 शोध कार्य की प्रकृति विज्ञान है

ऐसा अनुसंधान जिसमें कारण–परिणाम सम्बन्ध हो, विज्ञान की तकनीकों का अध्ययन किया जाता हो, तथ्यों व आंकड़ों का परीक्षणात्मक अध्ययन किया जाए तथा जिसमें भविष्यवाणी सम्भव हो, को वैज्ञानिक अध्ययन कहा जाता है अर्थात् इस तरह के अनुसंधान की प्रकृति विज्ञान[30] होती है।

अध्ययन के दौरान ज्ञात हुआ कि राजस्थान के किलों में जल प्रबन्धन हेतु जिन विधियों एवं तकनीकों का प्रयोग किया गया वे पूर्णरूप से वैज्ञानिक तथा उस समय के अभियांत्रिकी ज्ञान का विलक्षण उदाहरण थी। उदाहरणार्थ किलों में जल को कई कई वर्षों तक संग्रहित करना, जल को कई वर्षों तक शुद्ध, पवित्र एवं पीने योग्य बनाये रखना, जल को सैकड़ों फीट ऊँचाई पर स्थित किलें, महल व स्नानागारों में लिफ्ट कराना, जल को ठण्डा व गर्म करने की व्यवस्था करना, जल को गुप्त रास्तों सुरंगो एवं फव्वारों में उपयोग लेना आदि तकनीकें पूर्णतः वैज्ञानिक थीं। किले के भीतर जल स्रोतों को बनाए जाने के निश्चित् कारणों का अध्ययन किया गया तथा ऐसा करने के परिणाम भी ज्ञात हुए। इसी तरह शोध यात्रा के दौरान तथ्यों एवं आंकड़ों का संग्रहण किया गया, उनका विश्लेषण कर परीक्षण किया गया।

अतः अनुसंधान में वैज्ञानिक तकनीकों का अध्ययन करने, शोध कार्य में कारण परिणाम सम्बन्ध होने तथा निश्चित तथ्यों का परीक्षणात्मक अध्ययन करने के कारण कहा जा सकता है कि उक्त शोध कार्य एक वैज्ञानिक अध्ययन है इसलिए इस शोध की प्रकृति विज्ञान है।

1.5.2 शोध कार्य की प्रकृति कला है

ऐसे अनुसंधान की प्रकृति कला[31] होती है जिसमें प्राचीन व तत्कालीन कला का अध्ययन किया जाए तथा जिसमें अनुसंधानकर्ता के कला कौशल का उपयोग हो। अध्ययन के दौरान ज्ञात हुआ कि राजस्थान के किलों में जल प्रबन्धन का कार्य कलात्मक भी था। क्योंकि किलों में उस काल के दौरान जल प्रबन्धन की कला अपने आप में विलक्षण थी। उदाहरण के लिए इस कला के अन्तर्गत जल को लिफ्ट करने हेतु

जिस रहँट पद्दति का प्रयोग किया गया वो परसियन कला थी जो सल्तनत काल के दौरान भारतीयों ने मुस्लिम शासकों व यात्रियों से सीखी। इसी प्रकार टांका बनाने की कला भी भारतीयों ने विदेशियों से सीखी थी। जल के सीमित व धार्मिक, सांस्कृतिक उपयोग की कला हड़प्पा सभ्यता से चली आ रही है जिसका प्रयोग किलों में किया गया।

अतः कहा जा सकता है कि उक्त शोध कार्य एक कलागत अध्ययन है इसलिए इस शोध की प्रकृति कला भी है।

1.5.3 शोध कार्य की प्रकृति समाज विज्ञान है

ऐसा अनुसंधान जिसमें समाज, व्यक्ति, परिवार, जाति–समुदाय, वर्ग आदि के क्रियाकलापों व स्थापित मान्यताओं तथा उनके हित–अहित में किए गए कार्यों का सामाजिक व ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाए, सामाजिक अध्ययन कहलाता है। अध्ययन के दौरान ज्ञात हुआ कि राजस्थान के किलों में जल प्रबन्धन का कार्य समाज विज्ञान[32] की श्रेणी में रखा जा सकता है क्योंकि किलों में उस काल के दौरान जो जल प्रबन्धन किया गया वह किसी व्यक्ति विशेष या किसी वर्ग विशेष की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर नहीं किया गया बल्कि सम्पूर्ण जनता की सुरक्षा, संकट के समय जल के सतत उपयोग व लाभ हेतु किया गया। जिसका लाभ ना केवल शासक वर्ग बल्कि आम प्रजा को भी मिला।

अतः कहा जा सकता है कि उक्त शोध कार्य की प्रकृति सामाजिक भी है।

1.6 परिकल्पनाएँ

अनुसंधान को दिशा प्रदान करने हेतु परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया तथा इनके आलोक में शोध कार्य आगे बढ़ाया गया। परिकल्पनाओं की सत्यता का परीक्षण उपलब्ध साहित्यों, क्षेत्रीय अध्ययन, व्यक्तिगत भ्रमण, फोटोग्राफ्स, साक्षात्कार, प्रश्नावलियों एवं अनुसूचियों के द्वारा किया गया, जिसकी विवेचना आगामी अध्यायों में की गयी है।

मुख्य परिकल्पनाएँ निम्न है

H1) राजस्थान के किलों के जल प्रबन्धन ने इतिहास को प्रभावित किया है।

H2) मरूस्थलीय क्षेत्र के किलों का जल प्रबन्धन मैदानी किलों के जल प्रबन्धन की अपेक्षा श्रेष्ठ था।

H3) सैन्य दुर्गों का जल प्रबन्धन आवासीय दुर्गों के जल प्रबन्धन की तुलना

में श्रेष्ठ था।

H4) गिरी दुर्गों का जल प्रबन्धन भूमि दुर्गों की अपेक्षा श्रेष्ठ था।

H5) किलों में जल प्रबन्धन शासकों की दूरगामी सोच का परिणाम था।

H6) किलों का जल प्रबन्धन संकटकालीन परिस्थितियों में जय–पराजय के लिए उत्तरदायी रहा।

1.7 अनुसंधान का महत्त्व

प्राचीन व मध्यकाल में अधिकतर किले अलग–अलग तरह की प्राकृतिक व मौसमी परिस्थितियों वाले क्षेत्रों में बनवाये गये थे। इन किलों में पीने, निर्माण कार्यों एवं युद्ध की हालात में लम्बे समय तक जल की प्राप्ति हेतु वर्षा जल संग्रहण के साधन विकसित किए गए थे।

राजस्थान में जयपुर के निकट आमेर दुर्ग जो कि एक ऊँचें पहाड़ पर बना है, वर्षा जल संग्रहण का प्रमुख उदाहरण है। इस दुर्ग में एक विशाल भूमिगत टांका बनवाया गया था जिसमें वर्षा का जल एकत्र होता था। इसकी सुविकसित व्यवस्था के तहत वर्षा जल विभिन्न धोरों से गुजरते हुए स्वयं ही डिस्टिल व फिल्टर होकर टांके में एकत्रित हो जाता था। इसी प्रकार जोधपुर दुर्ग में भी वर्षा जल के संग्रहण व भूमिगत जल का मिला जुला वर्षा जल संग्रहण व रिचार्ज सिस्टम विकसित किया गया था।

राजस्थान का चित्तौड़गढ़ दुर्ग अपने गौरवशाली इतिहास एवं पर्यटन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने के साथ–साथ अपनी जल प्रबन्धन की व्यवस्था के लिए भी विख्यात है। युद्धकाल में किले के चारों तरफ लम्बी घेराबन्दी की जाती थी परन्तु दुर्ग में जल की पर्याप्त व्यवस्था होने के कारण इसमें रहने वाली जनता व योद्धाओं को कभी भी पानी की समस्या नहीं आयी। इस दुर्ग पर सबसे लम्बी घेराबन्दी 9 वीं सदी में 12 वर्ष तक रही। कहा जाता है कि उस समय चित्तौड़ दुर्ग में 84 जल स्रोत थे परन्तु वर्तमान में 22 जल स्रोत ही बचे हैं। इनमें सबसे बड़ा जल स्रोत चतरंग मोरी तालाब है। इस दुर्ग के इन सभी जल स्रोतों की भराव/ रिचार्ज क्षमता के आधार पर कहा जा सकता है कि इस दुर्ग में 50,000 व्यक्ति 4 वर्षों तक वर्षा न होने पर भी जीवित रह सकते हैं।[33]

भारत की जनसंख्या 1 अरब के आँकड़े को पार कर चुकी है और यह अनुमान किया जा रहा है कि सन् 2050 तक हम 1.64 अरब हो जाएंगे।[34] इतनी बड़ी जनसंख्या को पर्याप्त मात्रा में शुद्ध व स्वच्छ पेय जल उपलब्ध कराना सरकार के समक्ष एक

चुनौती पूर्ण कार्य है। वर्तमान में हमें जल संकट की समस्या का सामना करना पड़ रहा है, अतः इस ज्वलंत समस्या के समाधान की दृष्टि से प्रस्तावित विषय का महत्त्व स्वयं सिद्ध होता है।

किले के जलस्रोतों में जिन वैज्ञानिक तकनीकों का प्रयोग किया गया उनका अध्ययन व उन्हें सामने लाने का प्रयास शोध कार्य के अन्तर्गत किया गया है। इन तकनीकों का वर्तमान में देश के नीतिनिर्माताओं द्वारा प्रयोग किया जाए तो आधुनिक शहरों, गाँवों, गली मोहल्लों तथा भवनों में जल आपूर्ति व जल संग्रहण (रेन वाटर हारवेस्टिंग प्रणाली) किया जा सकता है। अतः यह शोध कार्य **नीति निर्माताओं के लिए भावी योजनाएँ बनाने** व उनके क्रियान्वयन के लिए महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शक के रूप में सिद्ध होगा।

किलों में जल प्रबन्धन विषय पर किया गये इस अनुसंधान को आधार बनाकर प्राचीन नगरों, गाँवों के जल प्रबन्धन पर अनुसंधान किया जा सकता है इसी प्रकार किलों के जल स्रोतों पर अध्ययन के समान ही किलों के देवालयों का भी अध्ययन किया जा सकता है, जिसमें यह शोध कार्य सहायक सिद्व होगा। अतः यह अनुसंधान **भावी शोधार्थियों के लिए मार्गदर्शक** का कार्य करेगा।

राजस्थान के किलों के जल प्रबन्धन विषय पर पूर्व में कोई अध्ययन होना ज्ञात नहीं होता है, सम्भवतः यह प्रथम प्रयास है। अतः यह अनुसंधान इस दिशा में नये ज्ञान की बढ़ोत्तरी करने वाला (**Addition to knowledge**) होगा तथा इतिहास विषय की समृद्धि में भी सहायक होगा।

1.8 अनुसंधान का क्षेत्र

उक्त शोध कार्य के दौरान शोधार्थी ने शोध के जिस क्षेत्र को चुना वह क्षेत्र किलों में न केवल जल प्रबन्धन की विधियों के बारे में बल्कि जल प्रबन्धन ने तत्कालीन समाज, संस्कृति, विज्ञान, रक्षा, सेना, युद्ध, शान्ति, व्यक्तित्व, सोच, शक्ति, आदतों, विचारों, आर्थिक, आवश्यकताओं के साथ साथ इतिहास को किस प्रकार प्रभावित किया भी जानने से सम्बन्धित है।

इसके साथ ही शोध का क्षेत्र उस काल के व्यक्तियों/शासकों, जिन्होंने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से किलों में जल प्रबन्धन को प्रभावित किया अथवा इस से प्रभावित हुए उनके एवं इस क्षेत्र मे उनके व्यक्तिगत प्रयासों के बारे में भी जानने से सम्बन्धित भी

रहा। क्योंकि शोध के लिए उनके व्यक्तित्व एवं उनकें विचारों को भी जानना आवश्यक था।

इसी प्रकार शोध का क्षेत्र किले से सम्बन्धित पारिस्थितिकी तन्त्र, वहाँ की भौगोलिक एवं मानसूनी परिस्थितियों , किले पर होने वाले अनवरत आक्रमणों, किले में रहने वाले वर्ग विशेष तथा जल का उपयोग करने वाले अन्य व्यक्तियों की संख्या के बारे में जानना भी रहा। उदाहरणार्थ धन्वन दुर्गों, गिरी दुर्गों व भूमि दुर्गों का स्थापत्य व जल प्रबन्धन तुलनात्मक रूप से अलग था क्योंकि उनकी भौगोलिक, जलवायु, मानसूनी परिस्थितियाँ अलग–अलग थी जिन्हें सूक्ष्मतः जाने बिना तुलनात्मक अध्ययन किया जाना सम्भव नहीं होता।

इसी प्रकार शोध का क्षेत्र किले में किये गये जल प्रबन्धन से सम्बन्धित पक्ष एवं विपक्ष पर भी विचार करना रहा। इसमें यह जानने का प्रयास किया गया कि किले विशेष में जल प्रबन्धन की आवश्यकता थी अथवा नहीं यदि आवश्यकता थी तो कहाँ तक ? यह आवश्यकता पूरी हुई अथवा नहीं ?

अनुसंधान क्षेत्र की भौगोलिक सीमाओं (ऐरिया ऑफ स्टडी) के अन्तर्गत सम्पूर्ण आधुनिक राजस्थान को चुना गया तथा अध्ययन की सरलता तथा क्षेत्रवार तुलनात्मक अध्ययन हेतु राजस्थान को चार उप विभागों पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में बाँटा गया तत्पश्चात् उक्त क्षेत्रों का अलग–अलग अध्ययन किया गया। यद्यपि राजस्थान में लगभग 250 दुर्ग है तथा सभी दुर्गों का अध्ययन करने पर शोध कार्य का ऐरिया काफी विस्तृत हो जाता अतः प्रत्येक क्षेत्र के दो महत्त्वपूर्ण दुर्गों को अनुसंधान हेतु चुना गया। उक्त चयन में यह ध्यान रखा गया कि प्रत्येक प्रकार के गिरी, भूमि, धन्वन, जल, सैन्य, आवासीय दुर्ग अध्ययन में शामिल हो सके।

1.9 स्रोतों की समीक्षा

प्रस्तुत विषय पूर्णतया नवीनतम और मौलिक विषय है जिस पर कोई भी कार्य अभी तक किया हुआ दृष्टिगोचर नहीं हुआ है। तथापि प्रकारान्तर से शोध कार्य हुए है जिनमें मुख्य निम्न है –

1.9.1 प्रदीप त्रिखा – **कल्चरल हेरिटेज ऑफ राजस्थान**[35], इस शोध कार्य में राजस्थान के प्रमुख किलों के बारे में बताया गया है किन्तु इसमें किलों के जल प्रबन्धन के बारे में कुछ नहीं बताया गया है।

1.9.2 राजेश चढ्ढा – **नीमराना फोर्ट पैलेस**[36], शोध कार्य एवं 16 वीं एनसीएआर परिचर्चा में नीमराना फोर्ट के बारे में बताया गया है किन्तु किले के जल प्रबन्धन की समीक्षा नहीं की गयी है।

1.9.3 रीमा हूजा – **चैनलिंग नैचर : हाइड्रोकुलिक्स ट्रेडिस्नल नॉलेज सिस्टम एण्ड वॉटर रिसोर्स मेनेजमेन्ट इन इण्डिया**, विख्यात इतिहासकार द्वारा अपने शोध लेख में भारत में जल प्रबन्धन के बारे में लिखा है, इसमें राजस्थान का भी वर्णन है किन्तु राजस्थान के किलों के जल प्रबन्धन का कोई वर्णन नहीं मिलता है।

1.9.4 एम.एस. राठौड़ – **अरबन वॉटर सप्लाई इन राजस्थान : प्रोब्लम्स एण्ड प्रोस्पेक्टस**[37], शोध ग्रन्थ में राजस्थान के नगरों में जल वितरण व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है। इसमें नगरों में जल की उपलब्धता, सीमित संसाधन, गिरते भूजल स्तर, वर्तमान खराब स्थिति के साथ – साथ जल वितरण व्यस्था को सुधारने के उपाय व सुझाव दिये गये है। किन्तु राजस्थान के इतिहास में किलों के भीतर जल वितरण प्रणाली, जल संसाधन, भूजल स्तर आदि के बारे में कुछ नहीं बताया गया है।

1.9.5 ब्रुक एवं गौरव भगत – **वॉटर द सेकण्ड एलीमेन्ट**[38] – शोध पत्र में जल के महत्त्व तथा वर्तमान खराब स्थिति के साथ–साथ जल संरक्षण व वाटर ट्रीटमेन्ट के बारे में विस्तार से वर्णन किया गया है। इसमें जोधपुर शहर में जल प्रबन्धन के बारे में भी बताया गया है।

1.9.6 अभिजीत मुखर्जी– **ग्राउण्ड वाटर रिचार्ज इन नेशनल ड्यून सिस्टम एण्ड एग्रीकल्चर्ल इकोसिस्टम्स इन द थार डेजर्ट रिजन, राजस्थान, इण्डिया** – शोध निबन्ध में थार मरूस्थल के भूजल स्तर तथा कृषि में उनकी उपयोगिता, महत्त्व तथा वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डाला गया है किन्तु थार मरूस्थल के किलों के भीतर के जल स्रोतों, उनकी कृषि में उपयोगिता, महत्त्व तथा वर्तमान स्थिति के बारे में कोई वर्णन नहीं दिया गया है। इसे भी केवल कृषि और भूगोल विषय तक सीमित माना जा सकता है।

1.9.7 किशोर सिंह– **जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर : डेजर्ट किंगडम**[39] – शोध निबन्ध में तीनो राज्यों के महत्त्व तथा इतिहास के साथ– साथ उनके किलों सहित अन्य महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थलों के बारे में वर्णन दिया गया है किन्तु

किलों के भीतर जल स्रोतों के सन्दर्भ में कुछ नहीं लिखा गया है।

1.9.8 धनंजय सिंह – **द हाऊस ऑफ मारवाड़ : द स्टोरी ऑफ जोधपुर**[40] – शोध प्रबंध में जोधपुर के इतिहास तथा ऐतिहासिक स्थलों के बारे में बताया गया है। इसमें मेहरानगढ़ तथा उसके जल स्रोतों के बारे में भी बताया गया है किन्तु जल प्रबन्धन पर कुछ नहीं लिखा गया है।

1.9.9 मनीष तिवारी – **वाटर मेनेजमेन्ट थ्रो पिपुल्स पार्टिसिपेशन इन राजस्थान : ए सोसोलोजिकल स्टडी**[41] – शोध प्रबन्ध में राजस्थान में जल प्रबन्धन, जल का आम जनता द्वारा उपयोग आदि पर समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से अध्ययन किया गया है। किन्तु इसमें किलों में जल प्रबन्धन पर कोई अध्ययन नहीं किया गया है।

1.9.10 सचिन शर्मा – **सोसियो कल्चर्ल इम्पेक्ट्स ऑफ टोरिज्म : ए स्टडी ऑफ जैसलमेर**[42] – शोध प्रबन्ध में जैसलमेर में पर्यटन का समाज व संस्कृति पर प्रभाव का अध्ययन किया गया है। इसमें बताया गया है कि जैसलमेर में प्रतिवर्ष कितने पर्यटक आते हैं तथा कौन कौन से पर्यटन स्थल पर्यटन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें सोनारगढ़ दुर्ग की विशेषताओं का भी जिक्र किया गया है किन्तु दुर्ग के इतिहास, स्थापत्य एवं जल प्रबन्धन के बारे में कोई वर्णन नहीं किया गया है।

1.9.11 वीणा गायत्री – **जूनागढ़ दुर्ग : इतिहास तथा स्थापत्य**[43] – लघुशोध प्रबन्ध में बीकानेर के जूनागढ़ दुर्ग के इतिहास, स्थापत्य, कला आदि का वर्णन दिया गया है किन्तु किले के जल स्रोतों पर कोई अध्ययन नहीं किया गया है, मात्र यह बताया गया है कि दुर्ग में चार कुँए है परन्तु उनके नाम भी नहीं बताए गए साथ ही दुर्ग के जल प्रबन्धन, जल की उपलब्धता तथा उपयोग आदि के बारे में भी कुछ नहीं बताया गया है।

1.9.12 अश्विनी कुमार गोयल – **जूनागढ़ दुर्ग का दुर्ग स्थापत्य**[44] – लघु शोध प्रबन्ध में बीकानेर के जूनागढ़ दुर्ग के दुर्ग स्थापत्य, इतिहास एवं कला पर अध्ययन किया गया है किन्तु इसमें दुर्ग के भीतर के जल स्रोतों तथा जल प्रबन्धन पर कोई वर्णन नहीं मिलता है।

1.9.13 अर्चना तिवारी – **रणथम्बोर किले का ऐतिहासिक एवं कलात्मक अध्ययन**[45] – शोध प्रबन्ध में रणथम्बोर दुर्ग का इतिहास, स्थापत्य एवं जल स्रोतों के बारे

में वर्णन दिया गया है, सभी जल स्रोतों की महत्ता एवं उपयोगिता को भी बताया गया है किन्तु यह अध्ययन मात्र रणथम्बोर दुर्ग के लिए किया गया है जिसमें राजस्थान के अन्य किले शामिल नहीं किये गये है।

1.9.14 नेहा राजोरा – **कल्चरल लेण्डस्केप्स ऑफ आम्बेर, राजस्थान**[46] – शोध प्रबन्ध में आम्बेर दुर्ग के दुर्ग स्थापत्य, सांस्कृतिक विरासत, मेले, पर्यटन, जल स्रोत, जल लिफ्ट करने की प्रणाली आदि के साथ साथ जयगढ़ दुर्ग का भी वर्णन देकर आम्बेर शहर के जल स्रोतों पर भी प्रकाश डाला गया है। किन्तु इसमें जल वितरण प्रणाली, जल निकास प्रणाली, फव्वारा सिस्टम, सभी टांकों की विशेषता आदि का अध्ययन नहीं किया गया है।

1.9.15 पी.के. जैन – **स्ट्रेटजी फॉर रिसोर्स जेनरेशन इन राजस्थान हेरिटेज डेवलपमेन्ट एण्ड मेनेजमेन्ट ऑथोरिटी, जयपुर**[47] – शोध रिपोर्ट में जयपुर शहर के विभिन्न पर्यटन स्थलों के जीर्णोद्धार का कार्य–विवरण दिया गया है। इसमें आम्बेर किले के जलस्रोतों तथा शौचालयों एवं स्नानागारों का भी वर्णन दिया गया है, किन्तु महल के जल प्रबन्धन के बारे में कुछ नहीं बताया गया है।

1.9.16 भँवर वैष्णव – **बूँदी, टोंक एवं सवाईमाधोपुर सक्रिट में पर्यटन विकास की सम्भावनाएँ एवं चुनौतियाँ : एक भौगोलिक अध्ययन**[48] – शोध प्रबन्ध में उक्त सक्रिट में पर्यटन विकास के बारे में बताते हुए वहाँ के पर्यटक स्थलों की सूची तथा वर्ष में आने वाले पर्यटकों की संख्या के बारे में वर्णन किया गया है। इस अध्ययन में बूँदी के तारागढ़ दुर्ग का पर्यटन की दृष्टि से महत्त्व भी बताया गया है किन्तु तारागढ़ दुर्ग के स्थापत्य, इतिहास तथा जल प्रबन्धन के बारे में कोई वर्णन नहीं दिया गया है।

1.9.17 एस.के. भनोट– **जूनागढ़ (बीकानेर) का दुर्ग स्थापत्य – एक अध्ययन**[49] – शोध पत्र में जूनागढ़ दुर्ग के स्थापत्य को बताया गया है। इसमें दुर्ग के संक्षिप्त इतिहास का भी जिक्र मिलता है किन्तु दुर्ग के जल प्रबन्धन पर प्रकाश नहीं डाला गया है।

1.9.18 जफरूल्लाह खाँ– **आमेर महल में रहँट प्रणाली**[50] – शोध पत्र में आमेर महल में जल को लिफ्ट करने हेतु अपनायी गयी रहँट प्रणाली एवं सम्पूर्ण प्रक्रिया का विस्तार से वर्णन किया गया है किन्तु तत्पश्चात् महल में लिफ्ट किये

जल की जल वितरण प्रणाली, शौचालयों व स्नानगारों में जल का प्रयोग, महल के टांके आदि के बारे में कोई वर्णन नहीं दिया गया है।

1.9.19 हरमन गोट्ज– **आऊटलाईन ऑफ एन आर्ट हिस्ट्री ऑफ बीकानेर**[51] – शोध पत्र में बीकानेर शहर के ऐतिहासिक स्थलों के साथ – साथ जूनागढ़ दुर्ग के कला स्थापत्य एवं इतिहास को भी बताया गया है। इसमें किले के जल स्रोतों, जल वितरण व जल निकास प्रणाली आदि के बारे में कोई वर्णन नहीं मिलता है।

1.9.20 सुरेन्द्र पाल गुप्ता – **हनुमानगढ़ : कुछ ऐतिहासिक प्रसंग**[52] – शोध पत्र में भटनेर दुर्ग के स्थापत्य एवं इतिहास का वर्णन दिया गया है इसमें दुर्ग के 52 जल कुँओं के बारे में भी बताया गया है किन्तु जल वितरण प्रणाली, जल निकास प्रणाली आदि के बारे में कुछ नहीं बताया गया है।

1.9.21 फतेह लाल मेहता– **हेण्डबुक ऑफ मेवाड़ एण्ड गाईड टू इट्स प्रिंसिपल ओबजेक्टस ऑफ इन्टरेस्ट** – शोध पत्र में चित्तौड़गढ़ दुर्ग के स्थापत्य एवं इतिहास का वर्णन दिया गया है साथ ही किले में प्रमुख जल स्रोतों के बारे में भी बताया गया है किन्तु इसमें जल प्रबन्धन, जल वितरण प्रणाली आदि के बारे में कोई जिक्र नहीं मिलता है।

1.9.22 सवाई सिंह धमोरा – **गढ़–किले : विविध स्वरूप**[53] – शोध लेख में किलों के विविध प्रकारों, किलों के महत्त्व तथा प्रमुख किलों के बारे में बताया गया है किन्तु किलों के जल स्रोतों, जल वितरण प्रणाली आदि के बारे में कोई जिक्र नहीं किया गया है।

1.9.23 उपेन्द्र सिंह शेखावत – **मेवाड़ रो गढ़ भैंसरोड़गढ़**[54] – शोध लेख में जल दुर्ग भैंसरोड़गढ़ के दुर्ग स्थापत्य एवं इतिहास का वर्णन दिया गया है किन्तु दुर्ग के जल प्रबन्धन के बारे में कुछ नहीं बताया गया है।

1.9.24 गीता शर्मा – **आमेर स्थापत्य एवं चित्रकला**[55] – शोध प्रबन्ध में आमेर महल के स्थापत्य, इतिहास एवं जल स्रोतों का विवरण दिया गया है। इसमें जयगढ़ दुर्ग के स्थापत्य को भी बताया गया है किन्तु ग्रन्थ में किले की जल वितरण प्रणाली, रहँट प्रणाली आदि के बारे में कोई वर्णन नहीं दिया गया है।

पूर्व में किये गये उक्त शोध कार्यों के विश्लेषण पर शोधार्थी ने पाया कि

राजस्थान के किलों पर किये गये अधिकतर शोध कार्यों के अन्तर्गत किलों के इतिहास, वास्तुशिल्प, कला कौशल, अभियान्त्रिकी, आयुध निर्माण, अर्थव्यवस्था, पर्यटन, संस्कृति, लोक कल्याण एवं शासकों की जीवनी, रण कौशल, त्याग, बलिदान, वीरता, शौर्य आदि का ही अध्ययन किया गया है किन्तु इतिहास को प्रभावित करने वाले जल प्रबन्धन पर कोई गहन शोध कार्य नहीं किया गया। इसी प्रकार जल प्रबन्धन के क्षेत्र में प्राचीन सभ्यताओं में जल आपूर्ति–निकास प्रणाली, प्राचीन एवं वर्तमान नगरों में जल प्रबन्धन, ग्रामीण जल प्रबन्धन, नदियों–नहरों–कुँओं–बावड़ियों के जल चक्र, वर्षा जल प्रबन्धन आदि पर शोध कार्य किया गया किन्तु किलों में जल प्रबन्धन को व्यक्त करने वाला गहन शोध नहीं किया गया।

अतः शोधार्थी द्वारा उक्त सभी शोध कार्यों एवं उनके अभावों एवं वर्तमान आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए तथा उन कमियों को पूरा करते हुए अपने अनुसंधान के अन्तर्गत जिन प्रश्नों का पता लगाने का प्रयास किया गया उनमें निम्न प्रमुख हैं –

- किलों में जल प्रबन्धन की आवश्यकता क्यों पड़ी ?
- किलों में जल प्रबन्धन ने क्या इतिहास को प्रभावित किया? यदि किया तो किस तरह से व कहाँ तक।
- इसी प्रकार उस काल में विज्ञान के सीमित ज्ञान के बावजूद भी किस तरह से ऊँचे पहाड़ों पर बने किलों में सैकड़ों व्यक्तियों की आवश्यकता पूर्ति हेतु कई वर्षों तक उपयोग में लिये जा सकने योग्य जल के संग्रहण की विशिष्ट व्यवस्था किस प्रकार की गयी जबकि आज के वैज्ञानिक युग में भी वर्ष भर के लिए भी जल संग्रहण करना कठिन कार्य साबित हो रहा है।
- साथ ही जल प्रबन्धन की कौन–कौन सी तकनीकें अपनाई गयीं तथा इन्हें कहाँ से ग्रहण किया गया ? इत्यादि।

1.10 अध्याय आयोजन

1.10.1 प्रथम अध्याय : प्रस्तावना

इस अध्याय में प्रस्तुत शोध विषय के अध्ययन की प्रकृति, उसके उद्देश्यों, स्रोतों की समीक्षा एवं शोध प्रविधि आदि का अध्ययन किया गया।

1.10.2 द्वितीय अध्याय : राजस्थान के इतिहास में जल प्रबन्धन की आवश्यकता

एवं महत्त्व

इस अध्याय में राजस्थान के इतिहास में जल के महत्त्व, राजस्थान की भौगोलिक, मानसूनी, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों ने जल प्रबन्धन की आवश्यकता को किस प्रकार जन्म दिया, इस जल प्रबन्धन का इतिहास में क्या महत्त्व रहा आदि का अध्ययन किया गया।

1.10.3 तृतीय अध्याय : राजस्थान के किलों में जल प्रबन्धन की विधियाँ

राजस्थान के किलों में स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार जल प्रबन्धन की अनेक विधियाँ अपनाई गयीं थी जिनमें तालाब, नाड़ी, जोहड़, बावड़ी, झालरे, कुण्ड, टांके, नदी, नाले आदि प्रमुख जल स्रोतों द्वारा जल प्रबन्धन प्रमुख हैं। इस अध्याय में तत्सम्बन्धी सभी तथ्यों का अध्ययन किया गया है।

1.10.4 चतुर्थ अध्याय : उत्तरी राजस्थान के प्रमुख दुर्गों का इतिहास, स्थापत्य एवं जल प्रबन्धन

राजस्थान के प्रत्येक किले के साथ कोई न कोई ऐतिहासिक प्रसंग या घटना जुड़ी हुई है। इन ऐतिहासिक घटनाओं, प्रसंगों एवं राजस्थान के दुर्गों के स्थापत्य व जल प्रबन्धन ने एक दूसरे को प्रभावित किया है। इस अध्याय मे उत्तरी राजस्थान के प्रमुख दुर्गों के स्थापत्य, दुर्ग से सम्बन्धित इतिहास एवं जल प्रबन्धन के स्रोतों तथा इन जल स्रोतों में जल की प्राप्ति, संग्रहण, शुद्धिकरण, वितरण, पुनर्भरण, उपयोग आदि की प्रक्रिया का समग्र अध्ययन किया गया।

1.10.5 पंचम अध्याय : दक्षिणी राजस्थान के प्रमुख दुर्गों का इतिहास, स्थापत्य एवं जल प्रबन्धन

इस अध्याय में चतुर्थ अध्याय के समान ही दक्षिण राजस्थान के प्रमुख दुर्गों के स्थापत्य, सम्बन्धित इतिहास एवं जल प्रबन्धन का अध्ययन किया गया।

1.10.6 षष्ठम अध्याय : पूर्वी राजस्थान के प्रमुख दुर्गों का इतिहास, स्थापत्य एवं जल प्रबन्धन

इस अध्याय में पूर्वी राजस्थान के प्रमुख दुर्गों के स्थापत्य, सम्बन्धित इतिहास एवं जल प्रबन्धन का अध्ययन किया गया।

1.10.7 सप्तम अध्याय : पश्चिमी राजस्थान के प्रमुख दुर्गों का इतिहास, स्थापत्य एवं जल प्रबन्धन

इस अध्याय में पश्चिमी राजस्थान के प्रमुख दुर्गों के स्थापत्य , सम्बन्धित

इतिहास एवं जल प्रबन्धन का अध्ययन किया जायेगा।

1.10.8 अष्टम अध्याय : राजस्थान के प्रमुख किलों में जल प्रबन्धन का तुलनात्मक अध्ययन एवं महत्त्व

इस अध्याय में राजस्थान के प्रमुख किलों जिनके जल प्रबन्धन पर अध्याय चार से अध्याय छह तक अनुसंधान किया गया है, उनका तुलनात्मक अध्ययन किया गया।

1.10.9 नवम अध्याय : निष्कर्ष और मूल्यांकन

1.11 शोध प्रविधि

सर्वप्रथम शोध विषय का चयन ''**राजस्थान के प्रमुख किलों में जल प्रबन्धन : ऐतिहासिक सन्दर्भ में**'' किया गया। तत्पश्चात् शोध के उद्देश्य निर्धारित कर परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया। इसी क्रम में शोध के क्षेत्र का निर्धारण कर पूर्व में किये गये शोध कार्यों का अवलोकन किया गया। इसके बाद आँकड़ों या तथ्यों के संकलन का कार्य प्रारम्भ किया गया। प्राप्त आंकड़ों का सूक्ष्म अध्ययन कर निष्कर्ष प्राप्त किये गये।

1.11.1 तथ्यों का संकलन

अनुसंधान हेतु प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों से तथ्यों का संकलन किया गया। अध्ययन के प्राथमिक स्रोतों हेतु किलों में भ्रमण कर वस्तुस्थिति का परिचय, जल प्रबन्धन की तकनीक, उसकी उपयोगिता का व्यक्तिशः अध्ययन कर स्थानीय व्यक्तियों, गाइड्स, म्यूजियम इंचार्ज्स आदि के मौखिक साक्षात्कारों एवं अभिलेखों, ताम्रपत्रों, शिलालेखों आदि को आधार बनाया गया। साथ ही पोथीखानों में संग्रहित प्राचीन नक्शों, बहियों, हस्तलिखित ग्रन्थों के आधार पर किले के स्वरूप की रूपरेखा तैयार की गयी। इनमें सर्वप्रथम जयपुर शहर के किलों यथा आमेर, जयगढ़ तथा नाहरगढ़ के किलों व उनके संग्रहालयों का भ्रमण किया गया तथा अपने कैमरे से स्वयं फोटोग्राफ्स उतारे गये। यहाँ के सुरक्षा प्रहरी श्री विजय कुमार जी ने किलों के जल स्रोतों एवं उनकी उपयोगिता के बारे में विस्तार से बताया। यहाँ की जल लिफ्ट करने की प्राचीन रहँट प्रणाली का विस्तृत अवलोकन शोधार्थी द्वारा किया गया। तत्पश्चात् जोधपुर के किले मेहरानगढ़ का भ्रमण किया गया यहाँ के मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट के रघुवीर सिंह भाटी जी ने किले एवं उसके जल स्रोतों के बारे में विस्तार से बताया। इसके बाद शोधार्थी द्वारा चित्तोड़गढ़ के किले का भ्रमण किया गया इस किले एवं इसके जल स्रोतों के

फोटोग्राफ्स उतारे गये साथ ही जल स्रोतों में पानी की आवक, निकासी एवं स्टोरेज के बारे में किले के कर्मचारियों गाइड़ श्री जगदीश लाल से साक्षात्कार के माध्यम से जाना गया। अन्य किलों के प्राथमिक स्रोतों से तथ्यों का संकलन भी शोधार्थी द्वारा इसी तरह से किया गया।

इसी प्रकार अध्ययन के द्वितीय स्रोतों हेतु विभिन्न प्रकार धार्मिक ग्रन्थों, पुराणों, उस काल के साहित्यों, ख्यातों, रोजनामचों, पोथियों, बहियों, वर्तमान लेखकों की पुस्तकों, जर्नल्स, पत्र–पत्रिकाओं, अखबारों, सरकारी पब्लिकेशन्स आदि को आधार बनाया गया। सर्वप्रथम राष्ट्रीय अभिलेखागार बीकानेर के पोथीखाने, अनूप पुस्तकालय बीकानेर के हस्तलिखित ग्रन्थालय, मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट के पोथीखाने, चौपासनी शोध संस्थान जोधपुर, प्रताप शोध संस्थान उदयपुर, रावत शम्भू सिंह स्मृति पुरा अभिलेखागार ठिकाना ज्ञानगढ़ भीलवाड़ा आदि से आवश्यक तथ्य एकत्रित किये गये साथ ही विभिन्न पुस्तकालयों यथा बनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान विश्वविद्यालय, राजकीय महाविद्यालय, टोंक एवं राजकीय महाविद्यालय, कोटा में किलों से सम्बन्धित पुस्तकों, शोध प्रबन्धों, जर्नल्स, पत्र–पत्रिकाओं का अध्ययन कर तथ्य संकलित किये गये इसी क्रम में किलों के म्यूजियम में मौजूद अभिलेखों, किलों के पुस्तकालयों आदि से शोध सामग्री प्राप्त की गयी जिनमें मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट की रानीसर तालाब सफाई रिपोर्ट मेहरानगढ़ के जल स्रोतों पर जारी कलेण्डर[56] जयपुर के सिटी पैलेस म्यूजियम एवं शोध केन्द्र में मौजूद जयपुर के किलों सम्बन्धित प्राचीन नक्शों तथा रिपोर्ट्स आदि प्रमुख है। तत्पश्चात् एकत्रित तथ्यों का अनुसंधान हेतु सारणिकरण, सूचीकरण, प्रयुक्तिकरण एवं विश्लेषण किया गया।

शोधार्थी द्वारा शोध कार्य हेतु जिन प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्यों का संकलन किया गया उनमें कुछ तथ्य कालगत (पिरियोडिक) थे परन्तु अधिकांश तथ्य परिच्छेदिय समंक (क्रोस सेक्सन) थे। यथा मेहरानगढ़ के निर्माण के समय के जल स्रोत छोटे तथा किलों के भीतर बनाये गये टांके मात्र थे किन्तु जब किले की सुरक्षा एवं युद्ध के खतरे बढ़ने लगे तब आने वाले शासकों ने किले के बाहर बने तालाबों जिनमें रानीसर तथा पद्मसर तालाबों को किले के क्षेत्र में ले लिया या इनके जल को लिफ्ट करा कर किले के भीतर उपयोग में लिया जाने लगा। यह भी ज्ञात किया गया कि ये जल स्रोत कब बने तथा कब कब इनमें सुधार/ विस्तार किया गया, इस प्रकार ये तथ्य काल श्रेणी समंक (टाइम सिरीज डेटा) थे जो स्थानीय परिस्थिति व काल पर निर्भर थे। इसी प्रकार

मेहरानगढ़ के जल स्रोत कितने बड़े तथा किस माप के थे एवं उनके जल का उपयोग किस कार्य में तथा किस पद्दति से किया जाता था यह ज्ञात किया गया, इस प्रकार ये तथ्य परिच्छेदिय समंक थे।

1.11.2 सर्वेक्षण विधि

शोधार्थी द्वारा अनुसंधान हेतु सर्वेक्षण विधि का सर्वाधिक प्रयोग किया गया। इसमें शोध से सम्बन्धित विभिन्न किलों का स्वयं भ्रमण करके सर्वे माध्यम से तथ्यों का संकलन एवं परीक्षण किया गया। साथ ही यह भी जाँच की गयी कि इनसे सम्बन्धित द्वितीयक स्रोत कहाँ तक विश्वसनीय है। इस प्रकार इस पद्दति के प्रयोग से शोध की विश्वसनीयता को बढ़ाया गया।

1.11.3 साक्षात्कार विधि

शोधार्थी द्वारा शोध हेतु साक्षात्कार विधि का भी प्रयोग किया गया। सर्वप्रथम साक्षात्कार मार्गदर्शिका का निर्माण किया गया तत्पश्चात् विभिन्न किलों का स्वयं भ्रमण करके वहाँ के कर्मचारियों, संग्रहालयाध्यक्षों, गाईड्स तथा शहर के जानकार व्यक्तियों का साक्षात्कार लिया गया। इस माध्यम से तथ्यों का संकलन एवं परीक्षण कर द्वितीयक स्रोतों की विश्वसनीयता की जाँच की गयी। यथा मेहरानगढ़ के श्री रघुराज सिंह भाटी, जूनागढ़ के कर्नल देवनाथ सिंह जी, गागरोन के केसरी सिंह जी तथा ललित कुमार शर्मा जी, चित्तौड़गढ़ के लोकेन्द्र सिंह चूण्डावत जी, भटनेर के राजेश दाधीच जी, जयगढ़ के कमल झा एव छोटू जी, आमेर के जफरूल्लाह खाँ साहब आदि का साक्षात्कार लिया गया इन सभी से किले से सम्बन्धित जल स्रोतों के बारे में विस्तार उपयोगी जानकारियाँ प्राप्त की गयी।

1.11.4 अनुसूची विधि

शोधार्थी द्वारा शोध हेतु अनुसूची विधि का भी प्रयोग किया गया। इस विधि के अन्तर्गत शोधार्थी ने कई प्रश्नों एवं उनके सम्भावित उत्तरों की एक सूची बनाई तथा उसे एक अनुसूची का रूप दिया। तत्पश्चात् विभिन्न किलों के भ्रमण के समय उपयोगी जानकारी जुटाने के लिए इस अनुसूची का प्रयोग किया।

1.11.5 प्रश्नावली विधि

शोधार्थी द्वारा शोध कार्य के दौरान प्रश्नावली विधि का भी प्रयोग किया गया। अनुसूची के प्रश्नों एवं अन्य अनुत्तरित प्रश्नों का जवाब प्रश्नावली विधि द्वारा भी ज्ञात

किया गया। यथा मेहरानगढ़ किले का भ्रमण करके साक्षात्कार एवं अनुसूची विधि से प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के पश्चात् भी कई प्रश्न अनुत्तरित रह गये क्योंकि उनके उत्तरदाता श्री ओमप्रकाश जी तोलम्बिया उन दिनों शहर से बाहर गये हुए थे तथा उन प्रश्नों के जवाब वे ही दे सकते थे अतः शोधार्थी ने एक प्रश्नावली तैयार करके उसे श्री तोलम्बिया जी के घर पर छोड़ दिया जिनका जवाब तोलम्बिया जी ने दिया तथा उसे डाक से शोधार्थी के पास पहुँचाया। अतः स्पष्ट है कि शोध की प्रश्नावली विधि अनुसंधानकर्ता के लिए लाभदायक रही जिससे शोधकार्य में अधिक विश्वसनीयता आई।

1.11.6 फोटोग्राफी विधि

अध्ययन के दौरान विभिन्न किलों का भ्रमण कर उनके जल स्रोतों का सर्वेक्षण किया गया तथा उनके फोटोग्राफ शोधार्थी द्वारा स्वयं उतारे गये। इस प्रकार अनुसंधान की फोटोग्राफी विधि का प्रयोग भी शोध कार्य में किया गया।

1.11.7 प्रतिचयन विधि (सेम्पलिंग मेथड़)

राजस्थान में किलों की संख्या बहुत अधिक है तथा उन सभी को अनुसंधान हेतु नहीं लिया जा सकता था। अतः कुछ महत्वपूर्ण किलों का चयन किया गया। इस प्रकार अनुसंधान में प्रतिचयन विधि का भी प्रयोग किया गया।

सन्दर्भ

1. मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2013, प्राक्कथन,।
2. मेहर, जहूर खाँ, मेहरानगढ़ की स्थापना (जोधपुर का सांस्कृतिक वैभव, सं डॉ0 सुखवीर सिंह गहलोत) 1996 राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर पृ124.
3. सेठिया, कन्हैया लाल, मींझर काव्य संग्रह।
4. टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टिक्यूटिजी ऑफ राजस्थान, एम.एन. पब्लिशर्स, 1971, परिचय पृ18.
5. मेहर, जहूर खाँ, पूर्वोक्त पृ 124.
6. केलवा, औंकार सिंह, मेवाड़ की प्राचीन धरोहर एवं विरासत गढ़, किले, दुर्ग एवं रावले, जौहर साका स्मारिका 2011 सं सुशीला लड्ढ़ा, पृ105 से साभार।
7. व्यास, राजेश कुमार, सांस्कृतिक पर्यटन, रा.हि.ग्र.अका.,2009 पृ 157
8. श्रीवास्तव के.सी., प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, 2003 पृ 16

से 25
9. पन्नीकर, केवलम माधव, सर्वे ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1960 पृ 15.
10. ऋग्वेद मं 1, सूक्त 41. स्वामी दयानन्द सरस्वती (सं.), अजमेर
11. उक्त।
12. ऋग्वेद मं 7 सूक्त 11. पूर्वोक्त।
13. व्यास, राजेश कुमार, सांस्कृतिक पर्यटन, रा.हि.ग्र.अका.,2009 पृ157.
14. उक्त।
15. महाभारत, वनपर्व : 15–10–20
16. व्यास, राजेश कुमार, पूर्वोक्त पृ 157.
17. व्यास, राजेश कुमार, पूर्वोक्त पृ 158.
18. व्यास, राजेश कुमार, पूर्वोक्त पृ 159.
19. शुक्रनीति, चतुर्थ अध्याय, षष्ठं प्रकरण, मिश्र ब्रह्मशंकर, सं., पृ 324–326
20. उक्त।
21. नरपतिजयचर्या, पृ 175–176
22. कोटिल्य कृत अर्थशास्त्र, अध्याय 7, गंगा प्रसाद शास्त्री (अनु.) नई दिल्ली, 1997
23. उक्त।
24. व्यास, राजेश कुमार, पूर्वोक्त पृ 158.
25. मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, पूर्वोक्त पृ 11
26. मनुस्मृति, अध्याय 7 श्लोक सं 70–76 भट्ट पं0 रामेश्वर, पृ 161–162, नई दिल्ली
27. मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, पूर्वोक्त पृ 11
28. मिश्र, रतनलाल, राजस्थान के दुर्ग, साहित्यगार, जयपुर 2008, पृ. 7.
29. कोठारी, गुलाब सं0, पत्रिका इयर बुक 2010, राजस्थान पत्रिका प्रकाशन, पृ 511
30. कार, ई0 एच0, व्हाट इज हिस्ट्री, विन्टेज बुक्स, 2004, पृ 46
31. कार, ई0एच0 पूर्वोक्त पृ 23
32. कार, ई0एच0 पूर्वोक्त पृ 25
33. अग्रवाल अनिल एवं नारायण सुनीता, अरावली के किले, सेन्टर फॉर साइन्स एण्ड एनवायरमेन्ट, 1998, पृ. 156–157
34. टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 25.08.2014, सम्पादकीय पृष्ठ।
35. शोध प्रबन्ध, अंग्रजी विभाग, दयानन्द कॉलेज अजमेर, 2007
36. कन्सट्रक्टिंग राजपूताना, शोध प्रबन्ध, राजस्थान विश्वविद्यालय, 2004 एवं 16 वीं परिचर्चा, एनसीईआर, नीमराना फोर्ट, 2014,
37. इकॉनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, 27 अगस्त 1994, पृ. 2272–74.
38. ब्लू प्लानेट जर्नल तथा इन्टरनेशनल वाटर रिसर्च ग्रुप।
39. लस्टर प्रेस लि0 1992

40. लोटस कलेक्शन, रोली बुक्स प्रा0 लिमिटेड़, 1994
41. शोध प्रबन्ध, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2008
42. शोध प्रबन्ध, ट्यूरिज्म एण्ड हॉटल मैनेजमेन्ट, कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरूक्षेत्र 2012
43. लघु शोध प्रबन्ध, बनस्थली विद्यापीठ, बनस्थली, टोंक, 2004
44. लघु शोध प्रबन्ध, महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर, 2004
45. शोध प्रबन्ध, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, 2013
46. शोध प्रबन्ध, यूनिवर्सिटी ऑफ इलिनोइस एट अरबाना, चम्पाहेगन, यू.एस.ए., 2013
47. शोध रिपोर्ट, आर0एच0डी0एम0ए0.
48. शोध प्रबन्ध, महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर, 2014
49. वशिष्ठ, वी.के. संम्पादक, कल्चरल हेरिटेज ऑफ राजस्थान, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, बनस्थली विद्यापीठ, बनस्थली टोंक, 2008 अध्याय 12, पृ 78–85
50. पुरासम्पदा, राजस्थान राज्य पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग, जयपुर, पृ 59
51. राजस्थान भारती, सादुल राजस्थानी शोध संस्थान, जूलाई 1946 पृ 3–20
52. वैचारिकी, भारतीय विद्या मन्दिर, 12/1 नेलीसेनगुप्ता सरणी, कोलकाता, अक्टूबर–दिसम्बर 2009 पृ 13
53. जौहर साका स्मारिका, 1989–90, जौहर स्मृति संस्थान, चित्तौड़गढ़, पृ 38–40
54. चूण्डावत, लोकेन्द्र सिंह, सं0,जौहर साका स्मारिका, जौहर स्मृति संस्थान, चित्तौडगढ़ 1997, पृ. 20
55. शोध प्रबन्ध, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, 1993
56. मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट, मेहरानगढ़, जोधपुर,

अध्याय द्वितीय

राजस्थान के इतिहास में जल प्रबन्धन की आवश्यकता एवं महत्त्व

राजस्थान के इतिहास में जल प्रबन्धन की आवश्यकता एवं महत्त्व को जानने के लिए ब्रह्माण्ड में जल की उत्पत्ति, धर्मशास्त्रों में जल प्रबन्धन का महत्त्व, विज्ञान में महत्त्व के साथ–साथ राजस्थान की भौगोलिक परिस्थिती, जलवायु, वर्षा की स्थिति को भी समझना आवश्यक है। प्रस्तुत अध्याय में उक्त प्रयास किया गया है। जल प्रबन्धन की परम्परा पुरातन है। विश्व एवं भारत के प्राचीन इतिहास में भी जल प्रबन्धन अपनाया गया था। लगभग सभी धार्मिक ग्रन्थ जल एवं जल प्रबन्धन के महत्त्व को बताते हैं। विज्ञान भी जल के महत्त्व को प्रकट करता है। राजस्थान के भूगोल ने भी जल प्रबन्धन की आवश्यकता को बढ़ाया है।

2.1 जल की उत्पत्ति

संस्कृत शब्द आपः का अर्थ हिन्दी में जल है।[1] हिन्दू धर्मशास्त्रों में भी इसकी उत्पत्ति के बारे में बताया गया है। एक मत के अनुसार विराट पुरूष ने पृथ्वी के परमाणुकार स्वरूप से स्थूल पृथ्वी तथा उसमें जल की उत्पत्ति की। पुरूष सूक्त[2] के 17 वें मंत्र में कहा गया है कि परमेश्वर ने अग्नि के परमाणुओं के साथ जल के परमाणुओं को मिला कर जल की रचना की। तैतरीय उपनिषद के अनुसार परमेश्वर और प्रकृति के संयोग से आकाश की उत्पत्ति होती है, इसके पश्चात् वायु, वायु के पश्चात् अग्नि, फिर जल, फिर पृथ्वी, तत्पश्चात् औषधि, फिर अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से पुरूष की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार परमेश्वर ने पंच महाभूतो आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी की रचना की।

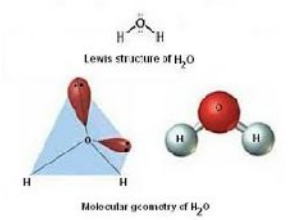

आधुनिक विज्ञान की दृष्टि में जल एक योगिक है जो हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन के संयोग से मिलकर बनता है।

$$2H + O = H_2O$$

वैदिक ऋषियों ने भी जल को हाइड्रोजन व ऑक्सीजन से मिलकर बनना माना था, उन्होंने स्वीकार किया था कि जल सृष्टि के प्रारम्भ में भी था।[3]

2.2 जल का महत्त्व

ऋग्वेद के एक सूक्त में जल की महत्ता बतायी गयी है

अप्स्वन्तरमृतंमप्सु भेषजमपामुव प्रशंस्तये। देवा भक्त वाजिनः।।

हे ! विद्वान पुरूषों, जल के भीतर भार डालने वाले रोगों के निवारण करने वाला अमृत रूपी रस है तथा जल में ही सब रोगों को दूर करने वाला बल भी है अतः जल की क्षमता का ज्ञान प्राप्त कर बलवान हो जाओ। ऋग्वैदिक युग में जल को आपः देवता या वरूण देवता कहा गया। जल का सम्बन्ध इन्द्र देवता से भी है, ऋग्वेद के एक चौथाई मंत्रों में यह सम्बन्ध प्रकट होता है, इन्द्र देवता वर्षा करके पृथ्वी पर जल को फैलाते है, अजावृष्टि अथवा अंधकार रूपी दैत्य से युद्ध करते है तथा अवरूद्ध जल को विनिर्मुक्त बना देते है। आपः देवता से प्रार्थना की गयी है कि वह सभी प्रकार के जल से हमारी रक्षा करे। एक मंत्र में बताया गया है – आपः देवता औषधियों से युक्त है, इसलिए पुरोहितों को इनकी स्तुति हेतु तत्पर रहना चाहिए। एक अन्य मंत्र में वर्णित है कि इनकी स्तुति मात्र से मानव रोग तथा पाप से मुक्त हो जाता है। प्राचीन ऋषि मुनि जल की स्तुति में कहते हैं कि ''हे जल, इस जीवन में तुम्हें हम अनुकूलता से सेवन करते हैं, तुम्हारे रस स्पर्श तथा तुम्हारे स्वादगुण से हम सम्पन्न होते हैं।........ हमें तेजस्वी कीजिए।'' जल की तुलना शहद से करते हुए कहा गया है कि जल लहरों में मधु के समान धनाड्यता है।''

रक्षयेतत्प्रयत्ने जलमूला कृषिर्मता।

अतः सर्वत्र भूपालैरन्यैः पुरुषपुङ्गवैः।। (काश्यपकृषिसूक्तौ)

अर्थात जल के संग्रहण और रक्षा का प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि समस्त कृषिकार्य, उत्पादन आदि जल पर ही निर्भर होता है। ऐसे में शासकों, गणमान्यजनों को जल की रक्षा पर ध्यान देना चाहिए।[4]

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 25 वें सूक्त वरूण सूक्त में जल को रोग निवारक बताते हुए वर्णित किया गया कि 'शुनःशेप' को पाश बन्धन से मुक्त किया गया और राजा का जलोदर रोग ठीक हुआ। वरूण से रक्षा की कामना करते हुए प्रार्थना की गयी कि वह अतिवृष्टि व अनावृष्टि से बचाए।[5]

य विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि।
स यामनि प्रति श्रुधि।।

ऋग्वेद का 'आप सूक्त' जल पर लिखा गया पहला सूक्त माना गया है।[6] यजुर्वेद में कहा गया है कि

उर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्।
स्वधा स्थ तर्पयत् मे पितृन्।।[7]

इसी ग्रन्थ में जल को अमृत के समान, औषधीय रूप में, शुद्धि व शक्ति का प्रतीक, प्रकृति का पोषकतत्त्व, अन्नप्रदायक तथा शत्रुओं को नष्ट करने वाला बताते हुए कहा गया है कि हे जल ! तुम जीवनदाता हो, हमारा इस प्रकार पोषण करो कि हम उल्लासमय जीवन जी सके। पानी ही जीवों का प्राण है व जल की बचत ही प्राणों का दान है। तैत्तरीय उपनिषद् में वर्षा करने तथा रोकने के प्रयोग भी दिये गये हैं।[8] सामवेद में जल को सोम का जनक और अग्नि का रूप कहा गया है। अथर्वेद के प्रथम काण्ड के सूक्त 4,5 व 6 में जल की स्तुति की गयी है। पुराणों में जल प्रलय का सन्दर्भ मिलता है जिसके अनुसार जल से ही सृष्टि की समाप्ति हुई तत्पश्चात् जल से ही जीवन प्रारम्भ हुआ एवं जल से ही पुनः समाप्ति भी होगी। मत्स्य पुराण के अनुसार पर्वत, वन, मैदान, जीव जगत सहित पृथ्वी जल में समा जायेगी तथा महाराज मनु एक नौका में जीवन की रक्षा करेंगे जिससे पुनः जीवन चक्र चलेगा।

शतपथ ब्राह्मण (श.प. 3,8,2,4) के अनुसार

"आपो वै प्राणाः। तदस्मिन्नेतान् प्राणान् दधाति।

तथैतज्जीवमेव देवानां हविर्भवति, अमृतममृतानाम्।।

अर्थात् जल प्राण स्वरूप है। जल ही जीवन है, जल में जीवन है और जल से जीवन है। जल से ही जीव जगत का विकास हुआ है।

मनुस्मृति बताती है कि

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः।।

अर्थात् – जल और जीवों का नाम नारा है, वे अयन है, अतः सब जीवों में व्याप्त परमात्मा का नाम नारायण है। उक्त ग्रन्थ में ही जल संसाधनों को नष्ट करने वाले को तालाब में ही डुबोकर मार देने का विधान है। साथ ही प्यासे को जल पिलाना पुण्य का कार्य बताया गया है।

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षयमानन्ददः[9]

महाभारत के अनुशासन पर्व में जल के महत्त्व को व्यक्त करते हुए पितामह भीष्म कहते है कि जो मनुष्य तालाब आदि का निर्माण करवाता है वह तीनों लोकों में सम्मान को प्राप्त करता है तथा जल का दान सभी दानों से श्रेष्ठ है।[10]

इसी प्रकार वाग्भट्ट का कथन है कि पानीय या पीने योग्य जल प्राणीमात्र का प्राण है और समस्त विश्व जलमय है।

पानीयं प्राणिनां प्राणा विश्वमेव च तन्मयम्।
अतोत्यन्तनिशेधेपि न क्वचिद् वारि वार्यते।।
तस्य शोशांगसादाद्या मृत्युर्वा स्याद्लाभतः।
न हि योयाद् विना वृत्तिः स्वस्थस्य व्याधितस्य च।।

भारतीय ऋषि–मुनियों ने जल को पवित्र मानते हुए इसे तीर्थ की सँज्ञा दी है। हिन्दू धर्म शास्त्रों में तीर्थस्थल उसी स्थान को माना गया जहाँ जल परिपूर्ण मात्रा में उपलब्ध होता हो।[11] तीर्थस्थलों के जल से स्नान करने को पुण्यार्जन का साधन बताया गया। इनमें यह भी वर्णित है कि जल स्रोत विकसित करना मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है जिसके अन्तर्गत कुएँ, बावड़ी, तालाब, नहरें आदि का निर्माता सभी पापों से मुक्त हो जाता है तथा नश्वर जीवन की समाप्ति के पश्चात् स्वर्ग को प्राप्त होता है, इसी उद्देश्य से अपने पूर्वजों की पुण्यस्मृति में धर्मावलम्बी जल के स्रोत खुदवाते रहे है।

शुक्रनीति में जल प्रबन्धन के महत्त्व एवं उपाय बताये गये हैं। इसमें जल स्रोतों के निर्माण की प्रक्रिया, जल शुद्धिकरण, संग्रहण आदि की भी जानकारी मिलती है साथ

ही राजा को समझाया गया है कि वह ऐसे क्षेत्र को अपनी राजधानी चुने जहाँ नाना प्रकार के वृक्ष और लता हो, अधिक अन्न और जल हो, काष्ठ और तृण का सुख हो, समुद्र हो जिसमें नौका गमन हो सके, पर्वत समीप हो, स्थान रमणीक और भूमि सम हो, कूप वापी, तालाब आदि से युक्त हो एवं राजा बावड़ी, कूप, तालाब आदि को जल यंत्रों से शोभित करें।[12] प्राचीन शिल्प शास्त्रों में नदी के दाहिनी ओर नगर बसाने का विधान बताया गया है।[13]

चाणक्य ने अर्थशास्त्र में तीन चीजों की महिमा का वर्णन किया है– जल, अन्न तथा मधुर वचन।

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नंसुभाषितम्[14]

मण्डन ने शहर के पश्चिम में जल स्रोतों, वापी, कूप, तड़ाग, कुण्ड आदि बनवाना शुभ माना है। विष्णुधर्मोत्तर के समान ही मण्डन ने भी जल स्रोतों के निर्माण को पुण्यवानों का कर्म स्वीकार किया है। उसके अनुसार जो गाय के खुर के जितना बड़ा भी जलाशय बनवाता है, वह 60 हजार वर्ष पर्यन्त स्वर्गलोक में निवास करता है। मण्डन ने शहर के मध्य व बाहर चार प्रकार की बावड़ियाँ, दस प्रकार के कूप, चार प्रकार के कुण्ड व 6 प्रकार के जलाशय बनवाने को कहा है।[15]

इस्लाम धर्मग्रन्थों एवं कुरान में शुद्धता व स्वच्छता के लिए जल का महत्त्व बताया गया है।[16] मुसलमान 'मुहर्रम' का जुलुस निकालते हैं और ताजियों को जलाशयों में विसर्जित करते हैं। हिन्दू नवरात्रि के दिन पूर्ण होने पर दुर्गा की प्रतिमा को जल में विसर्जित करते हैं। गणेश महोत्सव के पूर्ण होने पर गणपति की प्रतिमा का जल में विसर्जन किया जाता है। धार्मिक अनुष्ठान से पूर्व जल को हाथ में लेकर संकल्प लिया जाता है। मृतक के दाह संस्कार के बाद अस्थि विसर्जन बहते जल में किया जाता है। सन्तान उत्पत्ति के बाद धार्मिक समारोह में जलवा पूजन के अन्तर्गत कुँआ पूजन कराया जाता है।[17]

ईसाई धर्म ग्रन्थ बाइबिल कहती है कि परमेश्वर ने सूखी भूमि को पृथ्वी तथा एकत्रित जल को समुद्र नाम दिया।[18]

सिक्ख धर्म ग्रन्थ गुरूग्रंथ साहिब में लिखा है कि ब्रह्माण्ड का पहला जीव ही जल है। मनुष्य और अन्य सभी जीवों की उत्पत्ति जल से हुई। जल का दर्जा पिता तुल्य बताया गया है। अतः जल की रक्षा करनी चाहिए।[19]

भारतीय ज्योतिष शास्त्र में जल का बहुत महत्त्व है। जल सृष्टि का आदि तत्त्व है, वह न केवल जीवन को धारण करता है बल्कि स्वयं जीवन है, जल ही हमारा रक्षक है, जल से ही आरम्भ है और जल से ही अन्त। जल तत्त्व की उचित स्थिति, भण्डारण व उपयोग से जीवन में सुख, समृद्धि व सफलता मिलती है। वृहत्संहिता में भू गर्भिक जल का पता लगाने व वर्षा सम्बन्धी योग के बारे में विस्तृत वर्णन मिलता है। इसमें वर्षा, आँधी, तूफान, अतिवृष्टि व अकाल आदि की जानकारी व वर्षा के पूर्वानुमान के लिए अनेक विधियाँ दी गयी हैं। उनमें एक है – सप्त नाड़ी चक्र। ज्योतिषशास्त्रियों ने अभिजीत सहित आकाश मण्डल के 28 नक्षत्रों को सात नाड़ियों – चांडा, वायु, दाह, सौम्या, नीरा, जला व अमृता में बांटा है। यह नाड़ी सिद्धान्त कहता है कि यदि जलदायक नक्षत्रों से जलदायक ग्रह मेल खाते हैं तो वर्षा होती है। रोहिणी, सप्त नाड़ी चक्र व सूर्य के आद्रा नक्षत्र में प्रवेश के समय ग्रह नक्षत्र की स्थिति से वर्षा का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। इससे फसलों की पैदावार, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सामान्य मानसून आदि का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। ज्योतिष में पुण्य परोपकार के लिए नवम भाव देखा जाता है चूँकि चन्द्रमा जल का कारक है। अतः कुँए, तालाब आदि बनवाना, प्याऊ लगवाना, दूध व सफेद चीजों का दान करके चन्द्रमा व नवम भाव को मजबूत किया जाता हैं, जो जीवन की सुख–समृद्धि का कारक है। ज्योतिष के साथ–साथ लोक परम्परा में भी जल को संकल्प व साक्षी का दर्जा दिया गया है। जल से अर्ध्य देना, जल छिड़क कर स्वस्तिवाचन करना, भोजन से पूर्व प्रार्थना, पवित्रता के लिए जल का प्रयोग, धार्मिक अवशेषों को जल में ठण्डा करना आदि हमारी परम्परा के अंग हैं। ऐसा कोई धार्मिक अनुष्ठान नहीं है जिसमें जल कलश का पूजन न होता हो। इस कलश में सभी पवित्र नदियों, तीनों देवों, सात द्वीपों, पृथ्वी व सात समुद्रों का आव्हान किया जाता है जिससे यह ब्रह्माण्ड का प्रतीक बन जाता है। जल तत्त्व का सम्बन्ध कर्क, वृश्चिक व मीन राशियों से है तथा ये राशियाँ जल तत्त्व की राशियाँ मानी जाती हैं। जल तत्त्व का सम्बन्ध कुण्डली के चतुर्थ, अष्टम व द्वादश भाव से माना जाता है। जल तत्त्व वाले जातक अति भावुक व संवेदनशील होते है। ज्योतिष के अनुसार चन्द्रमा जल व मन का कारक है। हमारी मानसिक शान्ति, आर्थिक स्थिति व सुख के कारक चन्द्रमा का घर में जल के प्रवाह व उपयोग के साथ सहज सम्बन्ध है। यदि किसी घर में पानी की कमी हो तो वहाँ धन स्रोतों में भी कमी आ जाती है। वराहमिहिर व वृहत्संहिता में जमीन के नीचे पानी होने की जो प्रमाणिक पहचान बताई है, वह आज

भी प्रासंगिक है।[20]

आधुनिक विज्ञान के अनुसार जल तीनों अवस्थाओं ठोस, द्रव, गैस के रूप में मिलता है। इसका भौतिक स्वरूप रंगहीन, गंधहीन, स्वादहीन, पारदर्शी और वाष्पशील है। यह 0^0 से. पर बर्फ तथा 100^0 से. पर वाष्प में परिवर्तित हो जाता है। 4^0 से. पर जल के विशिष्ट गुण के कारण झील, नदियाँ आदि जम जाने के बाद भी उसकी निचली परत के नीचे जलीय जीव जीवित रह सकते हैं। समुद्री जल के वाष्पीकरण तथा संघनन के कारण वर्षा होती है तथा जल चक्र का निर्माण होता है जो जीवन का आवश्यक कारक है। सम्पूर्ण जीव – जगत् की प्राथमिक आवश्यकता जल ही है, जिसका कोई अन्य विकल्प नहीं है। संसार का जल निरन्तर अपना रूप परिवर्तित करता रहता है। यह परिवर्तन वर्षा चक्र कहलाता है। पृथ्वी का जल जो चाहे समुद्र में हो, नदियों, तालाबों, झीलों, ग्लेशियरों में हो या फिर गीले कपड़ों, पानी के मटकों, वाटर टेंक्स इत्यादि किसी भी स्थान पर हो वाष्पण की गुप्त उष्मा पाकर वाष्पित हो जाता है। जल सबसे अच्छा तापवाही है। जल के इन्हीं गुणों के कारण इसका उपयोग वाष्प जनित्रों, वाष्प इंजनों, खोखले बेलनों, ताप नियंत्रकों, कूलर्स आदि में किया जाता है।[21]

2.3 राजस्थान का भूगोल एवं जल प्रबन्धन की आवश्यकता

राजस्थान भारत के उत्तर–पश्चिम में स्थित है तथा क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा राज्य है। जो $23^0 3'$उत्तरी अक्षांश से $30^0 12'$ उत्तरी अक्षांश तथा $69^0 30'$ पूर्वी देशान्तर से $78^0 17'$ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। इसका क्षेत्रफल 3,42,239 वर्ग कि0मी0 है। राजस्थान पूर्व में गंगा–यमुना नदियों के वृहत मैदान, दक्षिण में मालवा के पठार तथा उत्तर व उत्तर–पश्चिम में सतलज–व्यास नदियों के मैदान द्वारा तथा पश्चिम में थार के मरूस्थल से घिरा है। राज्य के मध्य में उत्तर–पूर्व से दक्षिण पश्चिम तक फैली अरावली पर्वतमाला इसे जलवायु की एवं भू धरातल की दृष्टि से दो असमान भागों में विभाजित करती है। जलवायु की दृष्टि से राज्य का अधिकांश भाग उपोष्ण या शीतोष्ण कटिबन्ध में स्थित है। इसकी आकृति विषमकोणीय चतुर्भुज या पतंग के समान है।

राजस्थान की प्राकृतिक संरचना एक समान नहीं है। यहाँ कहीं पहाड़ हैं तो कहीं मैदान, कहीं विस्तृत मरूस्थल है तो कहीं लहलहाते खेत। यह भारत का एक मात्र राज्य है जहाँ पहाड़, पठार, मैदान, रेतीली बंजर भूमि, नदी घाटी के बीहड़, झीलें, नदी,

नालें आदि सभी प्राकृतिक विविधताएँ पायी जाती है। इसकी प्राकृतिक रचना में अरावली पर्वत का महत्त्वपूर्ण स्थान है जिसको संसार का सबसे प्राचीनतम पर्वत माना गया है। यह दक्षिण–पश्चिम में सिरोही से प्रारम्भ होकर उत्तर–पूर्व में खेतड़ी तक शृंखलाबद्ध है तथा आगे उत्तर में छोटी–छोटी शृंखलाओं के रूप में दिल्ली तक फैला है। अरावली से कुछ नदियाँ निकलती है जो वर्षा ऋतु में बहती है और ग्रीष्मकाल में सूख जाती है। अरावली पर्वत श्रेणियों ने जलवायु की दृष्टि से राजस्थान को दो भागों में विभक्त कर दिया है। इसके पश्चिम में तापक्रम में अतिशयताएँ, ग्रीष्मकालीन तीव्र प्रचण्ड धूल भरी आँधियां, शुष्क गर्म झुलसा देने वाली हवाएँ, आर्द्रता की कमी एवं अकाल की अवस्थाएँ मिलती है। राज्य के लगभग 61 प्रतिशत भाग में फैले इस क्षेत्र को थार का मरूस्थल भी कहते है। इस मरूस्थलीय क्षेत्र में मुख्यतः श्रीगंगानगर, बीकानेर, चुरू, नागौर, जोधपुर, जैसलमेर, बाड़मेर, पाली, सिरोही, जालौर, सीकर, व झुंझुनू जिले आते हैं। इसमें जल का अभाव है। इस क्षेत्र में गर्मी तथा सर्दी दोनों की अधिकता रहती है तापमान की अधिकता के कारण इस क्षेत्र में वाष्पीकरण भी अधिक होता है। यहाँ वर्षा की मात्रा अत्यन्त कम ही नहीं बल्कि अनियमित भी होती है। वर्षा का औसत 10 से 20 सेमी रहता है। अरावली पर्वत शृंखलाएँ मानसूनी हवाओं के चलने की दिशाओं के अनुरूप होने के कारण मार्ग में बाधक नहीं बन पाती। अतः यह क्षेत्र अरावली का वृष्टि छाया प्रदेश होने के कारण अत्यल्प वर्षा प्राप्त करता है। यहाँ अधिकतम दैनिक तापान्तर पाये जाते है, जिनकी मात्रा 15^0 सेल्सियस से भी अधिक होती है, दिन अत्यधिक गर्म व रातें अत्यधिक ठण्डी होती हैं। अर्द्ध मरूस्थलीय भाग में नागौर, सीकर, झुंझुनु जिले आते है। यहाँ वर्षा का औसत 20 से 40 सेमी रहता है। लूनी बेसिन इस क्षेत्र का सबसे उपजाऊ क्षेत्र है। लूनी नदी के बहाव द्वारा लायी गयी मिट्टी के जमाव के कारण यह क्षेत्र कृषि के लिए उपयुक्त है। बीकानेर क्षेत्र में पश्चिमी भागों में नहरों से एवं जैसलमेर के समीपवर्ती भूमिगत जल स्रोतों से नलकूपों के द्वारा सिंचाई कर फसलें उत्पादित की जाती हैं। यहाँ कृषि क्षेत्र का प्रतिशत कम है। दूसरी ओर अरावली के उत्तर–पूर्व, पूर्व और दक्षिण पूर्व में मैदानी प्रदेश विस्तृत है। इसके अन्तर्गत अलवर, भरतपुर, धौलपुर, सवाई माधोपुर जिले और जयपुर, भीलवाड़ा, कोटा, बूँदी, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, उदयपुर और टोंक जिलों के कुछ भाग सम्मिलित है। पूर्वी भाग में आर्द्र जलवायु पायी जाती है। इस प्रदेश में चम्बल बेसिन, बनास बेसिन व मध्य माही बेसिन आता है। यह क्षेत्र वर्षा की पर्याप्त मात्रा, उपजाऊ मिट्टी एवं सिंचाई सुविधा के कारण कृषि के लिए

उपयुक्त है। इस प्रकार राजस्थान की जलवायु की प्रमुख विशेषताएँ है –

i. शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क जलवायु की प्रधानता।
ii. अपर्याप्त एवं अनिश्चित वर्षा। राज्य में वर्षा का औसत लगभग 58 सेमी।
iii. वर्षा का असमान वितरण
iv. अधिकांश वर्षा जून से सितम्बर तक।
v. वर्षा की अपर्याप्तता। वर्षा के अभाव में आए वर्ष अकाल व सूखे का प्रकोप रहता है।
vi. अधिक तापान्तर।

मध्य जून के बाद राजस्थान में मानसूनी हवाओं के आगमन से वर्षा होने लगती है। वायुदाब कम होने के कारण हिन्द महासागर के उच्च वायुदाब क्षेत्र से मानसूनी पवनें, बंगाल की खाड़ी की मानसूनी हवायें एवं अरब सागरीय मानसूनी हवाएँ राज्य में आती है। ये हवायें दक्षिण पश्चिमी मानसूनी हवायें कहलाती है। राज्य की लगभग अधिकांश वर्षा इन्हीं मानसूनी हवाओं से होती है। शीत ऋतु में राजस्थान में कभी–कभी भूमध्य सागर से उठे पश्चिमी विक्षोभों के कारण वर्षा हो जाती है जिसे मावठ कहते है। मानसूनी वर्षा राजस्थान में अपेक्षाकृत कम होती है क्योंकि–

i. बंगाल की खाड़ी का मानसून राजस्थान में प्रवेश करने से पूर्व गंगा के मैदान में आपनी आर्द्रता लगभग खो चुका होता है।
ii. अरावली पर्वत शृंखला का विस्तार अरब सागर की मानसून शाखा की दिशा के समानान्तर होने के कारण मानसून राज्य में बिना वर्षा के उत्तर की तरफ चला जाता है।
iii. मानसूनी हवायें जब रेगिस्तानी भाग पर आती है तो अत्यधिक गर्मी के कारण उनकी आर्द्रता घट जाती हैं, जिससे वे वर्षा नहीं कर पाती।
iv. अरावली पर्वतमाला की ऊँचाई कम होने तथा उस पर वनस्पति कम होने का भी वर्षा पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार वर्षा के असमान वितरण के कारण राज्य में सर्वाधिक वर्षा आबू पर्वत के निकटवर्ती क्षेत्रों में लगभग 150 सेमी होती है। कोटा, झालावाड़, बाराँ, चित्तोड़गढ़, सिरोही में वार्षिक वर्षा का औसत 90 सेमी तथा जैसलमेर, बाड़मेर, श्रीगंगानगर में सबसे कम वर्षा 10 से 25 सेमी होती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि राजस्थान की भौगोलिक स्थिति, भौगोलिक प्रदेश, जलवायु विविधता, तापान्तर, वर्षा का असामान्य वितरण, वर्षा की कमी, उपजाऊ भूमि की कमी आदि ने राजस्थान के निवासियों को अपना अस्तित्व बचाने के लिए जल प्रबन्धन के उपाय अपनाने को बाध्य किया।[22] संक्षेप में इसके निम्न कारण गिनाये जा सकते है।

i. राजस्थान का विशाल क्षेत्रफल एवं भौगोलिक स्थिति।
ii. राजस्थान की समुद्र तट से दूरी।
iii. राजस्थान में 61 प्रतिशत भाग में फैला मरूस्थल।
iv. राजस्थान में वर्षा की कमी।
v. राजस्थान में वर्षा का अनियमित वितरण तथा अनिश्चितता।
vi. राजस्थान की कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था।
vii. राजस्थान की जलवायु विविधता।
viii. राजस्थान में नदियों की कमी।
ix. राजस्थान में अन्य प्राकृतिक जल स्रोतों का अभाव।
x. सिंचाई के परम्परागत स्रोत एवं उनकी भी कमी।
xi. राजस्थान की भूगर्भीय संरचना जिससे भूमिगत जल का अधिक नीचा होना या न्यूनता।
xii. सतही पानी में अधिक लवणता तथा फ्लोराईड जैसी अशुद्धियुक्त भूमिगत जल।
xiii. तापान्तर। दिन में अधिक गर्मी पड़ने से ताप में अधिकता तथा रात्री का तापमान न्यून होना।

उपर्युक्त कारणों से राजस्थान के निवासियों ने वर्षा की बून्दों को रजत बून्दों के समान सहेजा तथा इन्द्र देव के प्रसाद को अमृत समान मानकर अपनी झोली में समेटा।

2.4 राजस्थान के इतिहास में जल प्रबन्धन का महत्त्व

राजस्थान के इतिहास में जल प्रबन्धन की परम्परा अति प्राचीनकाल से ही देखने को मिलती है। यहाँ कूप, सरोवर, एवं वापी निर्माण के कार्य को शासकों ने अपना नैतिक दायित्व माना था। यही कारण है कि जैसलमेर में इतिहास प्रसिद्ध पौराणिक राजा सगर के जल प्रबन्धन को सदैव याद किया जाता है। यथा – 'राजा सगर ने खुदवाये सागरू कोटि–हजार, ऐसे राजा धन्य हैं।' मन्दिरों के साथ जल स्रोतों के

निर्माण की परम्परा राजस्थान में विशेष रूप से देखने को मिलती रही है। राजस्थान प्रायः प्रत्येक दो–चार वर्षों में अकाल–दुष्काल की चपेट में आ जाता था। ऐसी परिस्थिति में यहाँ के शासकों, सामन्तों, जागीरदारों एवं जनसामान्य ने वर्षा जल को संजोकर, एकत्र कर एक–एक बून्द को सुरक्षित रखने का प्रयास किया था।[23]

राजस्थान में घग्घर (सरस्वती) नदी के किनारे स्थित कालीबंगा जो हड़प्पा सभ्यता का महत्त्वपूर्ण पुरास्थल है, में पक्की ईंटों का प्रयोग नालियों, कुँओं व दहलीज बनाने में किया गया था। यहाँ पक्की ईंटों के साथ–साथ कहीं–कहीं पर लकड़ी की नालियों का भी प्रयोग गंदे पानी की निकासी के लिए किया गया था। यह राजस्थान में जल प्रबन्धन का प्राचीनतम उदाहरण है।

राजस्थान में ताम्रपाषाण कालीन सभ्यता के अवशेष मुख्यतया भीलवाड़ा जिले में बागोर, उदयपुर जिलें में आहाड़, चित्तौड़ जिले में गिलुण्ड में मिलते है जो क्रमशः कोठारी, आहाड़ तथा बनास नदियों के किनारे स्थित है। यह सभ्यता आहाड़ संस्कृति कहलाती है। यहाँ के निवासी ताम्बे के औजार तथा मिट्टी के बर्तन बनाने में कुशल थे। जिनमें पानी भरने के सुन्दर बर्तन उल्लेखनीय है।[24] इनके मकान ढालू छत के थे तथा घरों के पानी के निकास हेतु नालियों का जाल बिछाया गया था। यह मूलतः कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था थी, जिसमें सिंचाई नदियों तथा वर्षा जल द्वारा होती थी।[26] बालाथल आहाड़ सभ्यता का नवीनतम उत्खनित पुरास्थल है। यह उदयपुर की बल्लभनगर तहसील में स्थित है। यहाँ ताम्रपाषाणिक तथा लौह युगीन संस्कृति के अवशेष मिले हैं। प्राचीन टीला जिसमें पुरासामग्री मिलती है, के दक्षिण में एक विशाल तालाब है। यह तालाब बालाथल वासियों का पानी का विश्वसनीय स्रोत था जो वर्ष भर लबालब रहता था। यद्यपि अधिकांश सभ्यताएँ नदियों के किनारे विकसित हुई किन्तु बालाथल उन चुनिन्दा सभ्यताओं में से एक है जो किसी नदी के किनारे विकसित न होकर प्राकृतिक स्थल पर कृत्रिम तालाब निर्मित कर उसके समीप विकसित हुई।[26] यह जल प्रबन्धन के क्षेत्र में विशेष रूप से उल्लेखनीय उदाहरण है।

मध्यमिका जिसे नगरी भी कहते है, प्राचीन राजस्थान का समृद्ध नगर थी। यहाँ पर भी जल प्रबन्धन के उपाय अपनाये गये थे। यह चित्तौड़ के समीप 16 कि.मी. उत्तर में बेड़च नदी के दाहिने किनारे स्थित थी। इसके भग्नावशेषों में बिखरी टूटी ईंटें, मन्दिर व घरों के अवशेष दिखाई पड़ते है। इसके दक्षिण की ओर नदी की बाढ़ से नगरी को बचाने के लिए एक नहर बनवायी गयी थी। नगर को इस प्रकार बसाया गया था कि

बेड़च नदी पश्चिम दिशा से तथा शेष तीन दिशाओं से कृत्रिम नगर–प्राचीर नगर को सुरक्षा प्रदान करें।[27] एक अन्य प्राचीन नगर नागदा जिसे नागादित्य द्वारा बसाया गया था, भी राजस्थान का समृद्ध नगर था। इसके समीप नागदी नदी बहती थी, जिसे बाँध कर कालान्तर में एक बड़ा जलाशय बना दिया गया। 'अमर काव्यम्' से बोध होता है कि रावल आलू या अल्लट ने नागदा नगर में तालाब के किनारे शिव मन्दिर का निर्माण करवाया था।[28] शहर की सड़कें दोनों ओर से ढलवाँ थी। इस ढलान का पानी नालियों से बहकर निकल जाता था। शहर की भव्यता का वर्णन 'रसिया की छतरी' अभिलेख से मिलता है।[29] बालाथल में किले बनाने की तकनीक 4500 वर्ष पूर्व अस्तित्व में आ चुकी थी।[30] आहाड़ नदी के किनारे बसा अहाड़ शहर 10 वीं शताब्दी में मेवाड़ की राजधानी रहा। एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि भर्तृभट्ट द्वितीय के समय आदिवराह नामक व्यक्ति ने गंगोबेव तीर्थ (कुण्ड) में आदिवराह का मन्दिर बनवाया।[31] पुष्कर स्थित ब्रह्मा मन्दिर के साथ पवित्र पुष्कर सरोवर का उदाहरण उल्लेखनीय है, इस स्थान का भारतीय दर्शन में विशेष महत्त्व है। इसके जल से स्नान–आचमन करके ही ब्रह्म देव के दर्शन किये जाते है।

पेयजल की व्यवस्था करना शासक का कर्तव्य माना जाता था। राजस्थान के राजाओं, सामन्त शासकों, ठाकुरों, ठिकानेदारों आदि ने समय समय पर कुँओं, तालाबों, बावड़ियों, कुण्ड झीलों आदि का निर्माण करवाया।

जोधपुर के महाराजा जसवन्त सिंह प्रथम के काल में कदमखण्डी व चोखा गाँव में मथुरा से लायी गयी श्रीनाथ जी की मूर्ति को पधराया गया। यह स्थान श्रीनाथ जी की बैठक के नाम से जाना जाता है। कालान्तर में यहाँ से कुछ दूरी पर श्री नाथ जी का भव्य मन्दिर व तथा मन्दिर के समीप ही एक बावड़ी बनवायी गयी। जो धार्मिक स्थल पर जल प्रबन्धन की परम्परा का द्योतक है। महाराजा सरदार सिंह जी ने इस स्थान के समीप एक बाँध बनाने की योजना भी बनायी किन्तु इसके डूब क्षेत्र में श्री नाथ जी का मन्दिर आ जाने के कारण मन्दिर को वहाँ से विस्थापित कर वर्तमान चौपासनी गाँव में दूसरा मन्दिर बनवाया।[32] स्पष्ट है कि बाँध जैसी बहुउद्देशीय परियोजना का महत्त्व समझते हुए जनसामान्य की आस्था के केन्द्र श्रीनाथ जी के मन्दिर तक को विस्थापित कर दिया गया, जो अपने आप में अनूठा है। नाथद्वारा स्थित श्री नाथ जी मन्दिर के समीप अनेक जल स्रोत यथा बावड़ी, कुँए, कुण्ड, तालाब आदि खुदवाये गये। गुजरातियों ने श्रीनाथ जी के आने–जाने वाले मार्ग पर राजस्थान में अनेक कुँए, बावड़ी

खुदवाये, ताकि तीर्थयात्रियों को पेयजल उपलब्ध हो सके। इन बावड़ियों पर गुजराती में जय श्रीकृष्ण लिखा मिलता है।

हम्मीर ने चित्तौड़ दुर्ग पर मोकल जी मन्दिर के समीप एक तालाब बनवाया।[33] महाराणा लाखा ने चित्तौड़, केलवाड़ा और लखावली में तीन तालाब बनवाये तथा इसके समय में एक बनजारे ने पिछोला झील बनवायी।[34] तत्पश्चात् महाराणा मोकल ने चित्तौड़ दुर्ग पर जलाशय बनवाया साथ ही अपने भाई के नाम पर बाघेला तालाब खुदवाया।[35] महाराणा कुम्भा को अनेक जल स्रोतों के निर्माण का श्रेय प्राप्त हुआ यथा रामकुण्ड, बावड़ियाँ, कुँए, तालाब आदि बनवाये तथा इन पर रहँट जैसे यंत्रों की स्थापना करायी एवं कुम्भलगढ़ दुर्ग पर एक जलाशय का निर्माण कराया।[36] उजड़े हुए वसंतपुर नगर को पुनः बसाकर वहां श्री विष्णु को समर्पित सात जलाशयों का निर्माण कराया साथ ही अचलेश्वर के समीप कुम्भस्वामी का मन्दिर तथा उसके निकट एक सरोवर व चार जलाशयों का निर्माण भी कराया।[37] महाराणा रायमल के समय उसकी बहिन रमाबाई ने कुम्भलगढ़ दुर्ग पर एक तालाब तथा जावर में एक कुण्ड बनवाया, यह कुण्ड रामकुण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। रायमल ने राम, शांक और समयासंकट नामक तीन तालाब बनवाये।[38] महाराणा उदयसिंह द्वारा उदयपुर के पास देबारी की घाटी के निकट उदयसागर तालाब का निर्माण कराया। उदयसिंह ने स्वयं समारोह पूर्वक इस तालाब की प्राण प्रतिष्ठा 4 अप्रेल 1565 को करायी।[39]

महाराणा उदयसिंह ने चित्तौड़ को राजधानी के रूप में असुरक्षित समझ कर नवीन राजधानी नवस्थापित उदयपुर शहर में बनायी।[40] सम्पूर्ण शहर को झीलों के किनारे बसाया तथा शहर को घेरती हुई एक खाई बनायी गयी जो सदैव पानी से भरी रहती थी और शहर का गन्दा पानी इसमें आकर गिरता था। खाई का अतिरिक्त पानी उदयसागर तालाब में जाता था। शहर की बसावट में जल निकास व्यवस्था का विशेष ध्यान रखा गया। शहर को बाहरी भूमितल से कुछ ऊँचाई पर बसाया ताकि अतिरिक्त एवं अपशिष्ट पानी आसानी से बहकर निकल जाए। सड़कों एवं मकानों को नालियों तथा नालियों को बड़े नालों से जोड़ा गया, ये नाले अपना जल शहर की बाहरी खाई में उड़ेल देते थे। इन नालियों की विशेषता थी कि इनकी चौड़ाई व ढाल ऐसी थी कि वर्षा काल में अधिक पानी आ जाने पर भी पानी इन नालियों के माध्यम से बिना रूके बह जाता था। शहर के विकास में यहाँ की झीलों का विशेष योगदान रहा।[41] उदयपुर शहर में 40 से अधिक बावड़ियाँ थी तथा बावड़ियों के भीतर व समीप कई कुँए भी थे, जो अब

नष्ट हो चुके हैं।[42] यहाँ पर पेयजल हेतु पिछोला झील, रंगसागर, रूपकुण्ड, स्वरूप सागर तालाब, दूध तलाई, मुल्ला तलाई, बाईजी राज का कुण्ड आदि बनवाए गए। उदयपुर शहर से 5 किमी दूर फतह सागर नामक झील है। यह झील 1687 में महाराणा जयसिंह ने बनवायी थी परन्तु एक बाढ़ में यह तहस नहस हो गयी। इसके पुनर्निर्माण का श्रेय महाराणा फतह सिंह को है। जिन्होंने 1888 में 6 लाख रूपये की लागत से इसे बाँध का रूप दिया। उन्हीं के नाम पर इसे फतहसागर कहा जाने लगा। यह झील 3 किमी क्षेत्र में फैली है।[43] उदयपुर में 1687–1691 में महाराणा जयसिंह द्वारा गोमती नदी पर बाँध बनाकर जयसमन्द झील का निर्माण कराया। यह ताजे पानी की एशिया की सबसे बड़ी कृत्रिम झील है। इसे ढेबर झील भी कहते है।[44] 1662 में महाराणा राजसिंह ने कांकरोली के निकट राजसमन्द झील बनवायी। इसमें गोमती नदी गिरती है।[45]

1585 में महाराणा प्रताप ने सुरक्षा की दृष्टि से अपनी राजधानी चावण्ड में स्थानान्तरित की जो चामुण्डी नदी के किनारे पर स्थित है। यह नदी शहर की जल प्राप्ति का मुख्य स्रोत थी। यहाँ प्रताप द्वारा निर्मित 32 सीढ़ियों वाला कुण्ड आज भी विद्यमान है। इसके समीप कठावला तालाब है। जिसके दक्षिणी छोर पर घाट बने हुए हैं। चामुण्डा माता मन्दिर के समीप राजभवनों के खण्डहरों में एक कुँआ मोजूद है। महलों के भीतर भी जल प्रबन्धन का कार्य किया गया था। इन खण्डहरों के भीतर नालियों, हौज, जलाशयों, जल प्राप्ति व निकासी मार्गों, जल संग्रहण करने वाले कुण्डों, टांकों, कुइयों के अवशेष दिखाई देते हैं। 1585 से 1615 तक यह विकसित शहर मेवाड़ की राजधानी रहा जो अपने गौरव के साथ–साथ यहाँ की समृद्धि व जल प्रबन्धन प्रणाली के लिए विख्यात है।[46]

राजस्थान में प्रायः किसी मन्दिर या देवी देवता के चबुतरे या थान के निकट कुँआ, बावड़ी, कुण्ड, कुई, जलाशय बनाने की परम्परा रही है। जैसे भोगादित्य ने एकलिंग शिव मन्दिर के समीप भालि नामक जलाशय बनवाया। रावत पृथ्वी सिंह की झाली रानी गुलाब कुँवर ने राम लक्ष्मण मन्दिर के साथ बावड़ी का निर्माण कराया।[47] ये जल स्रोत मन्दिर, देवालय आदि में धार्मिक क्रिया कलापों के साथ–साथ राहगीरों, भक्तों, यात्रियों, जानवरों को पेयजल की आपूर्ति भी करते थे।

टोंक नवाब अमीर खाँ ने टोंक में जामा मस्जिद के समीप बड़ा कुँआ नामक एक विशाल कुँआ खुदवाया।[48] यह कुँआ 300 वर्ष बाद अब भी क्षेत्र के निवासियों के लिए पेयजल का विश्वसनीय स्रोत है।

बंजारे एक शहर से दूसरे शहर तक सैकड़ो पशुओं पर माल लाद कर व्यापार करने निकलते थे। इनके साथ अनगिनत पशु होते थे। एक लाख पशुओं का कारवाँ माना जाता था तथा इनका नायक लाखा बंजारा कहलाता था। इन पशुओं के साथ–साथ सैकड़ों व्यक्ति भी होते थे। ये जहाँ भी पड़ाव डालते थे वहाँ पानी की अत्यधिक मांग रहती थी एसे में यदि उन स्थानों पर पहले से कोई बड़ा जल स्रोत नहीं होता तो ये वहाँ जल स्रोत बनवाना (तालाब, कुँए, बावड़ी) अपना नैतिक कर्तव्य मानते थे जैसे उदयपुर में छीतर नामक बंजारें ने 1387 में पिछोला झील बनवायी। राजस्थान में नमक की झीलों के आसपास का सम्पूर्ण भू भाग खारा है। यहाँ पर पाताल पानी (भूमिगत जल), रेजानी पानी (जिप्सम पट्टी से रूका पानी) तथा पालर पानी (जमीन के ऊपर बहने वाला) सभी खारा होता है। ऐसे में यहाँ पर मीठा पानी प्राप्त करना किसी चुनौती से कम नहीं है परन्तु यहाँ एसी चार–पाँच सो तलाइयाँ है जो भूमि तल से 4–5 हाथ ऊँचाई पर इस तरह बनायी गयी है जिसमें वर्षा का पानी बिना खारा हुए संग्रहित कर लिया जाता है तथा वर्ष पर्यन्त पेयजल हेतु उपयोग आता था। ऐसी तलाइयाँ विकसित करने का श्रेय नमक का व्यापार करने वाले बंजारों को ही जाता है। बंजारे अपने पशुओं का कारवाँ लेकर नमक की झीलों के क्षेत्र में आते थे जिनके पीने के लिए मीठे जल की व्यवस्था करना आवश्यक था। अतः इन्होंनें इस क्षेत्र में जमीन से कुछ ऊपर उठाकर तलाई तथा उसके आगोर का निर्माण कराया। इसे विशेष चतुराई से बनाया गया कि भूमि की सतह का नमक इस तलाई में नहीं मिल पाए। यह तकनीक अपने आप में विलक्षण है तथा तत्कालीन ज्ञान–विज्ञान व अभियांत्रिकी कुशलता का अनूठा उदाहरण है। यह प्रयास राजस्थान में जल प्रबन्धन की दिशा में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ।[49]

राजस्थान की एक जाति है 'ओड़'। इस जाति का काम कुँएं बनवाना था। इनके लिए कहावत थी कि ओड़ हर रोज नये कुँए से पानी पीते हैं। ये गधे पालते थे। गधों पर मिट्टी लादकर तालाब खोदने या तालाब की पाल बनाने, कुँए खोदने का काम करते थे।[50]

राजस्थान में विशेषकर मरूभूमि में समाज ने पानी के काम को एक काम की तरह नहीं बल्कि एक पुनीत कर्तव्य की तरह लिया। यह नागरिक अभियान्त्रिकी न होकर एक समग्र जल दर्शन था।

जैसलमेर जिला मुख्यालय से लगभग 20 किमी दूर स्थित पालीवाल ब्राह्मणों द्वारा वर्षों पूर्व परित्यक्त कुलधरा एवं खाभा नामक दो गाँवों के प्राचीन खण्डहर स्थित

हैं। ये गाँव इन्होंने जैसलमेर रियासत के दीवान सालिमसिंह की ज्यादतियों से बचने तथा आत्मसम्मानार्थ एक ही रात में खाली करके उजाड़ दिये। उसके बाद से आज तक कुलधरा, खाभा, नभिया, धनाब सहित 84 गाँवों में कोई नहीं बस सका। यहाँ पालीवालों द्वारा निर्मित कतारबद्ध मकानों कलात्मक मन्दिर, कलात्मक छतरियाँ पालीवाल वास्तुकला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इन लोगों का नाम पालीवाल इसलिए पड़ा क्योंकि ये पाली से यहाँ आए थे। इनके गाँव की आश्चर्यजनक बात यह है कि रेगिस्तानी इलाके में कृषि प्रधान समाज की बसावट। उन्होंने सतह पर बहने वाले या भूगर्भ में मौजूद जल का प्रयोग नहीं किया बल्कि रेत में मौजूद पानी का इस्तेमाल किया। वे ऐसी जगह गाँव बसाते थे जहाँ धरती के भीतर जिप्सम की परत हो। जिप्सम की परत बारिश के पानी को जमीन में अवशोषित होने से रोकती है और इसी पानी से वे खेती किया करते थे। इसी जल प्रबन्धन की तकनीक ने थार के रेगिस्तान को जनसंख्या की दृष्टि से दुनिया का सबसे सघन रेगिस्तान बनाया। उनकी तकनीक ऐसी थी कि बारिश का पानी भूगर्भ में समाने के बजाए एक खास गहराई में जाकर जमा हो जाता था। जिसे वे पुनः प्राप्त कर लेते थे। पालीवाल ब्राह्मणों द्वारा इस हेतु बनवायी गयी युक्ति का नाम खड़ीन है। खड़ीन एक तरह का अस्थाई तालाब है। दो तरफ मिट्टी की पाल उठा कर तीसरी तरफ पत्थर की मजबूत चादर लगाई जाती है। खड़ीन की पाल धोरा कहलाती है। कई खड़ीनें पाँच से सात किलोमीटर तक लम्बी होती हैं। खड़ीन में बहता पानी धीरे – धीरे सूख जाता है पर खड़ीन की भूमि नम बनी रहती है। इस नमी में गेहूँ की फसल बोई जाती है। खड़ीन निर्माण हेतु राजा जमीन देता था जिसके बदले उपज का 1/4 हिस्सा देना पड़ता था। बहुत सी खड़ीने समाज ने बनाई तो बहुत सी प्रकृति ने।[51] जैसलमेर जिले में लगभग 500 छोटी बड़ी खड़ीनें हैं। पालीवालों के 84 गाँवों में 700 से अधिक खड़िनों के चिन्ह आज भी देखे जा सकते हैं। इनके मकानों की वास्तुकला भी उत्कृष्ठ है। प्रत्येक घर झरोखों के माध्यम से आपस में जुड़े थे जो अपनी बात एक दूसरे तक पहुँचा देते थे। मकान इस प्रकार बने थे कि हवाएँ सीधे घर के भीतर से होकर गुजरती थी जिससे घर रेगिस्तान की गर्मी में भी वातानुकूलित थे। घरों के भीतर जल संग्रहण हेतु पानी के कुण्ड भी बनाए गए थे।[52]

जैसलमेर का अस्तित्व घड़सीसर के बिना सम्भव नहीं था। कहते है कि घड़सीसर नहीं होता तो जैसलमेर नहीं होता। तीन मील लम्बे और एक मील चौड़े इस तालाब का आगौर 120 वर्ग मील है। इसे जैसलमेर के महारावल घड़सी ने 1335 ई0 में

बनवाया। महारावल ने इसकी खुदाई में स्वयं भी श्रमदान दिया। अत्यधित उथलपुथल, राजनैतिक षड़यन्त्र व अशान्ति के दौर में भी आम जनता की जल सम्बन्धी समस्याओं को दूर करने में शासक वर्ग ने अपनी रूचि दिखाई। राजा के साथ– साथ जनता ने भी घड़सीसर के निर्माण में अपना तन मन धन न्योछावर कर दिया। इसके घाट पर पाठशालाऐं चली, मन्दिर बनें, यज्ञशाला बनी, जमालशाह पीर की चौकी बनी अर्थात् पूरी संस्कृति इस तालाब के किनारे आ बसी। इस तालाब का महत्त्व इतना था कि इसकी रक्षा के लिए फौजी टुकड़ी हमेशा तैनात रहती थी। इस तालाब का विशाल आगौर अपने मूलरूप में इतना बड़ा था कि इसके दायरे में बरसने वाले पानी चाहे वो कम ही बरसता हो, की एक–एक बून्द को समेटकर तालाब को लबालब भर देता था। तालाब में पानी प्राप्ति के लिए 8 किमी लम्बी मेड़बन्दी की गयी थी। तालाब के पूरा भर जाने पर नेष्टा (तालाब का वह अंग जहाँ से अतिरिक्त पानी तालाब की पाल को नुकसान पहुँचाए बिना बाहर निकल जाए) के माध्यम से अतिरिक्त पानी बहकर निकल जाता था। नेष्टा से निकलने वाले अतिरिक्त पानी को केवल पानी नहीं बल्कि जलराशि माना जाता था। इस पानी को एक और तालाब में जमा कर लिया जाता था। यदि इस तालाब की नेष्टा से पानी निकलता तो उससे एक और तालाब भर लिया जाता था। यह सिलसिला पूरे नो तालाबों तक चलता था यानि ये सभी तालाब आपस में जुड़े हुए थे। जिनके नाम नौताल, गोविन्दसर, जोशीसर, गुलाबसर, भाटियासर, सूदासर, मोहतासर, रतनसर तथा किसनघाट। घड़सीसर से किसनघाट तक की दूरी 6.5 मील है। यहाँ तक पहुँचने पर भी पानी बचता तो उससे कई बेरियों, छोटे कुँएनुमा कुण्डों में भर लिया जाता था। इनके अतिरिक्त भी जैसलमेर में अनेक तालाब बनाए गए ताकि शहर व आसपास पानी की कोई कमी न आ सके। जिनमें गजरूप सागर, मूल सागर, गंगा सागर, डेडासर, गुलाब तालाब और ईसरलाल जी का तालाब प्रमुख है। जैसलमेर के शासकों ने ही नहीं आम आदमी ने भी जल प्रबन्धन के महत्त्व को समझा एवं जल स्रोतो के निर्माण में अपना योगदान दिया। इस सन्दर्भ में मेघा नामक चरवाहे का नाम उल्लेखनीय है। यह चरवाहा जिस स्थान पर अपने रेवड़ को चराता था एक दिन उसने वहाँ अपने हाथों से मिट्टी हटाई तो वहाँ पानी के स्थान पर ठण्डी हवा आयी। मेघा के मुँह से निकला ‘बाफ’। मेघा ने अकेले ही तालाब बनाना शुरू किया। दो वर्ष वह अकेले ही लगा रहा। जब तालाब की पाल दूर से ही नजर आने लगी तब गाँव वाले, बच्चे बूढ़े, महिलाऐं आदि भी मेघा को सहयोग देने लगी। 12 साल तक तालाब बनता रहा, मेघा की मृत्यु

होने पर उसकी पत्नी ने काम जारी रखा। 6 माह बाद तालाब का काम पूरा हुआ। बाफ यानि भाप के नाम पर बनने वाले इस तालाब का नाम बाफ पड़ा जो बाद में बिगड़कर बाप बन गया। तालाब की पाल पर मेघा की सुन्दर छतरी तथा पत्नी की एक देवली बनाई गयी। बाप बीकानेर –जैसलमेर के रास्ते में पड़ने वाला छोटा सा कस्बा है। जैसलमेर के समीप ही डेढ़ा गाँव में एक और अद्‌भुत तालाब है जसढ़ोल जसेरी, यह भी राजस्थान के जल प्रबन्धन परम्परा में अपना विशेष स्थान रखता है। तालाब के चारों तरफ तपता रेगिस्तान है किन्तु तालाब का पानी कभी नहीं सूखता। बड़े–बड़े अकाल में भी यह तालाब कभी नहीं सूखा। तालाब को बनाने वालों ने इस तरह खुदाई की कि इसके तल के नीचे पत्थर की पट्टी टूटने न पाये। जिससे पालर पानी तथा रेजाणी पानी का मेल हो गया और तालाब में पानी की कमी होने की कोई सम्भावना नहीं रही। इस तालाब को बनाने वाले पालीवाल ब्राह्मण परिवार का एक ताम्रपत्र लगा है। आसपास के एक दो नहीं सात गाँव इसका पानी लेते है।[53]

जल प्रबन्धन का एक और सुन्दर उदाहरण बीकानेर शहर का चौतीना कुँआ है। यह कुँआ आज न सिर्फ मीठा पानी दे रहा है बल्कि कुँए में नगरपालिका का कार्यालय भी चल रहा है जहाँ पानी–बिजली के बिल जमा होते है।[54]

राजस्थान में जल प्रबन्धन के क्षेत्र में अजमेर की आनासागर झील भी उल्लेखनीय है। इसका निर्माण पृथ्वीराज चौहान के पितामह चौहान नरेश अर्णेराज या आनाजी ने 1135 ई0 में कराया था। इन्हीं के नाम पर इस झील का नाम आनासागर पड़ा। पुष्कर घाटी से निकली चन्द्रा नदी पर दो पहाड़ियों के बीच पाल डालकर इस झील का निर्माण किया गया। मुगल सम्राट शाहजहाँ ने भी इस झील का महत्त्व समझा। उसने 1627 में झील की पाल पर 1240 फीट लम्बा संगमरमर का कटहरा लगवाया और संगमरमर की पाँच बारहदरियाँ बनवायी।[55]

टोंक जिले की मालपुरा तहसील के टोरड़ी गाँव में ब्रिटिश शासन के दौरान जल प्रबन्धन व अकाल राहत के तहत एक बाँध का निर्माण करवाया गया। इसकी विशेषता है कि इसकी सभी मोरियाँ खोलने पर बाँध पूरा खाली हो जाता है। जयपुर रियासत ने इसे बनवाने में पाँच लाख रू0 दिए।[56]

बूँदी शहर से कुछ दूर पहाड़ियों के बीच जैतसागर नामक तालाब है। प्रारम्भ में इस तालाब को जैता मीणा ने बनवाया था। इस तालाब के किनारे सुख महल है। बूँदी से ही 5 मील दूर फूल सागर नामक तालाब का निर्माण राव राजा भोजसिंह की पत्नी

फूल लता ने 1602 में करवाया था। इसके अतिरिक्त बूँदी के आस–पास नवल सागर, हिण्डोली का तालाब, गंगासागर, दुगारी, दादूर आदि है जो क्षेत्र में जल प्रबन्धन के उद्देश्य से बनवाए गए थे।[57]

भरतपुर से 35 किमी दूर जलमहलों की नगरी एवं प्राकृतिक बगीचों का दुर्ग 'डीग' स्थित है। पर्यटन की दृष्टि से यह नगर महल एवं फव्वारों के लिए प्रसिद्ध है। सन 1725 में राजा बदनसिंह ने डीग के महलों का निर्माण करवाया था। जल महल दो तालाबों के मध्य स्थित है। इसमें बने हरिदेव भवन, नन्द भवन, केशव भवन ग्रीष्मकालीन आवास थे। इस प्रकार यहाँ जल का उपयोग वैभव प्रदर्शन करने तथा ग्रीष्म ऋतु में शीतलता प्रदान करने हेतु किया गया था।[58]

धोलपुर शहर से ढाई किमी दूर स्थित मचकुण्ड पर अनेक घाट बने हुए हैं जहाँ तीर्थयात्री स्नान करते है। यहाँ प्रतिवर्ष भादो सुदी छठ को मेला लगता है। यहाँ स्नान करने से चर्म रोग दूर हो जाता है। यह जल के धार्मिक महत्त्व का प्रतीक है।[59] धोलपुर के ही बाड़ी कस्बे से दो किमी दूर एक विशाल पक्की झील स्थित है। जिसे तालाब–ए–शाही कहते है। यह बादशाह जहाँगीर के मनसबदार सुलेह खाँ ने 1622 में बनवायी थी।[60] डूंगरपुर में महारावल गोपीनाथ ने गैप सागर (भोपाल सागर) झील बनवायी।[61]

बाँदीकुई से 8 किमी दूर आभानेरी में चाँद बावड़ी के नाम से प्रसिद्ध एक विशाल बावड़ी है। इसका निर्माण 8 वीं शताब्दी में चन्द नामक राजा ने करवाया था। जिसके नाम पर इसे चाँद बावड़ी कहा जाने लगा। 11 वीं सदी में मुस्लिम आक्रमणों में इस नगरी को ध्वस्त कर दिया गया। बावड़ी के तीन तरफ सीढियाँ है तथा एक ओर बरामदे एवं कक्ष बने हुए हैं। जिनका उपयोग वस्त्रादि बदलने हेतु किया जाता था। इसमें बारादरियाँ भी बनी हुई हैं जिनमें देवी देवताओं व पौराणिक प्रसंगों की प्रतिमाएँ अंकित है।[62] यह बावड़ी सामरिक दृष्टिकोण से भी महत्त्वपूर्ण थी। मान्यता है कि एक सुरंग द्वारा यह दौसा किले के भीतर बैजनाथ महादेव मन्दिर के पास वाली बावड़ी से जुड़ी हुई थी।[63] दौसा से 11 कि.मी. दूर सिकन्दरा कस्बे के समीप भाण्डारेज ग्राम में भी एक बावड़ी है। यह बावड़ी 5 मंजिला है इसमें तल तक जाने के लिए बड़ी–बड़ी सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। प्रवेश द्वार तथा पीछे की ओर गुम्बद बने हैं। भूतल से कुँएं तक 150 सीढ़ियाँ हैं। शिलालेख से ज्ञात होता है कि इसका निर्माण 1789 विक्रम में कुम्भाणी शासक दीपसिंह व दौलत सिंह ने कराया था। बावड़ी में पशुओं के पीने के लिए कुण्ड,

सिंचाई व अन्य कार्यों के लिए जल निकासी की व्यवस्था थी। माना जाता है कि भाण्डारेज की बावड़ी, आभानेरी की चाँद बावड़ी तथा आलूदा की कुबाण्या कामानीदार बावड़ी एक ही रात में बनी थी।[64] यह बावड़ी गुप्त सुरंग द्वारा भाण्डारेज गढ़ से जुड़ी हुई थी।[65]

बूँदी स्थित रानीजी की बावड़ी का निर्माण 1699 में राव अनिरूद्ध सिंह की रानी नाथावजी ने करवाया था। इसके तीन तोरणद्वार है। बावड़ी के तल तक 100 से अधिक सीढ़ियाँ है। तोरण द्वारों पर अलंकरण है जिनपर हाथी की आकर्षक मूर्तियाँ है। दीवारों पर दसों अवतारों व नवग्रहों की मूर्तियाँ स्थापित है। प्रवेश द्वार पर गणेश जी व सरस्वती की मूर्तियाँ है। यह 240 फीट लम्बी, 75 फीट चौड़ी तथा 110 फीट गहरी है। यहाँ सफेद संगमरमर पर अंकित शिलालेख है जो गणेश वन्दना से प्रारम्भ होकर शासकों का वंश परिचय देता है। बूँदी के कजली तीज व चोथ पर निकाली जाने वाली तीज माता की सवारी गढ़ से प्रारम्भ होकर इस बावड़ी तक समाप्त होती थी। इसके जल से देवी प्रतिमा को स्नान कराया जाता था।[66]

1870 में सेठ पन्ना लाल शाह ने खेतड़ी (झुंझनु) में एक तालाब बनवाया जो पन्ना लाल शाह का तालाब कहलाता है। राजा अजीत सिंह के आमंत्रण पर पधारे स्वामी विवेकानन्द को इसी तालाब के किनारे बने आवास में ठहराया गया।[67] झुंझनु जिला मुख्यालय से 60 किमी दूर लोहर्गल गाँव हिन्दुओं का महत्त्वपूर्ण तीर्थ स्थल है। यहाँ 70 मन्दिर तथा सूर्य कुण्ड दर्शनीय है। यहाँ मृत शरीर की भस्म प्रवाहित करने के साथ–साथ इसके जल से स्नान करना पुण्यदायी माना गया है। अतः यहाँ जल का उपयोग धार्मिक महत्त्व के लिए किया गया है।

आमेर रियासत में नगर के भीतर जल प्रबन्धन के अनेक उपाय किये गये थे। यहाँ कई तालाब, कुँए व बावड़ियाँ स्थित है जिनसे आवश्यकतानुसार जल प्राप्त किया जाता था। इनमें पन्ना मियाँ का कुण्ड अपना विशेष महत्त्व रखता है जो सागर रोड़ पर बिहारी मन्दिर के सामने स्थित है। लगभग 70 फुट गहरे इस कुण्ड में तीन ओर असंख्य सीढ़ियाँ तथा पश्चिम में दो मंजिला कक्ष बने हुए है जो ऊपर से वृत्ताकार है। पन्ना मियाँ महाराजा बिशनसिंह व सवाई जयसिंह के समय महत्त्वपूर्ण मंत्री थे। इनके द्वारा बनवाया गया यह कुण्ड शहर का विश्वसनीय जल स्रोत था। एक पत्र से ज्ञात होता है कि पन्ना मियाँ का कुण्ड सवाई जयसिंह के शासनकाल में बना। कुण्ड के चारों ओर गुम्बददार अष्टकोणीय छतरियाँ भी बनी हुई है।[68]

सन्दर्भ

1. आप्टे, वामन शिवराम, संस्कृत हिन्दी शब्द कोष, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर।
2. पुरूष सूक्त, कोठारी, गुलाब (सं), राजस्थान पत्रिका प्रकाशन, 2015, पृ. 38
3. वेदश्रमी पं0 वीरसेन, यजुर्वेद अध्याय 15 श्लोक 4, वैदिक सम्पदा, पृ 381
4. सौलंकी, कुसुम, भारतीय बावड़ियाँ, सुभद्रा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, कवरपेज
5. सौलंकी, कुसुम, पूर्वोक्त पृ 29
6. सौलंकी, कुसुम, पूर्वोक्त पृ 30
7. वेदश्रमी पं0 वीरसेन, यजुर्वेद अध्याय 2 मंत्र 65, पूर्वोक्त
8. तैत्तरीय संहिता, 4,5,7,1–2
9. भट्ट, कुल्लुक सं0, मनुस्मृति, बम्बई, 1945 पृ. 27
10. महाभारत, 13/66, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1999
11. सौलंकी, कुसुम, पूर्वोक्त पृ 28
12. शुक्रनीति, अध्याय 1, श्लोक 75, बांके, पं बलवंत रामचंद्र सं0, रतलाम, 1871, पृ. 7.
13. दत्त, बी. बी., टाउन प्लानिंग इन एनशियन्ट इण्डिया, न्यू एशियन पब्लिशर्स, कलकत्ता 1925, पृ 27–28
14. कोटिल्य कृत अर्थशास्त्र, शास्त्री गंगाप्रसाद अनु., दिल्ली 1997, अध्याय 14 सूत्र 1
15. मण्डन कृत राजवल्लभ वास्तुशास्त्रम्, जुगनू डॉ0 श्री कृष्ण सं0 एवं व्याख्याकार, अध्याय 4 लोक 26, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2005, पृ. 48–49
16. सौलंकी, कुसुम, पूर्वोक्त पृ 31
17. ओझा, प्रियदर्शी, पश्चिमी भारत में जल प्रबंधन, सुभद्रा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2012 पृ. 100
18. बाइबिल, ओल्ड एण्ड न्यू टेस्टामेंट, अध्याय 1 जीसस्व 10
19. राजस्थान पत्रिका, पत्रिका प्रकाशन, दि. 26 अप्रेल 2005
20. वराहमिहिर कृत वृहत् संहिता, वैदिक सम्पदा
21. ओझा, डी. डी. एवं बसावड़ा, बी. जे., जल की रोचक बातें, नई दिल्ली 2004, पृ. 27 व 30
22. साईवाल, स्नेह, राजस्थान का भूगोल, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर, 2012 पृ. 5.1–5.18
23. ओझा, प्रियदर्शी, पूर्वोक्त, कवर पेज।
24. सांकलिया, एच. डी., एस्केवेशन्स एट अहाड़, पूना 1969, पृ. 216–220
25. भल्ला, एल. आर., सामयिक राजस्थान, कुलदीप प्रकाशन, जयपुर, पृ 253
26. ओझा, प्रियदर्शी, पूर्वोक्त, पृ 76
27. शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान का इतिहास, शिवलाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1981, पृ 536–537
28. अमर काव्यम्, रणछोड़ भट्ट कृत, देव कोठारी (सं.), सर्ग 4, श्लोक 23, साहित्य संस्थान,

उदयपुर, 1985 पृ. 111
29. भावनगर इन्सक्रिप्शन्स, भावनगर स्टेट प्रेस, भावनगर, श्लोक 4, पृ 74–77
30. ओझा, प्रियदर्शी, पूर्वोक्त, पृ 77
31. जैन, के.सी., एन्शीयन्ट सिटीज एण्ड टाउन्स ऑफ राजस्थान, पूर्वोक्त, पृ. 220–224
32. सौलंकी, कुसुम, पूर्वोक्त पृ 36
33. भावनगर इन्सक्रिपशन्स, पूर्वोक्त, श्लोक 16, पृ 97
34. राणावत, मनोहर सिंह सं., चितौड़–उदयपुर का पाटनामा, श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ, भाग 2 पृ 229
35. कुम्भलगढ़ प्रशस्ति, श्लोक सं 39, कविराजा श्यामलदास कृत वीर विनोद, सिंह, रघुबीर सं0, मयंक प्रकाशन जयपुर, 1986
36. उक्त।
37. कविराजा श्यामलदास कृत वीर विनोद, सिंह, रघुबीर सं0, मयंक प्रकाशन जयपुर, 1986, भाग 1 पृ 349–350
38. भावनगर इन्सक्रिपशन्स, पूर्वोक्त, पृ 121
39. नैणसी मुहणोत, मुहणोत नैणसी री ख्यात, साकरिया बद्री प्रसाद सं0, राज. प्राच्य विद्या प्रति. जोधपुर 1984, भाग 2 पृ 34
40. राणावत, मनोहर सिंह सं0, चित्तौड़–उदयपुर का पाटनामा (सीतामऊ) भाग 2, पृ 237–238
41. ओझा, प्रियदर्शी, पूर्वोक्त, पृ 81
42. भारद्वाज, दिनेश, बावड़ियों का भौगोलिक अध्ययन, भूदर्शन, वर्ष 12, अंक 2, पृष्ठ 66–70
43. कोठारी, गुलाब सं0, पत्रिका इयर बुक, राजस्थान पत्रिका प्रा0 लि0, जयपुर, 2010, पृ 829
44. साईवाल, स्नेह, राजस्थान का भूगोल, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर, 2012, पृ 56
45. उक्त।
46. ओझा, प्रियदर्शी, पूर्वोक्त, पृ 81
47. कानोड़ स्थित इन्द्रबाव का शिलालेख, दि. आसोज सुदि 15, वि.सं. 1883
48. शादा, मुंशी बसावन लाल कृत अमीर नामा, हिन्दी अनुवाद, अरबी फारसी शोध संस्थान, टोंक, 1995, पृ. 58
49. मिश्र, अनुपम, राजस्थान की रजत बून्दें, गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 1995 पृ 77
50. मिश्र, अनुपम, आज भी खरे है तालाब, पृ 22–23
51. मिश्र, अनुपम, राजस्थान की रजत बून्दें, पूर्वोक्त, पृ 63
52. उक्त, पृ 45
53. उक्त, पृ 50–60
54. उक्त, पृ 77
55. कोठारी, गुलाब सं0, पत्रिका इयर बुक, पूर्वोक्त, पृ 766
56. उक्त, पृ 780

57. उक्त, पृ 809

58. उक्त, पृ 817

59. उक्त, पृ 827

60. उक्त, पृ 828

61. उक्त, पृ 842

62. सौलंकी, कुसुम, पूर्वोक्त पृ 69

63. उक्त पृ. 146

64. उक्त पृ 74

65. उक्त पृ 148

66. उक्त पृ 74

67. साईवाल, स्नेह, राजस्थान का भूगोल, पूर्वोक्त, पृ 45

68. शर्मा, गीता, आमेर स्थापत्य एवं चित्रकला, राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2011, पृ 40

अध्याय तृतीय

राजस्थान के किलों में जल प्रबन्धन की विधियाँ

राजस्थान के किलों में जल सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करने हेतु जल प्रबन्धन की अनेक विधियाँ तथा उपाय अपनाऐ गए, प्रस्तुत अध्याय में उक्त का अध्ययन किया गया है। इन उपायों या विधियों में किले की स्थिति, किले की बनावट, क्षेत्र की जलवायु, वर्षा की स्थिति, जल के प्राकृतिक स्रोत, सामरिक आवश्यकताओं, जनसंख्या, संकटकालीन परिस्थिति, स्थानीय प्रचलन, रीति रिवाज, मान्यताओं एवं व्यक्तिगत रूचि आदि के कारण भिन्नता पायी जाती है।

3.1 जल स्रोतो का निर्माण, विकास एवं विशेषताएँ

राजस्थान के किलों में क्षेत्रीय परिस्थिति एवं स्थानीय प्रचलन के आधार पर सुविधानुसार अलग–अलग जल स्रोतों का निर्माण एवं संवर्द्धन किया गया। किलों से सम्बन्धित जल स्रोत प्राकृतिक व कृत्रिम दोनों प्रकार के है। इन सभी की सम्मिलित विशेषताओं का विवेचन निम्नानुसार है।

3.1.1 तालाब

तालाब शब्द आमतौर पर पूरे भारत में बोला व समझा जाता है। इसका जन्म संस्कृत की तल् धातु से हुआ है। तल् से ही तलकम्, तलम् तथा तालाब शब्द बना।[1] इसमें ऊर्दू शब्द आब का भी समावेश है जिसका अर्थ है जल। भूमि का निचला हिस्सा जहाँ आस–पास का बहता पानी (पालर पानी) एकत्र हो जाता है, वह तालाब बन जाता है। इसमें जल स्वतः ही संग्रहित होता है। तालाब अपने आस–पास के क्षेत्र में जल स्रोत के रूप में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनका बड़ा रूप झील या समंद कहलाता है तथा छोटा रूप तलैया या ताल। तालाब बहुत महत्त्वपूर्ण होते है तथा जल प्रबन्धन के क्षेत्र में बहुउद्देशीय मांगों की पूर्ति करते है जैसे पेयजल, पशुपालन, कृषि, सिंचाई, जलीय वनस्पति, मछली पालन आदि।

सामान्यतः तालाब दो प्रकार के होते हैं। 'रिसन तालाब' व 'जल संग्रहण' तालाब। रिसन तालाब कम गहराई की मिट्टी वाले क्षेत्रों में बनाए जाते हैं। इनमें वर्षा जल एकत्र होकर कुछ समय में ही रिस–रिस कर जमीन की निचली सतहों में चला जाता है। ये भूमिगत जल भण्डारों को पुनर्भरित (रिचार्ज) करते हैं। इनका अधिक समय तक प्रत्यक्ष उपयोग नहीं हो पाता। जल संग्रहण या जल भरण तालाब गहरी, चिकनी, अपारगम्य मिट्टी वाले क्षेत्रों में बनाए जाते हैं। इनके तल में काली चिकनी मिट्टी की अपारगम्य परत होने के कारण पानी के निचली सतहों में रिसकर जाने की संभावना कम रहती है। इनमें अधिक समय तक पानी भरा रहने के कारण इनका उपयोग सिंचाई, पशुओं के लिए पेयजल या निस्तार के लिए किया जाता सकता है। तालाब का निर्माण तश्तरी के समान किनारों पर उथला व बीच में गहरा किया जाता है। तालाब में पानी आने के मार्ग में बालू रेत, गोल बजरी, बारीक गिट्टी व बोल्डर परतों का फिल्टर लगा दिया जाता है ताकि पानी के साथ आने वाली मिट्टी तालाब के तल तक न पहुँच सके तथा तालाब की जलग्रहण क्षमता यथावत बनी रहे। जहाँ तक सम्भव है तालाब की लम्बाई, चौड़ाई तथा गोलाई को कम एवं गहराई को अधिक रखा जाता है, ऐसा करना जल संरक्षण के लिए अधिक उपयुक्त होता है। इससे जल की ऊपरी सतह का क्षेत्रफल कम हो जाता है जो सूर्य की धूप एवं हवा के सीधे सम्पर्क में न आकर जल के वाष्पीकरण की मात्रा को कम कर देता है। तालाब की जल संचयन क्षमता (डिमाण्ड़ केपेसिटी) उस क्षेत्र की अधिकतम वर्षा की मात्रा से डेढ़ या दो गुना अधिक रखी जाती है जिससे अत्यधिक वर्षा की स्थिति में पानी की अधिक आवक पर भी तालाब के टूटने का भय न रहे। तालाब के जल को रोकने हेतु भूतल से आवश्यकतानुसार कुछ ऊपर उठा कर बनायी गयी दीवार 'पाल' कहलाती है। पाल को तालाब के आकार के अनुसार मजबूत एवं मोटा बनाया जाता है। यह शंक्वाकार में ढलुआँ तथा शीर्ष से समतल होती है जिस पर आदमी व जानवर चल सकते हैं। पाल को मजबूती देने के लिए उस पर कंटीली झाडियाँ, घास, घने वृक्ष आदि लगा दिये जाते हैं। कहीं कहीं पर पाल के ऊपर मन्दिर या कोई देवालय भी बना दिया जाता है ताकि पाल को कोई क्षति न पहुँचाये।

तालाब के पूरा भर जाने पर तालाब के अतिरिक्त पानी के निकास की भी व्यवस्था की जाती है। अतिरिक्त पानी का निकास मार्ग नेष्टा कहलाता है जिसके ऊपर से पानी पाल को बिना नुकसान पहुँचाऐ बहकर निकल जाता है। इस प्रक्रिया को चादर चलना कहते है। नेष्टा मिट्टी की पाल का कम ऊँचा भाग है किन्तु पानी का मुख्य जोर

झेलता है इसलिए इसे गिट्टी, पत्थर, चूने आदि से पक्का बनाया जाता है। नेष्टा का आकार अर्द्ध वृत्त के समान गोलाई लिए रहता है ताकि पानी का वेग टूट सके और पाल नुकसान से बच जाए। यह गोलाईनुमा संरचना नाका कहलाती है। नेष्टा से पहले तालाब का जल–निकास मार्ग एकदम सीधा न होकर अन्तिम छोर के समीप घुमाव देकर बनाया जाता है। जिससे जल निकास की गति धीमी व सन्तुलित बनी रहती है। जल–निकास मार्ग पर कटाव रोकने के लिए मिट्टी पर पत्थर की परत (पिचिंग) लगायी जाती है।[2]

उस समय के अनुभवी लोगों को ज्ञात था कि पानी कहाँ मिल सकता है और कहाँ नहीं। वे ऐसे स्थानों पर ही तालाब बनवाते थे जहाँ वर्ष पर्यन्त पानी की प्रचूर उपलब्धता हो। तालाब खुदवाने में दाण्डी का भी ध्यान रखा जाता था, दाण्डी सदियों पुराने पानी के स्रोत थे जिनमें सदैव पानी रहता था। तालाब की जगह का चुनाव करते समय 'बुलई' बिना बुलाए आते थे।[3] बुलई को जमीन की पूरी जानकारी रहती थी कि कहाँ तालाब, कुँऐं, बावड़ी बनाए जाने चाहिए और कहाँ नहीं। तालाब बनवाने में बड़ी मात्रा में धन की आवश्यकता पड़ती थी। शासक वर्ग किले के भीतर या समीप तालाब के लिए स्थान व राशि उपलब्ध करवाता था एवं जनता इस पुनित कार्य में श्रमदान देती थी।

एक से अधिक तालाब आपस में भी जुड़े होते हैं अर्थात इनके मध्य चैनल व्यवस्था होती है।[4] प्रथम तालाब के पूरा भर जाने पर नेष्टा के माध्यम से अतिरिक्त पानी बहकर दूसरे तालाब में चला जाता है। इसके बाद दूसरा तालाब भी भर जाए तो इसका भी अतिरिक्त पानी तीसरे तालाब में, तीसरे के भरने पर चौथे तालाब में, चौथे से पाँचवे, पाँचवे से छठे इस प्रकार इस व्यवस्था के अन्तर्गत सात तालाबों के एक के बाद एक जुड़ने के प्रमाण मिलते हैं। चित्तौड़गढ़ दुर्ग के तालाब भी आपस में इसी तरह जुड़े है। चतरंगमोरी तालाब से कृष्ण कुण्ड, कृष्ण कुण्ड से सुखाड़िया, सुखाड़िया से भीमलत, भीमलत से नीलबाव, नीलबाव से बोलिया, बोलिया से रत्नेश्वर, रत्नेश्वर से माताजी कुण्ड, माताजी कुण्ड से कुकडेश्वर आदि।[5] तालाब बनवाने से पहले तालाब के लिए आगोर या ओगरा या पायतान जलग्रहण क्षेत्र देखा जाता है। अधिकांश तालाबों का आगोर प्राकृतिक होता है। आसपास की ढलवा जमीन या पहाड़ियाँ उसकी आगोर होती है। यहाँ बरसने वाला बारिश का पानी बहकर तालाब में एकत्र होता है। पानी के आगोर से बहकर तालाब में प्रवेश करने के मार्ग को पेठू कहा जाता है। इस पेठू के तल में

छोटे–छोटे पत्थर, गिट्टी, बजरी आदि भरी जाती है। जिसमें पानी के साथ आने वाली मिट्टी बैठ जाती है, साथ ही पेठू मार्ग टेढ़ा–मेढ़ा बनाया जाता है जिसके किनारों पर पानी के साथ आने वाला कचरा अटक जाता है एवं साफ तथा निथरा पानी ही तालाब में जाता है।

अधिकतर तालाबों की पाल के किनारे बड़े फलदार–छायादार वृक्ष, पंचवटी, कुलदेवी तथा कुलदेवता का स्थान, चबूतरा, मन्दिर, दरगाह आदि बनवायी जाती है ताकि तालाब की पवित्रता, स्वच्छता व सामाजिक सुरक्षा बनी रहे। लोग शौचादि के लिए तालाब के जल का प्रयोग न करें। चित्तौड़गढ़ किले के तालाबों के किनारे इस तरह के धार्मिक स्थल, वृक्ष, चबूतरें, दरगाह आज भी देखे जा सकते हैं।[6] इनके जल से स्नान करने, उसके शुद्ध जल को देवताओं की प्रतिमा पर चढ़ाने का धार्मिक विधान है। इसी प्रकार तालाबों के किनारे पक्के घाट तथा उतरने के लिए सीढियाँ भी बनायी जाती है। तालाब की गहराई व विस्तार के अनुसार सीढ़ियों की लम्बाई व संख्या घटाई या बढ़ाई जा सकती है। सीढ़ियों को पानी के कटाव से बचाने के लिए बीच–बीच में चबूतरे जैसी बड़ी–बड़ी सीढ़ियाँ लगभग आठ से दस सीढ़ियों के बाद लगाई जाती है। यह संरचना हथनी कहलाती है। तालाब की किसी हथनी की दीवार में एक बड़ा आला बनाया जाता है तथा उसमें घटोइया बाबा की प्रतिष्ठा की जाती है। घटोइया बाबा घाट की रखवाली करने वाले देवता के रूप में पूजे जाते है।[7] चित्तौड़गढ़ के चतरंग मोरी तालाब, सुखाड़िया, जोधपुर के रानीसर, रणथम्बोर के जंगाली तालाब के किनारे इस तरह के घाट देखे जा सकते है।

प्रायः तालाबों के बीचो बीच कोई पाषाण स्तम्भ लगाया जाता है। यह पाषाण स्तम्भ 'यष्ठि' कहलाता है। कहीं–कहीं यष्ठि पर नाग, किन्नर, यक्ष आदि की मूर्तियाँ भी उत्कीर्ण कर दी जाती है तब यह नागयष्ठि कहलाता है। यह तालाब की पवित्रता के साथ–साथ तालाब के जल स्तर को भी दर्शाता है। स्तम्भ तालाबों के बीचों बीच लगने के साथ–साथ कहीं–कहीं पर अपरा, मोखी तथा आगोर में भी लगाये जाते है। इन पर पद्म, गदा व चक्र जैसे चिह्न भी बना दिये जाते है। इन चिह्नों के अलग–अलग अर्थ होते हैं। तीनों चिह्नों के जल में डूबे होने का अर्थ है कि तालाब का पानी पीने, नहाने, धोने तथा सिंचाई आदि सभी कार्यों में उपयोग लिया जा सकता है, किन्तु यदि तालाब का जल स्तर इतना ही रह जाए कि केवल पद्म व गदा ही डूबे व चक्र न डूबे तो इसका अर्थ है कि पानी का उपयोग मितव्यता से किया जाना चाहिए। इसके विपरीत

यदि तालाब का जल स्तर इतना कम हो जाए कि मात्र पद्म ही डूबे तो इसका तात्पर्य है कि अब पानी का उपयोग मात्र पेयजल हेतु ही आरक्षित कर दिया जाए।[8]

कई तालाबों के मध्य में स्तम्भ के स्थान पर टापू बना होता है। तालाब के निर्माण के समय खुदाई में निकली मिट्टी को पाल पर जमा देने के बजाए बीच में ही जमा देने से ऐसे टापू बन जाते है। बड़े तालाबों में बनने वाली पानी की लहरें भी तेज गति वाली होती है जिनसे तालाब की पाल के टूट जाने का खतरा रहता है। इन लहरों के वेग को कम करने के उद्देश्य से भी टापू बना दिये जाते है।[9] एक प्रमाणित वैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार बड़े जल स्रोत के बीचो–बीच कोई ठोस आधार जल स्तर से कुछ ऊँचाई पर हो तो लहरे कम उठती है। इसके अतिरिक्त तालाब की सफाई में निकली मिट्टी को दूर तक फैंकने से बचने के लिए भी मिट्टी को तालाब के बीच में ही जमा देने से मिट्टी जमते–जमते एक टापू का आकार ले लेती है। इन टापूओं पर फलदार एवं छायादार वृक्ष भी लगा दिये जाते हैं या कोई देवालय, चबूतरा या छतरी बना दी जाती है।[10] कई छतरियाँ कलात्मक भी होती हैं तथा किसी व्यक्ति विशेष की याद में या विशेष घटना के स्मरण हेतु बनायी जाती हैं। जयगढ़ किले का सागर तालाब तथा आमेर का मावठा इसका आदर्श उदाहरण है। जिनके मध्य में टापू, टापू पर उद्यान, छतरी तथा पाल पर भी छतरियाँ बनी हुई हैं।[11]

बड़े व बारहमासी तालाबों में दहरा, दहारा, धोरा या पानी की सीर पायी जाती है। इन सीरों का स्रोत कहीं ओर होता है परन्तु ये तालाब को लगातार पानी देती रहती है। इस धारा को प्राप्त करने के लिए अनुभवी लोगों या तालाब खोदने वाली जाति विशेष के लोगों की मदद ली जाती है, जिन्हें गजधर कहा जाता है। राजस्थान में यह कार्य मीणा तथा कोली जाति के लोग करते थे।[12] इस कार्य को करने वाली एक और जाति थी – पुष्करणा ब्राह्मण। इन्हें ब्राह्मण का दर्जा तालाब बनाने के पुण्यदायी कार्य के लिए ही दिया गया था। इन्हें तीर्थराज पुष्कर के तालाब के निर्माण का श्रेय प्राप्त है। इनका काम तालाब खोदना व सीरें ढूंढना होता था। ये जमीन में विशेष दिशा में गड्ढेनुमा धोरे बनाते थे तथा सीरें पकड लेते थे।

कभी–कभी तालाबों की तलहटी में कुँए भी खोदे जाते है। पश्चिमी राजस्थान में तालाबों के भीतर बेरियाँ खोदने का चलन रहा है। इस तरह की बेरियों का उदाहरण मेहरानगढ़ दुर्ग का रानीसर तालाब है।[13] इन बेरियों या कुँओं की पक्की चिनाई की जाती थी तथा नीचे उतरने के लिए सीढियाँ भी बनायी जाती थी। आमतौर पर तालाबों

में भिन्न–भिन्न जातियों के लिए अलग–अलग पत्थर रखे जाते हैं ताकि उन पर बैठ कर स्नान करने, कपड़े धोने, पानी भरने या जानवरों को पानी पिलाने का कार्य किया जा सके। महत्त्वपूर्ण तालाबों के किनारें विभिन्न जातियों के अलग–अलग पक्के व सुन्दर घाट बनाए गए हैं। जिन्हें जाति विशेष के लोग ही उपयोग ले सकते थे तथा उनकी देखरेख व मरम्मत का जिम्मा भी उन्हीं का होता था। इसी प्रकार महिला व पुरूष के स्नान के घाट भी अलग–अलग बनाये जाते थे।

तालाब के किनारो तथा टापू के सघन वृक्षों पर पक्षियों का बसेरा होता है साथ ही तालाब में जलीय जीव, मछलियाँ, कछूऐं, बतख आदि भी होते है। ये जलीय जीव पानी को स्वच्छ बनाये रखते हैं। मध्यकाल में शासक वर्ग को शिकार का शौक था। वे तालाब में पानी पीने आने वाले पशुओं, पक्षियों एवं जलीय जीवों का शिकार करते थे। कई तालाबों के किनारें शिकारगाहें बनायी गयीं थी। आज भी किलों के भीतर व आसपास के तालाबों पर शिकारगाहों के चिह्न देखे जा सकते हैं। रणथम्बोर दुर्ग के समीप व भीतर के तालाब इसका सुन्दर उदाहरण है।[14]

तालाब खुदवाना हिन्दू धर्म में परमार्थ के लिए किया जाने वाला पुण्यदायी काम माना जाता है। मत्स्य पुराण[15] व अनुशासन पर्व[16] में कहा गया है

शालाप्रपातडागानि देवतायतनाति च

ब्राहमणावसथश्चैवर कत्तवय नृप सप्तमै।

शुक्रनीति[17] भी कहती है कि सीढ़ियों वाले जलाशय, तालाब, झीलें आदि खुदवाना राजा का परम कर्तव्य है।

तालाब के महत्त्व को प्रकट करने तथा उसे लोक कल्याणार्थ व धर्मार्थ उपयोग करने के उद्देश्य से तालाब की पूजा व अनुष्ठान किया जाता है, सार्वजनिक तालाबों के लिए यह अनिवार्य था। इस विधान के अन्तर्गत सर्वप्रथम जल देवता वरूण का यूप तथा स्तम्भ प्रतिस्थापित किया जाता है। यूप सरई या साल वृक्ष की लकड़ी का होता है। यूप प्रतिष्ठा संस्कार के बारे में प्रतिष्ठा महोदधि नामक ग्रन्थ में विस्तार से बताया गया है। इस तरह के तालाबों के विवाह की परम्परा भी रही है। मान्यता है कि विवाह हुए बिना किसी तालाब का पानी पीने योग्य नहीं होता। इस विवाह में तालाब स्त्री तथा तालाब के बीच का स्तम्भ पति का प्रतीक माना जाता है। तालाबों के जोड़े भी होते है। इनके विधि–विधान से विवाह, बरात, कन्यादान, चुनरी ओढ़ाना आदि रीति–रिवाज पूरे किये जाते है। पूरे तालाब को सूत से बाँधा जाता है तथा दो जोड़ो के बीच सूत का धागा

डालकर उन्हें विवाह बन्धन में बाँध दिया जाता है। विवाह के प्रतीक स्तम्भों पर तालाब बनाने वाले के नाम, वर्ष, राजा का नाम, राज्य का प्रतीक चिन्ह, राजा की प्रशंसा के साथ–साथ सुन्दर कलाकृतियाँ भी उकेरी जाती थी।

3.1.2 झील

झील जल का वह स्थिर भाग होता है जो चारों तरफ से स्थल खण्ड से घिरा हो। दूसरे शब्दों में सामान्यतः झील भूतल के वे विस्तृत गड्ढे हैं जिनमें जल भरा रहता है।[18] निर्माण की दृष्टि से झीले दो प्रकार की होती हैं– कृत्रिम झील व प्राकृतिक झील। राजस्थान के किलों के समीपस्थ अधिकांश झीलें प्राकृतिक है तथा कुछ का निर्माण यहाँ के राजा, सेठों, बंजारों व जनता ने करवाया।[19] जल की गुणवत्ता की दृष्टि से भी झीलें दो प्रकार की होती हैं– मीठे पानी की झील तथा खारे पानी की झील। राजस्थान में दोनो ही प्रकार की झीलें बहुतायत से मिलती हैं।[20] झील की दूसरी विशेषता है उसका स्थायित्व। झीलों का पानी कभी नहीं सूखता, वे सदानीरा होती है।

राजस्थान में परम्परागत जल संरक्षण सर्वाधिक झीलों के माध्यम से होता है।[21] राजस्थान के किलों में भी झीलों के माध्यम से जल की उपलब्धता सुनिश्चित की गयी थी। बीकानेर के जूनागढ़ दुर्ग के ठीक बाहर बनवायी गयी सूरसागर झील, आमेर दुर्ग के सामने स्थित मावठा झील तथा जयगढ़ के पीछे स्थित सागर झील दुर्ग में झीलों के माध्यम से जल प्रबन्धन का प्रमुख उदाहरण है।[22]

3.1.3 नाड़ी

यह एक तरह का पोखर या छोटा तालाब होता है। इसमें एवं तालाब में अन्तर यह है कि तालाब बड़ा होता है तथा नाड़ी छोटी। इसके अतिरिक्त तालाब में जल भूमिगत सीरों से भी आ सकता है किन्तु नाड़ी केवल वर्षा जल से ही पुनर्भरित होती है। कहीं–कहीं पर भूमि में गड्ढें या निचली जमीन होने पर बरसात का पानी एकत्र हो जाता है और नाड़ी बन जाती है। राजस्थान में नाड़ी निर्माण की परम्परा काफी पुरानी है किन्तु शासक वर्ग द्वारा नाड़ी निर्माण का प्रथम ज्ञात उदाहरण जोधपुर में मिलता है यहाँ 1520 ई0 में राव जोधाजी ने सर्वप्रथम नाड़ी का निर्माण कराया था।[23]

पश्चिमी राजस्थान के प्रत्येक गाँव में नाड़ियाँ मिलती है। मैदानी क्षेत्रों में नाड़ियाँ 3 से 12 मीटर तक गहरी होती है। इनमें जल निकासी की व्यवस्था भी होती है। इनका पानी 10 महिने तक चलता है। एल्यूवियल मृदा वाले क्षत्रों में नाड़ी आकार में बड़ी होती

है, इनमें पानी 12 महिने तक एकत्र रह सकता है। एक अध्ययन के अनुसार नागौर, बाड़मेर व जैसलमेर में पानी की आवश्यकता का 38 प्रतिशत नाड़ी द्वारा पूरा किया जाता है। समय–समय पर नाड़ियों की खुदाई की जाती है, क्योंकि पानी के साथ गाद भी आ जाती है जिससे उसकी भराव क्षमता कम हो जाती है। नाड़ियों की क्षमता बढ़ाने के लिए उन्हें दो तरफ से पक्की कर दिया जाता है। इनके निर्माता अथवा क्षेत्र के नाम पर नाड़ी का नाम भी रखा जाता है।

चित्तौड़गढ़ किले में 84 जल स्रोत थे जिनमें से अधिकांश नष्ट हो चुके हैं। इनमें बहुत सी नाड़ियां भी थी। आज भी बरसात के मौसम में किले की अधिकांश नाड़ियों को देखा जा सकता है। इन नाड़ियों ने किले में जल संरक्षण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। स्थानीय निवासी बताते हैं कि नाड़ियों का उपयोग सैनिक अपने घोड़ों को पानी पिलाने, घोड़ों के लिए चारें, फसल की सिंचाई करने जलीय वनस्पति उगाने आदि हेतु करते थे।[24]

3.1.4 कुँआ

कुँए राजस्थान के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। स्वच्छ जल प्राप्ति का ये सर्वप्रमुख साधन रहे हैं।[25] आज भी कुँओं का महत्त्व कम नहीं हुआ है। राजस्थान के किलों में जल प्रबन्धन के लिए कुँए ही प्रथम पसन्द थे। प्रायः प्रत्येक किले में कुँए मिलते है। किलों के भीतर कुँए खुदवाने का प्रथम उद्देश्य पेयजल था।

कुँऐं हमारी जल–संस्कृति का अभिन्न अंग हैं और जल का प्रमुख स्रोत भी। वास्तुशास्त्र में कुँओं के माध्यम से सतत जल प्राप्ति को उचित ठहराते हुए कुँआ निर्माण के निम्न नियम बताये गये हैं।[26] शास्त्र वर्णित विधान के अनुसार ही किलों में कुँए बनवाये गये थे। बहियों, पोथियों, रिकॉर्ड्स, साक्षात्कार एवं व्यक्तिगत सर्वेक्षण से पता चलता है कि किलों में कुँए खोदते समय उक्त नियमों की पालना की गयी थी।

i. कुँए की खुदाई का कार्य शुभ मुहर्त में आरम्भ किया जाए तो कार्य निर्विघ्न रूप से सम्पन्न होता है, पानी शीतल व मीठा निकलता है, गहराई तक खुदाई से बचा जा सकता है।
ii. भूमिगत जल प्राप्ति हेतु पानी की सीरों का पता लगाने के पश्चात् ही कुँआ खोदा जाना चाहिए।
iii. कुँआ किले के उत्तर–पूर्व दिशा में हो, ईशान कोण में कुँआ नहीं खोदना

चाहिए।

iv. यदि कुँए की स्थिति पूर्व में हो तो पानी का बहाव पश्चिम की तरफ रखा जा सकता है।

v. कुँए की स्थिति ऐसी हो कि उसे सूर्य का पर्याप्त प्रकाश मिलता रहे क्योंकि सूर्य की प्राकृतिक किरणों में रोगाणुओं को नष्ट करने की क्षमता होती है। इस हेतु वास्तुकारों का भी निर्देश है कि सूर्य के उत्तरायण व दक्षिणायन दोनों स्थितियों में कुँऐं को पर्याप्त रोशनी मिलनी चाहिए।

vi. बड़े वृक्ष कुँए के दक्षिण व पश्चिम में हो तथा छोटे पौधे उत्तर व पूर्व दिशा में लगाऐ जाऐ।

vii. कुँए की खुदाई में निकली मिट्टी निर्माण कार्यों में न लगाई जाए।[28]

कुँए का व्यास इसके भीतर जल की मात्रा के आधार पर रखा जाता है। यदि जल की मात्रा अधिक हो तो व्यास भी अधिक होगा। बड़े व्यास वाले कुँए से पानी निकालने के लिए कई चड़स लगाए जा सकते हैं। कुँए की चिनाई के कई तरीके देखने को मिलते है। जहाँ भूजल गहरा न हो तथा पूरी खुदाई करने के बाद कुँए की चिनाई की जाए तो इसे सीधी चिनाई कहा जाता है। जो नीचे से ऊपर की ओर साधारण ईंट पत्थर से सरल तरीके की जाती है। यदि भूजल गहराई पर मिले तथा पूरी खुदाई से पूर्व ही कुँए के धस जाने का खतरा हो तो खुदाई के साथ–साथ ही ऊपर से नीचे की और चिनाई करते रहना होता है, ऐसी चिनाई ऊँची चिनाई कहलाती है। इसके विपरीत जहाँ पानी और भी गहरा हो वहाँ मजबूत पत्थर के तरासे हुए गुटके एक दूसरे मे फँसा कर कुँए की चिनाई की जाती है।

3.1.5. टांका

टांका राजस्थान में मरूस्थलीय क्षेत्र में वर्षा जल संग्रहण की महत्त्वपूर्ण परम्परागत प्रणाली है जो विशेषतः पेयजल के लिए प्रयुक्त की जाती है। यह ऊपर से ढँका होता है। इसमें जल प्राप्ति के मोखे होते है जिनसे वर्षा जल प्रविष्ठ होकर टांके के भीतर चला जाता है। यह जल टांके में संग्रहित रहता है तथा आवश्यकतानुसार टांके का ढक्कन खोलकर उपयोग हेतु निकाला जा सकता है। एक परम्परागत नहर प्रणाली द्वारा शुद्धिकरण के पश्चात् ही वर्षा जल टांके में प्रवेश करता है। इस तरह की व्यवस्थाऐं जयगढ़, आमेर, नाहरगढ़ के किलों के टांकों में जल के शुद्धिकरण हेतु अपनाई गयी हैं।[29] टांके शासक वर्ग, धर्मावलम्बियों तथा जनसामान्य द्वारा सार्वजनिक व

निजी उपयोगार्थ बनवाये गये थे। टांकों में एकत्र होने वाला जल आस–पास की पहाड़ी, मैदानी, वनीय भागों, महलों की छतों आदि पर बरसने वाला वर्षा जल होता है।

3.1.6 कुण्ड

पश्चिमी राजस्थान व गुजरात में जल सग्रंहण हेतु कुण्ड उपयोग में लाऐ जाते हैं। विशाल गहरी यज्ञ वेदि की तरह वर्गाकार जल स्रोत जिसमे चारों ओर से कई सीढ़ियाँ पैन्दे तक जाती हैं, कुण्ड कहलाता है। इनके निर्माण हेतु जमीन में गड्डा खोदकर उसे चूने, जिप्सम पाऊड़र आदि से पक्का कर दिया जाता है तथा कभी–कभी गुम्बद बनाकर या ढ़क्कन से ढ़क दिया जाता है। कुण्ड के तल में राख और चूने का प्लास्टर भी किया जाता है ताकि कीटाणु नहीं पड़े।

निर्माण के आधार पर कुण्ड 4 प्रकार के होते हैं। भद्र–चोकोर, सुभद्रक–भद्रयुक्त, नन्द–प्रतिभद्र युक्त, परिध–मध्य मे भिट्ट–मण्ड युक्त। कुण्ड के भिट्ट पर देवी–देवताओं की मूर्तियाँ अंकित की जाती है तथा द्वार पर श्रीधर संज्ञक माण्ड बनाया जाता है।[30] शास्त्र बताते है कि इस प्रकार के कुण्डों में स्नान करने से गंगा स्नान तथा दर्शन से काशी यात्रा का लाभ मिलता है। स्वामीत्व के आधार पर निजी व सार्वजनिक इनके भेद हैं। निजी कुण्ड घरो में स्वयं के उपयोग हेतु तथा सार्वजनिक कुण्ड सार्वजनिक स्थानों पर सर्व–हितार्थ सर्व–उपयोगार्थ उद्देश्य से बनाए जाते हैं। निजी कुण्ड अधिकांश ढ़के किन्तु सार्वजनिक कुण्ड ढ़के व बिना ढ़के दोनो प्रकार के होते हैं। कुण्डों की गहराई आवश्यकता एवं उपयोग पर निर्भर करती है। कुछ कुण्ड इतने गहरे भी होते हैं कि इनमें तैरना व स्नान करना भी सम्भव है तथा कुछ इतने छोटे भी होते हैं कि इनमें से केवल झुककर ही पानी भरा जा सकता है।

उपयोग के आधार पर कुण्डों के प्रकार है–पेयजल योग्य कुण्ड तथा सर्वोपयोगी कुण्ड। पेयजल योग्य कुण्डों का उपयोग व महत्त्व सर्वोपयोगी कुण्डों की अपेक्षा अधिक होता है। ऐसे कुण्डों की पवित्रता, शुद्धता, स्वच्छता, रख–रखाव आदि का विशेष ध्यान रखा जाता है। कई स्थानों पर ठण्डे पानी के तथा कई स्थानों पर गर्म पानी के कुण्ड मिलते हैं। इनकी पूजा–अर्चना, परिक्रमा, स्नान, तर्पण आदि का धार्मिक महत्त्व है। ये धार्मिक व सांस्कृतिक उपयोग हेतु बनाए जाते हैं। निवाई दुर्ग की तलहटी में इस प्रकार के चार कुण्ड हैं।[31] इसी तरह अलवर के तालवृक्ष गाँव में भी प्रसिद्ध गर्म–ठण्डे पानी के कुण्ड मिलते हैं।[32] राजस्थान के अनेक किलों में जल संग्रहण के लिए कुण्डों का प्रयोग बहुतायत से किया गया है। जिनमें चित्तौड़गढ़ दुर्ग प्रमुख है।

3.1.7 टोबा

टोबा राजस्थान में परम्परागत जल प्रबधन का महत्त्वपूर्ण साधन है। इसकी आकृति नाड़ी के समान होती है किन्तु टोबा उथला होता है जबकि नाड़ी गहरी। ऐसी भूमि जो सघन हो तथा जिसमे पानी का रिसाव कम हो वह टोबा बनाने के लिए उपयुक्त होती है। टोबे में वर्ष भर पानी संचित रहता है। टोबा निर्माण में ध्यान रखा जाता है कि इसका ढलान नीचे की ओर हो, बीच में गहरा हो, तल में समय—समय पर खुदाई की जा सके, आगोर बड़ा हो, आसपास वनस्पति, घास, घने वृक्ष लगे हो जिससे चारों ओर नमी बनी रहे तथा सूरज की धूप व गर्मी टोबा के जल पर कम पड़े ताकि वाष्पीकरण कम हो। जनसंख्या के अनुरूप टोबा बनाए जाते हैं। प्रायः एक टोबा के जल का प्रयोग 20 परिवार तक कर लेते हैं।

पश्चिमी राजस्थान में गाँव, कस्बों, बस्ती, सार्वजनिक स्थान व अनेक छोटे—बड़े किलो के भीतर व समीप टोबे बनाये गये हैं। टोबें किले मे विभिन्न प्रयोजन हेतु जल उपलब्ध कराते हैं।[33]

3.1.8 नाड़ा

नाड़ा भी परम्परागत जल स्रोत है जो थार के मरूस्थलीय क्षेत्र में अधिक पाये जाते हैं। किसी गड्ढे में पत्थर से चिनाई करके नाड़ा बनाया जाता है। पत्थर इस तरह से लगाए जाते हैं कि पानी रिसकर जमीन में न चला जाए। नाड़े में पानी पहुँचाने के लिए पत्थर की नालियाँ बनाई जाती हैं जो इतनी मजबूत होती है कि पानी न तो व्यर्थ निकले और ना ही जमीन में रिसे। बारिश के दिनों में बहते पानी को विभिन्न नालियों के माध्यम से नाड़े में एकत्रित कर लिया जाता है जिसे आवश्यकतानुसार विभिन्न कार्यों में उपयोग लाया जा सकता है। थार मरूस्थल में आज भी नाड़े एवं उनकी नालियों को देखा जा सकता है यद्यपि उपयोग में न आने के कारण वे नष्ट प्रायः हो गए हैं। वर्तमान में इनकी प्रासंगिकता न के बराबर है, इनके महत्त्व को बहुत पहले भुला दिया गया है।

राजस्थान के मरूस्थलीय किलों के समीप नाड़ें किले की जल सम्बंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करते आ रहे हैं।

3.1.9 रपट

पश्चिमी राजस्थान के मरूस्थलीय तथा मैदानी क्षेत्रों में परम्परागत जल संरक्षण

के लिए जिन युक्तियो का प्रयोग किया जाता है उनमे से रपट भी एक है। राजस्थान के किलो के आस–पास बहुत से रपट देखने को मिल जाते हैं। जिनमें से अधिकांश रखरखाव के अभाव में लगभग नष्ट हो गए हैं। रपट में भी नाड़ों के समान बारिश के बहते जल को संग्रहित किया जाता है। यह भी ढ़ँका हुआ होता है। इसके जल का उपयोग लम्बे समय तक किया जा सकता है। रपट का मुँह काफी छोटा होता है किन्तु भीतर से ये विशाल होते हैं।

3.1.10 चन्देल टेंक

पहाड़ी क्षेत्रो मे इस तरह के टेंक बनाए जाते हैं। पहाड़ी पर होने वाली बारिश के बहते पानी को रोकने एवं एकत्रित करने के लिए बहाव मार्ग पर एक मेढ़ या मजबूत कच्ची मिट्टी की दीवार बना दी जाती है, इस प्रकार बनी संरचना को चन्देल टेंक कहा जाता है। चन्देल टांके इतने बड़े होते हैं कि अगली बारिश तक भी भरे रहते हैं। इनमें पहाड़ की पथरीली जमीन के कारण जल रिसाव की सम्भावना कम रहती है साथ ही चारों ओर पहाड़ी ढलान या घाटी होने से पानी की आवक भी अच्छी बनी रहती है। पूर्ण भराव पर अतिरिक्त पानी को टांके से बाहर निकालने के लिए इसकी एक दीवार को नीचा रखा जाता है। समय–समय पर टांके के तल से मिट्टी निकाल कर इसकी जल ग्रहण क्षमता को बढ़ाया जा सकता है। अरावली श्रेणी के गाँवों, पहाड़ी ढलान पर बसी ढानियों, कस्बों मे चन्देल टेंक बहुतायत से पाए जाते हैं।

अरावली के अधिकांश किलों में पहाड़ी ढलानों से बहते पानी को रोक कर चन्देल टेंक बनाए जाने के अनेक साक्ष्य मिलते हैं। इनकी सहायता से किलों मे जल की वर्ष पर्यन्त उपलब्धता सुनिश्चित की जाती थी। विकट परिस्थितियों यथा कम वर्षा की स्थिति, अकाल आदि में चन्देल टेंक जल के विश्वसनीय स्रोत थे। इनमे लम्बे समय तक जल संग्रहित किया जा सकता है।

3.1.11 बुन्देला टेंक

बुन्देला टेंक बनावट, उपयोग, प्रयोजन आदि के मामले चन्देल टेंक के समान ही होते हैं। अन्तर सिर्फ इतना है कि ये चन्देल टेंक से बड़े होते हैं एवं इनकी जल संग्रहण क्षमता चन्देल टेंक से कई गुना अधिक होती है। एक अन्य अन्तर यह भी है कि चन्देल टेंक अधिकतर कच्चे होते हैं किन्तु बुन्देला टेंक सदैव पक्के होते हैं। चन्देल टेंक

के विपरीत इनकी पाल व दीवारों का निर्माण पत्थर की मजबूत दीवार या पहाड़ी के आधार से पवेलियन बनाकर किया जाता है। चारों तरफ की पहाड़ियों की तलहटी में जहाँ जल निकास का मार्ग छोटा हो, को रोककर पत्थर की मजबूत दीवार चुनकर बुन्देला टेंक बना दिया जाता है, इस दीवार की ऊँचाई बढ़ाकर टेंक मे जल की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है।

राजस्थान में अनेक गिरी दुर्ग है। जिनके पहाड़ी क्षेत्र से गिर कर बहने वाले वर्षा जल को रोककर कोई बड़ा तालाब, झील या टेंक बना देने पर यह वर्ष पर्यन्त किले की जल सम्बंधी विभिन्न आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकता है। चित्तौड़गढ़ दुर्ग के गोमुख कुण्ड तथा कुकड़ेश्वर महादेव कुण्ड बुन्देला टेंक के ही उदाहरण हैं।

3.1.12 बेरी

बेरी पश्चिमी राजस्थान में अधिक पायी जाती हैं। ये एक प्रकार का छोटा कुँआ या छोटी कुँई होती है जो आस–पास के तालाब, झील, खड़ीन या झालरे के पेटे में बनायी जाती है ताकि उनका पानी रिसकर बेरी में आता रहे। वर्षा काल की समाप्ति या कम वर्षा के कारण यदि तालाब, झील आदि सूख भी जाए तो इनके पेटे में बनायी गयी बेरी में पानी मौजूद रहता है। इस प्रकार बेरियाँ भूमिगत जल की सीरों के बजाय तालाब, झील आदि के पानी के रिसाव से रिचार्ज होती है।

राजस्थान के अनेक किलों में बेरियों के माध्यम से जल सग्रंहण का कार्य किया गया है। मेहरानगढ़ दुर्ग के रानीसर तालाब की खुदाई में हाल ही में तीन बेरियाँ निकली हैं। इन बेरियों में पानी सदैव भरा रहता था।[34]

3.1.13 जोहड़

जल संग्रहण की प्राचीन युक्ति 'जोहड़' यद्यपि भारत के प्रत्येक कोने में मिलते हैं किन्तु सबसे अधिक जोहड़ समुद्र तटीय राज्यों, पूर्वी उत्तरप्रदेश, बिहार व राजस्थान में है। राजस्थान में सर्वाधिक जोहड़ अलवर जिले के आस–पास के क्षेत्रों मे पाए जाते हैं। जोहड़ का प्रयोग प्राचीन काल में भी किया जाता था परन्तु मध्यकाल में इनका प्रयोग अपेक्षाकृत कम हो गया। वर्तमान में जल संकट जैसी समस्याओं से निजात पाने के लिए जोहड़ का महत्त्व फिर से बढ़ गया है।

जोहड़ दोज के चाँद की तरह उभयतलीय (कॉनकेव या चँदाकार) होते हैं। बड़े जोहड़ जिनमें जल दाब अधिक हो, उनका तल दो गुना या तीन गुना चँदाकार होता है।

तल की गहराई आधार से 14 या इक्कीस हाथ होती है। उभयतलीय स्थान को कोहनी कहते है। जोहड़ की ऊपरी सतह 5 हाथ लम्बाई के बराबर लगभग एक समान होती है। पाल का आधार तय करते समय पाल की ऊँचाई को ध्यान में रखा जाता है। कभी—कभी जोहड़ में मुख्य जल धारा के सामने पाल को थोड़ा कानवेक्स(उत्तल) स्वरूप दे देते है जिससे पाल के ऊपर के जल का दबाव दो तरफ बँट जाता है। जोहड़ के भीतर की तरफ पाल को 4 या 5 हाथ लम्बाई तक सीधा रखा जाता है ताकि गहराई अधिक हो तथा लम्बाई व चौड़ाई कम रहे जिससे जल का वाष्पीकरण कम हो। एक विशेष प्रकार की मिट्टी 'मरूम' जहाँ होती है, वहीं पर जोहड़ बनाते है। यह मिट्टी भूमि में पानी का रिसाव कम कर देती है जिससे जोहड़ में लम्बे समय तक पानी बना रहता है।

जोहड़ मिट्टी के छोटे डैम की तरह होते हैं। वर्षा जल के बहाव क्षेत्र में इन्हें विशेष ज्यामितिय आकार में बनाकर पानी से भर लिया जाता है। इनका जल वर्ष पर्यन्त क्षेत्र में जल उपलब्ध कराता है। बारसाती नदियों व नालों के पेटे में जोहड़ बनाकर नदियों को बारहमासी जलदात्री बना दिया जाता है। जोहड़ अकाल से बचाते हैं, समीप के कुँए, बावड़ी के जल को रिचार्ज करते हैं, वर्षा जल का संग्रहण करते हैं, सिंचाई व पशुचारण में जल उपलब्ध कराते हैं तथा भूमि का कटाव रोककर पर्यावरण को बचाए रखते हैं।

राजस्थान में अनेक ऐसे छोटे—बड़े किलें हैं जिनके समीप या भीतर जोहड़ बने हुए है। इन्हें अनेक स्थानीय नामो से पुकारा जाता है किन्तु बनावट व उपयोगिता के आधार पर ये जोहड़ ही हैं। किलों के जल प्रबंधन में इनका विशेष योगदान है।

3.1.14 झालरा

किसी नदी या तालाब के पास बनाया गया आयताकार टेंक झालरा कहलाता है। यह धार्मिक उद्देश्य से जल संग्रहण हेतु बनाया जाता है। इसके अतिरिक्त भी झालरें कई अन्य काम आते हैं। राजस्थान और गुजरात में इनका प्रयोग बहुतायत से होता है। झालरा विकट परिस्थितियों में पेयजल आरक्षित रखता है। झालरा अपने समीप के तालाब या और झील के रिसाव से पानी प्राप्त करता है। इनका स्वयं का कोई आगोर नहीं होता है। ये आयताकार होते है तथा भीतर जाने के लिए तीन और सीढ़ियाँ बनी होती हैं। इनका वास्तुशिल्प बहुत सुन्दर होता है।

राजस्थान के किलों के भीतर तथा समीप अनेक झालरे पाए गये हैं। जयपुर में

8 प्रसिद्ध झालरे हैं। अजमेर के तारागढ़ किले के भीतर के झालरे किसी समय किले के विश्वसनीय पेयजल स्रोत थे। इनमे से कुछ झालरें आज भी जल से परिपूर्ण है।[35]

3.1.15 नदी

राजस्थान में अनेक किले ऐसे हैं जो किसी नदी के किनारे या नदियों से घिरे हुए हैं। एसे दुर्ग जल दुर्ग कहलाते हैं। उदाहरणार्थ झालावाड़ का गागरोन दुर्ग आहु व कालीसिन्ध नदी, भैंसरोड़गढ़ चम्बल नदी, बाराँ का शेरगढ़ परवन नदी व भटनेर दुर्ग घग्गर नदी के किनारे स्थित है। इन दुर्गों में नदी का जल किले की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ किले को सामरिक सुरक्षा भी प्रदान करता है। नदियो में हिंसक जलीय जीव, मगरमच्छ आदि पाले जाते थे, जो किले तक आक्रमणकारियों के पहुँचने में बाधा थे।

नदियों पर स्थायी/अस्थायी पुल बनाकर किले तक जाने का मार्ग बनाया जाता था। नदियों के किनारे अनेक घाट बने हुए हैं। सेवक घाटों से जल भर कर किले में पहुँचाते थे। मागंलिक उत्सवों के समय घाटो पर जल की पूजा–अर्चना की जाती है। गागरोन में गणगौर के दिन ईसर–पार्वती की पूजा गणगौर घाट पर किये जाने की परम्परा लम्बे समय से चली आ रही है। अथर्वेद में ऋषि गाते हैं– हे ! सरिताओं आप नाद करते हुए बहती हैं इसलिए आप का नाम नदी पड़ा। वैदिक ऋषि इन्हें पुनाना कहते हैं।

3.1.16 सर

सर, तालाब, झील कई अर्थों में एक दूसरे के पर्यायवाची कहे जाते हैं परन्तु सूक्ष्मतः उपयोग व बनावट की दृष्टि से इनमें अन्तर होता है। सर तालाब से बड़े तथा झील से छोटे होते हैं। राजस्थान के किलों के जल पबंधन में सर का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है जैसे जैसलमेर का घड़सीसर।

3.1.17 नहर

राजस्थान के किलों मे नहरों के माध्यम से भी जल प्रबन्धन किया गया था। जयगढ़, नाहरगढ जैसे बड़े किलों में नहरों द्वारा पहाड़ों का वर्षा जल टाकों में पहुँचाया जाता था। उक्त नहरें पक्की बनायी गयीं हैं तथा टांके से लेकर पहाड़ों की तलहटी तक काफी दूरी तक फैली हुई हैं। अपने जल ग्रहण क्षेत्र से टाकों तक की लम्बाई में नहरें स्थान–स्थान पर आड़ी–तिरछी, कहीं गहरी कहीं उथली होने के साथ कुछ

अन्तराल पर इनके भीतर गड्ढे बनाए गए है ताकि पानी के साथ आने वाली मिट्टी, गन्दगी, कूड़ा–कचरा इन गड्ढों में अटक जाए तथा टांकों तक पहुँचने वाला पानी शुद्ध हो जाए।[36]

किलो में जल प्राप्ति के साथ–साथ जल वितरण प्रणाली में भी इन नहरों का अहम योगदान था। कुँओं, झीलों, तालाबों, बावड़ियों, टाकों आदि से किले के विभिन्न स्थानों यथा भोजनशाला, अश्वशाला, बाग–बगीचों, स्नानागारों, शौचालयों आदि में पानी नहरों के माध्यम से ही पहुँचाया जाता था।

3.1.18 लघु बाँध या चैकडेम या मिट्टी के बाँध

जमीन के नीचे के पानी का खजाना बढ़ाने का सस्ता व सुलभ साधन है– लघु बाँध या चैकडेम। ऐसी भूमी जिसकी मिट्टी में नमी धारण करने की क्षमता अधिक होती है, लघु बाँधों के लिए उपयुक्त होती है। इनके निर्माण से भूजल स्तर बढ़ता है, समीप की बावड़ी, कुँए, बेरी में जल की आवक बढ़ती है जो पेयजल के लिए उपयोगी है। वर्ष में फसलों की संख्या बढ़ाई जा सकती है। इनसे छोटी नहरें, धोरे आदि बनाकर पानी को दूर ले जाया जा सकताा है।

लघु बाँध या चैकडेम मिट्टी, पत्थर, सीमेन्ट, रोड़ी, चूना–पत्थर का बना होता है, जिसे किसी झरने या नाले के जल प्रवाह की आड़ी दिशा में अवरोधक खड़ा करके बनाया जाता है। बरसाती नालों, झरनों या तालाबों के अतिरिक्त बहते पानी को प्रवाह मार्ग में ही रोकना इसको बनाने का उद्देश्य होता है ताकि यह मानसून के बाद काम आ सके। इस पानी से भू जल स्तर बढ़ता है, अतिरिक्त पानी व्यर्थ नहीं जाता, मछली पालन, पशुओं के चारें–पानी तथा फसलों के लिए उपयोगी होता है। इसके निर्माण में लागत भी कम आती है तथा किसी बहुयांत्रिकी उपकरणों तथा अभियांत्रिकी कौशल की भी कोई विशेष आवश्यकता भी नहीं पड़ती है।

राजस्थान के अनेक पहाड़ी किलों में जहाँ बरसात का पानी किसी नालें या झरनें के रूप मे बहता है, के मार्ग में इस तरह के चैकडेम बनाए गऐ हैं। चित्तौड़गढ़ दुर्ग मे ऐसे चैकडेम सहज देखे जा सकते हैं। कुकड़ेश्वर महादेव का तालाब या कुण्ड़ एक तरह का चैकड़ेम ही है।[37]

लघु बाँध बनाने से पहले कई ध्यान देने योग्य बातें हैं यथा जगह का चयन ठीक हो, जिस जगह लघु बाँध बनाया जा रहा है वहाँ पर काफी मात्रा में पानी एकत्र

किया जा सके, अधिशेष पानी के निकास मार्ग की भी व्यवस्था हो नहीं तो अधिक मात्रा में एकत्र पानी अवरोधकों व किनारों को तोड़ देगा, अवरोधक भी मजबूत हो तथा लघुबाँध से पानी निकालने की भी समुचित व्यवस्था हो।

ऊबड़–खाबड़ पथरीले या मेदानी इलाकों में बरसात का पानी रोकने के लिए मिट्टी के ही लघु बाँध बनाए जाते है। इनके निर्माण के समय ध्यान रखना होता है कि इन्हें ऐसी मिट्टी से बनाया जाऐ जिसमे से पानी का रिसाव कम होता हो, पानी रोकने के लिए मिट्टी की पाल के साथ–साथ भूमी भी ऐसी हो जो पानी को थामे रख सके, मिट्टी की पाल की मुख्य दीवार जो पानी के सम्पर्क में रहती है को कपास की काली मिट्टी और रोड़ी से मजबूत किया जाए, गोल पत्थरों से चिनाई भी की जाऐ, मिट्टी की दीवार दोनो तरफ से ढ़लवां यानि शंक्वाकार बनाई जाऐ, बाँध की दीवार का ढलान जल प्रवाह की दिशा में 1:2 के अनुपात में तथा बहाव की विपरित दिशा में 1:3 के अनुपात में हो, बाँध की अधिकतम गहराई से पाल की ऊँचाई 15 प्रतिशत से अधिक ऊपर रखी जाए। बाँध से अतिरिक्त पानी की निकासी के लिए पक्की नेष्टा बनायी जानी चाहिए अन्यथा पानी की अधिकता होने पर पानी के दबाव से बाँध की पाल टूट सकती है अथवा चादर चलने पर पानी के साथ पाल की मिट्टी बहकर जा सकती है। अतः नेष्टा को पाल की ऊँचाई से कुछ नीचा होना चाहिए। नेष्टा से बाहर निकलने वाले पानी के गिरने के स्थानों पर बड़े–बड़े मजबूत पत्थर लगाऐ जाने चाहिऐ ताकि वेग से पानी गिरने पर जमीन का कटाव न हो। मिट्टी की दीवार बनाते समय दीवार को अच्छी तरह ठोक कर तथा परत दर परत बनाया जाना चाहिए। दीवार की नींव तथा आधार चिकनी, मरून, काली व दोमट मिट्टी से बनाया जाऐ ताकि पानी के दबाव पर भी दीवार टूटे नहीं।

उपर्युक्त में से अधिकांश नियमों का पालन राजस्थान के किलों के भीतर या समीप बनाए गए मिट्टी के लघु बाँधों में किया गया है।

3.1.19 बावड़ी

पाषाणैरिष्टकाभिर्वा बद्धः कूपो बृहत्तरः।
ससोपानो भवेद् वापी तज्जलं वाप्यमुच्यते।।[38]

अर्थात जो कुँआ पत्थर तथा ईंटों से बंधा हुआ हो तथा जिसमे उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हो, वापी कहलाता है तथा उसका जल वाप्य कहलाता है। कुँए के जल का सुविधाजनक उपयोग करने हेतु उसमे सीढ़ियाँ बनायी जाती है। संस्कृत में भी सीढ़ी युक्त कुँआ वापी कहलाता है। सस्कृत शब्द वापी से वापिका तथा इससे हिन्दी में

बाव या बावली या बावड़ी नाम पड़ गया। मोहनजोदड़ो के किला क्षेत्र में बना सीढ़ियों युक्त वृहद स्नानागार किसी बावड़ी का ही उदाहरण है।

बावड़ी इहलोक में परलोक सुधारने का साधन थी। कहते है कि एक बावड़ी खुदवाना सौ योग्य पुत्रों को जन्म देने के बराबर पुण्य देता है।. बावड़ी का निर्माण व जीर्णोद्धार मन्दिर निर्माण तथा यज्ञादि के समान पुण्यदायी माना गया है। शास्त्रों में बावड़ी निर्माण का विधान है। वास्तु ग्रंथों के अनुसार नगर के बाहर व अन्दर की ओर विभिन्न प्रकार के जलाशयों का निर्माण करवाना चाहिए। अपराजितपृच्छा में दस प्रकार के कूप, चार प्रकार की बावड़ियाँ, चार प्रकार के कुण्डों व छह प्रकार के तालाबों के निर्माण के सम्बन्ध में वर्णन मिलता है।[39] ज्योतिष ग्रन्थों दकार्गल, वृहत्संहिता, मुहुर्त कल्पद्रुम, ज्योतिष प्रकाश, रत्नकोश, ज्योतिष रत्नमाला, मुहुर्त चिन्तामणी आदि में वापिका बनाने हेतु दिशा निर्देश मिलते हैं। भूमि में रहने वाले जीव जैसे गोह, सर्प, मूषक आदि से तथा मिट्टी के लक्षणों से जल के प्रवाह व स्वाद की जानकारी मिलती है।

कुँए–बावड़ी आदि की खुदाई हेतु विद्वान जातियों व अनुभवी लागों की सहायता ली जाती थी। वे अपने अनुभव व ज्ञान से बताते थे कि किस स्थान पर जल मीठा है, कहाँ पर पानी की सीरें मौजूद हैं तथा किस स्थान पर कुँआ तथा बावड़ी खुदवाना वास्तुनुसार उचित है। ऐसे व्यक्तियों को सीखी या पानी वाले महाराज कहा जाता था। मेवाड़ मे भूमिगत जल शिराओ को बताने वाले को हरवा कहा जाता था। कुँए, बावड़ी के स्थान चयन के लिए हरवे से पूछने की परम्परा थी।[40]

बावड़ी का कुँआ सामान्यतः तीन प्रकार का होता है– आयताकार, वर्गाकार व अष्ट भुजाकार। अपराजितपृच्छा के अनुसार बावड़ियों के चार प्रकार बताए गऐ हैं–नन्दा, भद्रा, जया, विजया। नन्दा एक मुख व तीन कूट, भद्रा दो मुख वाली अर्थात दो घाट व छह कूट, जया में तीन घाट नो कूट, विजया में चार घाट बारह कूट होते है।[41]

पाद सोपान, सीढ़ियाँ और स्तम्भों से बावड़ी सुन्दर दिखती है। यदि वापी गोल हो तो सीढ़ियाँ घुमावदार होनी चाहिए। यदि बावड़ी चौकोर न हो तो सीधी सीढ़ियाँ लगायी जाती हैं। चारों तरफ देव मूर्तियाँ लगाने के स्थान रखे जाते हैं। बावड़ी का कुण्ड आयताकार या वर्गाकार या अष्ट भुजाकार होता है।[42] बावड़ी की सीढ़ियाँ इस तरह बनाई जाती हैं कि जल स्तर के घटते–बढ़ते रहने पर भी जल के उपयोग में बाधा न पड़े तथा इनका प्रयोग कर पशु आसानी से बावड़ी में उतर कर पानी पी सके साथ ही महिलाऐं भी बावड़ी में नीचे उतर कर स्नान कर सके। बावड़ी निर्माण का एक और

उद्देश्य पीने के पानी को पशुओं की सीधी पहुँच तक लाना भी रहा है। कई बावड़ियों में उतरने की सीढ़ियाँ भूमितल से पानी के तल तक सीधे न हो कर घूम कर होती थी ताकि सूर्य का प्रकाश बावड़ी मे सीधे न जा सके एंव जल का वाष्पीकरण भी कम से कम हो। कई बावड़ियों में बरसात के पानी के बहकर आने के मार्ग भी बनाए जाते हैं ताकि बावड़ियाँ बारिश के पानी से रिचार्ज हो सके।

बावड़ियों में अनेक मंजिलों के कक्ष भी बनाए जाते थे। इन कक्षो को आरामगृह, धार्मिक व राजनैतिक परिचर्चा व विचार विमर्श आदि काम भी लिया जाता था साथ ही इन कक्षो में बावड़ी का जल शीतलता प्रदान करता था, ग्रीष्म ऋतु में यह विश्राम हेतु उपयोगी होते थे। बावड़ियों में जल उत्थान के लिए चलने वाले रहंट, लाव–चड़स आदि से पानी के पुनः गिरने से जल के सम्पर्क में आने वाली हवा ठण्डी हो जाती थी। जिससे बावड़ियाँ कूलर या वातानुकुलन का कार्य भी करती थी। व्यापारिक मार्गो पर बावड़ियाँ सराय के रूप मे काम आती थी।[43]

राजस्थान के अनेक किलों मे विभिन्न प्रयोजनों से बावड़ियाँ बनवायी गयी हैं। सवाई राजा सूरसिंह ने मेहरानगढ में एक बावड़ी का निर्माण कराया एवं उस पर महल बनवाए थे। उक्त बावड़ी के कारण इन महलों का नाम बाड़ी के महल रखा गया।[44] नागौर दुर्ग मे भी एक बावड़ी हैं, इसके अभिलेख से पता चलता है कि बावड़ी का निर्माण बादशाह अकबर के काल मे हुसैन कुली खान ने करवाया था। नैनवा (बूँदी) के गढ़ में एक बावड़ी है जिसे गढ़ की बावड़ी कहते है। चित्तौड़गढ़ दुर्ग में घी–तेल की बावड़ी सहित कई अन्य बावड़ियाँ है।

3.1.20 कुँई

पश्चिमी राजस्थान के अधिकांश किलों के समीप कुँई पायी गयी हैं। कुँआ पुल्लिंग है तो कुँई स्त्रीलिंग। चार हाथ से कम प्रमाण वाले कुँओं को कुँई कहते है।[45] यह व्यास मे छोटी तथा गहराई में भी कम होती है। तालाब सूख जाने पर उसके पेटे में भी कुँई बनाई जाती है। कुँई में पानी कुँए के अपेक्षा कम होता है अतः इसका व्यास भी कुँए से कम रखा जाता है, यदि व्यास अधिक हो तो कम पानी का फैलाव अधिक हो जायेगा जिसे बाहर निकालना मुश्किल होगा साथ ही पानी के पाष्प बन कर उड़ने का भी खतरा होगा।

कुँई एक अन्य अर्थ में कुँए से बिलकुल अलग है। कुँआ भूमिगत जल उपलब्ध

कराता है किन्तु कुँई वर्षा जल को अलग ढंग से समेटती है। मरूस्थल मे पानी के तीन रूप है। 'पालर पानी' यानी जमीन पर बहने वाला पानी, 'पाताल पानी' यानि भूमिगत जल तथा पाताल पानी व पालर पानी के बीच का पानी है 'रेजाणी पानी'। वह पानी जो ना तो जमीन पर बहता है और ना ही भूमिगत सीरों में मिलता है बल्कि जमीन में रिसकर भूमिगत जल मे मिलने से पूर्व जमीन मे अटका रहता है, रेजाणी पानी कहलाता है। रेगिस्तानी इलाकों में जिप्सम की परत पायी जाती है, यह परत पानी को भूमिगत जल में मिलने से रोकती है। जिप्सम की इस परत के ऊपर अटका पानी ही रेजाणी पानी होता है तथा कुँई इस रेजाणी पानी का प्राप्त करने का साधन है। मरूस्थलीय रेत में जब पानी पड़ता है तो तुरन्त भूमी में चला जाता है तथा जिप्सम–खड़िया पट्टी में अटक जाता है। रेत के कणों का एक प्रमुख गुण यह भी है कि इनसे भूमी की ऊपरी परत में दरार नही पड़ पाती जिससे सूर्य की किरणें जमीन को गहराई तक गरम नहीं कर पाती फलतः पानी का वाष्पीकरण नहीं होता एवं रेजाणी पानी खड़िया पट्टी पर ही अटका रह जाता है। कुँई के माध्यम से इस रेजाणी पानी को प्राप्त कर लिया जाता है। कुँई को इतना गहरा ही खोदा जाता है कि जिप्सम पट्टी ना टूटे जिससे पानी पाताल में ना जा सके। कुँई की खाली जगह मिलने पर जिप्सम पट्टी के ऊपर रेत के कणों मे अटका पानी कुँई में बूंद–बूंद रिसता रहता है तथा कुँई रेजाणी पानी से भर जाती है। जिसे आवश्यकतानुसार निकाल लिया जाता है।[46]

राजस्थान मे कुँई बनाने का कार्य एक जाती विशेष के दक्ष लोग करते थे जिन्हें चेलंवाजी या चेजारे कहते थे। मरूस्थलीय रेत में कुँई खोदना भी एक दुष्कर कार्य है क्योंकि थोडी सी खुदाई के बाद ही रेत धँसने लगती है। अतः चेजारे उल्टी चिनाई करते हुए कुँई खोदते है अर्थात् जितनी खुदाई की जाए पहले उसकी चिनाई हो फिर नई खुदाई की जाए। किसी स्थान पर ईंट की चिनाई से भी रेत रूक ना पाए तो खींप नामक घाँस से बनी रस्सी के घेरों से रेत को थामा जाता है। इससे जितनी खुदाई होती है उसको रस्से की गोलाई में दीवार से सटाकर कुण्डली बनाते हुऐ मिट्टी को रोका जाता है। यहाँ भी उल्टी चिनाई होती है। कहीं पर लकडी के लट्ठों से रेत को रोककर भी कुँई बनाई जाती है। कुँई का मुँह ऊपर से सँकड़ा व ढ़का रखा जाता है, कुँई का कुल व्यास भी कम होता है। पानी खींचने के लिए चकरी भी लगाई जाती है तथा चड़स या चड़सी का भी प्रयोग किया जाता है। कुँई के ऊपर खडी लकड़ी लगाई जाती है जिसका ऊपरी भाग गुलेल के आकार का होता है। इसकी गुलेलनुमा संरचना

में लोहे की रॉड़ फँसाकर उस पर चकरी लगा दी जाती है। इस लकड़ी को ओड़ाक कहते है। बीकानेर, जैसलमेर, बाड़मेर में जहाँ खड़िया पट्टी है, वहाँ कुँई मिलती है।[47] चित्तौड़गढ़ दुर्ग के भीतर खाकी कुँई, कुँई का उदाहरण है।

3.1.21 कुण्डी

मरूभूमि में वर्षा जल को एकत्र करने तथा पुनः प्राप्त करने का साधन है कुण्डी। घर के छोटे से आँगन में या बड़े मेदानी क्षेत्रों में कही भी कुण्डी बना ली जाती है। राजस्थान के मरूस्थलीय इलाकों के छोटे–बड़े किलों में बारिश के पानी को समेटने के लिए छोटी–छोटी अनेक कुण्डियाँ मिलती हैं।

आँगन के नीचे आँगन के आकार के अनुसार उस पर बरसने वाले वर्षा जल की मात्रा के आधार पर एक भूमिगत कुण्ड बनाया जाता है। कुण्ड भीतर से चूने, सीमेन्ट ईंट, पत्थर, कंक्रीट से अच्छी तरह मजबूत चिनाई व प्लास्टर कर के पक्का कर दिया जाता है ताकि पानी की एक बूँद भी न रिसे। जिस आँगन के भीतर कुण्डी बनायी जाती है, उस आँगन का सारा ढाल कुण्डी के मुँह की तरफ होता है ताकि आगंन में गिरने वाली बारिश के पानी की एक–एक बून्द कुण्डी मे चली जाए। जिस आँगन का वर्षा जल सिमटकर कुण्डी में जाता है वह आँगन आगोर कहलाता है। आगोर चाहे कुण्डी का हो या तालाब या किसी अन्य जल स्रोत का, राजस्थान में उसे पवित्र स्थान माना गया है। आगोर में जूते–चप्पल ले जाना या गन्दगी फैलाना वर्जित है। वर्षा से पहले आगोर की साफ–सफाई कर ली जाती है ताकि कुण्डी में पानी के साथ गन्दगी न जाए। कुण्डी का मुँह गोलाई लिए होता है, इसे कुछ ऊँचा उठाकर एक गुम्बद के समान बना दिया जाता है। गुम्बद के ऊपर पानी निकालने के लिए ढक्कन तथा पानी खींचने हेतु चरखी लगी होती है। कुण्डी के गुम्बदनुमा मण्डल के आँगन से लगते सिरे पर छोटे–छोटे सुराख बना दिये जाते हैं, इन्हें इण्डु कहा जाता है। इण्डु से ही बारिश का पानी कुण्डी में प्रवेश करता है। इण्डुओं के मुँह पर कचरे को रोकने तथा पानी छानने के लिए जाली लगी होती है ताकि कुण्डी के भीतर साफ पानी ही जाए। गहरी कुण्डियों के मण्डप पर जगत भी बनायी जाती है तथा उस पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ भी। इन पर मीनार बनाकर चरखी भी लगायी जाती है।[48]

3.2 जल स्रोत से जल प्राप्ति एवं वितरण प्रणाली

3.2.1 लाव–चड़स

कुँओ, बावड़ियों, कुँईयों आदि से जल खींचने के लिए सम्पूर्ण राजस्थान में लाव–चड़स के प्रयोग की परम्परागत प्रणाली प्रचलित है। यद्यपि आधुनिक संसाधनों के चलन से इनका प्रयोग काफी कम हो गया है किन्तु उस काल में जल प्राप्ति की यह सहज व प्रमुख युक्ति थी। चड़स चमड़े से बना जल पाग होता है, इसमें नीचे की तरफ हाथी की सूण्ड के समान ही सूण्ड लगी होती है। इसका मुँह खुला रखने के लिए एक लोहे की रिंग लगाई जाती है। इसे एक रस्सी के सहारे से कुँए से खींचा जाता है, यह रस्सी बहुत मोटी होती है, जो चड़स का पानी के साथ वजन सहन करती है। इसे स्थानीय भाषा मे लाव कहा जाता है। चड़स बैल या भैंस के चमड़े से बना होता है। चड़स बनाने का कार्य एक विशेष जाति के लोग करते थे। कुँए की मुंडेर के ऊपर एक तरफ थोड़ी ऊँचाई पर दो ढँलवा दीवार खड़ी की जाती है। इन दीवारों के ऊपर दोनों दीवारों को मिलाता हुआ एक मोटा लट्ठा लगाया जाता है। इस लट्ठे पर गोल चकरी के समान चकरी या चकली लगायी जाती है। इस चकली पर ही लाव लगाई जाती है तब लाव को दूसरी तरफ खींचा जाता है तो गोल चकली के घूमने से लाव के दूसरे सिरे पर जुड़ा चड़स भी खिंचता है तथा चड़स के माध्यम से कुँए का पानी खेंच लिया जाता है।

ऊपर उठाई गई जिन दीवारों पर चकली लगाई जाती है उन दीवारों के मध्य भाग में पीछे की तरफ एक ढ़लवाँ पत्थर लगाकर एक ढाँचा बनाया जाता है। यह ढाँचा 'ढाणा' कहलाता है। इस ढाणे के तल मे दायीं या बायीं ओर सुविधाजनक दिशा में एक पाइपनुमा छिद्र बनाया जाता है। जिससे ढाणे में गिरा पानी बाहर निकलता है। लाव को बैलों की जोड़ी द्वारा खेंचा जाता है। इस हेतु ढाणे के पीछे एक ढ़लवाँ मार्ग बनाया जाता है जिसे 'फेरा' या 'सारण' कहते है। यह मार्ग इतना लम्बा होता है कि चड़स कुँए के पानी मे डूब जाए तथा ढाणे तक खिंच जाए। बैलों की जोड़ी में लकड़ी के एक विशेष प्रकार के ढाँचें से दोनो बैल जुते होते है। इस लकड़ी के ढाँचें के बीच मे लाव को फँसाने का स्थान होता है जो 'जूड़ा' कहलाता है। लाव के बैलों की तरफ वाले दूसरे सिरे पर एक छोटी लकड़ी आड़ी बाँधी जाती है, यह लकड़ी हाळी द्वारा बैलों की जोड़ी के लकड़ी के ढाँचे में फँसा दी जाती है। बैलों को हाळी द्वारा चड़स खींचने का इशारा मिलते ही बैल सारण में चल देते है। यह इशारा बैलो को हाँकना कहलाता है।

चड़स का ऊपरी हिस्सा लाव के कुँए की ओर वाले सिरे से बँधा होता है तथा चड़स की सूण्ड भी एक पतली रस्सी से बँधी होती है। जब चड़स कुँए में पानी भरने

हेतु डुबोई जाती है तो ढ़ाणे में खड़े एक अन्य हाळी द्वारा सूण्ड की छोटी रस्सी को खेंच लिया जाता है। फलतः चड़स उल्टी हो जाती है तथा लोहे की रिंग के वजन से पानी मे आसानी से डूब जाती है तथा उसमे पानी भर जाता है।

बैलो के पास वाले हाळी द्वारा बैलों को हाँकने पर लाव खिंचती है तथा घिरणी या चकली पर घूमती है। चकली किसी मोटी व मजबूत लकड़ी से गोलाई में बनायी गयी साईकिल की रिम (पहिये) के समान होती है जिसकी परिधी को झिर्रीनुमा काट कर एक गिरारी बना दी जाती है। यह गिरारी लाव को चकली पर इस तरह फँसाए रखती है कि लाव चकली मे घूमे किन्तु चकली से उतरे नहीं। चकली को भूण कहा जाता है।

लाव को खींचे जाने पर पानी से भरा चड़स भी खिंच कर ऊपर आ जाता है। सारण या फेरे मे एक विशेष दूरी पर, जहाँ तक लाव के खींचने पर चड़स ऊपर आ जाए, एक पत्थर गड़ा होता है। यह पत्थर इसका संकेत है कि लाव को इसी दूरी तक खेंचना है तथा बैल भी इतने प्रशिक्षित किये जाते है कि उक्त पत्थर आने पर स्वतः ही रूक जाते है। इस पत्थर के आने से कुछ पहले ही बैल की तरफ वाला हाळी लाव पर बैठ जाता है फलतः लाव के दोलायमान हो जाने से चड़स हिल कर ढाणे के समीप आ जाती है। अब ढाणे मे खड़ा हाळी सूण्ड पर लगी पतली रस्सी (संडोरिया) को खींच लेता है जिससे चड़स ढाणे मे उल्टी हो जाती है तथा सारा पानी ढाणे मे खाली हो जाता है। चड़स के खाली होते ही बैलों की तरफ का हाळी झटका देकर बैलों के गले मे पड़े लकड़ी के ढाचे से लाव को अलग कर देता है। अब वापस चड़स को कुँए मे पुनः पानी भरने हेतु गिरा दिया जाता है। प्रशिक्षित बैलों की जोड़ी लाव के हटते ही सारण मार्ग से ढाणे की तरफ पुनः दूसरे चक्कर हेतु लाव खेंचने के लिए चली जाती है तथा पुनः वही प्रक्रिया दोहराई जाती है। बैलो द्वारा ढाणे की तरफ पुनः जाने को पाछपाग्या (उल्टे पैरो जाना) कहा जाता है।[49]

इस सम्पूर्ण प्रक्रिया मे दोनों हाळियों व प्रशिक्षित बैलों की जोड़ी का अहम योगदान होता है। दोनों हाळी एक दूसरे से संवाद की स्थिती में तथा सतर्क रहते हैं। कुँए के ढाणे वाला हाळी इस प्रक्रिया के दौरान गीत गाता रहता है। राजस्थानी लोकगीतों में लाव–चड़स के गीत काफी प्रसिद्ध है। ऐसा ही एक प्रसिद्ध लोकगीत है 'अड़सी के महादानी ....' जिसे महाराणा हम्मीर को हाळी के रूप मे सम्बोधित कर गाया गया है।[50] कुँए का पारा चोड़ा होने तथा अधिक पानी पर आवश्यकता के अनुसार

कुँए में चार ढाणे तक बने होते थे तथा चारों में एक साथ चार लाव–चड़स चलाई जा सकती थी। राजस्थान के अनेक किलों में कुँओं से जल प्राप्ति हेतु लाव–चड़स का प्रयोग किया गया है। चित्तौड़गढ़, जूनागढ़, भटनेर, सोनारगढ़ आदि किलों में लाव–चड़स की सहायता से जल प्राप्त करने के साक्ष्य मिलते हैं।

3.2.2 सूंडिया

यह भी एक प्रकार की चड़स ही होती है। इसमें चड़स से अधिक पानी समाता है। जिस चड़स के नीचे सूण्ड होती है उसे सूंड़िया कहते है।[51]

3.2.3 रहँट प्रणाली

कुण्ड, कूप तथा बावड़ियों मे जल उत्थान हेतु रहँट नामक यंत्र का प्रयोग प्राचीन काल से किया जाता रहा है। इसे संस्कृत में अरहंट, घंटी यंत्र, अरघट्ट तथा फारसी में चक्र कहा जाता है। स्थानीय नाम रहंट, ऑठ, अराठ, अरेंठ, रेंठ आदि है। रहँट के प्रयोग के भारत में प्रथम साक्ष्य सल्तनत काल में मिलते हैं जहाँ इसे संकिसा या पर्सियन व्हील कहा गया है। इस प्रणाली का प्रयोग पर्वतीय इलाकों में सर्वाधिक मिलता है। राजस्थान में भी इसका प्रयोग बहुतायत से किया गया है। राजस्थान के कई किलों में जल उत्थान के लिए रहँट प्रणाली प्रयुक्त की गयी है तथा आज भी इसके साक्ष्य देखे जा सकते हैं। जिसमें आमेर तथा मेहरानगढ़ का किला प्रमुख है।

रहँट के कई प्रकार मिलते हैं। सर्वाधिक प्रचलित प्रकारों में बैल से संचालित तथा लट्ठे को गोलाई में मानव द्वारा घुमाने से चलने वाला रहँट है। रहँट के तीन भाग होते हैं। प्रथम दावड़ा चक्र – कुँओं के ढाणे पर स्थित, द्वितीय रेड़्या चक्र – यह दावड़े के समानान्तर तथा भूमि से बाहर निकला रहता है तथा तीसरा गेदल्या चक्र– दाबड़े व रेड़्या की सीध में। ये तीनो चक्र एक दूसरे से इस तरह जुड़े होते हैं कि एक चक्र के घूमने पर दूसरा चक्र तथा दूसरे के घूमने पर तीसरा चक्र स्वतः ही घूमने लगता है। गेदल्या चक्र को बैलों द्वारा घुमाने पर रेड़्या चक्र घूमता है तथा रेड़्या चक्र से घूमने से दाबड़ा चक्र भी घूमने लगता है। बहुत से घड़ों को एक माला के समान रस्सी से गुंथ कर दाबड़ा चक्र को पहना दिया जाता है इस व्यवस्था में सभी घड़े एक सीध मे होते हैं। घड़ो का उल्टा मुँह कुँए के भीतर जाता है तथा घड़े भर कर सीधे मुँह की तरफ से ऊपर आते हैं। दाबड़ा चक्र के घूमने पर घड़ो की माला घूमती है तथा पानी भर कर ऊपर आती है। चक्र मे जब ये घड़े उल्टे होते हैं तो पाछेड़ा (जल उड़ेलने का स्थान) में

पानी उड़ेल देते हैं। पाछेड़ा का पानी एक नाली के माध्यम से बाहर आता है तथा एक कुण्ड या कोठे में इकट्ठा हो जाता है। इस कुण्ड को 'आवळा' कहते है। यहाँ से पानी इच्छित स्थानों तक धोरो या पाइप के माध्यम से पहुँचा दिया जाता है।[53]

3.2.4 पावटी या पग पावड़ी

यह पैरो से चलने तथा रहँट के समान दिखने वाला परन्तु भिन्न यंत्र होता है। इसमे केवल एक ही चक्र होता है जिस पर रहँट की तरह घड़े बंधे होते हैं। इस चक्र को पाँवों से दबाव डालकर घुमाया जाता है तथा घड़ों के माध्यम से पानी ऊपर आता है।[54] महाराजा तखतसिंह जी ने मेहरानगढ़ के चौकेलाव कुँए से बगीचे को पानी पिलाने के लिए ऐसी पग पावड़ी बनवाई थी।

3.2.5 ढींकली

ढींकली कुँओ से परम्परागत तरीके से पानी खींचने के काम आने वाली युक्ति है। इसमे एक मजबूत मोटी लकड़ी को कुँए के पारे के समीप सीधा गाड़ दिया जाता है, इसे धूणी कहते है। इसका ऊपरी सिरा दो शाखाओं मे बंटा होता है। फिर एक अन्य मजबूत लकड़ी को इसके ऊपरी सिरे पर दो शाखाओं के बीच फँसा दिया जाता है ताकि यह लकड़ी कभी नीचे व कभी ऊपर आ जाए। ऊपर लगाई गई दो सिरो वाली लकड़ी 'बलींडी' कहलाती है। बलींडी का ऊपरी सिरा जो कुँए के पानी की ओर होता है पर एक रस्सी से छोटा चड़स बाँध दिया जाता है तथा दूसरे सिरे पर मोटा वजनी पत्थर। जब बलींडी के पत्थर वाले हिस्से को छोडा जाता है तो वजनी पत्थर के नीचे आने पर पानी से भरी चड़स ऊपर आ जाती है जिसे खाली कर जल प्राप्त कर लिया जाता है।[55] राजस्थान के कई किलों में कुँओ से पानी प्राप्त करने हेतु ढींकली यंत्र लगाए जाने के उल्लेख मिलता है।

3.2.6 कुतुम्बा

किसी लम्बे सीधे तने वाले वृक्ष के तने को खोखला कर पाइप का रूप दे दिया जाता है तथा इन पाइपनुमा तनों को आपस में जोड़कर बड़ा पाइप बना लिया जाता है। इसे कुतुम्बा कहा जाता है।[56] इसका एक छोर जो चाटू की तरह का बनाया जाता था, उसे पानी में डूबा कर रखते थे ताकि जल में दबे छोर में जल स्वतः भरकर नाल के द्वारा दूसरे छोर से निकल कर बाहर गिरता था। इस प्रकार इनके माध्यम से जल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाया जाता था।[57]

3.2.7 तनों की नाली

वृक्षों के सीधे तनों को बीच में से अनुदेर्ध्य काट कर चन्द्राकार में खोखला करके आपस मे जोड़कर नाली बना दी जाती है तथा इस नाली के माध्यम से पानी को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया जाता है। चित्तौड़गढ़ किले में इस प्रणली के साक्ष्य मिलते है। उक्त कार्य के लिए खजूर के पेड़ के तने काम में लिये जाते थे।[58]

3.2.8 सकोरों की पाइप लाइन

किले के महलो में विभिन्न हिस्सो में पानी पहुँचाने के लिए पकी मिट्टी के सकोरों को तल से छेद कर एक दूसरे में फँसा कर पाइप लाइन बनायी जाती थी। इसके साक्ष्य आज भी आमेर किले में देखे जा सकते है।[59] नाहरगढ़ किले में अष्ट धातु के पाइपों का प्रयोग किया गया था।[60]

3.2.9 नहर तथा धोरे या नाली

राजस्थान के किलों के भीतर जिस प्रकार पानी के टांकों में जल प्राप्ति हेतु नहरों व नालियों का प्रयोग किया गया था उसी तरह जल वितरण के लिए भी नहरें या धोरें बनाए गए थे। इस प्रक्रिया में कुँए या अन्य जल स्रोतों से जल उत्थान करके कोठे या वाटर टेंक में एकत्र कर लिया जाता है। कोठे के तल में बने मोखे का डाट हटाने पर जलदाब के कारण पानी बाहर बने धोरों या नहरों में तेजी से चला जाता है। धोरें या नहरें या नालियाँ विभिन्न दिशाओं में ढलानयुक्त बने होते हैं, इनमे प्रवाहित जल बाग बगीचों, अस्तबल, भोजन शाला, गोशाला आदि स्थानों तक पहुँच जाता है।

3.2.10 कोस या मसक

कोस या मसक भैंसे की खाल का बना एक थेला होता है। इसका एक मुख खुला होता है जिससे पानी भरा व खाली किया जा सकता है। इसे श्रमिक अपने कंधे पर थेले की तरह लटका सकता है। कुँओं या नहरों से इसमें पानी भर कर श्रमिक किलों में निश्चित स्थान तक पहुँचा देते थे, इसे जानवरों की पीठ पर भी लादा जा सकता था। बीकानेर के आस–पास कोस का सर्वाधिक प्रयोग किया गया था, जूनागढ़ दुर्ग के विभिन्न महलों में कोस से ही पानी वितरित किया जाता था।[61] बीकानेर के एक मौहल्ले का नाम आज भी कोसो का बाड़ा है।[62] कहा जाता है कि यहाँ कोस बनाये जाते थे। सोनारगढ़ दुर्ग में घड़सीसर तालाब से मसक में पानी भर कर जानवरों की पीठ पर लाद कर जल पहुँचाया जाता था। मसक में पानी भर कर मिट्टी की सड़कों पर

पानी का छिड़काव किया जाता था।

3.2.11 चरखी

चरखी कई प्रकार की होती है– एकल चरखी, दोहरी चरखी, हाथ से चलने वाली चरखी आदि। यह युक्ति कम गहराई वाले कुँओं से पानी खींचने के काम आती है। यह हाथ से घुमाई जाती है। इसमें गोल घेरे के ऊपर बाहर की ओर निकले लकड़ी के हत्थे होते हैं। इन हत्थों को बारी–बारी से गोल घुमाने पर चरखी घूमती है। पानी खींचने की रस्सी के एक सिरे को चरखी से तथा दूसरे सिरे को डोलची से बाँध दिया जाता है। चरखी घुमाने पर रस्सी उस पर गोल लिपटती जाती है तथा खिंचाव से पानी से भरी डोलची ऊपर उठ जाती है, जिसे खाली कर पानी प्राप्त कर लिया जाता है। राजस्थान के किलों के छोटे कुँओं, कुँइयों तथा कुण्ड़ियों से पानी निकालने के लिए चरखी का प्रयोग किया गया था।[63]

सन्दर्भ

1. आप्टे, वामन शिवराम, संस्कृत हिन्दी शब्द कोष, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर।
2. मिश्र, अनुपम, आज भी खरे है तालाब, राजस्थानी ग्रन्थागार, सोजतीगेट, जोधपुर, 2010 पृ 33
3. उक्त पृ 21
4. मिश्र, अनुपम, राजस्थान की रजत बून्दें, गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 1995 पृ 22
5. अग्रवाल, अनिल एवं नारायण सुनीता, अरावली के किले, सेन्टर फॉर साइन्स एण्ड एनवायरमेन्ट, नई दिल्ली,1998, पृ. 156–157
6. व्यक्तिगत सर्वेक्षण, चित्तौड़गढ़ दुर्ग, दि. 28.5.2014
7. मिश्र, अनुपम, आज भी खरे है तालाब, पूर्वोक्त, पृ 35
8. उक्त, पृ 36
9. उक्त, पृ 37
10. उक्त, पृ 38
11. शर्मा, गीता, आमेर स्थापत्य एवं चित्रकला, राज पब्लिशिंग हाउस, 2011, पृ 40
12. मिश्र, अनुपम, आज भी खरे है तालाब, पूर्वोक्त, पृ 22
13. मेहरानगढ़ के जल स्रोतों पर जारी कलेण्डर, मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट, मेहरानगढ़, 2006, पृ
14. व्यक्तिगत सर्वेक्षण, रणथम्बोर दुर्ग, दि. 20.5.2013
15. मत्सय पुराण, गीता प्रेस गोरखपुर, 2005

16. महाभारत अनुशासन पर्व, गीता प्रेस गोरखपुर, 1995
17. शुक्रनीति, बांके, पं बलवंत रामचंद्र सं0, रतलाम, 1871
18. साईवाल, स्नेह, राजस्थान का भूगोल, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर, 2012 पृ 4.11
19. मिश्र, अनुपम, राजस्थान की रजत बून्दें, पूर्वोक्त, पृ 38
20. कोठारी, गुलाब सं0, पत्रिका इयर बुक, 2010, पत्रिका प्रकाशन जयपुर, 2010, पृ 666
21. उक्त, पृ 666
22. शोध यात्रा, जूनागढ़, आमेर एवं जयगढ़ दुर्ग।
23. मुरारीदान, राठौड़ो की ख्यात (प्राचीन) प्रा.वि.प्र., जोधपुर (अप्रकाशित)
24. व्यक्तिगत साक्षात्कार, दुर्ग निवासी श्री जगदीश जी, चित्तौड़गढ़ दि. 02.01.2006 के आधार पर।
25. सिंह, वाई.डी., राजस्थान के कुँए एवं बावडियाँ, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, मेहरानगढ़ फोर्ट, जोधपुर 2002 पृ. 18
26. पंजाब केसरी, जयपुर संस्करण, 11 अक्टूबर 2006, पृ 3
27. शोध यात्रा, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, दि. 16 अगस्त 2014
28. सिंह, वाई. डी., राजस्थान के कुँए एवं बावड़ियाँ, पूर्वोक्त, पृ 16 एवं मिश्र, अनुपम, राजस्थान की रजत बून्दें, पूर्वोक्त, पृ 66—74
29. शोध यात्रा, राजस्थान के विभिन्न दुर्ग।
30. सौलंकी, कुसुम, भारतीय बावड़ियाँ, सुभद्रा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2013 पृ 58
31. व्यक्तिगत सर्वेक्षण, निवाई दुर्ग एवं रक्तांचल पर्वत, निवाई, टोंक।
32. कोठारी, गुलाब, पत्रिका इयर बुक, पूर्वोक्त, पृ 738
33. व्यक्तिगत साक्षात्कार, श्री मयंक जी एवं श्री सुनील जी, जैसलमेर, दि. 13 मई 2015
34. मेहरानगढ़ के जल स्रोतों पर जारी कलेण्डर, मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट, मेहरानगढ़, 2006, पृ
35. शोध यात्रा, तारागढ़ अजमेर, दि. 7.12.2013
36. मिश्र, अनुपम, राजस्थान की रजत बून्दे, पूर्वोक्त, पृ 43
37. शोध यात्रा, चितौड़गढ़ दुर्ग, दि. 02.01.2014
38. सौलंकी, कुसुम, भारतीय बावड़ियाँ, पूर्वोक्त, पृ 35
39. भुवनदेवाचार्य कृत अपराजितपृच्छा, सं एवं अनु. डॉ0 श्री कृष्ण जुगनु एवं प्रो0 भँवर शर्मा, भाग 1, सूत्र 74, श्लोक 1—8
40. सौलंकी, कुसुम, भारतीय बावड़ियाँ, पूर्वोक्त, पृ 46
41. सौलंकी, कुसुम, भारतीय बावड़ियाँ, पूर्वोक्त, पृ 37
42. राजस्थान सुजस, सूचना केन्द्र राजस्थान, वर्ष 5, अंक 1, जनवरी 1996, पृ 12—14
43. सौलंकी, कुसुम, भारतीय बावड़ियाँ, पूर्वोक्त, पृ 101
44. मेहर, जहूर खाँ एवं नगर, महेन्द्र सिंह, जोधपुर का ऐतिहासिक दुर्ग मेहरानगढ़, मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट, जोधपुर, 2007, पृ 86

45. मण्डन विरचित राजवल्लभ वास्तुशास्त्र, डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' (सं), अध्याय 4, श्लोक 27, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, 2005, पृ 220
46. मिश्र, अनुपम, राजस्थान की रजत बून्दे, पूर्वोक्त, पृ 24
47. उक्त पृ 31
48. उक्त पृ 35
49. ओझा, प्रियदर्शी, पश्चिमी भारत में जल प्रबन्धन, सुभद्रा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2012, पृ 195–197
50. ठा. भूर सिंह, महाराणा यश प्रकाश, बम्बई, 1925, पृ 23–24
51. सिंह वाई.डी., राजस्थान के कुँए एवं बावड़ियाँ, पूर्वोक्त, पृ 26
52. शोध यात्रा, मेहरानगढ़ एवं आमेर।
53. ओझा, प्रियदर्शी, पश्चिमी भारत में जल प्रबन्धन, पूर्वोक्त, पृ 198
54. ओझा, प्रियदर्शी, पश्चिमी भारत में जल प्रबन्धन, पूर्वोक्त, पृ 199 एवं सिंह, वाई.डी., राजस्थान के कुँए एवं बावड़ियाँ, पूर्वोक्त, पृ 35
55. उक्त, पृ 200 एवं उक्त पृ 21
56. जावलिया, बृजमोहन, राजस्थानी लोकजीवन शब्दावली, साहित्य अकादमी, दिल्ली, 2001, पृ 119
57. ओझा, प्रियदर्शी, पश्चिमी भारत में जल प्रबन्धन, पूर्वोक्त, पृ 200
58. व्यक्तिगत साक्षात्कार, डॉ0 लोकेन्द्र सिंह चूण्डावत एवं श्री जगदीश जी, चित्तौड़गढ़, दि. 2.1. 2014
59. व्यक्तिगत सर्वेक्षण, आमेर दुर्ग, दि. 22.5.2014
60. व्यक्तिगत साक्षात्कार, नाहरगढ़ दुर्ग क्यूरेटर श्री सुनील जी सांखला, दि. 23.5.2014
61. व्यक्तिगत साक्षात्कार, जूनागढ़ दुर्ग क्यूरेटर कर्नल देवनाथ सिंह जी, दि. 06.09.2014
62. चौधरी, सरिता, बीकानेर राज्य में जूनागढ़ का जल प्रबन्धन, शोधश्री, जनवरी–मार्च 2015, पृ 069
63. सिंह, वाई.डी., राजस्थान के कुँए एवं बावड़ियाँ, पूर्वोक्त, पृ 22

अध्याय चतुर्थ

उत्तरी राजस्थान के प्रमुख दुर्गों का इतिहास, स्थापत्य एवं जल प्रबन्धन

प्रस्तुत अध्याय में उत्तरी राजस्थान के दो किलों जूनागढ़ तथा भटनेर के इतिहास, स्थापत्य एवं जल प्रबन्धन का अध्ययन किया गया है।

4.1 जूनागढ़ दुर्ग

राजस्थान के बालुकामय प्रदेश में निर्मित बीकानेर का जूनागढ़ दुर्ग राठौड़ राजपूतों के शौर्य एवं वैभव की अनुपम कृति है। पत्थरों पर उकेरी गयी नक्काशी, मनमोहक चित्रकारी, पच्चीकारी, जाली–झरोखें, मेहराब, बारादरियाँ आदि में कलात्मक बारीकियों को देखकर लगता है मानो कलाकार ने सम्पूर्ण कला को ही दुर्ग में उतार दिया हो।[1] कहते हैं कि दीवारों के कान होते हैं परन्तु जूनागढ़ के महलों की दीवारें तो बोलती प्रतीत होती है।[2] दुर्ग को कलात्मक जगत का अद्भुत केन्द्र, वास्तुकला का श्रेष्ठ उदाहरण एवं कला का मन्दिर[3] आदि सँज्ञाऐं दी जा सकती है। अब तक चार शताब्दियों में इक्कीस शासकों की रूचिनुसार निर्माण के फलस्वरूप दुर्ग मध्यकालीन स्थापत्य, हिन्दू पद्दति, स्थानीय शैली, मुगल तुर्की शैली एवं यूरोपियन शैली के उत्कृष्ट समन्वय का उदाहरण बन गया है।

4.1.1 भौगोलिक स्थिति व जलवायु

बीकानेर जिला प्राचीन जांगल प्रदेश में स्थित है, जिसके उत्तर में कुरू व मद्र देश थे। जांगल देश के उत्तरी भाग पर राठौड़ों के अधिकार के बाद राजधानी बीकानेर बनी। यहाँ के शासक जांगल देश के स्वामी होने के कारण जांगलधर बादशाह कहलाए।[4] बीकानेर नगर थार मरूस्थल का ऐसा नगर है जो बहुत ही प्राकृतिक

प्रतिकूलताओं से त्रस्त रहा है, ऐसे नगर में एक गढ़ की कल्पना अपने आप में अनूठी है।[5]

यह किला उत्तर पश्चिमी राजस्थान में बीकानेर जिला मुख्यालय में कोट गेट से एक कि.मी. दूर शहर के बीच भूमि तल पर बना हुआ है। समीप के किलों में नागोर से 114 कि.मी., भटनेर से 231 कि.मी., आमेर से 358 कि.मी. एवं मेहरानगढ़ से 246 कि.मी. दूर है। किला समुद्र तल से 230 मीटर ऊँचाई पर तथा $27^0 11'$ उत्तरी अक्षांश तथा $71^0 54'$ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। शास्त्रों में वर्णित दुर्ग विधान के अनुरूप थार मरूस्थल में होने के कारण धान्वन दुर्ग, उपयोग आधार पर आवासीय दुर्ग तथा भूमि तल पर निर्मित होने के कारण भूमि दुर्ग की कोटी में रखा जा सकता है।

बीकानेर जिले को दो प्राकृतिक भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम उत्तरी व पश्चिमी रेगिस्तान, द्वितीय दक्षिणी व पूर्वी अर्द्ध मरूस्थल। यहाँ की जलवायु शुष्क है तथा तापमान में काफी परिवर्तन होता रहता है। गर्मियों में लू चलती है तथा तापमान 49^0 से0 तक पहुँच जाता है। सर्दियों में तापमान जमाव बिन्दु तक उतर आता है। वर्षा का औसत 24.30 से.मी. है। जिले में कोई नदी नहीं है।[6]

4.1.2 किले का निर्माण व नामकरण

किले के निर्माण सम्बन्धी किंवदन्ति है कि एक भेड़ ने अपने झुण्ड से अलग होकर एक केर की झाड़ी के पास मेमनों को जन्म दिया, रात में एक भेड़िये ने मेमनों को मारने की कोशिश की तो भेड़ ने साहस से मुकाबला करके भेड़िये को भगा दिया, यह देख भविष्यवक्ताओं ने घोषणा की कि यह स्थान साहसी लोगों को जन्म देगा और यहाँ एक दुर्ग का निर्माण होगा उस पर कोई भी शत्रु विजय प्राप्त नहीं कर सकेगा।[7] दुर्ग का वास्तविक नाम चिन्तामणी दुर्ग है परन्तु प्रसिद्धि जूनागढ़ नाम से है। नामकरण को लेकर विभिन्न मत प्रचलित हैं, प्रथम मतानुसार महाराजा रायसिंह द्वारा सोराष्ट्र प्रान्त को जीतने के कारण इस दुर्ग का नाम भी जूनागढ़ रखा गया, इसी प्रकार एक अन्य मत के अनुसार राजपरिवार द्वारा दुर्ग को छोड़कर लालगढ़ पैलेस में निवास करने के कारण इसे जूना अर्थात पुराना गढ़ कहा जाने लगा तृतीय मतानुसार दुर्ग की नींव पुराने दुर्ग की नींव पर ही रखी जाने के कारण इसे जूनागढ़ कहा जाने लगा।[8]

बीकानेर के शासकों के मुगलों से मैत्री सम्बन्ध थे, वे मनसबदार भी बनाए गए थे। जिस कारण बीकानेर राज्य ने मध्यकालीन अशान्ति में भी शान्ति एवं समृद्धि के युग

का आनन्द उठाया। उस काल में बीकानेर राज्य उस व्यापारिक मार्ग पर स्थित था जो मध्य एशिया को गुजरात के बन्दरगाहों से जोड़ता था। अतः आर्थिक दृष्टि से समृद्धशाली था। बीकानेर राजघराने के छठे शासक रायसिंह ने अकबर के सेनापतित्व में अनेक युद्ध लड़े एवं अकबर से मनसब व परगने प्राप्त किये। युद्ध के समय दूर–दूर तक लंबी यात्राएँ करने वाले इस शासक को देश के बेहतरीन स्थापत्य की अच्छी जानकारी हो गयी थी और उनकी इच्छा राज्य में खूबसूरत और बेहतरीन दुर्ग बनवाने की थी। इन्होंने ही जूनागढ़ का निर्माण कराया। दयालदास की ख्यात के अनुसार रायसिंह जब शाही सेना के साथ दक्षिण अभियान पर था तब बुरहानपुर से अपने मंत्री व मुख्य वास्तुकार करम चन्द बच्छावत के नाम खास रूक्का भेज कर नये दुर्ग के निर्माण की आज्ञा प्रसारित की। तदुपरान्त करमचन्द की देखरेख में दुर्ग का निर्माण किया गया।[9] विद्वानों का मत है कि इस अभियान में रायसिंह को काफी धन हाथ लगा जिससे उन्होंने अपनी राजधानी में दुर्ग निर्माण की योजना बनायी इस धन की एक बड़ी खेंप इस रूक्के के साथ भेजी गयी।

दुर्ग का भूमि पूजन फाल्गुन बुदि 9 वि.स. 1645 तदनुसार 30 जनवरी 1589 ई0 को हुआ तथा नींव का मुहुर्त सोमवार फाल्गुन सुदी 12 वि.स. 1645 तनदुसार 17 फरवरी 1589 एवं माघ सुदी 6 वि.स. 1650 तदनुसार 17 जनवरी 1594 को निर्माण कार्य सम्पूर्ण हुआ।[10]

4.1.3 किले की भव्यता एवं शासकों का कलागत योगदान

यह किला चारदीवारी के भीतर बने महलों का एक समूह है जो बख्तरबन्द दुर्ग न होकर राजपरिवार का राजमहल मात्र है, जिसे भव्यता एवं सुन्दरता से सजाया गया है। जूनागढ़ के महलों का निर्माण राजाओं ने अपनी शानौशौकत के प्रदर्शन हेतु किया जो उन्हें दिल्ली से मैत्री सम्बन्धों की वजह से प्राप्त थी। इन महलों में आगरा के लाल किले व फतेहपुर सीकरी के महलों की नकल दिखाई देती है।[11] विभिन्न शासकों व विभिन्न कालों में बनने के कारण इनके वास्तु विन्यास व शैली में विविधता दिखाई पड़ती है। इन्हें देखकर कहा जा सकता है कि ये किस–किस काल की रचनाऐं है। इण्डो–इस्लामिक स्थापत्य कला या इण्डो–सार्सनिक स्थापत्य कला की जितनी भी विशेषताएँ हैं वे सभी विशेषताएँ इस किले में देखने को मिलती है। डाड़दार छत, मेहराब, तक्षणकला, झरोखा, कंगूरा या मुगल स्थापत्य कला की किसी भी विशेषता को देखे, वो इन महलों में प्रयुक्त की गयी हैं।[12] इन सभी विशेषताओं के कारण जूनागढ़

दुर्ग को भारत के सौन्दर्यशाली दुर्गों में ऊपरी स्थान दिया गया है।[13] 250 कि.मी. दूर जैसलमेर के लाल पत्थर का प्रयोग, बालकनियाँ, झरोखे, जालियाँ, कंगूरे, लटकने, गोल छज्जे, फूल पत्तियों की डिजायने आदि दर्शकों में कौतुहल भर देती है। किले के महल लाल बलुआ पत्थर और सफेद संगमरमर के मिश्रण का नायाब नमुना है। बलुआ और संगमरमर पर इतनी बेजोड़ कारीगरी अन्य दुर्ग में देखने को नहीं मिलती। जूनागढ़ किले के महलों ने कभी विनाश कर देने वाले आक्रमणकारियों का मुहँ नहीं देखा और ना ही कभी हार का सामना किया। यहीं कारण है कि ये महल अपने बनने से अब तक सुरक्षित बने रहे। ऐसी एकाकी विशेषता इसे दूसरे किलों से अलग करती है।[14]

सभी शासक कला प्रेमी थे उन्होंनें देश के विभिन्न हिस्सों से आए कलाकारों को अपनी राजधानी में प्रश्रय दिया। मिनिएचर कलाकार, उस्ता कलाकार आदि ने दरी कारपेट, छत, पच्चीकारी, मीनाकारी, जरी कलम, सोने की कलम आदि का प्रयोग कर महलों को सजाया। चित्रकला के दक्कनी स्कूल व बीकानेर स्कूल का समन्वय जूनागढ़ में देखने को मिलता है। शाहजहाँ के चित्रकारों के चित्रों की बारीकियों की झलक भी यहाँ दिखाई पड़ती है। शासकों का यहाँ उद्देश्य ना सिर्फ अपनी शानौशौकत का प्रदर्शन करना था बल्कि विभिन्न कलाकारों को प्रश्रय देकर कला को विलुप्ति से बचाना, कलाकारों को रोजगार व संरक्षण देना तथा कला को बढ़ावा देकर नये आयाम स्थापित करना भी था।[15] यहाँ के शासक महान योद्धा एवं विजेता थे वे जीत के धन के साथ–साथ कलाकारों को भी अपनी राजधानी में ले आते थे तथा अपनी कला के प्रदर्शन की उन्हें खुली छूट प्रदान करते थे। फलतः एक स्थान पर अनेक स्थानों की कलाओं का संगम दृष्टिगत हुआ। इस प्रकार जूनागढ़ किला कला का जीता जागता संग्रहालय बन गया।

राव बीका ने बीकानेर का पुराना दुर्ग तथा देशनोक में करणी माता का मन्दिर बनवाया।[16] राव लूणकरण ने कोलायत में कपिलमुनि का मन्दिर बनवाया। राजा रायसिंह ने जूनागढ़ दुर्ग बनवाया एवं हनुमानगढ़ में भटनेर के दुर्ग की अन्तिम मरम्मत तथा जीर्णोद्धार करवाया।[17] सूरमन्दिर का निर्माण दलपतसिंह जी द्वारा करवाया गया किन्तु इसका प्रारम्भ रायसिंह ने करवाया।[18] सूरसिंह जी ने सूरसागर झील बनवायी तथा दुर्ग के भीतर कर्ण चौक का निर्माण प्रारम्भ कराया जिसे कर्णसिंह जी ने पूरा करवाया। कर्णसिंह जी ने औरंगजेब की हिन्दू विरोधी नीति के विरोधस्वरूप कर्णपोल, दौलतपोल व फतेह पोल का निर्माण हिन्दू शैली में करवाया।[19] करण महल का कार्य पूरा करवाया

तथा इसमें सफेद संगमरमर को सर्वप्रथम प्रयुक्त किया गया। महाराजा अनूप सिंह जी ने शाहजहाँ की तरह सफेद संगमरमर का बहुतायत से प्रयोग किया एवं अपने पिता की याद में कर्णमहल बनवाया। देवीकुण्ड पर अनूप सिंह जी की छतरी पर भी संगमरमर का प्रयोग किया गया है। एक चित्र में अनूप सिंह जी को हाथी पर बैठे हुए शेर का शिकार करते हुए दर्शाया गया है जिसकी कलाकारी अनूठी है।[20] महाराजा सूजानसिंह जी ने किले का पश्चिमी दरवाजा बनवाया, पूर्वी दरवाजे का जीर्णोद्धार कराया तथा किले के उत्तरी भाग में स्थित जनाना बाग लगवाया।[21] महाराजा गजसिंह जी ने पुराने रायनिवास, रतननिवास (सूर मन्दिर के ऊपरी मंजिल पर स्थित) एवं जनाना महल का विस्तार कराया, इसमें अनेकों कलात्मक बालकनियाँ जुड़वायी, रायनिवास में संगमरमर लगवाया, करणमहल चौक के दक्षिण पश्चिम में संगमरमर का तालाब एवं वाटर पवेलियन बनवाया।[22] इनके काल में मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् लाहौर व दिल्ली के अनके कारीगरों व शिल्पियों को बीकानेर में संरक्षण दिया गया। इन्होंने जूनागढ़ के स्वरूप में भारी परिवर्तन किया। तीन तरफ से जूनागढ़ की किले बन्दी की गयी तथा मीना ड्योढ़ी चौक में जोरावर महल निर्मित किया गया।[23] गजसिंह जी की मृत्यु के बाद महल निर्माण प्रगति में ह्रास होने लगा। आगे के निर्माण कार्य गुणवत्ता की दृष्टि से नगण्य साबित हुए। महाराजा सूरत सिंह जी ने सूरतगढ़ का किला बनवाया।[24] इनके शासन काल में जूनागढ़ का विस्तार हुआ। दुर्ग में रंगमहल, आनन्द बी जी महल (अनूप महल का ऊपरी भाग), सूरत विलास व खुली गैलरियाँ निर्मित करायी गयीं, फूल महल व शीश महल की साल को पूरा किया और चन्द्रमहल के कुछ भागों का पुनः अलंकरण कराया। इनके काल की विशेषता मुगल राजपूत प्रभाव का अन्त और बीकानेर शैली का स्वतन्त्र रूप से विकास होना है। महाराजा रतन सिंह ने दफ्तर की कोटड़ी, गणपत विलास और कर्ण महल चौक में फव्वारें का निर्माण एवं बीकम निवास, सूरत निवास तथा लक्ष्मी विलास का पुनरुद्धार कराया।[25] इनके काल में बीकानेर कला के स्थान पर ब्रिटिश–यूरोपियन कला को महत्त्व दिया गया। महाराजा सरदार सिंह ने गजनेर में सरदार निवास बनवाया[26], रतन निवास, मोती महल और जनाना ड्योढ़ी पर कमरे बनवाए, गजमन्दिर का विस्तार कराया तथा रतनपोल व तोपखाने का निर्माण कराया।[27] डूंगर सिंह जी के काल में वास्तुकला अपने निम्नतम स्तर तक पहुँच गयी। यूरोपीय पुनर्जागरण शैली का प्रयोग किया गया। भित्ती चित्रों पर रेल, जहाज, घोड़ा–गाड़ी दर्शाए गए। महाराजा गंगासिंह ने गंग निवास में दरबार हॉल बनवाया।[28]

इनके काल में डूंगर निवास तथा छत्र महल बनें कुछ कमरें पुनर्सज्जित किए गए परन्तु सभी में यूरोपियन कला हावी रही।

4.1.4 दुर्ग रचना

तोपों के बहुतायत प्रयोग के कारण ऊँची पहाड़ी पर बनाये जाने वाले गिरी दुर्ग भी अजेय नहीं रह गये थे अतः सौन्दर्यशाली महल युक्त भूमि दुर्ग बनाये जाने लगे। अकबर ने स्वयं आगरा व अजमेर में भूमि दुर्ग बनवाये।[29] इसलिए किले का निर्माण किसी ऊँची पहाड़ी पर न करके भूमितल पर किया गया, ना ही इसे घेरने वाली खाई को विशाल व अधिक गहरा बनाया गया, इसके टावर्स एवं रेम्पर्स भी निचले है तथा इन्हें सौन्दर्यशाली बनाया गया है ना कि सुरक्षात्मक। इतिहासकार मानते है कि बीकानेर के चारों तरफ फैला मरूस्थल ही इसकी सुरक्षा करता था, कोई भी शत्रु आसानी से मरूस्थल को पार कर बीकानेर नहीं पहुँच सकता था। इतिहासकार शिव कुमार भनोट के शब्दों में किले की बनावट इस तरह की है जैसे किसी कटोरे की तलहटी में किले को बनाया गया हो परन्तु चारों ओर से ऊँचाई ऐसी है कि शत्रु सेना द्वारा तोपखाने से बम बरसाए जाए तो बनावट के कारण तोप के गोले किले के ऊपर से निकल कर दूसरी तरफ गिरे।[30]

जूनागढ़ दुर्ग का आकार चतुष्कोण या चतुर्भुजाकार है। इसका घेरा 1078 गज है।[31] किले का कुल क्षेत्रफल 1,63,119 वर्ग गज है। दयालदास की ख्यात के अनुसार दुर्ग के पूर्व की दीवार 401 गज, दक्षिण की 403 गज, पश्चिम की 407 गज, उत्तर की 406 गज है तथा सफील 19 गज ऊँची है।[32]

किले के चारों ओर जल युक्त खाई या परिखा बनी हुई है जो 30 फुट चौड़ी व 20 से 25 फुट गहरी है।[33] 1078 वर्ग गज की परिधी में फैली पत्थर व रोड़ो से निर्मित किले की प्राचीर बहुत सुदृढ़ है। परकोटे की कुल लम्बाई 698 मीटर चौड़ाई 4.05 मीटर तथा ऊँचाई 12.01 मीटर है। प्राचीर ऊपर से नीचे की ओर ढ़लती हुई तिरछी बनायी गयी है। इसके शीर्ष भाग में तोप, तीर, बन्दूकों की मार हेतु छिद्र बने हुए है। किले के निर्माण में लाल बलुआ पाषाण का प्रयोग किया गया है जो कि पास के गाँव धुलमेरा की खानों से लाया गया था। यह पत्थर अन्य पत्थरों के मुकाबले नर्म होता है जिस पर उत्कृष्ट कोटि का तक्षण कार्य किया जा सकता है। कुछ भवनों में श्वेत संगमरमर का भी प्रयोग किया गया है जो मकराना से लाया जाता था। अनूप सिंह जी ने संगमरमर

का प्रयोग बहुतायत से किया जो शाहजहाँ की स्थापत्य कला से मिलता जुलता है। प्राचीनतम भवन पीतवर्णी पत्थरों से मिलते जुलते है जिन्हें रायसिंह जी ने जैसलमेर से मंगवाया था। इनमें सूरजपोल, बड़ा कारखाना, हरमन्दिर चौबारा, हजूरी दरवाजा, रायनिवास आरम्भिक कला के उदाहरण है। परकोटे में बराबर अन्तराल पर 37 बुर्जे बनी हैं जिनकी औसतन ऊँचाई 40 फुट है।[34] इन बुर्जो पर तोप रखी जाती थी। कंगूरे लाल पत्थरों के बनाये गये थे।

किले के दो प्रमुख प्रवेश द्वार है। पूर्वाभिमुख प्रवेश द्वार कर्णपोल कहलाता है जो चार आन्तरितक दरवाजों से सुरक्षित है तथा पश्चिमी द्वार चाँदपोल कहलाता है यह भी दो आन्तरिक द्वारों से सुरक्षित है। आन्तरिक द्वारों के नाम सूरजपोल, दौलत पोल, रतनपोल, फतेह पोल, ध्रुव पोल है, ये नाम प्रमुख राजकुमारों व निर्माता शासकों के नाम पर रखे गये हैं। महाराजा कर्णसिंह ने कर्ण पोल, दौलत पोल व फतेह पोल का निर्माण करवाया। दौलत पोल की साईडवाल पर रानियों के हाथों के छापे छपे हुए हैं, जो रानियों के सती होने से पहले के हैं।[35] दौलत पोल व फतेह पोल से आगे चलने पर सूरज पोल आता है। पीले पत्थरों से निर्मित सूरज पोल दुर्ग का मुख्य प्रवेश द्वार है। यह एक प्रकार का दो तरफ से खुला हुआ मेहराबदार मार्ग है, जिसमें ऊँचे–ऊँचे दो आर्च बने हुए है। दीवार में एक तरफ काले पत्थर की शिलाएँ लगी हैं, जिन पर रायसिंह जी का एक लम्बा प्रशस्ति लेख अंकित है।[36] इसमें राठौड़ वंश की वंशावली, युद्धों आदि का अतिशयोक्ति पूर्ण विवरण है। छोटी बालकनियों के पीछे कालिका देवी व गणपति के मन्दिर है। सूरज पोल के दोनों कोनों पर महान योद्धा जयमल एवं फत्ता की पूरे आकार के हाथी पर सवार मूर्तियाँ हैं।[37] सूरजपोल से आगे का मार्ग विशाल बाहरी खुले प्रांगण में ले जाता है जिसके एक किनारे पर प्रवेश हॉल के पीछे देवी द्वार है यहाँ सात देवियाँ विराजमान हैं। दाहिनी तरफ एक बड़ा बाग, घुड़साल व सैनिकों के निवास स्थान हैं। इसके बायीं ओर एक प्रवेश द्वार है जिसकी जगह आजकल त्रिपोलिया द्वार लगा दिया गया है जिसके आगे स्वागत प्रांगण व सुरक्षा प्रहरी के बैठने का स्थान है। यहाँ एक रेम्प मीणा डयोढ़ी चौक तक जाता है, जहाँ कार्यालय, कल्याण महल (वर्तमान में विक्रम विलास, दरबार हाल), दफ्तरखाना, हरमन्दिर, कारखाना गंगाजल व राजशाही कारखानें चौक के चारों ओर स्थित हैं। इसके दूसरी ओर चलने पर कर्णमहल चौक आता है जो चारों तरफ से चौबारों से घिरा हुआ है। कर्ण महल मुगलों की तर्ज पर दीवाने आम है। यहाँ से एक छोटे दरवाजे से अनूप महल चौक में पहुँचा जा सकता है,

जिसके समीप ही अनूप महल स्थित है। इस चौक के एक तरफ राजाओं के व्यक्तिगत कमरे हैं, जिन्हें रायनिवास, फूल महल, चन्द्रमहल आदि नामों से जाना जाता है।[38] इसके दूसरी तरफ जनाना महल है। प्रत्येक महल का अपना इतिहास है तथा स्थापत्य बेजोड़ है।

राजा रायसिंह द्वारा बनवाया गया मूल दुर्ग छोटा व चौकोर था जिसमें प्रत्येक तरफ नो बुर्ज थे तथा केवल एक पूर्वी द्वार था जो वर्तमान में सूरज पोल है। इसमें बनवाये गये भवनों में वर्तमान में जो अस्तित्व में हैं उनमें सूरजपोल, कारखाना कला, हरमन्दिर, सूरमन्दिर का दक्षिणी अग्र भाग चौबारा, हजूरी दरवाजा, रायनिवास (फूलमहल, चन्द्र महल, गजमन्दिर, डूंगर निवास, छत्रमहल) तथा जनानी ड्योढ़ी का पुराना भाग आदि प्रमुख है।[39] भवन का मुख्य स्वरूप मुगल और गुजराती मेहराबों एवं गुम्बदों से युक्त हैं। दरवाजें मजबूत लकड़ी के लट्ठों को जोड़कर बने हैं जिनपर बाहरी प्लास्टर किया गया है एवं दिया–बत्ती करने के लिए छोटे–छोटे आले बनाए गये हैं। भवनों को सुन्दर बनाने के लिए दीवारों पर लघु भित्ति चित्र भी बनाये गये हैं। जिनमें हाथी का सिर, मोर, हंस, कमल का फूल, युद्ध के दृश्य आदि को बारीकी से उकेरा गया हैं। अधिकांश खिड़कियों में गुजराती जालियाँ लगायी गयी हैं। सूर मन्दिर का निर्माण कार्य रायसिंह जी द्वारा प्रारम्भ कराया गया किन्तु इसे दलपत सिंह जी ने पूर्ण कराया था।[40]

किला परिसर में सबसे आकर्षक महल है 'चन्द्र महल'। इसे मून पैलेस के नाम से भी जाना जाता है। वर्तमान में चन्द्र महल, चन्द्र महल की साल तथा फूल महल पुराने राय निवास के हिस्से हैं। चन्द्र महल को महाराजा गंगा सिंह जी ने अपनी जैसलमेर की रानी चाँद कँवर, जो कि चन्दन महल कहलाती थी के नाम पर बनवाया। यह महल अपने नक्काशीदार संगमरमर के कंगूरों, दर्पणों और भित्तिचित्र शैली के कारण विशेष रूप से लोकप्रिय है। यह एक छोटा कमरा है जिसमें मेहराबार छत तथा चार दरवाजे हैं, इसकी दीवारों में नक्काशीयुक्त आले तथा खिड़कियाँ है, इनकी चौखटों पर सजावट है तथा मार्बल की स्लेब्स लगी हैं। यह कमरा तीन तरफ से चन्दन महल की साल (चन्द्रमहल की साल) से घिरा है। इसमें मुगल कला से प्रभावित फूलों की चित्रकारी की गयी हैं। इसके प्लास्टर पर करण महल तथा अनूप महल के समान फूल पत्तियाँ भी उकेरी गयी हैं। चन्द्र महल के किवाड़ राजपूतकालीन 1750 से 1760 की अवधि वाली चित्रकारी के उदाहरण हैं। इसकी दीवारों पर देवताओं की मूर्तियों का भी अंकन किया गया है जिनमें कृष्ण का मुरलीधर रूप, गोपालक रूप, गणेश जी, लक्ष्मीजी,

विष्णु–लक्ष्मी, सरस्वती, हनुमान, दशावतार, नरसिम्हा, वराह आदि प्रमुख है।[41] चन्द्र महल के दरवाजे फूल महल से जुड़े हुए हैं। फूल महल रानी फूल कँवर के नाम पर बना है। इसकी सजावट पुरानी पद्दत्ति की है। दीवारों पर पच्चीकारी युक्त प्लास्टर है, जिनमें काँच जड़े गये हैं, अन्धेरे आले बने हैं, इन पर फूल, पत्तियाँ, गमले आदि की आकृतियाँ काटी गयी हैं, जो यूरोपियन एवं मुस्लिम कला का सम्मिश्रण हैं। इसके डाड़ों पर भी सुन्दर फूल, गमले आदि बनाये गये हैं, जो ताजमहल की तर्ज पर हैं। दीवारों पर शिकार के दृश्य चित्रित किये गये हैं। यह महल राजा रायसिंह के संरक्षण में बना। इसमें एक तरह से चित्रों की प्रदर्शनी लगाइ गई है जिनमें राधा कृष्ण की रास लीला के चित्र प्रमुख हैं। कुछ चित्र राजाओं के शौर्य प्रदर्शन, शिकार आदि से सम्बन्धित हैं। इस महल की दीवारों का कोई भी हिस्सा कलाकारों की कला प्रदर्शन से अछूता नहीं रहा है।[42]

भव्य दरबार हॉल कर्ण महल (बीकानेर का प्रथम व राजस्थान का द्वितीय प्राचीन महल तथा मुगल कला के स्वर्ण युग की क्लासिकल धरोहर भी है) इस दुर्ग का वैशिष्ट्य है। इसे अनूप सिंह जी ने अपने पिता करण सिंह के नाम पर उनके संघर्षपूर्ण काल में राजपूतों की औरंगजेब पर विजय की स्मृति में बनवाया था। अनूप सिंह जी स्वयं महान कला प्रेमी, साहित्य प्रेमी, बुद्धिजीवी, संगीत व चित्रकला में रूचि रखने वाले शासक थे। इन्होंने लुप्त होती मुगल दरबारी कला को अपने निर्माण कार्यों में अपनाया। इसका आकार छोटा एवं सादगी भरा है। इस महल में दीवाने खास, रंगमहल और मुमताज महल की लघु व सादी नकल देखने को मिलती है। इसकी लकड़ी की भीतरी छत, भव्य गैलरी, छत में मेहराबयुक्त पंक्ति आदि विशिष्ट है। मेहराबों की नक्काशी, सुन्दरता, सजावट, छत की चित्रकारी सभी मौलिक है। शेष अलंकरण कार्य गजसिंह जी के शासन काल में किया गया। इसमें तख्त का चित्रण मुगल शैली से किया गया है।[43] यह महल मुगल कला पर आधारित तथा दीवाने आम की तर्ज पर दर्शक दीर्घा या जनसामान्य का हॉल था।

महराजा अनूप सिंह राव बीका की दसवीं पीढ़ी के शासक थे। उनका काल बीकानेर का स्वर्ण युग था। अनूप सिंह ने एक विशाल सभा भवन का निर्माण मुगल शैली में करवाया। इसकी कारीगरी उच्च कोटि की है। झुके हुए छज्जे, छोटे स्तम्भ एवं तोरण द्वार अतीव सुन्दर हैं। छत तथा तौरण 17 वीं सदी की शैली से चित्रित हैं। फूल बूटें, पत्तियाँ, फूलदान आदि का अंकन मनमोहक है।[44] अनूप महल (सर्वोच्च न्यायालय

कक्ष या प्रिवी कौंसिल रूम) दो मेहराबदार कॉलम्स युक्त है। इसमें सफेद संगमरमर पर साज सज्जा युक्त आकृतियाँ उकेरी गयी हैं तथा सिन्दुरी रंग व स्वर्ण आभा युक्त सजावट की गयी है। इसमें काँच के मोजायक, हरे सिन्दुरी काँच का दर्पणों में प्रयोग, काँच के जड़ाव से राम–सीता का आकृति चित्रण शोभायमान है। बैठने के स्थान पर लक्ष्मण, हनुमान आदि की छवि भी दर्शायी गयी है। इसके दरवाजों तथा महल के सामने के भाग पर अलग तरह की सजावट है।[45] अनूप महल के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए डॉ0 करणी सिंह ने लिखा है– बीकानेर के किले में अनूप महल जिसमें सोने की कलम से काम किया हुआ है, एक उत्कृष्ट कृति है और अपने प्रकार के सर्वश्रेष्ठ नमूनों में से एक है। दीवारों पर सोने की पच्चीकारी का जो काम किया गया उसकी मूल ताजगी आज भी विद्यमान है।[46] भव्य अनूप महल में राजाओं का राजतिलक होता था। यह एक बहुमंजिला इमारत है जिसमें बैठकर बीकानेर के शासक व मंत्री चर्चाएँ तथा गुप्त मंत्रणा किया करते थे। महल शासकों के सौन्दर्यप्रेम और शाही भव्यता को इंगित करता है। इसमें रखा सुन्दर हिण्डोला कला की दृष्टि से उत्कृष्ट है।[47] अनूप महल चौक में मुगल शैली के आले और कंगूरेदार मेहराबें बनी हुई हैं। महल के बड़े दरवाजों पर गैसो वर्क (उच्च क्वालिटी का पीओपी का कार्य) व चित्रकारी उत्कृष्ट है। दीवारों, खम्भों व छतों पर सोने की पच्चीकारी और चित्रकारी की गयी है। इसके निर्माण में अस्सी किलों सोना व कई जवाहरात लगे। यहाँ रखी महाराज की गद्दी से महाराज की अनुभूति होती है। इसके प्रत्येक हिस्से को उस्ता कलाकारों द्वारा सजाया गया है। महल में संगमरमर में ताजमहल के समान फूल पत्तियों की डिजायने बनवायी। इसमें पर्शियन, दक्कनी, टर्किश शैली के चित्र बनाए गए हैं, इसके दरवाजे भी चित्रों से सजाए गए है।[48] कक्ष की दीवारों को लाल लाख से पेंट कर सोने की झाल चढ़ाई गयी है। सफेद संगमरमरी खंभों पर सोने की पत्तियों वाली बेलबूटाकारी अद्‌भुद है। फर्श पर बिछाया गया पुराना एन्टिक गलीचा महल की दीवारों की डिजायन से मिलता जुलता एवं पर्सियन डिजायन से बनाया गया है पर्यटकों के कौतुहल का विषय है। इस गलीचे को महाराजा गंगा सिंह जी ने बीकानेर जेल में बनवाया था।

बादल महल महाराजा सरदार सिंह जी को प्रसन्न करने हेतु बनवाया गया था। यह महल दुर्ग परिसर में सबसे अधिक ऊँचाई पर स्थित होने के कारण बादल महल कहलाता है। महल की दीवारों पर प्राकृतिक रंगो से शानदार चित्रकारी की गयी है, छतों पर बादल और कड़कती बिजली के दृश्य बने हुए है। जिसमें नीले आकाशीय और

सफेद रंगो का प्रयोग किया गया हैं। दीवारों पर ढ़लती वर्षा का अंकन स्वाभाविकता का भ्रम पैदा करता है। इसकी दीवारों पर कई सूण्डों वाले एरावत हाथी पर विराजमान इन्द्र देव दर्शाए गए है। इसमे सूखे मौसम में मानसून के आनन्द की कल्पना की गयी है।[49] महल के चित्रों में बारिश के मौसम में राधा और कृष्ण के प्रेम की अधीरता व पूर्णता को एक साथ बयान करने का प्रयास किया गया है। राजा व रानी इस महल में अपने अन्तरंग क्षण बिताते थे। महल में पहुँच कर आसमान के किसी बादल पर आने का आभास होता है। बादल महल में अनेको फव्वारें लगाए गए हैं जो थार मरूस्थल की गर्मी में ठण्डक देने का काम करते हैं।[50] हवामहल पैलेस जूनागढ़ महल समूहों में से एक है। इसे गर्मी के मौसम में शीतलता प्राप्ति हेतु ताजी व ठण्डी हवा लेने के लिए बनाया गया था। छत के भीतरी हिस्से पर रासलीला तथा चीनी पद्दत्ति के नीले रंग के चित्र भी बने हुए हैं। गज मन्दिर महाराजा गजसिंह जी एवं उनकी दो मुख्य रानियों फूलकँवर एवं चाँद कँवर का व्यक्तिगत कक्ष था। इसे बनाने वाले वास्तुकार को महाराजा गजसिंह स्वयं जयपुर से लाए थे। महल के प्रत्येक हिस्से में मुक्तहस्त से विलासितापूर्ण, सूक्ष्म, सजावटी कलात्मक कार्य किया गया है।[51] गज मन्दिर या गज महल की ऊपरी मंजिल पर गैलरी युक्त दालान तथा कमरे बने हुए हैं। इसका एक कमरा मेहराबदार छत युक्त तथा चार ओर से खुला है जो कचहरी के नाम से विख्यात है। गज मन्दिर के दर्पण विशिष्ट है। इसकी मुख्य विशेषता सूर्य, गजलक्ष्मी, गणेश तथा महादेव जी की छवि का अंकन है। इनमें रंगीन काँच का प्रयोग विलक्षण है। दीवारों पर चित्र नाथद्वारा शैली के है। इसका उत्तरी हिस्सा अनूप महल के प्रांगण में झाँकता है। कचहरी के दक्षिण भाग में शीश महल है जिसके पास फूल महल व साल है यह हिस्सा रानियों के उपयोगार्थ था।

सबसे ऊपरी मंजिल पर बने छत्र निवास लकड़ी की सुन्दर छत व कृष्ण की रासलीला के सजीव चित्रण के लिए प्रसिद्ध है। हर मन्दिर में विवाह, गणगौर व अन्य मांगलिक उत्सव आयोजित होते थे।[52] गंगा सिंह जी का भव्य नक्काशीयुक्त गंगा निवास महल बाहर सड़क मार्ग से ही आकर्षित करता है।[53] किले के अन्दर महाराजा डूंगर सिंह जी द्वारा बनवाया गया घण्टाघर किले के सौन्दर्य में अभिवृद्धि करता है। विक्रम विलास महल भी महाराजा गंगासिंह जी द्वारा बनवाया गया था। यह दरबार हॉल है। इसमें लाल पत्थरों पर तक्षण कला के अन्तर्गत श्री कृष्ण की लीलाऐं, सागर में नहाती स्त्रियाँ, बेलबूंटें, फूल, गमलें, जानवर आदि उकेरे गये हैं। ब्रिटिश काल में वायसराय ने दिल्ली

दरबार हॉल की सजावट के लिए वास्तुविदों को बीकानेर का विक्रम पैलेस देखने भेजा था।[54] इस महल को महान न्यायप्रिय प्राचीन शासक विक्रमादित्य के नाम पर बना कर बीकानेर के शासकों की न्याय के मामले में विक्रमादित्य के समकक्षता दर्शाने का प्रयास किया गया है।[55] महाराजा डूंगरसिंह जी को आधुनिक बीकानेर का पिता कहा जाता है। इनका कक्ष डूंगर निवास धनाढ्यता से परिपूर्ण है तथा भव्यता से सफेद रंग का प्रचूर मात्रा में प्रयोग करके सजाया गया है। दीवारों पर थोड़े –थोड़े अन्तराल पर दर्पण लगाए गए हैं।

इसके अलावा दुर्ग परिसर में सूरत निवास, मोती महल, कुँवरपदा, जालीदार बारहदरियाँ, रायसिंह का चौबारा, रतन निवास, रंग महल, देलेल निवास, लाल निवास, चीनी बुर्ज, सुनहरी बुर्ज, सरदार महल, पाकशाला, अश्वशाला, सूतरखाना (उष्ट्रशाला), सुजान महल, गुलाब निवास, शिव निवास, फील खाना, संगमरमर का तालाब, संग्रहालय सहित सभी अपनी खूबसूरती एवं ऐतिहासिकता से प्रभावित करते हैं। दुर्ग परिसर में अनेक मन्दिर भी हैं इन मन्दिरों से अंदाजा लगाया जा सकता है कि राजपूत शासक देवी के उपासक थे।

4.1.5 किले का इतिहास

बीकानेर के संस्थापक राव बीकाजी जोधपुर के महाराजा राव जोधाजी के पुत्र थे। उन्होंने नये साम्राज्य की तलाश में 500 सिपाहियों एवं 100 घुड़सवारों की सेन्य टुकड़ी[56] के साथ 1465 ई0 में मारवाड़ छोड़ दिया। बीका के चाचा खाण्डल जी तथा नेपा सांखला उनके साथ थे।[57] वि.स. 1545 तदनुसार 1488 ई0 में राव बीका ने बीकानेर शहर की नींव डाली।

'पनरै सै पैतालवे, सुद वैशाख सुमेर। थावर बीज थरप्पियो, बीके बीकानेर।।'

नगर के प्राचीन दुर्ग की नींव बीकाजी ने 1485 ई0 में रखी। यह किला शहरपनाह के भीतर दक्षिण पश्चिम में एक ऊँची चट्टान पर स्थित है जो बीकाजी की टेकरी कहलाती है। तीसरे शासक राव लूणकरण (1505–1526) साहसी योद्धा थे। चौथे शासक राव जैतसी (1526–1542) के समय बाबर के पुत्र व लाहौर के शासक कामरान ने भटनेर जीतने के बाद बीकानेर पर आक्रमण किया किन्तु राव जैतसी से पराजित हुआ। इस युद्ध का विवरण बीठू सूजा कृत 'राव जैतसी रो छन्द' नामक ग्रन्थ में मिलता है। जौधपुर के राव मालदेव के आक्रमण में राव जैतसी की मृत्यु हो गयी तथा बीकानेर

पर मालदेव का अधिकार हो गया। 1544 ई0 में शेरशाह सूरी ने बीकानेर का राज्य राव कल्याणमल को दे दिया। पाँचवे शासक राव कल्याण मल (1542–1571) अपने पुत्र रायसिंह के साथ 1570 ई0 में अकबर के नागौर दरबार में गये। अबुल फजल ने लिखा है कि उस समय राव कल्याण मल ने अपने भ्राता कान्हा की कन्या का विवाह अकबर के साथ कर दिया। नैणसी की ख्यात में वर्णन मिलता है कि अकबर ने उसे गागरोन का दुर्ग जागीर के रूप में प्रदान किया।[58] रायसिंह (1571–1612) को अकबर ने उच्च पद व मनसब प्रदान किया। जूनागढ़ दुर्ग के प्रथम निर्माता रायसिंह ही थे इन्होंने प्रथम बार महाराज की उपाधि धारण की। जोधपुर पर मुगल अधिकार के बाद अकबर ने रायसिंह को जोधपुर का प्रशासक नियुक्त कर दिया।[59] दयालदास की ख्यात के अनुसार रायसिंह 3 वर्षों तक जोधपुर का प्रशासक रहा। जूनागढ़ दुर्ग का निर्माण कराया तथा रायसिंह प्रशस्ति उत्कीर्ण करायी, साहित्यकारों व कलाकारों को प्रश्रय दिया, 'ज्योतिष रत्नमाला', 'रायसिंह महोत्सव' की रचना करायी। मुन्शी देवी प्रसाद ने इसे राजपूताने के कर्ण की सँज्ञा दी है। रायसिंह के अनुज भ्राता पृथ्वीराज महान योद्धा के साथ–साथ महान कवि एवं अकबर के दरबारी भी थे। इन्होंने डिंगल में 'वेल क्रिसन रूक्मणी री' लिखा। आठवें शासक सूर सिंह (1614–1631) ने जहाँगीर से सम्मान प्राप्त किया। औरंगजेब ने एक बड़ी सेना सिन्धु नदी के पार भेजी जिसमें कई राजपूत सरदारों ने भी हिस्सा लिया। नवें शासक करणसिंह जी (1631–1669)को ज्ञात हुआ कि औरंगजेब का उद्देश्य सभी का धर्म परिवर्तन कराना है तो करणसिंह जी ने औरंगजेब के इरादों को सफल नहीं होने दिया। इस कारण महाराजा करण सिंह ''जय जंगल धर बादशाह'' कहलाए जिसका अर्थ है विक्ट्री टू दि किंग ऑफ डेजर्ट। दसवें शासक अनूप सिंह (1669–1698) महान कला प्रेमी व संरक्षक, स्वयं कलाकार, संगीतज्ञ, सस्कृत के विद्वान, फौजी सहित बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे।[60] ये ज्यादातर दक्षिण में रहे, औरंगजेब की सेना के सेनापति थे, गोलकुण्डा का किला इन्होंने ही जीता था। औरंगजेब ने इन्हें महाराजा एवं माहीभरातिव का खिताब देकर सम्मानित किया।[61] इन्होंने अनूप संस्कृत पुस्तकालय की स्थापना की जो विश्व का तीसरा सबसे बड़ा हस्तलिखित ग्रन्थों का अभिलेखागार है।[62] इन्होंने अनेक संस्कृत ग्रन्थों यथा अनूप विवेक, काम प्रमोद, अनूपोदय आदि की रचना भी की।

बीसवें शासक डूंगर सिंह जी (1872–1887) के समय बीकानेर रियासत का टोपोलोजिकल सर्वे कराया गया, चिकित्सालय एवं डाकघर खोले गए, 1866 में बिजली

आयी, 1879 में काबूल अभियान में ब्रिटिश सेना को उन्होंने ऊँट उपलब्ध कराए, ब्रिटिश राजनयिक की नियुक्ति हुई। इक्कीसवें शासक महाराजा गंगासिंह जी (1887–1943) के समय बीकानेर की सेना ने दोनों विश्वयुद्धों में भाग लिया। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें मैड़ल तथा अन्य सम्मान प्रदान किये। वे नरेन्द्र मण्डल के प्रथम चांसलर थे। इनके समय प्रथम रेल लाईन बिछाई गयी। 80 कि.मी. की गंग नहर का उद्घाटन इनके समय लार्ड इरविन ने किया। वे महान निर्माता थे, राजस्थान नहर उन्हीं का सपना थी। बाइसवें तथा अन्तिम शासक महाराजा सादूल सिंह (1943–1949) ने ग्रामीण समाज के लिए जल प्रबन्धन हेतु चालीस लाख का योगदान दिया। नरेन्द्र मण्डल में सादूल सिंह का योगदान चिरस्मरणीय रहेगा। 1949 में उन्हीं के समय बीकानेर रियासत का भारतीय संघ में विलय कर दिया गया।[63]

4.1.6 किले पर आक्रमण

जूनागढ़ दुर्ग उन गिने चुने दुर्गों में से एक है जो अपनी अपराजेयता पर गर्व महसूस करते हैं। दुर्ग को मुगलों से मैत्री की वजह से बीकानेर ने किसी बाहरी शक्ति का सामना नहीं किया किन्तु नागौर व जोधपुर के सजातीय राठौड़ बन्धुओं के आक्रमणों को झेलना पड़ा। उनमें से कोई भी दुर्ग को विजित नहीं कर पाया।

बाबर के पुत्र व लाहौर के शासक कामरान ने भटनेर जीतने के बाद बीकानेर पर आक्रमण किया किन्तु राव जैतसी से पराजित हुआ। इस युद्ध का विवरण बीठू सूजा कृत 'राव जैतसी रो छन्द' नामक ग्रन्थ में मिलता है। कहा जाता है कि कामरान बीकानेर की गद्दी हथियाने व किले (पुराना दुर्ग)को जीतने में सफल हो गया था किन्तु चौबीस घण्टे के भीतर ही उसे किला छोड़कर भागना पड़ा था। इसके अलावा कहीं उल्लेख नहीं मिलता कि किसी गैर शासक द्वारा किले को जीता गया हो। 1541 ई0 में बीकानेर के पुराने किले पर राव मालदेव ने आक्रमण किया। इस युद्ध में राव जैतसी वीरगति को प्राप्त हुए तथा दुर्ग पर मालदेव का अधिकार हो गया। जोधपुर के शासक मानसिंह के समय भी बीकानेर पर कई आक्रमण हुए किन्तु सभी का अन्त सन्धि के साथ हुआ। नागौर के शासक बख्तसिंह ने भी 1733 ई0 में किले पर आक्रमण किया, जोधपुर से अभय सिंह भी बख्तसिंह से मिल गया। चार माह तक चले इस युद्ध का प्रतिरोध बीकानेर के तत्कालीन महाराजा सुजानसिंह व कुंवर जोरावर सिंह ने बड़ी शक्ति व बुद्धिमत्ता के साथ किया। इस युद्ध का भी अन्त सन्धि से हुआ। 1743 ई0 में बख्त सिंह ने बीकानेर पर पुनः आक्रमण किया[64] तथा बीकानेर के किलेदार दौलत सिंह

सांखला को अपनी तरफ मिला लिया परन्तु फिर भी किले को नहीं जीत सका।[65] 1749 ई0 में अभयसिंह ने भी बीकानेर पर आक्रमण किया।[66] इस बार छोटे भाई बख्तसिंह ने पारिवारिक विवाद के कारण अभयसिंह का साथ नहीं दिया।[67] इस युद्ध में तोपों के गोलो से किले का काफी क्षति पहुँची। किले का सुरक्षा प्रबन्ध महराजा जोरावर सिंह कर रहे थे, उन्होंने सवाई जयसिंह से बचाव की अपील की। फलतः जयसिंह ने तीन लाख की सेना के साथ जोधपुर पर आक्रमण कर दिया। अतः अभयसिंह को बीकानेर का घेरा उठाना पड़ा।[68]

4.1.7 किले के जल स्रोत

राजस्थान के अन्य किलों की भाँति इस किले में भी जल प्रबन्धन की समुचित व्यवस्था की गयी थी। चूँकी यह किला भूमि दुर्ग है अतः इसमें गिरी दुर्गों की भाँति वर्षा जल संग्रहण की व्यापक आवश्यकता नहीं पड़ी। इस किले के भीतर चार बड़े कुँए बनवाये गये थे, साथ ही अन्य आवश्यकताओं हेतु किले के बाहर एक झील भी बनवायी गयी थी। चारों कुँऐं विभिन्न काल में विभिन्न शासकों द्वारा खुदवाए गए थे। ख्यातों एवं मूल दस्तावेजों से पता चलता है कि बीकानेर शहर प्राचीन व्यापारिक मार्ग पर स्थित था। अतः व्यापारियों का समूह यहाँ से गुजरता था, जिन्हें अपने घोड़ों, मवेशियों एवं स्वयं के पेयजल के लिए मार्ग के जल स्रोतों पर निर्भर रहना पड़ता था। इस हेतु शासकों/धर्मावलम्बियों एवं स्वयं व्यापारियों ने यात्रा मार्ग पर अधिकतम आवश्यक दूरी पर कुँए, बावड़ियाँ, बेरियाँ आदि खुदवायी। किले में भी चार कुँए खुदवाने के पीछे सम्भवतयाः यही कारण हो सकता है। इसके अतिरिक्त राजपरिवार द्वारा अपने पूर्वजों की याद में कुँए खुदवाकर धार्मिक लाभ प्राप्त करना भी एक अन्य कारण हो सकता है। दुर्ग रचना के आधार पर देखे तो चारों कुँए किले में एक दूसरे से पर्याप्त दूरी पर बनवाऐं गए थे ताकि कुँओं के जल का उपयोग किले के प्रत्येक हिस्से में आवश्यकतानुसार किया जा सके।

4.1.7.1 रामसर कुँआ

यह कुँआ सूरज पोल से अन्दर जाते ही दायें हाथ की ओर महल के त्रिपोलिया द्वार के ठीक सामने स्थित है। महाराजा रामसिंह ने इसे खुदवाया था तथा उन्हीं के नाम पर इसे रामसर कहा जाने लगा। इसका पानी मीठा तथा पेयजल का विश्वसनीय स्रोत था, महलों में इसी से जलापूर्ति होती थी। कहा जाता है कि महाराजा गंगा सिंह जी

बाहर भी जाते थे तो भी इस कुँए का ही पानी पीते थे। कुँए के समीप संगमरमर का एक शिलालेख पड़ा मिला है जो अपठनीय है, जिससे यह अनुमान लगाना कठिन है कि इसका लेख कुँए से सम्बन्धित है या नहीं।

दुर्ग के अन्य सभी कुँओं के समान इसकी भी गहराई 360 फीट है। यह भीतर से पत्थर की मजबूत चिनाई द्वारा पक्का बंधा हुआ है। इसकी चौकी धरातल से 1.60 मीटर ऊँची, 3.38 मीटर लम्बी तथा 3.18 मीटर चौड़ी है। कुँआ वृत्ताकार है, जिसके पूर्व और पश्चिम में दो स्तंभ गड़े हुए है, जिन्हें एक बड़े पत्थर से जोड़ा गया है, इस पत्थर के नीचे कुँए की सीध में भूण लगायी जाती थी। इसकी दक्षिण दिशा को सुरक्षात्मक दृष्टि से एक तिरछे पत्थर से जोड़ा गया है ताकि भूण की तेज गति की चपेट में आने से बचा जा सके। कुँए के पारे से भूण की ऊँचाई 1 मीटर थी। कुँए के पश्चिम दिशा मे दो नालियाँ हैं जिनमें कुँए से निकालकर पानी डाला जाता था। दोनों नालियों से जुड़ी दो खेलियां हैं। नाली की लम्बाई 2.2 मीटर तथा चौड़ाई प्रारम्भ में 1.5 मीटर है, आगे नाली संकड़ी हो जाती है। यह नाली एक खेली में खुलती है। खेली वर्गाकार है जिसकी लम्बाई व चौड़ाई समान रूप से 1.5 मीटर है। नालियों से गौमुख के समान नाले द्वारा खेली में पानी जाता था खेली आगे 7.5 मीटर लम्बे और 4.1 मीटर चौड़े आकार के कोठे से जुड़ी हुई थी। जिसमें कुँए से निकला पानी एकत्रित होता था तथा आवश्यकतानुसार काम में लिया जाता था। इस कोठे के ऊपर अभी भी एक होदा बना हुआ है तथा इसके पश्चिम में पशुओं के पानी पीने के लिए एक खेली बनी हुई है। कुँए के उत्तर दिशा में लगभग 50 मीटर दूरी तक सारण बनी हुई है। सारण की गहराई मिट्टी भरने से कम हो गयी है।[69]

4.1.7.2 कल्याणसर कुँआ

रामसर कुँऐ से बाईं तरफ चलने पर उत्तर–पश्चिम दिशा में उत्तरी परकोटे के समीप कल्याण सर कुँआ स्थित है। अन्य कुँओं के विपरीत इस कुँए का पानी खारा है। इसके समीप कोने पर धोबी घाट की कुंड़ियाँ बनी हुई हैं जो प्रमाण है कि इसके जल का उपयोग धोबी कपड़े धोने के लिए करते थे। इस कारण इसे धोबी घाट का कुँआ भी कहा जाता है। यह खारे पानी के उपयोग व महत्त्व का सर्वोत्तम उदाहरण है, जो बताता है कि किस प्रकार लोग पानी की उपयोगिता समझते थे।

कुँए की गहराई 360 फीट है, यह भी भीतर से पत्थर की चिनाई से पक्का बंधा हुआ है। इसके पारे के ऊपर तिरछे खड़े पत्थर लगाये गये हैं जिनमें एक–एक चौकोर

छेद है तथा उनके ऊपर दो–दो गोल छेद और हैं। चौकोर छेदों में बरत द्वारा पानी खींचने से घिसकर बने हुए निशान देखे जा सकते हैं। कुँए की चौकी की ऊँचाई कम है तथा इसके दोनों ओर एक–एक नाली बनी हुई है जो 4.7 मीटर लम्बी और 1.5 मीटर चौड़ी है। खेली का आकार 1.25 मीटर गुना 1 मीटर है। खेली के आगे का कोठा 3.5 मीटर लम्बा एवं 2.75 मीटर चौड़ा है। इसके ऊपर भी एक अपठनीय शिलालेख लगा है।

4.1.7.3 गजसर कुँआ

कल्याण सर कुँए से पश्चिम दिशा में थोड़ा आगे चलने पर गजसर कुँआ स्थित है। एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट 1893–94 के अनुसार ये हाथी–घोड़ों को पानी पिलाने के लिए सुरक्षित था, इसीलिए इसका नाम गजसर पड़ा। इस कुँए की भी गहराई 360 फीट है तथा यह भी भीतर से पत्थर की चिनाई से पक्का बंधा हुआ है। इसकी चौकी धरातल से 1.45 मीटर ऊँची है जिसपर चढ़ने के लिए किसी प्रकार की सीढियाँ नहीं बनी हुई हैं परन्तु पूर्व दिशा बनी ढलान की सहायता से ऊपर चढ़ा जा सकता है। कुँआ पत्थर की सिल्लियों से तिरछा ढँका हुआ है, सिल्लियों में तीवण से दो चौकोर छेद है तथा इनके ऊपर दो–दो गोल तथा नीचे एक गोल छेद है। कुँए के ऊपर ढक्कन लगाने के लिए पश्चिम दिशा की दीवार में लोहे की कड़ी लगी है, जिससे कुँए में गन्दगी न जा सके। कुँए के दोनों ओर एक–एक नाली बनी हुई हैं जो 3.10 मीटर लम्बी एवं 0.8 मीटर चौड़ी हैं, नालियाँ दो अलग–अलग खेलियों से जुड़ी हुई है। नालियों की चौड़ाई कुँए की तरफ अधिक तथा खेली की तरफ कम है जिससे कुँए से निकल कर नाली में गिरने वाला पानी वेग के कारण बाहर न आ सके। खेलियां 1.1 मीटर लम्बी व 1 मीटर चौड़ी है। दोनों खेलियों के आगे कोठे बनाये गये हैं, जो 3.1 मीटर लम्बे तथा 3.05 मीटर चौड़े हैं। खेलियों के पूर्व और पश्चिम में छोटी–छोटी दो अन्य खेलियाँ और बनी हुई हैं। जिनसे पशु पानी पीते थे।[70]

4.1.7.4 रानीसर कुँआ

रतनपोल से भीतर जाने पर महलों के पीछे महल से लगते उद्यान, जिसे शिव गार्डन कहा जाता है, के भीतर रानीसर कुँआ स्थित है। इसका निर्माण महाराजा राय सिंह की धर्मपत्नी महारानी गंगादेवी ने करवाया था। कुँए के समीप घुड़साल व हाथी ठान बने हुए हैं। पानी निकालने के लिए लाव–चड़स के प्रयोग हेतु चकली लगायी गयी थी। इसके पानी का उपयोग उद्यान में जलापूर्ति एवं घोड़ों एवं अन्य जानवरों को पानी पिलाने हेतु किया जाता था। इसकी गहराई भी अन्य कुँओं के समान 360 फीट तथा

व्यास 2.2 मीटर है। चौकी 4 मीटर लम्बी, 3.5 मीटर चौड़ी तथा धरातल से 0.5 मीटर ऊँची है इसपर चढ़ने के लिए पूर्व दिशा में दोनों तरफ सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। कुँए के दोनों ओर दो–दो नालियाँ बनी हुई हैं। इन चारों नालियों की लम्बाई 2.70 मीटर तथा कुँए की ओर से चौड़ाई 1.5 मीटर तथा खेली की ओर इससे कम है। नालियाँ खेली से जुड़ी हुई हैं। खेली 1.28 मीटर लम्बी तथा 1.20 मीटर चौड़ी है। दोनों खेलियों से जुड़ा हुआ एक बड़ा कोठा बना हुआ है जिसमें कुँए से निकलने वाला पानी भरा जाता था, यह 6 मीटर लम्बा, 2.9 मीटर चौड़ा तथा 1.6 मीटर गहरा है। कोठे के समीप पशुओं को पानी पिलाने के लिए एक छोटी खेली बनी हुई है तथा पास में एक नाली भी बनी है। नाली के माध्यम से पानी उद्यान में जाता था, इससे पानी अस्तबल व हाथी खाने में भी जाता था। कुँए के दक्षिण में हनुमान जी का तथा उत्तर में माता जी का मन्दिर बना हुआ है।[71]

उक्त सभी कुँओं की मुण्डेर भूमि तल से चार–पाँच फीट ऊपर है, कुँओं पर ढ़ाने व होद बने हुए हैं, पानी खींचने के लिए चकली, लोहे का जाल आदि लगे हुए हैं, लाव–चड़स से पानी खींचने के लिए सारन भी बनी हुई थी परन्तु अब उपयोग के अभाव में सारन मिट्टी से भर गयी है। सभी कुँऐं पक्के हैं तथा इनके भीतर चूने का प्लास्टर किया गया है। इसके अतिरिक्त सावा मण्डी सदर की बही सं 4 विक्रम संवत् 1807–1810 देखने से पता चलता है कि न केवल इन्हें बनवाया गया था बल्कि इन पर प्रति माह रखरखाव के लिए खर्च भी किया जाता था।[72]

रामसर एवं रानीसर के रखरखाव पर व्यय (सं 1807)				
क्र.स.	माह	संवत्	रूपये	बही पृष्ठांक
1.	मार्गशीर्ष	1807	95 रू 8 आना 2 टके	4
2.	पौष	1807	106 रू. 8 आना 1 टका 6 दाम	9
3.	माघ	1807	104 रू. 8 आना 44 दाम	15
4.	फाल्गुन	1807	94 रू. 8 आना 4 टका 12 दाम	22
5.	चैत्र	1807	106 रू. 5 आना 25 दाम	28
6.	वैशाख	1807	115 रू. 4 आना 2 टके	34
7.	ज्येष्ठ	1807	83 रू. 8 आना 1 टका	39
8.	आषाढ़	1807	28 रू. 8 आना 1 टका 25 दाम	43
9.	श्रावण	1807	....	....
10.	भाद्रपद	1807	27 रू. 8 आना 2 टके	54
11.	आश्विन	1807	108 रू. 4 आना 1 टका 25 दाम	58
12.	कार्तिक	1807	190 रू. 8 आना 2 टका 31 दाम	64
तालिका संख्या 4.1				

रामसर एवं रानीसर के रखरखाव पर व्यय (सं 1808)				
क्र.स.	**माह**	**संवत्**	**रूपये**	**बही पृष्ठांक**
1.	मार्गशीर्ष	1808	78 रू. 1 टका 31 दाम	70
2.	पौष	1808	72 रू. 12 आना 2 टके	74
3.	माघ	1808	64 रू. 8 आना 2 टके 12 दाम	79
4.	फाल्गुन	1808	76 रू. 19 दाम	83
5.	चैत्र	1808	69 रू. 8 आना 37 दाम	89
6.	वैशाख	1808	96 रू. 3 टके 6 दाम	94
7.	ज्येष्ठ	1808	98 रू. 6 टके 31 दाम	98
8.	आषाढ़	1808	52 रू. 8 आना 25 दाम	102
9.	श्रावण	1808	31 रू. 4 आना 31 दाम	107
10.	भाद्रपद	1808	10 रू. 25 दाम	112
11.	आश्विन	1808	150 रू. 14 आना 25 दाम	116
12.	कार्तिक	1808	55 रू. 8 आना 31 दाम	122
तालिका संख्या 4.2				

4.1.7.5 सूर सागर झील

किले के मुख्य द्वार के बाहर पूरब दिशा में एक बहुत बड़ी एवं गहरी झील स्थित है, जिसे सूरसागर झील कहा जाता है। इसका निर्माण महाराजा सूर सिंह जी ने करवाया था। इसके चारों ओर के घाट बाद में जोड़े गये हैं। लालगढ़ के एक मिनिएचर से स्पष्ट है कि राजा कर्ण सिंह इस झील में नौका विहार करते थे। झील के निर्माण के सम्बन्ध में एक किंवदन्ति है कि पुरोहित मान महेश और बारहट चोथ द्वारा रायसिंह के विरूद्ध कर्मचन्द्र द्वारा रचे गये षड़यन्त्रों में सहयोग करने के कारण जब इनकी जागीरें सूरसिंह ने जब्त कर ली तब इन्होंने अनशन कर प्राण त्याग दिए। जिस स्थान पर उन्होंने प्राण त्यागे वहीं सूरसागर नामक झील निर्मित करायी गयी।

अथाह जल से परिपूर्ण यह झील अनेक प्रकार के कार्यों में उपयोग ली जाती थी। राज परिवार एवं अतिथियों के आमोद प्रमोद के लिए इसमें नौकाविहार की व्यवस्था थी। इस की साफ सफाई पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इसके वर्षा जल से पुनर्भरण की भी व्यवस्था थी। बीकानेर के बुजुर्ग बताते हैं कि उन्होंनें राज परिवार को धार्मिक, पारिवारिक एवं सामाजिक उत्सवों पर इस झील के जल का उपयोग करते हुए देखा था। अतः स्पष्ट है कि झील का जल पवित्र माना जाता था।

4.1.8 जल प्राप्ति एवं वितरण प्रणाली

1934 में जी.जे. कोन्स के निर्देशन में सीरीज के अन्तर्गत 'इण्डियन टाउन स्टड़ीज–बीकानेर' के नाम से बनायी गयी वृत्तचित्रात्मक (डॉक्यूमेन्ट्री) फिल्म[73] में दिखाया गया है कि मरूस्थलीय क्षेत्र में किस तरह से जल को कीमती समझ कर मितव्ययता से उपयोग लिया जाता था साथ ही पाताल तोड़ कुँओं से शहर में किस तरह जल वितरित किया जाता था। इसमें यह भी दिखाया गया है कि शहर के भीतर तथा बाहर खुदवाये गये कुँओं से नहरें निकाली गयी थी जो बीकानेर शहर के विभिन्न हिस्सों में जल वितरित करती थी। बेलों की मदद से चमड़े के कोस या चड़स द्वारा लाव की सहायता से कुँओं से पानी खींचा जाता था, यह पानी कुँए की मुण्डेर के समीप बने ढलवा ढ़ाने में उड़ेल दिया जाता था। ढ़ाने का पानी कुँए के समीप बने होद में एकत्र हो जाता था, होद का निचला डाट हटाने पर पानी नहर या धोरों में प्रवाहित हो जाता था। नहरें पानी को शहर के विभिन्न हिस्सों में बने कुण्डों तक पहुँचा देती थी। जहाँ से जनसामान्य एक नियत प्रक्रिया के तहत जल प्राप्त कर लेता था। विभिन्न ख्यातों व परम्पराओं से पता चलता है कि जल की पवित्रता व अल्प उपलब्धता का कितना महत्त्व था। जल को व्यर्थ नष्ट करने व अपवित्र/गन्दा करने पर दण्ड का प्रावधान था।

जूनागढ़ के शासकों ने किले में जल की सतत उपलब्धता हेतु जो चार कुँए खुदवाये थे उनसे भी जल प्राप्ति की प्रक्रिया उपर्युक्त ही थी जैसी कि फिल्म में दिखाई गयी है। यहाँ भी पानी बैलों द्वारा डोल खींचकर निकाला जाता था। कुँओं को ढँकने वाला पत्थर तिरछा खड़ा किया जाता था, इसमें तीवण से छेद कर भूण लगाई जाती थी। भूण (लकड़ी का गोल पहिया) जिसके ऊपर बरत चलती थी वह कोस से बंधी होती थी। भूण के ऊपर चड़स या बरत निकालकर बैल अथवा ऊँट के जुआड़े में बाँधी जाती थी। बैल जिस रास्ते डोल खींचते थे उसे सारण कहा जाता था। पूरा डोल कुँए से पानी भरकर जब ऊपर आता था तब बारा खींचने वाला यह आवाज लगाता था – 'आयो रे आयो खीली छोड़ो राजा राम'। यह आवाज सुन कर कीलिया (बैल हांकने वाला) बरत (डोरी) की कीली खोल देता था और आवाज लगाने वाला पानी के डोल को कुँए से बाहर खींचकर पानी नाली में डाल देता था। जो नाली के माध्यम से खेली में चला जाता था और उससे कोठे में जिसमें पानी एकत्रित होता था, चला जाता था। भूण की गति रोकने के लिए एक छोटी बरत (डोरी) भूण के चारों तरफ लपेट दी जाती थी, जो भूण के ब्रेक का काम करती थी। कोठों में एकत्रित पानी सेवको द्वारा चमड़े के कोस

या मसक में भर कर महलों में पहुँचा दिया जाता था।

4.1.9 जल का उपयोग

इन जल स्रोतों के जल का उपयोग पेय जल के अतिरिक्त किले के उद्यान, शौचालय, स्नानागार, भोजनशाला, अस्तबल, खाई में आवश्यकतानुसार किया जाता था।

4.1.9.1 जल युक्त खाई

किले के चारों तरफ किले को बाहय आक्रमणों से सुरक्षा प्रदान करने हेतु एक खाई बनवायी गयी थी। यह सदैव जल से भरी रहती थी। सम्भवतया अन्य किलों की भाँति आक्रमणकारियों से सुरक्षा हेतु इसमे हिंसक जलीय जीव भी पाले गए होंगे। इस प्रकार किले में जल का उपयोग किले को सामरिक सुरक्षा प्रदान करने हेतु किया गया था।

4.1.9.2 स्नानागार एवं शौचालय

किले के महलों में विभिन्न कक्षों में दैनिक उपयोग हेतु शौचालय व स्नानागार बनवाए गऐ थे। इनमें जलापूर्ति सेवकों द्वारा की जाती थी। वे पीठ पर चमड़े की मसक लाद कर भीतर रखे ताम्बे के बर्तनों में जल भर दिया करते थे।

4.1.9.3 फव्वारा सिस्टम

आमेर के बगीचों व गागरोन के मन्दिर की भाँति इस किले के बादल महल तथा सूरसागर झील में भीषण गर्मी से निजात पाने के लिए फव्वारें लगाए गए थे जो ऊपरी टंकी में भरे पानी के दबाव से चलते थे।

4.1.9.4 उद्यान में जलापूर्ति

किले में हरियाली के लिए अनेक बाग–बगीचे लगाए गए थे। किले के उत्तरी भाग में महराजा सुजान सिंह ने जनाना बाग लगवाया, एक अन्य उद्यान शिव गार्डन रानीसर कुँए के समीप स्थित है। इनमें से अधिकांश बाग सार–सम्भाल के अभाव में नष्ट हो गए किन्तु रानीसर कुँए के समीप महलों के पीछे वाले हिस्से में एक उद्यान आज भी हरा भरा है। उद्यानों में जल आपूर्ति महल की छतों पर गिरने वाला वर्षा जल एवं कुँओं की छोटी नहरों या धोरों से होती थी।

4.1.9.5 अस्तबल में जल आपूर्ति

किले के महलों के पीछे घोड़ों तथा अन्य मवेशियों को रखने का अस्तबल था।

जिसमें जल की आपूर्ति रानीसर कुँए के होद से होती थी।

4.1.10 जल निकास प्रणाली

महल के विभिन्न हिस्सों तथा तिमंजिला छतों पर गिरने वाला वर्षा जल विभिन्न पाइपों के माध्यम से महल से बाहर निकाल दिया जाता था। महल से निकलने वाला जल महल के पीछे स्थित उद्यान में चला जाता था। इस प्रकार जल को व्यर्थ बर्बाद न करके उसका उपयोग पैड़ पौधों को पानी पिलाने में किया जाता था।

4.1.11 वर्तमान स्थिति

रामसर कुँआ, जो किले का विश्वसनीय पेयजल स्रोत था, वर्तमान में सुचारू स्थिति में नहीं है। यह ऊपर से बन्द तथा ढँका हुआ है। इसके समीप आधुनिक ट्यूबवेल से पानी निकाला जाता है। कल्याणसर व गजसर कुँए भी उपयोग में नहीं लिये जाते तथा सार–सम्भाल व रखरखाव के अभाव में जर्जर हो चुके हैं। इनके कोठों व खेलियों का प्लास्टर खिर गया है, ढाने व सारन में झाड़–झंकाड़ उग आये हैं, भीतर से कुँओं को बाँधने वाले पत्थर भी उखड़ गये हैं। रानीसर कुँआ यद्यपि अपेक्षाकृत ठीक–ठाक स्थिति में है किन्तु उपयोग के अभाव में नष्ट होने की कगार पर है। समीपस्थ उद्यान में जलापूर्ति ट्यूबवेल के माध्यम से की जाती है। जलयुक्त खाई का अस्तित्व भी न के बराबर रह गया है। किले के बाहर स्थित सूरसागर झील ही एक मात्र सही स्थिति में है, इसमें आज भी नौकायन किया जाता है, जल को शुद्ध बनाए रखने हेतु आधुनिक मशीने लगी हुई हैं, संगीतमय फव्वारें भी लगे हुए हैं। जो पर्यटकों को आकर्षित करते हैं।

सारांशतः कहा जा सकता है कि जूनागढ़ दुर्ग का जल प्रबन्धन अपने आप में विशिष्ट था। किले पर चार या पाँच आक्रमणों के समय लम्बे घेरे पड़ने पर भी किले में जलापूर्ति निर्बाध बनी रही, कतिपय दुर्गों की भाँति जल संकट की स्थिति के कारण किले के दरवाजें खोल कर शत्रु सेना से अन्तिम व निर्णायक युद्ध करने जैसी अप्रत्याशित घटनाऐं इस किले के सन्दर्भ में दृष्टिगत नहीं होती है अर्थात् दुर्ग का जल प्रबन्धन व्यापक एवं दूरदर्शिता पूर्ण था।

4.2 भटनेर दुर्ग

राजस्थान ही नहीं बल्कि भारत की उत्तरी सीमा का पहरेदार भटनेर दुर्ग भाटियों के शौर्य, वीरता, त्याग व वैभव के साथ–साथ स्वयं के लुटने व फिर से आबाद होने की कहानी कहता है। दुर्ग सदैव महत्त्वाकांक्षी शासकों एवं आक्रमणकारियों की क्रुर दृष्टि का केन्द्र बिन्दु बना रहा क्योकि दुर्ग पर अधिकार करना अथवा बनाये रखना केन्द्रीय सत्ता में बने रहने की गारन्टी देता था। यही कारण है कि भारत के अन्य दुर्गों की तुलना में सर्वाधिक आक्रमण इसी दुर्ग ने झेले। जिस प्रकार दिल्ली के लिए कहा जाता है कि दिल्ली अनेकों बार उजड़ी व अनेकों बार दुल्हन बनी उसी तरह भटनेर भी अनेकों बार लूटा व उजाड़ा गया व अनेकों बार इसका सेहरा सजाया गया।

4.2.1 भौगोलिक स्थिति व जलवायु

भटनेर दुर्ग वर्तमान उत्तरी राजस्थान में हनुमानगढ़ जिला मुख्यालय में शहर के मध्य स्थित है। इसकी दूरी आमेर दुर्ग से 419 कि.मी., जूनागढ़ से 231 कि.मी., सोनारगढ़ से 553 कि.मी. तथा मेहरानगढ़ से 476 कि.मी. है। समुद्र तल से 183 मी. ऊँचाई पर तथा $29^0 37'$ उत्तरी अक्षांश एवं $74^0 20'$ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। यह अर्द्ध मरूस्थलीय क्षेत्र में हड़प्पा संस्कृति के महत्त्वपूर्ण स्थल कालीबंगा की क्षेत्रीय सीमाओं के अन्तर्गत आता है, यहाँ रंगमहल संस्कृति के अवशेष भी पाये गये हैं।

यहाँ की जलवायु अर्द्धशुष्क है तथा मौसम गर्मियों में अधिक गर्म एवं सर्दियों में अधिक ठण्डा रहता है। मिट्टी कैल्शियम युक्त तथा क्षारीय प्रकृति की है। समीपस्थ घग्गर नदी वर्तमान में बारिश के दिनों में ही बहती है किन्तु प्राचीन समय में पूरे वर्ष बहती थी। क्षेत्र की वर्षा का औसत 27.35 से.मी. वार्षिक है।[74]

4.2.2 किले का निर्माण व नामकरण

किले का निर्माण युवराज भूपति भाटी ने सन् 286 ई0 में करवाया तथा अपने पिता राजा भाटी के नाम पर इसका नाम 'भटनेर' रखा। भटनेर का अर्थ है 'भाटियों का गढ़'। मुस्लिम लेखक इसे 'तबरहिन्द' भी कहते हैं।

4.2.3 किले का महत्त्व

मुल्तान–उच्छ से थोड़ा दक्षिण–पूर्व में सिरसा (सुरसुती), हांसी व दिल्ली के प्रमुख मार्ग पर स्थित होने से भटनेर दुर्ग बहुत महत्त्वपूर्ण था।[75] इसे भारत की उत्तरी सीमा का प्रहरी कहा जाता है। मध्य एशिया से उत्तरी भारत पर होने वाले आक्रमणों को सबसे पहले भटनेर झेलता था क्योंकि यहाँ अधिकार किए बिना कोई भी आक्रान्ता उत्तरी भारत या दिल्ली की ओर रुख नहीं कर सकता था। महमूद गजनवी, गोरी व तैमूर ने इसी मार्ग से भारत पर आक्रमण किये थे। भारत के शक्तिशाली राजवंश भी बाह्य आक्रमणकारियों से सुरक्षा के लिए इस किले पर सशक्त सेना रखना आवश्यक समझते थे। गुप्तों, आरम्भिक तुर्कों, तुगलकों, मुगलों, अंग्रेजों, राजपूतों सभी ने इसका उपयोग अपनी प्रमुख सैन्य चौकी के रूप किया। प्राचीन वैदिक नदी सरस्वती या घग्गर नदी के पूर्वी तट पर एक ऊँचे थेड़ पर किले का नींव रखी गयी थी। इसके उत्तर, पश्चिम और दक्षिण में इस नदी की बारहमासी जलधारा अनवरत बहती थी।[76] किले के पूर्व में दृष्द्वती व घग्गर नदियों का और पश्चिम में घग्गर व सतलज नदियों के बीच का दोआब क्षेत्र था जो आक्रमणकारियों के मार्ग में बाधा था।

मध्य एशिया, सिन्ध, कन्धार, गजनी, काबुल आदि से व्यापारी मुल्तान–उच्छ –भटनेर तक सरस्वती नदी के सुरक्षित मार्ग का प्रयोग करते हुए दिल्ली– आगरा तक जाते थे। मुस्लिम लेखक भी स्वीकार करते हैं कि किले के स्वामी इस मार्ग पर व्यापारियों से मनमानी चूंगी वसूलते थे फलतः वे काफी सम्पन्न थे।

इस प्रकार दुर्ग राजनैतिक व सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने के साथ–साथ व्यापार वाणिज्य का भी प्रमुख केन्द्र था।

4.2.4 भटनेर का इतिहास

किले के इतिहास को किले के समीप प्रवाहित घग्घर या सरस्वती नदी ने काफी प्रभावित किया है। प्रागैतिहासिक कालीन सरस्वती नदी की महिमा वेद–पुराणों में कही गयी है। इसकी उपत्यका में वेदों की रचना हुई, ऋषि–मुनियों ने भी तपस्या की, ज्ञानार्जन व ज्ञान वितरण किया। यहाँ भारतीय संस्कृति के उच्च मूल्य व आदर्श स्थापित किये गये।

वर्तमान बड़ी नदियाँ सतलज व यमुना प्राचीन काल में सरस्वती की सहायक नदियाँ थी। इन नदियों के सरस्वती का साथ छोड़ने से पहले तक राजस्थान के बहुत

बड़े भू–भाग को ये सिंचित करती थी। सतलज व यमुना का सरस्वती में संगम पंजाब में सतराना के पास होता था। उस समय सरस्वती बड़ी वेगवती नदी थी।[77] कालान्तर में भूगर्भिय विवर्तनिक परिवर्तनों के कारण सरस्वती का साथ छोड़ कर यमुना पूर्व की ओर तथा सतलज पश्चिम की ओर बहने लगी। दोनों मुख्य सहायक नदियों के मार्ग परिवर्तन से सरस्वती में पानी की आवक घट गयी तथा धीरे–धीरे नदी ही लुप्त हो गयी। 7 वीं शताब्दी तक घग्गर नदी में बारह महिनों तक पानी रहता था बाद में नदी के सूखने से रंगमहल संस्कृति का पतन हुआ। घग्गर नदी तट पर बसा भटनेर उस काल में पूर्व हड़प्पा, हड़प्पा, उत्तर हड़प्पा, पीजीडब्ल्यू, रंगमहल संस्कृति का केन्द्र था।[78] सरस्वती व सतलज का संयुक्त जल प्रवाह भटनेर से सूरतगढ़ तक अथाह जल से परिपूर्ण रहता था फिर सूरतगढ़ के आगे यमुना मिल जाने से सरस्वती नदी के जल में अत्यधिक बढ़ोतरी हो जाती थी। इस जल की मात्रा इतनी अधिक थी कि सरस्वती–घग्गर–हाकड़ा, नारा, रेवी नदी 10 से 12 किमी चोड़े पाट में 12 मास बहती थी।

भटनेर का इतिहास भाटियों से शुरू होता है। लाहौर के समीप शालीवाहनपुर के शासक बालबंध (227–279 ई0) के पश्चात् युवराज भाटी भटपनेर के शासक बने। राजा भाटी व उनके भाईयों के वंशज संयुक्त रूप से भाटी तथा उनका वंश भाटी वंश कहलाया।

इनमें युवराज भूपति भाटी (286 ई0) ने भटनेर का किला बनवाया। राजा भाटी के काल में ही उनके भाइयों व उनके परिवारों में सत्ता प्राप्ति के लिए संघर्ष होने लगा था। इस समय शक शासकों की सत्ता भी धीरे–धीरे समाप्त हो रही थी, तब उनके रिक्त स्थान को पूरा करने के लिए युवराज भाटी ने उत्तर पश्चिम में भाटी सत्ता का विस्तार किया जाना आवश्यक समझा। अतः उसने लाहौर से दक्षिण में एक नया किला बनवाया तथा उसका नाम पिता भाटी के नाम पर भटनेर रखा। शकों व कुशानों की बची कुची शक्ति का पतन 320 ई0 तक हो गया। भाटियों की शक्ति का केन्द्र लाहौर के स्थान पर भटनेर हो गया।

भूपति भाटी के पश्चात् 60 – 70 वर्ष तक तीन पीढ़ियों के शासक गुप्त शासकों की केन्द्रीय सत्ता के भय से अपने छोटे से साम्राज्य में दुबके पड़े रहे। इस अवधि में गुप्त शासकों ने भी उन्हें नहीं छेड़ा। चन्द्रगुप्त द्वितीय (390–415 ई0) के समय सत्तैराव भाटी गुप्तों के प्रमुख सामन्त बनने में सफल रहे। पश्चिम भारत पर चन्द्रगुप्त द्वितीय के विजय अभियान में इन्होंने प्रमुख सेनापति का दायित्व निभाया तथा गांधार प्रदेश जीत

कर अपने पूर्वजों की राजधानी गजनी पर अधिकार कर लिया। कालान्तर में भाटी युवराज झण्डू उजबेक राजकुमारी का अपहरण कर गजनी ले आया। इस समय गजनी के शासक गज्जू भाटी थे। उजबेको ने गजनी किले को घेर लिया। लम्बे घेरे के बाद गजनी किले में भाटीयों ने पहला शाका किया। युवराज झण्डू यहाँ से भटनेर की ओर निकल गये। शत्रु सेना ने युवराज का पीछा किया। युवराज झण्डु हिसार में मारे गये, परन्तु शत्रु सेना इतने से संतुष्ट नहीं हुई उसने भटनेर किले को भी जीतने के उद्देश्य से घेर लिया। कई माह लम्बे घेरे के बाद भाटी सेनानायक जगस्वात माण्डनोत व अन्य भाटी सरदारों ने 479 ई0 में भटनेर में भाटियों का दूसरा व भटनेर का पहला शाका किया। महिलाओं के लिए सामुहिक चिता प्रज्वलित की गयी, भाटी वीरों ने वीरतापूर्वक युद्ध कर अपने प्राणों का उत्सर्ग किया।[79]

प्रथम साके के पश्चात् लगभग 200 वर्षों तक भाटी भटनेर के आस–पास के जंगलों में भटकते रहे तथा सत्ता से दूर रहे। सन् 647 ई0 में हर्षवर्द्धन की मृत्यु के बाद केन्द्रीय सत्ता के छिन्न भिन्न होने की स्थिति का फायदा उठाकर मूलराज भाटी ने भटनेर, भटिण्डा सहित आस पास के क्षेत्र जीत कर घग्गर नदी घाटी में अपने राज्य का विस्तार कर लिया। तत्पश्चात् आगामी वर्षों तक भाटियों का भटनेर पर राज रहा।

तारीखे हिन्द के अनुसार महमूद गजनवी ने 1001 ई0 में भटनेर पर विजय प्राप्त की थी। तुर्क काल में भटनेर का दुर्ग तबरहिन्द कहलाता था। मोहम्मद गोरी ने तराइन के प्रथम युद्ध के पहले तबरहिन्द (भटनेर) जीत लिया था। इस युद्ध में जीत के बाद चौहानों ने पुनः भटनेर प्राप्त कर लिया था। उस समय भटनेर चौहानों व तुर्कों की सीमा पर प्रतिष्ठित दुर्ग था जिसे हस्तगत करने से ही साम्राज्य की सुरक्षा या बढ़ोत्तरी सम्भव थी। भटनेर–दिल्ली मार्ग पर 14 कोस दूर तलवाड़ा झील के समीप विशाल मैदान है यहीं पर तराइन के दो प्रसिद्ध युद्ध 1191 व 1192 ई0 में लड़े गये थे।[80]

सल्तनत काल में भटनेर सल्तनत के प्रमुख अमीरों को इक्ता में दिया जाता था। अल्तुनिया ने सुल्तान रजिया (1236–1240) को इसी दुर्ग में कैद करके रखा था, बाद में उसके साथ यहीं पर निकाह किया। बलबन ने 1246 ई0 में अपने भतीजे शेरखाँ को भटनेर व आसपास के क्षेत्र का राज्यपाल नियुक्त किया। यहाँ रह कर ही शेरखाँ ने मंगोलों का सामना किया तथा उनके विरूद्व स्थायी सेना इसी दुर्ग में रखी। 1270 ई0 में शेरखाँ की मृत्यु (कहा जाता है कि सुल्तान ने उसे जहर देकर मरवाया था) पर उसे यहीं दफनाया गया, यहाँ पर उसकी मजार व मकबरा भी है। शेरखाँ ने भटनेर किले को

सुदृढ़ करवाया तथा मंगोलों के विरूद्ध सल्तनत की रक्षा पंक्ति के रूप में उपयोग किया। उसने किले में विशाल गुम्बज भी बनवाया था। खिलजी व तुगलक काल में भटनेर पर पुनः भाटियों का अधिकार हो गया। गयासुद्दीन तुगलक के भाई रजब का विवाह अबोहर की भाटी राजकुमारी नायला के साथ हुआ। फिरोज तुगलक इसी भाटी रानी का पुत्र था। फिरोज के शासनकाल में उसके मामा भाटी शासकों ने सदैव उसका साथ दिया। अबोहर के भाटियों को भटनेर इक्ता के रूप में प्राप्त था।

1398 ई0 में तैमूर के भारत पर आक्रमण के समय भटनेर पर दुलीचन्द भाटी का अधिकार था। इस समय जैसलमेर के युवराज केलण भाटी भी जैसलमेर से निष्कासित होकर भटनेर में ही थे। तैमूर की सेना को समक्ष देखकर राव केलण भाटी ने उससे युद्ध किया किन्तु तैमूर ने किले पर अधिकार करके दुलीचन्द भाटी को गिरफ्तार कर लिया। चार दिन तक भटनेर दुर्ग व प्रान्त बुरी तरह से लूटा गया, दुर्ग में शरण लिए हजारों स्त्री, पुरूष व बच्चों को बेरहमी से कत्ल कर दिया गया। भटनेर बुरी तरह से वीरान, उजाड़ व नष्ट कर दिया गया। तैमूर के सेनानायक सैयद खिज्रखाँ की राव केलण भाटी से मित्रता थी, युद्ध में विरोधी पक्ष होने होने के बाद भी खिज्रखाँ के प्रस्ताव पर केलण भाटी से मित्रता के कारण दोनों पक्षों में सन्धि हो गयी। दुलीचन्द भाटी ने अपनी पुत्री तैमुरिया खानदान में ब्याह दी तथा भटनेर को जागीर के रूप में प्राप्त किया। तैमूर को भाटियों ने 300 अरबी घोड़े भेंट किये। किले में शेरखाँ का मकबरा देख राजपूतों की धार्मिक सहिष्णुता से तैमूर प्रभावित हुआ। तैमूर की आत्मकथा तजुके तेमूरी में लिखा गया है कि उसने (तैमूर) इतना मजबूत व सुरक्षित किला पूरे हिन्दुस्तान में कहीं नहीं देखा।[81] राव केलण पूगल के शासक बने। 1417 ई0 में राव केलण ने भटनेर पर अधिकार कर लिया तथा अपने पुत्रों को सौंप दिया। राव केलण के भटनेर शासक पुत्रों ने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया तथा भट्टी मुसलमान हो गए। 1512 ई0 में चायलों ने भट्टी मुसलमानों से भटनेर छीन लिया।

1527 ई0 में बीकानेर के राव जैतसी ने चायलों से भटनेर जीत लिया। यहाँ से भटनेर पर राठौड़ों के आधिपत्य का प्रारम्भ हुआ। दयालदास की ख्यात के अनुसार हुमायूं के भाई कामरान के 1534 ई0 में बीकानेर पर किये आक्रमण में उसने भटनेर पर अधिकार कर लिया था। बाद में शेरशाह सूरी (1540–1545) ने बीकानेर के राव कल्याणमल के भाई ठाकुरसी राठौड़ के पुत्र बाघा को भटनेर परगना दे दिया परन्तु दुर्ग चायल शासकों के पास ही रहा। एक बार चायल शासक के बाहर जाने पर ठाकुरसी ने

किला जीत लिया तथा 20 वर्ष तक भटनेर का शासक रहा। दीनानाथ खत्री के अनुसार एक बार मुगल शाही खजाना भटनेर परगने में लुटने से नाराज अकबर ने भटनेर पर अधिकार कर लिया किन्तु बाघा की वीरता से प्रसन्न होकर भटनेर लौटा दिया। बाघा ने किले में गोरखनाथ का मन्दिर बनवाया।

बीकानेर के शासक रायसिंह के अकबर से वैवाहिक सम्बन्ध थे। एक घटना से अकबर व रायसिंह के बीच तनाव उत्पन्न हो गया। अकबर का एक ससुर नसीर खाँ भटनेर दुर्ग आया हुआ था तब उसने एक लड़की से छेड़छाड़ कर दी तब रायसिंह ने अपने आदमियों से कहा कि नसीर खाँ को सबक सिखाए। मौका देखकर नसीरखाँ की पिटाई कर दी गयी। जब नसीरखाँ दिल्ली गया तो उसने इसकी शिकायत बादशाह अकबर से की, अकबर घटना से बड़ा नाराज हुआ और रायसिंह से भटनेर छीन कर रायसिंह के विद्रोही पुत्र दलपत को दे दिया। राजा दलपत की 1614 ई0 में मृत्यु होने पर उसकी रानियाँ भटनेर किले में सती हुई, इनकी देवलियाँ किले में बनी हुई है। 1614 में राजपूत से मुसलमान बने भाटी वंशज हयात खाँ भाटी ने भटनेर पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार पुनः भटनेर पर भाटी शासन स्थापित हुआ।

बीकानेर के महाराजा सुजानसिंह (1698–1734) ने भटनेर के विरूद्ध सक्रिय अभियान छेड़ा। 1730 ई0 में उन्होंने भटनेर पर अधिकार कर लिया। अब भटनेर पुनः भाटियों के हाथ से निकल गया। महाराजा जोरावर सिंह के शासनकाल में भटनेर मल्ला गोदारा के अधिकार में था, तब बीकानेर के एक जागीरदार भीम सिंह ने जोरावर सिंह की आज्ञा से मल्ला गोदारा की हत्या करवा कर भटनेर पर अधिकार कर लिया। भीमसिंह ने किले से प्राप्त धन व स्वर्ण मुद्राए भी हड़प ली। इससे जोरावर सिंह काफी नाराज हुए तथा भीमसिंह को दी गयी सैनिक सहायता वापस बुला ली। भट्टी सरदार हसन खाँ भट्टी ने भीमसिंह को परास्त कर भटनेर पर पुनः भाटी शासन स्थापित कर लिया।

बीकानेर के शासक सूरत सिंह ने 1804 ई0 में एक बड़ी सेना अमरचन्द सुराणा के नैतृत्व में भटनेर भेजी। सेना के लम्बे घेरे से किले में रसद की कमी हो गयी। किले का भाटी शासक जबात खाँ भट्टी किला खाली करके भाग गया। 1805 में बीकानेर की सेना ने गाजे–बाजे के साथ किले में प्रवेश किया। इस दिन मंगलवार था, इसलिए किले का नाम भटनेर से बदलकर हनुमानगढ़ किया गया। किले में हनुमानजी का भव्य मन्दिर बनवाया, जो आज भी आस्था का केन्द्र है। इस प्रकार सन् 286 ई0 से भाटियों के

भटनेर पर स्वतन्त्र शासन का अन्तिम लोप बीकानेर ने 1805 ई0 में किया।

1954 ई0 में राजस्थान राज्य में बीकानेर के विलय के साथ ही हनुमानगढ़ का भी राजस्थान में विलय हो गया।[82]

4.2.5 दुर्ग रचना

भारत की उत्तर पश्चिम सीमा का पहरेदार सुप्रसिद्ध भटनेर दुर्ग अब लगभग नष्ट हो चुका है तथा जीर्णशीर्ण अवस्था में है। पहले घग्घर नदी किले को तीन तरफ से तथा चार तरफ से विशाल रेगिस्तान एवं जंगल ने घेर रखा था। इस तरफ से यह किला जल दुर्ग, धान्वन दुर्ग, वन दुर्ग एवं भूमि दुर्गों की श्रेणी में आता है। यह अनवरत युद्धों का साक्षी रहा है अतः सैन्य दुर्ग की भी कोटि में रखा जा सकता है।

यह समानान्तर चतुभुर्ज के समान आकार में बावन वर्ग बीघा क्षेत्र में पकी हुई ईंटों की चूने से चिनाई करके बनाया गया है। किले की चार भुजाओं पर बने 12 बुर्ज तथा चारों कोनों बने पर एक–एक बुर्ज मिलाकर कुल 52 बुर्ज हैं जो इसको सुरक्षा प्रदान करते हैं। इसकी परिवेष्ठिनी में कुल 6380 कंगूरें हैं। इसके भीतर प्रत्येक बुर्ज पर एक कुँआ है इसतरह कुल 52 बुर्जों पर 52 कुँए हैं, जो किले के भीतर जल की उपलब्धता सुनिश्चित करते हैं, दुर्भाग्य से अब मात्र तीन कुँए की नजर आते हैं समय की मार से बाकि सभी नष्ट हो चुके हैं।

13 वीं सदी तक सरस्वती नदी घाटी में असंख्य थेड़ियां थी। इनमें से एक ऊँची थेड़ी पर किले का निर्माण किया गया। किले को तीन तरफ से घेरने वाली नदी लुप्त प्रायः हो चुकी है तथा किले के चारों तरफ बनायी गयी कृत्रिम खाई भी नष्ट हो चुकी है। खाई के अब कोई भी अवशेष नजर नहीं आते हैं।

बाहर की समतल भूमि से किले का मुख्य द्वार एक सौ फिट की ढलुआँ चढ़ाई पर है। यह दरवाजा दो पल्लों का है, जो लकड़ी के मोटे लठ्ठों से बनाया गया है। दोनों पल्लों पर छोटी खिड़कियाँ भी बनी हुई है। ये छोटी खिड़कियाँ पूरे द्वार को खोले बिना आने जाने हेत प्रयुक्त की जाती थी। इसे लोहे के चद्दरों से मजबूती प्रदान की गयी थी। इसके सामने की तरफ लोहे के नुकीले शूल लगभग 10 इन्च लम्बे व तीखे है जो आक्रमणकारियों के हाथियों को दरवाजा तोड़ने से रोकने के लिए लगाए गए थे। दरवाजा इतना मजबूत है कि आज भी सुरक्षित एवं सही सलामत है। मध्यकाल में किले का मुख्य द्वार उत्तर दिशा में देखता हुआ था जिसे बीकानेर शासकों के चायलों पर

आक्रमण के समय तोप से उड़ाकर नष्ट कर दिया गया था। यह स्थान वह है जहाँ वर्तमान में किले के बारे में बताने वाले आधुनिक पाषाण स्तम्भ अंग्रेजी व हिन्दी भाषा में लगे हुए है। वर्तमान में मुख्य द्वार पूर्व दिशा में देखता हुआ है तथा मुख्य सड़क से कुछ ऊँचाई पर चढ़ने पर दिखाई देता है। इसकी छत मेहराबदार है तथा उस पर सैनिकों के बैठने, गोलियाँ चलाने आदि के स्थान बने हुए हैं जो द्वार की रक्षा हेतु बनाए गए थे। द्वार के समीप ही दायें हाथ पर किले की मुख्य दीवार पर बने हुए बुर्जों पर बैठ कर सैनिक द्वार की रक्षा करते थे। सम्भवतः मुख्य द्वार को इन बुर्जों के समीप बनाने का उद्देश्य द्वार की रक्षा करना रहा हो। द्वार के दरवाजे के ठीक ऊपर एक ताख बनी हुई है जिसमें गणपति विराजमान है। ताख वर्तमान में नष्ट हो चुकी है, सम्भवतः मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा इसे नष्ट किया गया हो। द्वार के बाहर की ओर दोनो तरफ बैठने के लिए आसननुमा चबुतरे बनाए गए है। शास्त्रों के विधान के अनुसार किले में आने वाले अतिथियों की अगवानी पण्डितों द्वारा इन आसनों पर बैठ कर टीका लगाकर की जाती थी। द्वार के भीतर दोनों तरफ मेहराबों पर सैनिकों के सोने बैठने के स्थान बने हुए हैं। यह मुख्य द्वार की सुरक्षा करने वाले सैनिकों के रहने हेतु बनाए गए थे।

मुख्य द्वार से प्रवेश करने पर ठीक सामने लगभग 100 मीटर आगे हनुमान जी का मन्दिर है। यह मन्दिर न सिर्फ दुर्ग बल्कि पूरे हनुमानगढ़ तथा दूरदराज के क्षेत्रों में आस्था का केन्द्र है। इस मन्दिर का निर्माण 1805 में बीकानेर शासकों ने दुर्ग जीतने की खुशी एवं ईश्वर के प्रति आभार व्यक्त करने हेतु कराया था।

मन्दिर के समीप ही किले का इतिहास एवं आवश्यक जानकारी बताने के लिए लाल पत्थर पर हिन्दी अंग्रेजी में उत्कीण दो आधुनिक पाषाण अभिलेख भारतीय पुरातत्त्व विभाग द्वारा लगाए गए है। यहाँ से दायीं तरफ चलने पर तीन द्वार नजर आते हैं। ये द्वार आपस में जुड़े हुए हैं तथा इनके बीच दो मंजिला मंचननुमा झरोखों में सैनिकों के बैठने के स्थान बने हुए हैं। इन तीनों द्वारों को शत्रु सेना द्वारा पार किया जाना अत्यन्त दुष्कर था। इनके मोटे लकड़ी के दरवाजों पर प्रथम द्वार के समान ही लोहे की चद्दरे तथा मोटी कीले लगी हुई हैं।

इन द्वारों को पार करके आगे बढ़ने पर दुर्ग के भीतरी भाग में प्रवेश किया जा सकता है। सर्वप्रथम किले की जल निकास प्रणाली के दर्शन होते है। पकी हुई ईंटों से चूने के प्लास्टर से बनायी गयी पक्की नहरें किले के जल को भूमिगत वाटर टेंकों या कुँओं से जोड़ती है। सम्पूर्ण प्रणाली अपने आप में अनूठी है। यहाँ से दायीं तरफ का

मार्ग दरगाह की ओर एवं दायीं तरफ का मार्ग माताजी के मन्दिर की ओर तथा सामने का मार्ग शिव मन्दिर की ओर जाता है। यहाँ से सामने के मार्ग पर थोड़ा आगे चलने पर दुर्ग के नष्ट महलों के ईंटों के टुकड़े व मिट्टी के टीले नजर आते हैं जो दुर्ग के विनाश की कहानी कहते हैं। इन टीलों की खुदाई की जाए तो महलों की भव्यता के बारे में उपयोगी जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इन टीलों के ठीक सामने जैन मन्दिर एवं शिव मन्दिर के दर्शन होते हैं। शिवजी का मन्दिर वि.स. 966 में बना। इसके समीप 16 वे जैन तीर्थंकर का जैन मन्दिर है। इन मन्दिरों के आगे बायीं तरफ दुर्ग का विशाल खाली मैदान है। जिसमें वर्तमान में भव्य एवं विशाल बगीचा लगा हुआ है। इस बगीचे की देखभाल भारतीय पुरातत्त्व विभाग करता है। इन बगीचों के आगे मुरली मनोहर का मन्दिर है।

मुरली मनोहर मन्दिर के आगे बढ़कर दुर्ग की रक्षा प्राचीर व बुर्जों तक जाया जा सकता है। अधिकांश बुर्ज नष्ट हो चुके है तथा रक्षा प्राचीर की जीर्णशीर्ण ईंटे साफ दिखाई देती है। इन पर तोपों के गोला बारूद की मार युद्ध जनित विभीषिका को स्वयं बयान करते है। दुर्ग में चारों तरफ बिखरे ईंटो के टुकड़े दुर्ग की विनाश लीला को बताते है। इन्हें देखकर कोई भी विश्वास कर सकता है कि राजस्थान के किलों में सर्वाधिक आक्रमण इसी किले पर हुए है। शायद ही कोई अन्य किला अपने उजड़ने की कहानी इस तरह स्वयं कहता होगा। कृष्ण मन्दिर से दायीं तरफ चलने पर दरगाहों तक पहुँचा जा सकता है। यहाँ दो दरगाहे हैं। एक दरगाह दुर्ग रक्षक शेरखाँ की है जिसकी मृत्यु इसी दुर्ग में हुई थी। यह दरगाह क्षेत्र में हिन्दू मुस्लिम धर्मावलम्बियों की आस्था का केन्द्र है। कृष्ण मन्दिर से बायीं तरफ चलने पर थोड़ी दूरी पर रामदेव मन्दिर व करनी माता के मन्दिर है। करनी माता के मन्दिर के समीप एक कुँआ है तथा कुँए के समीप वाटर टेंक भी। यह कुँआ मन्दिर के समीप जल प्राप्ति का प्रमुख स्रोत है।[83]

दुर्ग में लगभग 10 समुदायों के पूजा स्थल हैं जो धार्मिक समन्वय व राजपूतों के धार्मिक सोहार्द का प्रतीक है। इतने समुदायों के इतने अधिक पूजा स्थलों व मूर्तियों के आज भी सुरक्षित होने से पता चलता है कि महमूद गजनवी के 1000 ई0, मोहम्मद गोरी के 1191 ई0 तथा तैमूर के 1398 ई0 में भटनेर किले पर अधिकार किये जाने पर भी आक्रमणकारियों ने इन्हें नष्ट नहीं किया।[84]

4.2.6 किले के जल स्रोत

भटनेर किला वर्तमान में लगभग पूरा नष्ट हो चुका है जिससे यह कह पाना कठिन है कि किले के महलों में जल संग्रहण हेतु टांके, कुण्ड, तलैया, टंकियाँ, शौचालय, स्नानागार, बाथ टब इत्यादि थे या नहीं ? यदि थे तो कैसे थे ? उक्त सभी प्रश्न अनुत्तरित हैं। किले का इतिहास बताता है कि किला अनवरत युद्धों का साक्षी रहा जिससे यहाँ राजसी वैभव, ठाठ–बाट आदि का होना संदिग्ध है। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह दुर्ग राजमहल, आरामगाह, शानौशौकत का प्रदर्शक न होकर मात्र सैन्य दुर्ग बना रहा। इसमें जल प्रबन्धन के उपाय केवल सैनिक आवश्यकताओं व संकटकालीन परिस्थिति को देखकर ही किये गये थे ना कि सुख सुविधाओं की प्राप्ति हेतु।

उपलब्ध साक्ष्यों में जल स्रोतों के रूप में किले के भीतर के कुँए तथा बाहर प्रवाहित नदी का ही विवरण मिलता है।

4.2.6.1 कुँए

किले भीतर जल प्राप्ति का सर्वप्रमुख स्रोत कुँऐं ही थे। किले के 52 बुर्जों पर 52 कुँऐ होने का विवरण मिलता है।[85] इनमें से 3 कुँए आज भी मौजूद हैं, एक कृष्ण मन्दिर के पास, एक रामदेव मन्दिर के पास तथा एक करणी माता मन्दिर के समीप स्थित है, शेष सभी नष्ट हो चुके हैं। केवल रामदेव मन्दिर के पास वाला कुँआ सुचारु स्थिति में है किन्तु इसमें भी पानी नहीं है। जब इस कुँए में पानी होता है तो वह मन्दिर तथा मन्दिर के समीप के उद्यान में जल वितरण करता है।[86]

4.2.6.2 घग्गर नदी

यद्यपि घग्गर या प्राचीन सरस्वती नदी वर्तमान में लुप्त हो चुकी है, किन्तु अपने वैभव काल में किले का प्रमुख जल स्रोत यह नदी ही थी। यह सदानीरा थी तथा 12 मास पूरे वेग से बहती थी, इसके प्रवाह में कभी कमी नहीं आती थी। किले के निवासी शान्तिकाल में इसी से दैनिक आवश्यकताओं, कृषि, बागवानी एवं निर्माण कार्यों के लिए जल प्राप्त करते थे।

4.2.7 जल उत्थान (वाटर लिफ्ट) प्रणाली

वर्तमान में सुरक्षित बचे हुए तीनों कुँओं से जल प्राप्त करने हेतु जल उत्थान प्रणाली दृष्टिगत होती है। सम्भवतः ऐसी ही प्रणाली सभी नष्ट हो चुके अन्य कुँओं में भी

प्रयुक्त की गयी होगी। इस प्रणाली के तहत कुँओं की मुण्डेर के समीप थोड़ा ऊपर मीनारनुमा ढलवा दीवारें बनायी गयी थी, दीवारों पर रस्सी से पानी खींचने हेतु चकली भी लगायी गयी थी। इन दीवारों के मध्य भाग में एक ढलवाँ पत्थर लगाकर एक ढाना बनाया गया था। कुँए से पानी निकालने हेतु लाव–चड़स का भी उपयोग किया जाता था।

किले के बाहर बहती घग्घर नदी किले में जल प्राप्ति का अन्य महत्त्वपूर्ण स्रोत था। चूँकि किला भूमि तल से 100 फिट की ऊँचाई पर है अतः अनुमान लगाया जा सकता है कि नदी से किले में जल प्राप्त करने हेतु किसी जल उत्थान प्रणाली का अवश्य प्रयोग किया गया होगा। दुर्भाग्य से किले के जीर्णशीर्ण होने व अधिकांशतः खण्डहर में तब्दील हो जाने से अब इस प्रकार की किसी प्रणाली के अस्तित्व के संकेत नहीं मिलते है। फिर भी कहा जा सकता है कि सेवकों एवं जानवरों द्वारा अपनी पीठ पर मसक या अन्य कोई मिलता जुलता पात्र लाद कर नदी जल को किले के भीतर पहुँचाया जाता होगा।

4.2.8 जल वितरण प्रणाली

किले के 52 बुर्जों के 52 कुँओं का पानी बुर्ज पर तैनात सैनिक टुकड़ी व बुर्ज के समीप के हिस्सों में उपयोग हेतु पहुँचाया जाता था। चूँकि वर्तमान में तीनों कुँओं के अतिरिक्त अन्य सभी कुँए नष्ट हो चुके हैं अतः इस जल वितरण प्रणाली के अस्तित्व के संकेत नहीं मिलते हैं किन्तु तीनों मौजूदा कुँओं के समीप गहन अवलोकन से इस व्यवस्था का मात्र अनुमान ही लगाया जा सकता है। जिसके तहत कुँओं से खींचा गया पानी एक होद में एकत्र कर आवश्यकतानुसार खेलियों तथा खेलियों से धोरों में छोड़ दिया जाता था। धोरों के माध्यम से पानी किले के विभिन्न हिस्सों में पहुँचता था। सेवकों तथा जानवरों की पीठ पर मसक या कोस लाद कर भी पानी महलों में ले जाया जाता होगा।

4.2.9 जल का उपयोग एवं प्रबन्धन

राजस्थान के अन्य दुर्गों की भाँति भटनेर दुर्ग में भी सरस्वती नदी एवं 52 कुँओं के जल का उपयोग पेयजल एवं अन्य दैनिक कार्यों के अतिरिक्त किले को सामरिक सुरक्षा प्रदान करने, बाग–बगीचों एवं अन्य धार्मिक व मांगलिक कार्यों में भी किया जाता था।

4.2.9.1 पेयजल

जल का सर्वाधिक उपयोग किले के निवासियों एवं आगुन्तक अतिथियों के साथ–साथ साम्राज्य की सुरक्षा हेतु किले में तैनात सेना एवं उनके युद्धोपयोगी जानवरों को जल पिलाने हेतु किया गया था।

4.2.9.2 खाई में सामरिक सुरक्षा हेतु

किले के चारों ओर गहरी खाई थी।[87] स्थानीय निवासी सुरेन्द्र पाल सिंह जी बताते है कि जिस स्थान पर किले के बाहर मुख्य सड़क बनी हुई है, प्राचीन समय में वहाँ एक खाई बनी हुई थी और किले का निष्कासित जल इसी खाई में उड़ेला जाता था साथ ही यह खाई घग्घर नदी से भी जुड़ी हुई थी जिससे नदी का पानी भी खाई में प्रवाहित हो जाता था। इस प्रकार खाई नदी के साथ मिलकर किले को सामरिक सुरक्षा प्रदान करती थी।[88]

वर्तमान में खाई के कोई अवशेष नहीं मिलते है, जिससे कहा जा सके कि किले की बाहरी खाई कैसी थी, लम्बाई, चौड़ाई एवं गहराई कितनी थी ? चूँकि किला अनवरत युद्धों का साक्षी रहा था तथा इस पर लम्बे भी घेरे डाले जाते थे अतः किले की सुरक्षा हेतु खाई बनाए जाने की सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी हेतु किले के बाहर पुरातत्त्व विभाग की ओर से खुदाई किए जाने की आवश्यकता है।

4.2.9.3 नदी द्वारा सामरिक सुरक्षा हेतु

प्राचीन सरस्वती या घग्घर नदी जो कि अब लुप्त हो चुकी है, पूर्व में पूरे वेग से किले के समीप बहती थी तथा किले को अपने अथाह जल से सामरिक सुरक्षा प्रदान कर जल दुर्ग की उपाधि देती थी। किले के निर्माताओं व वास्तुकारों ने किले को बनाने के लिए ऐसा स्थान चुना कि घग्घर नदी किले को घेरे जिससे बाह्य आक्रमणकारियों को किले पर आक्रमण के लिए नदी की अथाह जल राशि को पार करना पड़े। इस विशाल नदी में हिंसक जलीय जीव भी रहे होंगे जिनके भय से कोई साधारणतया नदी को तेर कर पार करने का साहस नहीं कर सकता था।

इस प्रकार खाई एवं नदी द्वारा किले को सुरक्षा प्रदान किया जाना जल प्रबन्धन की दृष्टि से जल के सामरिक उपयोग का उदाहरण है। नदी के पूर्व तट पर किला बनाने का एक मात्र कारण पश्चिम से होने वाले आक्रमणों के विरुद्ध नदी द्वारा प्राकृतिक

बाधा उत्पन्न किया जाना था।

4.2.9.4 उद्यान में

वर्तमान में नष्ट हो चुके किले के भीतर बड़े–बड़े बाग–बगीचें देखे जा सकते हैं। सम्भवतः ये बाग–बगीचे तब भी रहे हो जब किला आबाद तथा अपने पूर्ण वैभव पर था। किले के बुर्जों के 52 कुँओं में से अधिकांश का पानी बाग–बगीचों में सिंचाई हेतु भी प्रयुक्त किया जाता था।

4.2.9.5 अन्य उपयोग

यद्यपि किले के महल पूर्णतया नष्ट हो चुके है किन्तु इन राजसी महलों में शौचालय, स्नानागार, बाथ टेंक, जकूजी टेंक, पानी को गरम ठण्डा करने की प्रणाली आदि भी रही होगी। इन सभी में किले के कुँओं का पानी ही प्रयुक्त किया जाता होगा।

4.2.10 जल निकास प्रणाली

उपलब्ध साहित्यक विवरणों एवं मूल स्रोतों से किले की जल निकास प्रणाली के बारे में विस्तृत विवरण नहीं मिल पाता किन्तु स्थानीय निवासी शिव मन्दिर के पण्डित जी तथा राजेश दाधीच जी के साक्षात्कार एवं स्वयं अवलोकन के आधार शोधार्थी द्वारा किले की जल निकास प्रणाली का पता लगाया गया। किले के बुर्जों से लगभग 50 मीटर पहले किले के भीतर ईंटों की चिनाई से बनायी गयी छोटी नहरें या धोरें तथा थोड़ी–थोड़ी दूरी पर कुँए के समान पक्की चिनाई कर बनाये गये गर्त दृष्टिगत होते हैं। जब किले के विस्तृत मैदान में पानी बरसता है तो किले के मैदानी भाग में बने उद्यान (अधिक प्राचीन नहीं) में उपयोग के पश्चात् अतिरिक्त पानी इन नहरों के माध्यम से इन कुँऐनुमा गर्तों में चला जाता है। सभी गर्त एक विशेष ज्यामितिय आकार में बने हुए हैं तथा अपने तल से कुछ ऊँचाई पर एक नाले से जुड़े हुए हैं। यह नालें किले के बाहर खुलते हैं। बरसात का अतिरिक्त पानी धोरों के माध्यम से इन कृत्रिम गर्तों में चला जाता है। एक निश्चित गहराई तक जल से भर जाने के पश्चात् गर्तों का अतिरिक्त जल नालों के माध्यम से दुर्ग से बाहर निकल जाता है।[89]

4.2.11 जल प्रबन्धन का महत्त्व

दुर्ग ऐसी सामरिक स्थिति पर था कि बाहरी आक्रमणकारी द्वारा उत्तरी भारत पर विजय के लिए इसे जीतना तथा केन्द्रीय सत्ता को अपने साम्राज्य की सुरक्षा के लिए इसे अपने अधिकार में बनाए रखना आवश्यक था। अतः इस किले ने देश के अन्य

किलों की अपेक्षा सर्वाधिक लम्बे घेरे व आक्रमण झेले। अतः शासकों द्वारा किले की रक्षक सेना व शरण में आयी जनता की प्राथमिक आवश्यकता हेतु किले में जल प्रबन्धन किया जाना अनिवार्य था। इन संकटकालीन परिस्थितियों को ध्यान में रख कर किले के निर्माताओं तथा वास्तुविदों ने किले में जल की सतत् उपलब्धता को सुनिश्चित किया। इतिहास बताता है कि किले के भीतर दुर्ग रक्षकों को जल की कमी के कारण कभी आत्मसमर्पण नहीं करना पड़ा। अतः स्पष्ट है कि किले के भीतर जल की उपलब्धता के पर्याप्त इंतजाम किये गये थे, यहाँ जल की कभी कोई कमी नहीं रही, किले के सभी 52 कुँए सदानीरा बने रहे।

4.2.12 वर्तमान स्थिति

किला वर्तमान में जीर्णशीर्ण अवस्था में है। आक्रमणकारियों की विनाशलीला के पश्चात् समुचित सार–सम्भाल के अभाव में किला नष्ट होने की कगार पर है। महल व निवास स्थान पूरी तरह धूल धूसरित हो चुके हैं। समीप प्रवाहित घग्गर नदी लगभग विलुप्त हो चुकी है। सभी 52 बुर्जों पर बनाये गये 52 कुँओं में से मात्र तीन कुँए सुरक्षित बचे हुए हैं परन्तु उनमें भी पानी का अभाव है। गहन अवलोकन पर किले की जल संग्रहण, जल उत्थान व जल निकास प्रणाली के अवशेष मात्र ही नजर आते हैं। मुख्य प्रवेश द्वार के अतिरिक्त अन्य द्वार गिरने की कगार पर है।[90]

वर्तमान में यह किला भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग की देखरेख में है। संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन की अन्तर्राष्ट्रीय स्मारक एवं स्थल परिषद् शाखा ने प्रतिवर्ष अप्रेल माह की 18 तारीख को विश्वदाय दिवस के रूप में मनाने की घोषणा की है। इस घोषणा के क्रम में भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के जयपुर मण्डल ने अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर भटनेर दुर्ग के महत्त्व को दर्शाने हेतु 18 अप्रेल 2010 को विश्वदाय दिवस भटनेर किला हनुमानगढ़ में मनाया। किले के बुर्जों एवं द्वारों को गिरने से बचाने के लिए पुरातत्त्व विभाग इनमें मरम्मत कार्य भी करवा रहा है।[91]

सन्दर्भ

1. गायत्री, वीना, बीकानेर का जूनागढ़ दुर्ग : इतिहास तथा स्थापत्य, लघु शोध प्रबन्ध, बनस्थली विद्यापीठ, बनस्थली, टोंक, 2002, पृ 27

2. खत्री, दीनानाथ, बीकानेर राज्य का संक्षिप्त इतिहास, रा.हि.ग्र.अका., जयपुर, पृ 85
3. सिंह, करनी, बीकानेर राजघराने का केन्द्रीय सत्ता से सम्बन्ध, आर्ट पब्लिशर्स प्रा. लि. बीकानेर, 1968, पृ 3
4. ओझा, डॉ0 गौरीशंकर हीराचन्द, बीकानेर राज्य का इतिहास भाग प्रथम, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1939 पृ 3
5. साक्षात्कार, डॉ0 शिव कुमार भनोट, फोर्ट्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली दूरदर्शन।
6. कोठारी, गुलाब सं0, पत्रिका इयर बुक, पत्रिका प्रकाशन जयपुर, 2010, पृ 784
7. गायत्री, वीना, बीकानेर का जूनागढ़ दुर्ग : इतिहास तथा स्थापत्य, लघु शो. प्र., पूर्वोक्त, पृ 15 से साभार।
8. दयालदास की ख्यात, दशरथ शर्मा (अनु.), म.मा.पु.प्र., मेहरानगढ़, भाग 2 पृ 122
9. मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, रा.हि.ग्र.अका., जयपुर 2013, पृ 113
10. एन इन्टरोडक्शन टू जूनागढ़ फोर्ट बीकानेर, गर्वन्मेंट प्रेस, बीकानेर, पृ 1
11. चन्नी, जी.एस. एवं सिंह ज्ञानदेव, निर्देशक, फोर्ट्स ऑफ इण्डिया, एपिसोड़, दिल्ली दूरदर्शन।
12. साक्षात्कार, डॉ0 शिव कुमार भनोट, फोर्ट्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली दूरदर्शन।
13. चन्नी, जी.एस. एवं सिंह ज्ञानदेव, निर्देशक, फोर्ट्स ऑफ इण्डिया, पूर्वोक्त।
14. उक्त।
15. एन इन्टरोडक्शन टू जूनागढ़ फोर्ट बीकानेर, गर्वन्मेंट प्रेस, बीकानेर, पृ 1
16. सिंह, करनी, बीकानेर के राजघराने का केन्द्रीय सत्ता से सम्बन्ध, आर्ट पब्लिशर्स प्रा. लि. बीकानेर, 1968,
17. गोट्ज, हरमन, आउटलाईन ऑफ एन आर्ट हिस्ट्री ऑफ बीकानेर, राजस्थान भारती, भाग 1 अंक 2, जुलाई 1946, पृ 7
18. सोढ़ी, हुकुम सिंह, गाईड टू बीकानेर, पृ. 8
19. राठौड़, भूर सिंह, बीकानेर दर्शन, बीकानेर, 1980, पृ. 25
20. गोट्ज, हरमन, आउटलाईन ऑफ एन आर्ट हिस्ट्री ऑफ बीकानेर, राजस्थान भारती, पूर्वोक्त, पृ. 12
21. उक्त, पृ. 13
22. उक्त, पृ. 4
23. भनोट, शिव कुमार, जूनागढ़ (बीकानेर) का दुर्ग स्थापत्य– एक अध्ययन, वशिष्ट वी.के. सं., कल्चरल हेरिटेज ऑफ राजस्थान, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, बनस्थली विद्यापीठ, बनस्थली, 2008, पृ. 81
24. गोट्ज, हरमन, आउटलाईन ऑफ एन आर्ट हिस्ट्री ऑफ बीकानेर, राजस्थान भारती, पूर्वोक्त, पृ. 16
25. भनोट, शिव कुमार, जूनागढ़ (बीकानेर) का दुर्ग स्थापत्य– एक अध्ययन, पूर्वोक्त, पृ. 82
26. गोट्ज, हरमन, आउटलाईन ऑफ एन आर्ट हिस्ट्री ऑफ बीकानेर, राजस्थान भारती, पूर्वोक्त,

पृ. 16

27. भनोट, शिव कुमार, जूनागढ़ (बीकानेर) का दुर्ग स्थापत्य– एक अध्ययन, पूर्वोक्त, पृ. 82
28. उक्त, पृ. 83
29. मिश्र, रतन लाल, राजस्थान के दुर्ग, साहित्यागार, जयपुर, 2008, पृ. 116
30. चन्नी, जी.एस. एवं सिंह ज्ञानदेव, निर्देशक, फोर्ट्स ऑफ इण्डिया, पूर्वोक्त।
31. ओझा, डॉ0 गौरीशंकर हीराचन्द, बीकानेर राज्य का इतिहास भाग प्रथम, पूर्वोक्त, पृ 44 एवं मिश्र, रतनलाल, राजस्थान के दुर्ग, पूर्वोक्त, पृ. 116
32. दयालदास की ख्यात, दशरथ शर्मा (अनु.), महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, मेहरानगढ़ दुर्ग, भाग 2 पृ 122
33. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, बीकानेर राज्य का इतिहास भाग प्रथम, पूर्वोक्त, भाग 1, पृ. 44
34. उक्त।
35. एन इन्टरोडक्शन टू जूनागढ़ फोर्ट बीकानेर, गर्वन्मेंट प्रेस, बीकानेर, पृ 2
36. शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान के इतिहास के स्रोत, भाग 1, जयपुर 1973, पृ 172
37. केवलिया, ओम, द बोन्टीफुल बीकानेर, टाइम्स ऑफ राजस्थान प्रकाशन, बीकानेर, 1983, पृ 13
38. भनोट, शिव कुमार, जूनागढ़ (बीकानेर) का दुर्ग स्थापत्य– एक अध्ययन, पूर्वोक्त, पृ. 80
39. उक्त, पृ. 81
40. सोढ़ी, हुकुम सिंह, गाईड टू बीकानेर, जयपुर, पृ. 8
41. चन्नी, जी.एस. एवं सिंह ज्ञानदेव, निर्देशक, फोर्ट्स ऑफ इण्डिया, पूर्वोक्त।
42. उक्त।
43. भनोट, शिव कुमार, जूनागढ़ (बीकानेर) का दुर्ग स्थापत्य– एक अध्ययन, पूर्वोक्त, पृ. 83
44. मिश्र, रतन लाल, राजस्थान के दुर्ग, साहित्यागार, जयपुर, 2008, पृ. 117
45. एन इन्टरोडक्शन टू जूनागढ़ फोर्ट बीकानेर, पूर्वोक्त, पृ 3
46. सिंह, करनी, बीकानेर राजघराने का केन्द्रीय सत्ता से सम्बन्ध, पूर्वोक्त, पृ 136–139
47. मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पूर्वोक्त, पृ 117
48. चन्नी, जी.एस. एवं सिंह ज्ञानदेव, निर्देशक, फोर्ट्स ऑफ इण्डिया, पूर्वोक्त।
49. उक्त।
50. एन इन्टरोडक्शन टू जूनागढ़ फोर्ट बीकानेर, पूर्वोक्त, पृ 3
51. ऑफिसियल वेब साइट, जूनागढ़ दुर्ग – डब्ल्यू. डब्ल्यू. डब्ल्यू.जूनागढ. ओर्ग
52. मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पूर्वोक्त, पृ 117–118
53. केवलिया, ओम, द बोन्टीफुल बीकानेर, पूर्वोक्त, पृ 3
54. चन्नी, जी.एस. एवं सिंह ज्ञानदेव, निर्देशक, फोर्ट्स ऑफ इण्डिया, पूर्वोक्त।
55. वेब पेज, डब्ल्यू. डब्ल्यू. डब्ल्यू.जूनागढ. ओर्ग
56. उक्त।

57. केवलिया, ओम, द बोन्टीफुल बीकानेर, पूर्वोक्त, पृ 10
58. खत्री, दीनानाथ, बीकानेर राज्य का संक्षिप्त इतिहास, अनूप संस्कृत पुस्तकालय, 1978 पृ 117
59. उक्त पृ. 118
60. व्यक्तिगत साक्षात्कार, डॉ0 शिव कुमार भनोट, व्याख्याता एवं इतिहासकार, दूरदर्शन धारावाहिक : फोर्ट्स ऑफ इण्डिया, जूनागढ़।
61. सिंह, करनी, बीकानेर के राजघराने का केन्द्रीय सत्ता से सम्बन्ध, आर्ट पब्लिशर्स प्रा. लि. बीकानेर, 1968
62. केवलिया, ओम, द बोन्टीफुल बीकानेर, पूर्वोक्त, पृ. 11
63. उक्त पृ. 14
64. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, बीकानेर राज्य का इतिहास भाग प्रथम, पूर्वोक्त, भाग 1, पृ. 302—304
65. उक्त पृ 305 एवं नैणसी मुहणोत, मुहणोत नैणसी री ख्यात, अनु. सं. मनोहर सिंह राणावत, श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ, 1987, पृ. 201
66. जोधपुर राज्य की ख्यात, म.मा.पु.प्र. मेहरानगढ़, भाग 2, पृ, 147
67. मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पूर्वोक्त, पृ 115
68. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, बीकानेर राज्य का इतिहास भाग प्रथम, पूर्वोक्त, भाग 1, पृ. 315
69. चौधरी, सरिता, बीकानेर राज्य में जूनागढ़ का जल प्रबन्धन, शोधश्री, जनवरी—मार्च 2015, पृ 068
70. उक्त, पृ. 070
71. उक्त, पृ. 071
72. उक्त, पृ. 071—072
73. कोन्स, जी.जे., निर्देशक, इण्डियन टाउन स्टड़ीज—बीकानेर, सीक्रेट्स ऑफ इण्डिया 1934, वृत्तचित्र, गाउमोन्ट ब्रिटिश इन्सट्रक्शनल प्रोडक्शन, लन्दन।
74. कोठारी, गुलाब सं0, पत्रिका इयर बुक, पूर्वोक्त पृ. 744
75. देवड़ा, जी.एस.एल., पूर्व मध्यकालीन भारत के अभिज्ञान रूप—तराइन एवं तबरहिन्द, इन्स्ट्यूट ऑफ जे.एस. गहलोत, 1995 पृ 89
76. भाटी हरिसिंह, भटनेर का इतिहास, कवि प्रकाशन, बीकानेर, 2000, पृ 84
77. भाटी, हरिसिंह, गजनी से जैसलमेर भाटियों का पूर्व मध्यकालीन इतिहास, सांखला प्रिन्टर्स, बीकानेर, 1998, पृ 529
78. भाटी, हरिसिंह, गजनी से जैसलमेर भाटियों का पूर्व मध्यकालीन इतिहास, पूर्वोक्त, पृ. 530
79. भाटी, रघुवीर सिंह, भाटी वंश का दूसरा साका भटनेर (हनुमानगढ़), शोध पत्र, जौहर साका स्मारिका, 2007, सुशीला लड्ढा प्र. सं., जौहर स्मृति संस्थान, चित्तोड़गढ़, 2007, पृ 89
80. देवड़ा, जी.एस.एल., पूर्व मध्यकालीन भारत के अभिज्ञान रूप — तराइन एवं तबरहिन्द, पूर्वोक्त, पृ 89

81. भाटी, हरिसिंह, गजनी से जैसलमेर भाटियों का पूर्व मध्यकालीन इतिहास, पूर्वोक्त, पृ 543 एवं गुप्ता, सुरेन्द्र पाल, हनुमागढ़ : कुछ ऐतिहासिक प्रसंग, शोध पत्र, वैचारिकी, भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर, अक्टूबर–दिसम्बर, 2009, भाग 25 अंक 3 पृ 25
82. भाटी, हरिसिंह, गजनी से जैसलमेर भाटियों का पूर्व मध्यकालीन इतिहास, पूर्वोक्त, पृ. 555
83. शोध यात्रा, भटनेर दुर्ग, दि. 10.09.2014
84. भाटी हरिसिंह, भटनेर का इतिहास, पूर्वोक्त, पृ. 85
85. भाटी, हरिसिंह, गजनी से जैसलमेर भाटियों का पूर्व मध्यकालीन इतिहास, पूर्वोक्त, पृ. 556
86. शोध यात्रा, भटनेर दुर्ग, दि. 10.09.2014
87. भाटी हरिसिंह, भटनेर का इतिहास, पूर्वोक्त, पृ. 84
88. व्यक्तिगत साक्षात्कार, सुरेन्द्र पाल गुप्ता, प्राचार्य, राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, भटनेर दुर्ग, एवं पुजारी, शिव मन्दिर, भटनेर दुर्ग, दि. 15.9.2014
89. शोधार्थी द्वारा गहन अवलोकन, भटनेर दुर्ग, दि. 10–15.9.2014
90. शोध यात्रा, भटनेर दुर्ग, दि. 12.09.2014
91. भटनेर दुर्ग – हनुमानगढ, पर्यटक सूचना फोल्डर, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, जयपुर मण्डल, जयपुर, 2010 पृ 1–5

अध्याय पंचम

दक्षिणी राजस्थान के प्रमुख दुर्गों का इतिहास, स्थापत्य एवं जल प्रबन्धन

प्रस्तुत अध्याय में दक्षिणी राजस्थान के दो किलों झालावाड़ के गागरोन तथा चित्तोड़गढ़ के चित्तौड़गढ़ दुर्ग के इतिहास, स्थापत्य एवं जल प्रबन्धन का अध्ययन किया गया है।

5.1 गागरोन दुर्ग

खींची राजपूतों की शूरवीरता व क्षात्र धर्म का प्रतीक जलदुर्ग गागरोन राजस्थान के सुदृढ़ एवं सौन्दर्यशाली दुर्गों में से एक है।

5.1.1 दुर्ग की स्थापना व नामकरण

किले के निर्माण के सम्बन्ध में इतिहासकारों द्वारा अनेक मत प्रतिपादित किए गए हैं। कर्नल टॉड का मानना है कि सन् 812 ई0 के आसपास चित्तौड़ पर खुरासान बादशाह द्वारा किए गए आक्रमण के विरोध में गागरोन के खींची शासकों ने चित्तौड़ का साथ दिया था। इससे पता चलता है कि सन् 812 से पूर्व गागरोन दुर्ग का निमार्ण हो चुका था तथा इस पर खींची राजपूतों का अधिकार था। टॉड का यह मत अमान्य है।

मुंशी मूलचन्द के अनुसार गागरोन दुर्ग के निर्माणकर्ता गोगा चौहान थे जो तीसरी सदी विक्रमी में शासक थे जिन्होंने रणथम्बोर लूट के धन से गागरोन दुर्ग का निर्माण कराया था। उक्त मत भी अमान्य है।

डोड़वंशी राजाओं द्वारा गागरोन दुर्ग का निर्माण कराये जाने का मत इतिहासकारों में सर्वमान्य है।[1] गागरोन पर 1250 ई0 तक बीजलदेव डोड़ का शासन था।[2] इसके समय दुर्ग डोड़गढ़ तथा क्षेत्र डोड़वाड़ा कहलाता था। इन्हीं शासको ने दुर्ग का निर्माण कराया। इस वंश के बाद खींची राजपूत शासकों ने कई पीढ़ियों तक इस पर शासन किया तथा अपनी आवश्यकतानुसार दुर्ग में निर्माण कार्य कराते रहे तत्पश्चात् कोटा राज्य के अधीन भी दुर्ग का विस्तार हुआ। दुर्ग का वर्तमान स्वरूप इन्हीं शासकों की देन है।

प्रारम्भिक निर्माणकर्ता डोड़वंशी शासकों के नाम पर यह डोड़गढ़, धूलरगढ़ या धूलगढ़ कहलाया बाद में 'गागरूण' फिर 'गागरोन' नाम से विख्यात हुआ। विजयी शासकों द्वारा मुस्तफाबाद, काकरून[3] आदि नाम भी दिये गये। मुआसिरे महमूद शाही के लेखक शिहाब हाकिम ने गागरोन दुर्ग को 'हिन्दुस्तान के समस्त किलों के कण्ठहार का बिचला मोती' कहा।

5.1.2 भौगोलिक स्थिति व जलवायु

यह दुर्ग दक्षिण–पूर्वी राजस्थान में वर्तमान कोटा शहर से 60 कि.मी. तथा झालावाड़ से 4 कि.मी. तथा चित्तौड़गढ़ से 217 कि.मी. दूरी पर स्थित है। यह अरावली श्रेणी की मुकुन्दरा पर्वत माला की धरातल से 340 मीटर ऊँची पहाड़ी पर निर्मित किया गया है जिसकी समुद्र तल से ऊँचाई लगभग 1654 फीट है।[4] इसकी स्थिति $24^0$37' उत्तरी अक्षांश एवं $76^0$17' पूर्वी देशान्तर है। दुर्ग प्राचीन मालवा प्रदेश एवं कोटा राज्य के बीच के क्षेत्र में बना है। यहाँ की जलवायु शुष्क है, वर्षा का औसत 84.43 से.मी. वार्षिक है।[5]

5.1.3 दुर्ग का उपयोग व महत्त्व

राजपरिवार के महल, घोड़ो के अस्तबल, मन्दिर, जौहर कुण्ड़, जल संग्राहक, आयुधशाला आदि से स्पष्ट है कि किले का उपयोग राजपरिवार एवं उनके सेवकों के रहने के स्थान के साथ–साथ राजधानी का केन्द्र, सेना का मुख्यालय, अस्त्र–शस्त्र निर्माण केन्द्र आदि में भी किया जाता था।

प्राचीन मार्गों की दृष्टि से गागरोन दुर्ग मालवा एवं कोटा राज्य के निकट तथा दिल्ली से मालवा, काशी से पुष्कर तथा द्वारिका जाने वाले मार्ग पर स्थित था साथ ही यह मालवा, मेवाड़, हाड़ौती का केन्द्र स्थल भी था, इस पर अधिकार करके उक्त तीनों

क्षेत्रों पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता था।[6] यह दुर्ग मालवा की ओर से मराठों के कोटा राज्य पर होने वाले आक्रमणों को रोकने हेतु सुरक्षा चौकी के रूप में महत्त्व रखता था। मध्ययुग में इस पर अधिकार करना प्रतिष्ठा का द्योतक था।[7]

5.1.4 दुर्ग का इतिहास

सर्वप्रथम इस क्षेत्र में दुर्ग निर्माणकर्ता डोड़ शासकों ने शासन किया।[8] बीजलदेव डोड़ (लगभग 1250 ई0) इस वंश का सर्वप्रमुख शासक था।

चौहान कुलकल्पद्रुम के प्रथम भाग के 13 वें प्रकरण के अनुसार चौहानों की नाडौल शाखा के देवसिंह (धारु) ने मालवा में डोड़वंशी बीजलदेव डोड़ को मारकर 1194 ई0 में धूलरगढ़ पर अधिकार कर लिया तथा इसका नाम गागरुन रखा।[9] उक्त घटनाक्रम का वर्णन खिलचीपुर की ख्यात[10] तथा मुहनोत नैणसी री ख्यात[11] में भी अलग अलग रूप में मिलता है। देवसिंह ने ही गागरोन पर खींची शासकों के स्वतन्त्र खींची राज्य की नींव डाली तथा 21 वर्ष राज्य किया।[12] देवसिंह के बाद जीतराव खींची (जैतसी) ने 30 वर्ष शासन किया। जैतसी के समय 1303 ई0 में अलाउद्दीन खिलजी ने गागरोन पर आक्रमण किया जिसका जैतसी ने सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया।[13] इसके समय सूफी सन्त ख्वाजा हमीदुद्दीन चिश्ती गागरोन आए।[14] इन शासकों की पीढ़ी में पीपा राव (बप्पा जी) गागरोन के राजा बने।[15] इनके समय फिरोज तुगलक ने गागरोन पर आक्रमण किया। कहा जाता है कि फिरोज तुगलक को सूचना मिली कि गागरोन अजेय जल दुर्ग है तथा यहाँ के निवासी खिराज नहीं देते। इससे रुष्ट होकर फिरोज ने स्वयं गागरोन पर आक्रमण कर दिया। किन्तु गागरोन की सुदृढ़ सुरक्षा प्रणाली व पीपाजी के कुशल सैन्य नैतृत्व के कारण शाही सेना दुर्ग पर विजय प्राप्त नहीं कर सकी।[16] पीपाजी ने बाद में महान सन्त के रूप में प्रसिद्धि पायी। निःसन्तान होने के कारण अपने भतीजे कल्याणराव को गोद लिया व उसे राजपाट सौंप कर स्वामी रामानन्द को अपना गुरू बनाया। तत्पश्चात् भोजराज तथा उसके बाद अचलदास खींची ने 1409 ई0 में गद्दी सम्भाली।[17] अचलदास खींची ही गागरोन का सर्वाधिक वीर तथा ख्याति प्राप्त शासक था। इस समय पतनशील तुगलक वंश की निर्बल केन्द्रीय सत्ता के कारण प्रान्तीय सामन्त स्वयं को स्वतन्त्र शासक घोषित करने लगे। इसी क्रम में मालवा का सूबेदार दिलावर खाँ गोरी मालवा का स्वतन्त्र शासक बन बैठा। अब मालवा के लिए गागरोन आँखों की किरकिरी बनने लगा। मालवा के आगामी शासक होशंगशाह ने 1423 ई0 में अपनी विशाल सेना के साथ गागरोन पर आक्रमण कर दिया। अचलदास खींची

ने इसका डटकर मुकाबला किया। यह गागरोन के इतिहास का सबसे बड़ा व भयानक युद्ध था। इस युद्ध के आँखों देखे हालात पर 'अचलदास खींची री वचनिका' नामक ग्रन्थ में चारण कवि शिवदास गाड़ण ने विस्तृत व सजीव विवेचन किया है। एक पखवाड़े के इस महायुद्ध में अचलदास वीरगति को प्राप्त हुआ तथा राजपूत स्त्रियों ने किले के जौहरकुण्ड़ में जौहर किया। विजयी हौशंगशाह के पुत्र गजनी खाँ ने किले का कालीसिंध तक विस्तार कराया, प्राचीरों की मरम्मत करायी तथा बुर्ज बनवाए।[18] कुम्भलगढ़ प्रशस्ति[19] के अनुसार कुम्भा ने मालवा विजय से लौटते हुए गागरोन दुर्ग विजित कर अचलदास के पुत्र पल्हण को सौंप दिया। इस समय मालवा का शासक महमूद खिलजी था। मुआसिरे महमूदशाही[20] के अनुसार महमूद ने विशाल सेना के साथ गागरोन पर चढ़ाई कर दी। गागरोन दुर्ग के रक्षक धीरसिंह व शासक पल्हण की मृत्यु के बाद राजपूत योद्धा केसरिया बाना पहन कर शत्रु सेना पर टूट पड़े तथा वीरांगनाओं ने दुर्ग में जौहर किया। विजेता महमूद खिलजी ने दुर्ग की मरम्मत तथा कोट का विस्तार कराया। बाद में राणा सांगा ने गागरोन दुर्ग सहित मालवा का काफी विस्तृत भाग जीत लिया तथा मोदिनीराय को गागरोन का सामन्त बनाया। इससे क्रोधित होकर मालवा के शासक महमूदशाह द्वितीय ने गागरोन दुर्ग पर आक्रमण कर दिया परन्तु राणा सांगा ने गागरोन की रक्षार्थ स्वयं युद्ध क्षेत्र में उपस्थित होकर महमूदशाह द्वितीय को कैद कर लिया। कुछ समय बाद गुजरात के शासक बहादुरशाह ने मालवा सहित गागरोन पर अधिकार कर लिया।[21] मुगल सम्राट अकबर के समय मालवा का शासक बाजबहादुर था तथा गागरोन दुर्ग बाजबहादुर के ही अधीन था। 1561 ई0 में जब अकबर ने स्वयं मालवा पर आक्रमण किया तब गागरोन दुर्ग बाजबहादुर के किसी सामन्त के पास था उसने शाही सेना से युद्ध करने के स्थान पर दुर्ग अकबर को सौंप दिया।[22] अकबर ने इस दुर्ग में एक मेग्जीन (बारूदखाना) भी बनवाया। अकबर चित्तौड़ अभियान पर जाते समय गागरोन दुर्ग में रुका। दुर्ग प्रवास के दौरान ही अकबर की फैजी से प्रथम मुलाकात हुई तथा इस समय ही यह दुर्ग बीकानेर के नरेश कल्याणमल के पुत्र पृथ्वीराज राठौड़ को जागीर के रूप में दे दिया गया।[23] पृथ्वीराज राठौड़ ने अपनी अप्रतिम अमर कृति 'वेली क्रिसन रूकमणी री' की रचना गागरोन मे ही रह कर की थी।[24] बाद में जहाँगीर ने बूँदी के राव रतन हाड़ा को गागरोन दुर्ग प्रदान कर दिया।[25] मुगल सम्राट शाहजहाँ के समय गागरोन कोटा नरेश महाराव माधोसिंह को प्रदान किया गया, इसके साथ ही गागरोन दुर्ग पर कोटा नरेशों के शासन के युग का

आरम्भ हुआ। महाराव उम्मेद सिंह प्रथम के काल में उनके दीवान झाला जालिम सिंह ने दुर्ग की मरम्मत करवा कर इसका विस्तार कराया तथा अनेक गगनभेदी तोपें रखवाई जिनमें प्रसिद्ध रामबाण तोप भी एक थी। जालिम सिंह के समय दुर्ग में बारूदखाना, रिजर्व सेना की टुकड़ी, राजनैतिक कैदियों की जेल तथा मुद्रा निर्माण की टकसाल भी संचालित की गयी थी। 1817 ई0 में कोटा राज्य की अंग्रेजों से सन्धि के बाद यह दुर्ग अंग्रेजों के अधीन हो गया। आजादी के बाद यह दुर्ग कोटा जिले में तथा 1975 ई0 में झालावाड़ के जिला बनने पर झालावाड़ जिले में आ गया।

5.1.5 दुर्ग संस्कृति व साहित्य

दुर्ग की संस्कृति गंगा जमुनी तहजीब तथा हिन्दू मुस्लिम समन्वय की प्रतीक है। यह दो ऐसे महान सन्तों के जन्म, कर्म और भक्ति साधना का स्थल रहा है, जिन्होंने जाति, धर्म अथवा सम्प्रदायों के आडम्बरों से ऊपर उठ कर विश्व को भाईचारे, बन्धुत्व, ज्ञान, भक्ति, कर्म साधना एवं मानवता का सन्देश दिया। दुर्ग के ठीक सामने आहू एवं काली सिन्ध के पवित्र संगम स्थल पर गागरोन के शासक तथा रामानन्दी परम्परा के महान भक्ति सन्त राजर्षि पीपाजी की साधना गुफा, मन्दिर और चरण चिन्ह स्थित है। वहीं दुर्ग के भीतर महान सूफी संत ख्वाजा हमीदुद्दीन चिश्ती गागरोनी की दरगाह व मजार भी स्थित है। इन दोनों पवित्र स्थानों ने गागरोन दुर्ग को एक सामरिक स्थल के साथ–साथ तीर्थ स्थल भी बना दिया है। पीपा जी गागरोन के शासक थे जिन्होंने फिरोज तुगलक के आक्रमण को विफल किया। शासक होने के बाद भी उनका मन भक्ति भाव में था। अतः उन्होंने राजपाट छोड़कर महान सन्त रामानन्द का शिष्यत्व प्राप्त किया। रामानन्द ने पीपा जी को शिक्षा देते हुए कहा कि तू लोकहित के लिए प्रेमरस 'पी' और दूसरो को भी 'पा' (पिला)। इसी से वे पीपा कहलाए। ख्वाजा हमीदुद्दीन चिश्ती खरासानी खुरासान से अजमेर आए तथा ख्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह में सेवा की। ख्वाजा साहब के आशीर्वाद से वे गागरोन आए एवं इस भूमि को अपनी साधना एवं कर्म क्षेत्र बनाया। वे आजीवन यहीं रहे तथा शेख मिठ्ठा, सुल्तान–ए–मालवा तथा सरकार–ए–मालवा नाम से भी जाने गये।

जहाँ गागरोन दुर्ग को शौर्य एवं वीरता के प्रतीक के साथ–साथ भक्ति एवं सूफी दर्शन केन्द्र के लिए जाना जाता है; वहीं दुर्ग में रची गयी महान साहित्यक रचनाऐं दुर्ग के गौरवशाली अतीत की याद दिलाती हैं। वीर रस की महान कृति अचलदास खींची री वचनिका यहीं रची गयी तथा वेलि क्रिसन रुकमणी री का प्रणयन भी दुर्ग क्षेत्र में ही

हुआ साथ ही रूठी रानी के गीत (लाला मेवाड़ री बात) भी इसी दुर्ग के महलों में गाये गये।[26] जो आज भी राजस्थानी साहित्य की अमूल्य धरोहर एवं ऐतिहासिक दस्तावेजों के रूप में प्रमाण है। अचलदास खींची री वचनिका चम्पू शैली में रचा गया राजस्थानी गद्य साहित्य है। इसमें 1423 ई0 में मालवा के सुल्तान होशंगशाह और गागरोन के राजा अचलदास खींची के मध्य हुए महायुद्ध का आंखो देखा सजीव व सुन्दर वर्णन है। इसकी रचना अचलदास खींची के चारण कवि शिवदास गाडण ने की थी। बाद में वचनिका का सम्पादन व लेखन राजस्थान के अनेक विद्वानों ने भी किया। गागरोन दुर्ग में रचित पृथ्वीराज राठौड़ कृत वेलि क्रिसन रूकमणी री राजस्थान की डिंगल साहित्य की वेलि परम्परान्तर्गत शृंगार, वीर रस व भक्ति भाव युक्त अनुपम कृति है। यह खण्ड काव्य है, जिसमें 304 खण्ड है। इसी प्रकार गागरोन दुर्ग से जुड़ी कृति 'लाला मेवाड़ी री बात' में गागरोन शासक अचलदास खींची की दो रानियों लाला मेवाड़ी तथा उमादे से सम्बन्धित गीत या दोहे हैं जिन्हें उमादे की सहेली झीमा चारणी ने गागरोन के महलों में रात भर गाए थे।[27] इस कथात्मक गीतमाला को राजस्थानी साहित्य के अनेक विद्वानों ने सम्पादित किया। जिनमें दीनानाथ खत्री, बदरी प्रसाद सांकरिया, रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत प्रमुख हैं। इन गीतों को राजस्थानी साहित्य जगत में रूठी रानी के दोहे, झीमा चारणी के गीत, माँझल रात के गीत, रानी उमादे के गीत, भावन रा दुहा, झीमा चारणी के गीत आदि विभिन्न नामों से भी संकलित किया गया है। इसमें गागरोन दुर्ग के वैभव का भी वर्णन है।

5.1.6 दुर्ग रचना

दुर्ग के चतुर्दिक आमझर वन फैला हुआ है। इस वन में अनेक हिंसक व विषधारी जीव जन्तु रहते थे जो आक्रमणकारियों के दुर्ग तक पहुँचने के मार्ग में पहली बाधा थे। यह वन दुर्ग को वन दुर्ग की सँज्ञा भी प्रदान करता है। इसी वन में हीरामन तोते पाये जाते थे। इन तोतो के लिए प्रसिद्ध था कि वे मनुष्य की हूबहू आवाज निकाल सकते थे। कहा जाता है कि चित्तौड़ की रानी पद्मिनी के पास भी इसी प्रजाति का तोता था। दुर्ग के प्राकृतिक वैभव को देखकर टॉड ने लिखा है कि

> "independent of ancient associations, there is a wild grandeur about gagrown, which makes it well worthy of a visit"

दुर्ग की लम्बाई 1 कि.मी. तथा चौड़ाई 350 मीटर है।[28] शास्त्रों में वर्णित दुर्ग भेद के अनुसार इसे सैन्य दुर्ग, जल दुर्ग, वन दुर्ग तथा गिरी दुर्ग की सँज्ञाऐं दी जा सकती

है। दुर्ग के तीन ओर प्रवाहित होने वाली काली सिन्ध व आहू नदियाँ दुर्ग को दुर्भेद प्राकृतिक सुरक्षा प्रदान करती है। इन नदियों से प्राप्त सुरक्षा के कारण दुर्ग को मुख्यतः जल दुर्ग की सँज्ञा दी गयी है। इन नदियों का संगम स्थल समेलजी कहलाता है। संगम स्थल के समीप गागरोन के पूर्व प्रतापी नरेश तथा बाद में सन्त बने पीपा जी का मन्दिर, साधना गुफा व पवित्र चरण चिन्ह विराजमान हैं। इसे पीपा जी की समाधी कहा जाता है।[29] पीपा जी का यह विशाल मन्दिर क्षेत्रवासियों का विशेष अराध्य स्थल रहा है। आहू नदी पर किले की दरगाह की ओर जाने वाले रास्ते पर एवं संगम स्थल समेलजी के नजदीक कालीसिन्ध नदी पर पुल बने हैं। आक्रमणकारियों की सूचना मिलने पर इन पुलों को तोप से उड़ा दिया जाता था ताकि शत्रु सेना दुर्ग में प्रवेश न कर सके।

नदियों के बीच ऊँची मुकन्दरा पहाड़ियों की बड़ी–बड़ी अटूट चट्टानों पर बगैर नींव[30] के दुर्ग का निमार्ण किया गया है। दुर्ग का स्थापत्य अनूठा है इसे इस प्रकार निर्मित किया गया है कि इसकी बनावट पहाड़ी की बनावट के अनुरूप हो। किले की प्राचीर पहाड़ी के समान काले भूरे पाषाण से बनी है जिससे ये पहाड़ी का ही भाग नजर आती है तथा दूर से देखने पर किले के स्थान पर केवल पर्वतमाला ही दिखाई देती है। जिससे किले की स्थिति का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। मूल दुर्ग गागरोन ग्राम की प्रथम प्राचीर से घिरा हुआ है जिससे गाँव के दुर्ग के भीतर बसे होने तथा ग्राम की प्राचीर से ही दुर्ग के शुरू होने का भ्रम उत्पन्न होता है, परन्तु ऐसा नहीं है।[31]

गागरोन दुर्ग अनेक काल खण्डों में निर्मित व विस्तारित हुआ है। इसके निर्माण के प्राचीन मध्य व आधुनिक काल को परखा जा सकता है। भारतीय सांस्कृतिक निधि की गागरोन रिपोर्ट[32] में दुर्ग के तीन बार विस्तारित होना बताया गया है। प्रथम बार जौहर कुण्ड से मधुसूदन मन्दिर तक, द्वितीय बार लाल दरवाजे से कृष्ण दरवाजे तक तथा तीसरी बार नक्कारखाने से भैरवपोल तक एवं गणेश पोल से रामबुर्ज तक बना। गागरोन के इतिहास को देखने पर ज्ञात होता है कि डोड़ शासकों के समय जब दुर्ग प्रथम बार बना तब यह छोटा रहा होगा परन्तु 1250 ई0 में खींची वंश के प्रथम शासक देवन सिंह ने दुर्ग का विस्तार कराया।[33] बाद में हौशंगशाह के पुत्र गजनी खाँ ने विशाल रूप देकर इसकी प्राचीरों को कालीसिन्ध तक पहुँचाया।[34] कोटा राज्य के शासन के समय जालिम सिंह द्वारा मन्दिर व टकसाल बनवाकर परकोटे का सुदृढ़ीकरण करवाया गया।[35] जिसे आज भी जालिम कोट कहते है।

नदी, संगम स्थल तथा पुल पार कर दुर्ग की पहाड़ी की तलहटी में आने पर

दुर्ग का प्रथम प्रवेशद्वार नजर आता है। पूर्वाभिमुखी होने के कारण इसे सूरज पोल कहा जाता है। इस द्वार की छत पर सुन्दर चित्रकारी बनी हुई है। चित्रकला के क्षेत्र में इन चित्रों का विशेष महत्त्व है। द्वार के ऊपर दो छोटी बुर्जियाँ हैं तथा द्वार से जुड़ा एक परकोटा है इस परकोटे को जालिम कोट कहा जाता है। क्योंकि इसे जालिम सिंह ने बनाया था। द्वार पर विशाल लकड़ी का दरवाजा है जिस पर नुकीली कीले लगी हैं। द्वार के बायीं ओर मकराने का अभिलेख है। द्वार के ठीक सामने पूर्वाभिमुखी मदनमोहन जी का मन्दिर है। मन्दिर स्वयं छोटे से कोट से घिरा है। गर्भगृह के ऊपर गुम्बद है। मन्दिर के प्रदक्षिणा पथ पर देवताओं के चित्र बनाए गए हैं। सम्भवतः यह कोटा राज्य का राजमन्दिर था। मन्दिर के बायीं ओर एक और मन्दिर है जो छीपा जाति का राम मन्दिर कहलाता है। इसमें सुन्दर प्रदक्षिणा पथ तथा मेहराबदार स्तम्भ बने हैं। निज मन्दिर के समक्ष चबूतरे पर 7 फुट खड़े हनुमान जी की विशाल प्रतिमा स्थापित है। मन्दिर के बाहर एक अभिलेख है जिसमें कोटा महाराव उम्मेद सिंह का नाम है। भित्तियों पर अन्य धार्मिक चित्र भी बने हुए हैं। मदनमोहन जी के मन्दिर के पास से नदी में उतरने का मार्ग है जो राजघाट तक जाता है। इसके आगे लक्ष्मण घाट तथा पठानी घाट बने है। राजघाट के ऊपरी प्रवेश द्वार के निकट दाहिनी ओर ऊँचे चबुतरे पर एक सुन्दर मस्जिद बनी है। सम्भवतः यह मस्जिद दुर्ग का निर्माण करने वाले कारीगरों के लिए इबादत हेतु बनवायी गयी थी। मस्जिद के ठीक सामने किले का प्रमुख द्वार गणेश पोल स्थित है। द्वार के पाषाण खण्डों में मस्जिदनुमा संरचना है। जो सम्भवतः किले पर मुगल आक्रमण रोकने हेतु बनायी गयी होगी।

गणेश पोल के ठीक सामने पाषाणी पुल के नीचे 50 फीट गहरी व 25 फीट चौड़ी खाई है जो गोल जलबुर्जी के अन्दर से आरम्भ होकर परकोटे के सहारे दुर्ग के दक्षिण–पश्चिम क्षेत्र की रक्षा करते हुए पुल के नीचे होते हुई उत्तर में नदी से मिल जाती है। गणेश पोल के वृहद लकड़ी के दरवाजों पर लोहे की कीले लगी हुई हैं। इसके ऊपर तीन विशाल बुर्ज हैं जिन पर खडे होकर आक्रमणकारियों से दुर्ग की रक्षा की जाती थी।[36] इस बुर्ज को चूड़ी बुर्ज कहते है। यहाँ पर रखी तोपों से गोले दागकर खाई के ऊपर के लकड़ी के पुल को उड़ा दिया जाता था। द्वार पर गणेश जी की मूर्ति पधराई गयी है, इसी कारण इसे गणेश पोल कहा जाता है। पोल के भीतर द्वारपालों के कक्ष भी बने हैं। पोल की छत पर सुन्दर चित्रकारी मौजूद है। इसकी ऊँचाई लगभग 25 मीटर है।[37] गणेश पोल से आगे चलने पर अन्य दरवाजा आता है, द्वार के ऊपर के

तिबारे को नक्कारखाना कहते है इसमें राजा के सम्मान में नगाड़ें बजाए जाते थे। इस द्वार के आगे द्वार–प्रहरियों के आवास भी बने हुए हैं। नक्कार खाने के आगे लाल पत्थरों से बना दरवाजा है जिसे लाल दरवाजा कहते है। दरवाजे के एक स्तम्भ पर एक अभिलेख भी अंकित है। नक्कारखाने के सामने जौहर कुण्ड है। कुण्ड से आगे बायीं तरफ एक छतरी बनी है इसमें तलवारनुमा कटार की प्रतिष्ठा कराई गयी थी, जिससे इसे कटार मल जी की छतरी कहते है। यह कटार वर्तमान में संग्रहालय में रखी हुई है। छतरी के आगे महल बने है। इनमें शीश महल भी एक है।[38] महलों के दाहिनी ओर 5 कुँए हैं। कुँओं के आगे विशाल चौक में दो मंजिला भवन है जिसे दरीखाना कहते है। यह राजपूत शैली में बना है।

दरीखाना के निकट दो मंजिला जनाना महल है। महल की दीवारों पर पूर्व में सुन्दर चित्र तथा लेख अंकित थे। महल के उत्तर–पश्चिम में दो कलात्मक झरोखे भी बने हैं। दरीखाने के आगे द्वारिकाधीश का मन्दिर है, यह शिखरहीन व गुम्बदहीन है। मन्दिर के आगे भैरवपोल आता है। इसमें घुमावदार मार्ग से प्रवेश किया जाता है। इसके विशाल लकड़ी के दरवाजो पर नुकीली कीले भी लगी हैं। इसके बायीं ओर सती का स्थान तथा इसके आगे बोबस भैरू मन्दिर है। द्वार के दोनों ओर दो अभिलेख हैं। जिनके अनुसार द्वार का जीर्णोद्धार अकबर के सेनापति अधम खाँ ने करवाया था। इस स्थान की पूजा रानियों ने जौहर से पहले की थी। भैरव पोल के आगे गागरोन के महान शासक अचलदास का महल है।[39] भैरव पोल के ठीक पीछे बायीं ओर मधुसूदन जी का मन्दिर है, जिसका निर्माण कोटा महारावल दुर्जनसाल ने करवाया था। मन्दिर पूर्वाभिमुखी है तथा राजपूती शैली में बना है। मन्दिर की दीवारों व गवाक्षों में देवी देवताओं की सुन्दर चित्रकारी है। मन्दिर की छत ठोस लकड़ी की बनी हुई है। वर्तमान में मन्दिर में कोई मूर्ति नहीं है। मधुसूदन मन्दिर के आगे दाहिनी ओर सिलहखाना (शस्त्रागार) है, जिसमें शस्त्रों को रखा जाता था। इसके निकट तोपखाना भी है, यहाँ तोपे बनायी जाती थी। शस्त्रागार के ठीक सामने बारूदखाना है जिसमें दो मुख्य छोटे प्रवेश द्वार है। इसका तलभाग कच्चा है जिसमें मिट्टी की दीवारें बनाकर छोटी होजें बनायी गयी हैं। इतिहासकार मूलचन्द[40] के अनुसार गागरोन दुर्ग में सम्राट अकबर ने गोला बारूद का भण्डार मेगज़ीन बनवाया था। बारूदखाने के आगे परकोटे के मध्य छोटा दरवाजा है जिसे कृष्ण दरवाजा कहते है। इसके स्तम्भ पर एक अभिलेख भी है जो अभी तक अपठनीय है। दरवाजे के आगे दाहिनी ओर प्रहरियों के कक्ष बने है। इन कक्षों के नीचे

अनेक तलघर बने हुए हैं, सम्भवतः ये तलघर भैरवपोल तक बने होंगे। कृष्ण दरवाजे के आगे सती स्थल है, जहाँ अनेक जातियों की सती स्त्रियों के स्तम्भ मौजूद हैं। जिनमें मेड़तवाल महाजनों, विजयवर्गीय गोत्र कांपड़ी, अचौलिया गोत्र, गाँधी गोत्र, करोडिया गोत्र एवं सोनी गोत्र की सतियों के प्रतीक स्तम्भ प्रमुख है। आगे बढ़ने पर दुर्ग के परकोटे के मध्य एक साधारण द्वार है जो सुदृढ़ बुर्ज से आरक्षित है। इस द्वार को सूरजपोल कहते है। इसके आगे किसी पठान पिता पुत्र की दो जुड़वा कब्रे हैं।[41] उक्त स्थल के आगे एक विशाल एवं अतिसुन्दर बुर्ज है। जिसे 'रामबुर्ज' कहते है। बुर्ज से घूमती हुई नदी, संगम स्थल एवं पुल सहित प्रकृति के सौन्दर्य का नजारा देखा जा सकता है। यह गोल बुर्ज विशाल पत्थरों से बगैर नींव के बनाया गया है[42] जिसकी ऊँचाई लगभग 20 मीटर है। इसके निर्माता कोटा के महाराव रामसिंह थे।[43] बुर्ज पर विशाल पार्वती तोप स्थापित थी। कालीसिंध नदी बुर्ज को नीचे से छू कर गुजर रही है। रामबुर्ज के ठीक नीचे बीच नदी में चट्टान पर हाथी का सुन्दर मस्तक बना हुआ है जिसे 'भूरा हाथी' कहते है।[44] मान्यता है कि हजरत मिठ्ठे साहब इसी भूरे हाथी पर बैठ कर गागरोन आए थे इसलिए भूरे हाथी का धार्मिक महत्त्व है। रामबुर्ज से दक्षिण की ओर गणगौर घाट व अँधेर बावड़ी है। आगे लक्ष्मण बुर्ज व गोरधन बुर्ज है। गोरधन बुर्ज के अन्दर एक छोटा कक्षनुमा आशादेवी का मन्दिर बना हुआ है।[45]

इसके अतिरिक्त सूरज पोल के सामने से पश्चिम की ओर का मार्ग मदनमोहन जी मन्दिर व राम मन्दिर से होता हुआ सीधा दरगाह तक जाता है साथ ही गणेश पोल से एक अन्य मार्ग दुर्ग के अन्तिम द्वार 'धूधस द्वार' तक जाता है, जहाँ अनके पुरानिधियाँ है। गणेश प्रतिमा की छतरी के नीचे एक अभिलेख भी स्थापित है। छतरी के आगे का मार्ग एक चौराहे के रूप में है। इस स्थल को चौपड़िया कहा जाता है। चौपड़िया के निकट एक दुमंजिला देवालय है। इसके द्वार पर दो अभिलेख लगे हैं। देवालय के पास से एक मार्ग पठानी घाट को जाता है। चौपड़िया से आगे चलने पर मार्ग में अनेक भग्नावास दिखाई देते हैं। इस क्षेत्र को राम मोहल्ला कहा जाता है। राम मोहल्ले में राम मन्दिर तथा महल बने हुए हैं। इन महलों के आगे परकोटे का पाषाणी द्वार है जिसे नन्द पोल कहते है, यह मुगल स्थापत्य शैली में निर्मित है। नन्द पोल के सामने रावला है जिसमें रानियों का निवास स्थान था। वर्तमान में रावले में राजकीय माध्यमिक विद्यालय संचालित है। धूधस द्वार इस दुर्ग का अन्तिम मुख्य द्वार है। दुर्ग के बाहर बलिण्डा घाट एवं बलिण्डा घाट के गणेश जी भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। बलिण्डा गणेश

जी के ठीक सामने एक घना जंगल है जिसमें एक विशाल पाषाणी घाटी (कराई) है। इस घाटी को मौत की घाटी तथा चोटी को गिद्ध कराई कहा जाता है। इस पहाड़ी चोटी की ऊँचाई 307 फीट है। अपराधियों को इस चोटी से धक्का देकर मौत की सजा दी जाती थी, नीचे गिर कर मरने के बाद अपराधी का शरीर गिद्ध नोच नोच कर खा जाते थे। इसलिए इसे उक्त नाम दिये गये।

नन्दपोल से एक रास्ता ख्वाजा हमीदुद्दीन चिश्ती गागरोनी की दरगाह तक जाता है। दरगाह के सामने एक प्रवेश द्वार है जिसे मिट्ठेबारी गेट कहा जाता है।[46] मिट्ठेबारी गेट से आगे दरगाह का मुख्य द्वार है जो बुलन्द दरवाजा कहलाता है, इसका निर्माण औरंगजेब के शासन काल में हुआ था। दरगाह के पीछे एक मस्जिद बनी हुई है, जिसका निर्माण औरंगजेब के एक अमीर ने करवाया था। यहीं पर एक इबादतगाह भी बनी हुई है जिसमें ख्वाजा साहब इबादत करते थे। दरगाह परिसर में लोहे की एक देग भी रखी है। दरगाह के सामने लाल पाषाण स्तम्भों की छतरी बनी हुई है, इसे हिलती छतरी के नाम से जाना जाता है।

5.1.7 दुर्ग के जल स्रोत

अन्य सभी किलों की ही भाँति गागरोन दुर्ग में भी जल भण्ड़ारण व जल प्राप्ति की विशेष व्यवस्था की गयी थी। किले को जल दुर्ग की सँज्ञा दात्री सदानीरा दो नदियाँ तीन ओर से घेरे हुए हैं साथ ही नदी तट पर विभिन्न घाट, संगम स्थल तथा दह है जो अथाह जल से सदैव परिपूर्ण रहते थे। इसके अतिरिक्त किले के भीतर कुँए, पाषाण टंकियाँ, कुण्ड आदि भी हैं जिनमें जल संग्रहण किया जाता था।

5.1.7.1 नदियाँ

इतिहासकार ललित शर्मा जी के अनुसार इस दुर्ग की सबसे बड़ी विशेषता है किले की सुन्दर और प्राचीन विधि से निर्माण कला तथा नैसर्गिक सुरक्षा। बारहमासी प्रवाहमान सरिताओं एवं सघन वनराशि ने इस दुर्ग को ऐसा प्राकृतिक सुरक्षा कवच प्रदान किया जो भारत के चन्द दुर्गों को ही प्राप्त है। मालवा से आने वाली सदानीरा कालीसिन्ध (सिन्धु भी कहते है) तथा पश्चिम दिशा से आ रही आहू नदियाँ दुर्ग को तीन ओर से घेर कर दुर्ग के दक्षिण पूर्वी भाग के पास समेलजी नामक स्थान पर आपस में मिल जाती है। तत्पश्चात् इनका सम्मिलित प्रवाह प्रचण्ड वेग से दुर्ग के समानान्तर चल कर इसकी उत्तरी दीवारों को छूते हुए परिक्रमा कर बलिण्डा घाट को चीर कर उत्तर

की ओर तीव्र गति से निकल जाता है। इस प्रकार ये नदियाँ दुर्ग को सामरिक सुरक्षा प्रदान करती है।

यही कारण है कि मध्य युग में भारत के मेवाड़, गुजरात, मालवा और हाड़ौती के सीमावर्ती क्षेत्र पर स्थित होने तथा सुदृढ़ प्राकृतिक सुरक्षा व्यवस्था के कारण गागरोन के दुर्ग का सामरिक दृष्टि से बड़ा महत्त्व था। इसी विशेषता के कारण यह दुर्ग आज भी देशभर में वैल्लोर के जल दुर्ग के बाद द्वितीय जलदुर्ग के रूप में जाना जाता है।

5.1.7.2 नदी संगम समेलजी

दुर्ग के दक्षिण पूर्व में जहाँ कालीसिन्ध व आहू का संगम होता है उस स्थान को समेलजी कहते है। यहाँ भगवान शिव का प्रतीकात्मक रूप में लिंग विग्रह विराजमान है। पवित्र दिवसों पर काफी संख्या में भक्त यहाँ आते हैं तथा स्नान कर पुण्य अर्जित करते हैं। यहाँ पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। संगम स्थल का धार्मिक महत्त्व किले की सुरक्षा की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण था। इस स्थान की पवित्रता के कारण जन सामान्य से लेकर विशिष्ट अतिथि या राजपरिवार के सदस्य तक सामान्यतया यहाँ प्रवेश नहीं कर सकते थे। जिससे दक्षिण पश्चिम दिशा से किले तक नहीं पहुँचा जा सकता था साथ ही संगम स्थल सदैव जल से परिपूर्ण रहने के कारण किले को प्राकृतिक सुरक्षा भी प्रदान करता था।

5.1.7.3 दह

काली सिन्ध नदी के ठीक बीच में भूरा हाथी चट्टान के निकट अतुल जल राशि का एक विशाल बिन्दु है, जिसे स्थानीय भाषा में दह कहते है। यह स्थान सदैव अथाह जल से परिपूर्ण रहता है, नदी में पानी कम हाने पर भी दह में पानी की कमी नहीं आती है। दह किले की सुरक्षा की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण थी, क्योंकि कोई भी आक्रमणकारी इस ओर से नदी को पार नहीं कर सकता था। लोक संस्कृति में दह का धार्मिक महत्त्व भी होता है, पवित्र स्थान होने की वजह से जनसामान्य यहाँ प्रवेश नहीं कर सकता। जिससे किले के पश्च् भाग का निकट से अवलोकन कर पाना असम्भव था।

5.1.7.4 घाट

किले की मुख्य पहाड़ी की तलहटी में किले से सटते हुए नदी के किनारे अनेक घाट बने हुए हैं। ये घाट किले की जल सम्बन्धी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु

अलग–अलग वास्तु–विन्यास से विभिन्न जाति–समुदायों तथा राजपरिवार द्वारा निर्मित किये गये थे। घाटों को बनाने का प्रयोजन अलग–अलग होने के साथ–साथ इनका उपयोग भी अलग–अलग प्रकार से किया जाता था। इनमें कुछ घाटों का धार्मिक महत्त्व भी था जो धार्मिक रीति–रिवाज व त्योंहार विशेष पर उपयोग लाए जाते थे, वहीं कुछ मात्र पेयजल के लिए ही आरक्षित थे। इसी तरह कुछ सामरिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु भी बनवाये गये थे।

मदन मोहन मन्दिर के उत्तर की ओर से नदी में जाने का एक पक्का मार्ग है, जो खाई के सहारे घाट तक जाता है। दुर्ग से 173 सीढ़ियाँ नीचे उतर कर राजघाट आता है। यह घाट सवर्ण जाति के उपयोगार्थ बनवाया गया था।[47] राजघाट के आगे नदी की धारा पर लक्ष्मण घाट है, इसमें राजपूत व ब्राह्मण अपने मृतक परिजनों का अन्तिम संस्कार किया करते थे।[48] लक्ष्मण घाट से पश्चिम दिशा में चलने पर एक सीढ़ी रहित घाट आता है। इस घाट पर दुर्ग के चौपड़िया नामक स्थान से सीधा नीचे आया जा सकता है। इस घाट को पठानी घाट कहते है। यहाँ हिन्दू–मुस्लिम सभी जल भरते थे। यहाँ की खड़ी चट्टानों को छूकर नदी का लम्बा प्रवाह दृष्टिगोचर होता है।[49] रामबुर्ज से दुर्ग के दक्षिण की ओर जाने पर दक्षिणी प्राचीर से सटा हुआ एक सीढ़ीनुमा पक्का अन्धेरा मार्ग है। इसमें अनेक घुमावदार सीढ़ियाँ और छोटे द्वार बने हुए है। यह मार्ग नीचे नदी के किनारे पर जहाँ समाप्त होता है वहाँ एक वृत्ताकार बुर्ज बनी हुई है, जिसमें कई द्वार हैं। यह स्थल गणगौर घाट कहलाता है। इस स्थान पर रानियाँ गुप्त मार्ग से आकर गणगौर की पूजा करती थी। वर्तमान में यह घाट नष्ट हो गया है किन्तु मध्यकाल में किले में जल आपूर्ति का महत्त्वपूर्ण माध्यम था।

5.1.7.5 जौहर कुण्ड

नक्कारखाने के सामने व प्रहरी कक्ष के पीछे चट्टानों को खोदकर बनाया गया एक विशाल कुण्ड है। कुछ विद्वान इसे जौहर कुण्ड बताते है तो कुछ अन्य जल भण्डारण कुण्ड तथा कुछ के अनुसार यह मनोरंजन स्थल था जहाँ भैंसों की लड़ाई करायी जाती थी। इसकी गहराई लगभग 35 मीटर है।[50] वर्तमान में इस कुण्ड में जल संग्रहण व्यवस्था के कोई चिह्न दृष्टिगत नहीं होते है। यहाँ चट्टानी सतह पर कंटीली झाड़ियाँ उगी हुई हैं। बरसात के दिनों में कुण्ड में पानी भर जाता है।

5.1.7.6 कुँए / बावड़ियाँ

महल के दाहिनी ओर एक साथ 5 कुँए दिखाई देते हैं। इनकी गहराई अधिक नहीं है। कुछ विद्वान इन्हें अन्न भण्डारण की कोठियाँ तो कुछ जल स्रोत मानते है। इन कुँओं में जल भरे होने के चिह्न है किन्तु सीढ़ियाँ नहीं हैं। अतः कुँए किले की संकट कालीन स्थिति में अन्न या जल संग्रहण के सम्बन्ध में उपयोगी थे।[51] यदि ये कुँए जल स्रोत थे तो इनसे महल में पेय जल आपूर्ति की जाती होगी। कुँओं से सेवकों द्वारा मश्कें भर कर पानी लाया जाता होगा। कुँओं से जल प्राप्त करने हेतु इनके समीप किसी प्रकार के जल उत्थानक यंत्रों के प्रयोग के चिह्न भी दिखाई नहीं देते हैं। इसी प्रकार बारूद खाने के आगे व सती मन्दिर के समीप दायें हाथ की ओर आठ कुँए एक दूसरे के समीप बने हुए हैं। कुँओं की मुण्डेर पक्की है तथा गहराई भी अधिक नहीं है। ये भी महल के समीप वाले कुँओं के समान जल प्राप्ति के स्रोत थे या अन्न भण्डारण की कोठियाँ ? यह ज्ञात नहीं है। इसी प्रकार दरगाह के भीतर द्वार के ठीक पास एक कुँआ या बावड़ी स्थित है। इसमें आज भी पानी है। यह इस क्षेत्र के पेय जल का प्रमुख स्रोत है। आज भी दरगाह में आने वाले जायरिनों, खादिमों व जनसामान्य तथा बस्ती को जलापूर्ति करता है। कुँए पर पानी खींचने की चकलियाँ लगी हैं तथा मुण्डेर पर जल पात्रों को रखने के स्थान भी बने हुए हैं। इसकी मुण्डेर के पत्थरों पर रस्सी के चिह्न देखे जा सकते हैं। कुँए का जल पवित्र समझा जाता है। कुँआ कोटा राज्य के शासन काल में बना था।

दरगाह के समीपस्थ द्वार से किले से बाहर निकल कर दायीं ओर चलने पर एक मुण्डेर रहित कुँआ आता है। यह कुँआ दरगाह तथा समीप की बस्ती को पेयजल उपलब्ध कराता था। किन्तु आज यह गन्दा व जर्जर अवस्था में है। एक अन्य कुँआ सूरज पोल के समीप राम मन्दिर परिसर में मौजूद है। इसे अस्तल का कुँआ कहते है। यह कुँआ पक्का है तथा इसमें आज भी पानी है । इसमें अन्दर उतरने के लिए चारों तरफ गोलाई में पक्की सीढियाँ बनी हुई हैं। इस कुँए का पानी भी पवित्र माना जाता था तथा मन्दिर क्षेत्र में जलापूर्ति का प्रमुख साधन था। यह भी कोटा राज्य के शासन के समय बनाया गया था।

गणगौर घाट के मार्ग के बायीं ओर प्राचीर से सटा एक विशाल द्वार है। इस द्वार से नीचे उतरने के लिए तीन तरफा घुमावदार व अँधेरा मार्ग है जो एक बावड़ी तक ले जाता है। यह बावड़ी चट्टानी पत्थरों व घने वृक्षों से ढँकी होने के कारण अन्धेर

बावड़ी कहलाती है। किले के लिए यह बावड़ी कई प्रकार से महत्त्वपूर्ण रही हैं। बावड़ी किले के भीतर है किन्तु नदी से बिल्कुल सटी हुई है। बावड़ी में नदी से एक गुप्त मार्ग द्वारा जल आता था।[52] यह किले में पेय जल आपूर्ति का सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत थी तथा वर्ष पर्यन्त जल से परिपूर्ण रहती थी। किले की घेराबन्दी हो जाने पर भी बावड़ी में आने वाले नदी के अथाह जल को किले में उपयोग हेतु प्राप्त किया जा सकता था। अचलदास पर आक्रमण के समय होशंगशाह ने चाल चलते हुए बावड़ी के पानी को गो–माँस डलवाकर दूषित कर दिया था। फलस्वरूप दुर्ग में पानी की आपूर्ति ठप्प हो गयी तथा पानी की किल्लत के कारण अचलदास को दुर्ग से बाहर निकलकर युद्ध करना पड़ा। जिसमें अचलदास की पराजय हुई। मूल वचनिका में रूधिर के नाले जल में मिल जाने से जल के दुषित हो जाने का वर्णन है। इस बावड़ी के समीप के बुर्ज से ही किले की मानव निर्मित खाई का जल मार्ग है।

5.1.8 जल का उपयोग

जल स्रोतों से प्राप्त जल के उपयोग से किले में एक बाग, शौचालय, स्नानागार, भोजनशाला , बारूदखाना, शस्त्रागार आदि प्रयोग में लाए जाते थे।

5.1.8.1 खाई या परिखा

मुख्य प्रवेश द्वार गणेश पोल पर लकड़ी का उठ सकने वाला एक पुल बना हुआ था।[53] जिसके नीचे 50 फीट गहरी व 25 फीट चौडी चट्टान को काट कर मानव निर्मित खाई बनाई गयी थी[54] जो आज भी मौजूद है। खाई को परिखा भी कहते है जो प्राचीन दुर्ग विधान के अनुरूप दुर्ग को आक्रमणकारियों से सुरक्षा प्रदान करने हेतु निर्मित की गयी थी।[55] इस खाई में दक्षिण से काली सिन्ध नदी का जल प्रवाहित होता हुआ उत्तर की ओर जाकर नदी में पुनः मिल जाता था। अतः जल से चारों ओर घिर जाने के कारण दुर्ग को विद्वान मिनि लंका की सँज्ञा भी देते हैं। इस प्रकार किले में जल का प्रबन्धन किले को सामरिक सुरक्षा प्रदान करने में किया गया था। वर्तमान में खाई पर लकड़ी के पुल के स्थान पर पत्थर का पुल बना दिया गया है जिसे पार करने के बाद ही मूल दुर्ग में प्रवेश किया जा सकता है। युद्ध व संकट की स्थिति में लकड़ी के पुल को तोप से उड़ा दिया जाता था ताकि आक्रमणकारी दुर्ग तक न पहुँच सके।

5.1.8.2 फव्वारा सिस्टम

किले के भैरव पोल के पीछे मधुसूदन जी मन्दिर के मुख्य द्वार से प्रवेश करने

पर एक बड़ा चौक है, जिसके मध्य में फव्वारें लगे हुए थे। वर्तमान में वे नष्ट हो चुके है। फव्वारें तांबे की पाईप लाईन से जुड़े हुए थे तथा माँगलिक उत्सवों के दौरान चलाए जाते थे।[56]

5.1.8.3 भोजनशाला व रसोइयाँ

मधुसूदन मन्दिर के गर्भगृह की बायीं ओर एक भोजनशाला है, यहाँ मन्दिर में भोग लगाने के लिए प्रसाद, भोजन आदि पकाया जाता था। किले के रनिवास में भी रानियों की रसोइयाँ व भोजनशालाएँ बनी हुई हैं। भोजनशालाओं तथा रसोइयों में जलापूर्ति सेवकों द्वारा की जाती थी।

5.1.8.4 शौचालय व स्नानागार

किले के महलों में अनेक शौचालय व स्नानागार बने हुए हैं। जो आमेर, जयगढ़ व मेहरानगढ़ के समान अतिविशिष्ट नहीं है। इनमें किसी भी प्रकार की अभियांत्रिकी या विलासिता पूर्ण तकनीक का प्रयोग नहीं किया गया है। ये पूर्णतः साधारण हैं। इनमें जल सेवकों द्वारा लाया जाता था। इसी प्रकार महल के गेट के सामने बाहर की ओर एक शौचालय बना हुआ है, बाहर बने होने के कारण इसकी गन्दगी किले से बाहर नदी की ओर निकल जाती थी। इसी तरह महल की छत व प्रथम मंजिल के कक्षों के समीप जो स्नानागार एवं शौचालय बने है उनमें लकड़ी के किवाड़ लगे थे तथा पानी सेवकों द्वारा लाया जाता था।

5.1.9 जल संग्रहण व्यवस्था

शस्त्रागार के लम्बे बरामदों में एक दर्जन से भी अधिक लाल पत्थर की विशाल एवं ढक्कनदार टंकियाँ रखी हुई हैं। इन्हें एक ही पत्थर को तराशकर बनाया गया हैं। इन टंकियों में सम्भवतः सेवकों द्वारा पानी भरा जाता रहा होगा। पूरे किले में इस तरह की लगभग 63 टंकियाँ हैं। सूरजपोल के आगे सुदृढ़ बुर्ज पर तोपों के रखे जाने की व्यवस्था थी। इसके पास भी पानी की वैसी ही टंकियाँ रखी हुई है जैसी शस्त्रागार के बाहर थी। ये टंकियाँ जल से भरी रहती थी इनका उपयोग तोपची तोप दागने के बाद इनमें कूद कर तेज आवाज से अपने कानों को बचाने के लिए किया करता था।

5.1.10 जल उत्थान प्रणाली

आमेर, जयगढ़ व मेहरानगढ़ के समान गागरोन दुर्ग में जल लिफ्ट करने की अलग से कोई तकनीक नहीं थी बल्कि विभिन्न घाटों से सेवकों अथवा जानवरों द्वारा

चमड़े के कोसों में भर कर पानी दुर्ग तक लाया जाता था। किले से नदी तट तक जाने के लिए दुर्ग की प्राचीरों से घाट तक मार्ग तथा सीढ़ियाँ बनायी गयी थी। बारूदखाने के बायें हाथ पर किले की बुर्ज के समीप से कालीसिंध नदी में उतरता हुआ एक मार्ग बना हुआ है, यह रास्ता किले में जल प्राप्ति का सर्वप्रमुख मार्ग था क्योंकि इसके पास ही अस्तबल, बारूदखाना व राजा–रानी के महल बने हुए हैं जिनमें जलापूर्ति इसी मार्ग के उपयोग से होती थी। एक अन्य मार्ग रामबुर्ज के समीप से कालीसिन्ध नदी तक नीचे की ओर उतर रहा है, जो गणगौर घाट तक जाता है। वर्तमान में गणगौर घाट नष्ट हो चुका है किन्तु दुर्ग के वैभव काल में यह मार्ग तथा घाट किले में जल प्राप्ति का प्रमुख माध्यम रहा था। इसी तरह एक और मार्ग महादेव जी बुर्ज के पास से अन्धेर बावड़ी तक जाता है। यह एक गुप्त मार्ग था जिससे संकटकाल में भी बावड़ी का पानी किले तक लाया जा सकता था। इसी प्रकार दरगाह से गणेश पोल की ओर आने पर दुर्ग की प्राचीर से एक मार्ग नीचे की ओर कालीसिंध नदी के पठानी घाट तक जाता है। पठानी घाट के समीप से ही एक अन्य मार्ग किले के रिवास गेट तक जाता है। ये दोनो मार्ग घाट से किले तक जल ले जाने के प्रमुख माध्यम थे। एसे ही अनेकों रास्ते विभिन्न घाटों से किले की प्राचीर तक बने हुए थे।

कुँओं से लाव–चड़स या नेज द्वारा जल खींचा जाता था। जल उत्थान की यह व्यवस्था आज भी दरगाह के पास वाले कुँए में देखी जा सकती है। राममन्दिर परिसर के कुँए में उतरने की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इन सीढ़ियों का प्रयोग कर सेवकों द्वारा कुँए से जल प्राप्त किया जाता था। यहाँ पर भी पानी खींचने की व्यवस्था थी।

5.1.11 वर्षा जल संग्रहण प्रणाली

चूँकी गागरोन दुर्ग एक जल दुर्ग है, इसे तीन ओर से सदानीरा नदियों ने घेर रखा है इसलिए किले में जल की कमी का कोई कारण नहीं था। फिर भी किले में वर्षा जल संग्रहण की व्यवस्था की गयी थी। किले के महलों की छतों से बहकर निकलने वाला वर्षा जल सम्भवतया महल के पास बने कुँओं या जौहर कुण्ड में जाता था। कहा जाता है कि जौहर कुण्ड को बाद में वर्षा जल संग्रहक के रूप में उपयोग में लिया गया था। इसी तरह कुँओं की गहराई अधिक न होना भी उक्त सम्भावना का समर्थन करता है।

5.1.12 जल निकास प्रणाली

जिस तरह नदी के घाटों से किले में जल प्राप्ति की व्यवस्था की गयी थी; उसी तरह किले से अतिरिक्त जल के निकास की भी व्यवस्था की गयी थी। इस व्यवस्था के अन्तर्गत किले की प्राचीरों से नालियाँ अतिरिक्त वर्षा जल एवं अपशिष्ट पानी को बाहर निकाल देती थी। गणेश पोल से पहले एक पक्की नाली बनी हुई है जो नदी की तरफ खुलती है। यह नाली वर्षा जल निकास का मार्ग थी। यद्यपि यह अधिक पुरानी नहीं है। किले में राजा रानी के महलों के विभिन्न कक्षों में फर्श एवं छतों पर नालियाँ बनायी गयी थी। इन नालियों से महल की छत, बरामदों, गैलरियों व चौक में गिरने वाला वर्षा जल महल से बाहर निकाल दिया जाता था।[57]

अतः कहा जा सकता है कि मध्यकालीन राजस्थान के सैन्य दृष्टि से महत्त्वपूर्ण गागरोन दुर्ग में जल प्रबन्धन अनेक कारणों से महत्त्वपूर्ण है। यहाँ जल का सर्वप्रमुख उपयोग दुर्ग को जल दुर्ग की सँज्ञा प्रदान करने में है जल से सदैव परिपूर्ण रहने वाली दो नदियों एवं एक कृत्रिम खाई ने किले को चारों ओर से घेर रखा है, ये किले को जल द्वारा सामरिक सुरक्षा प्रदान करती हैं। यहाँ के जल प्रबन्धन ने इतिहास को भी प्रभावित किया है। एक तरफ जहाँ जल द्वारा किले को सुरक्षा प्राप्त होती थी वहीं जल के माध्यम से ही किले पर विजय प्राप्त की गयी थी। अन्धेर बावड़ी के जल को गोमाँस मिलाकर दूषित कर किले को जीते जाने का उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है।

5.1.13 वर्तमान स्थिति

वर्तमान में किले के अनेक कुँए—बावड़ियाँ, घाट, पैदल पुल, मन्दिर, जल प्राप्ति मार्ग, फव्वारें, शौचालय—स्नानागार, जौहर कुण्ड, नदी घाट आदि नष्ट हो चुके हैं तथा पाषाण टंकियाँ भी अनुपयोगी हो गयी हैं।

कुछ दशक पहले तक दुर्ग वीरान हो गया था। महल खण्डहर में तब्दील होने लगे थे तथा पूरे किले में कंटीले झाड़ तथा जंगली घाँस उग आयी थी। पर्यटक दुर्ग दर्शन हेतु आने से कतराने लगे थे किन्तु राज्य सरकार ने इसकी सुध ली। सरकार ने दुर्ग की देखरेख व सार—सम्भाल की जिम्मेदारी राज्य पुरातत्त्व विभाग को सौंपी, विभाग ने किले की सुरक्षा हेतु सुरक्षा—प्रहरी लगाऐ, पर्यटक सूचना केन्द्र व हेल्प लाईन बनाई। सरकार द्वारा गागरोन सहित राजस्थान के छह अन्य पहाड़ी किलों के ऐतिहासिक व सांस्कृतिक महत्त्व को अन्तरराष्ट्रीय पहचान दिलाने तथा समग्र विकास व सुरक्षा की

आवश्यकता को दृष्टिगत रखकर इन्हें यूनेस्कों की विश्वविरासत में शामिल कराने हेतु प्रयास किये गये। फलतः कम्बोडिया के नामपेन्ह शहर में यूनेस्कों की विश्वविरासत सम्बन्धी वैश्विक समिति की 37 वीं बैठक में शुक्रवार 21 जून 2013 को गागरोन सहित राजस्थान के छह पहाड़ी किलों के विश्व विरासत में शामिल किये जाने की घोषणा की गयी। किसी भी इमारत को वर्ल्ड हेरिटेज का दर्जा दिलाने के लिए सम्बन्धित इमारत का यूनिक पॉइन्ट बताना होता है। गागरोन दुर्ग की अभेद्य सुरक्षा व्यवस्था, तीन ओर से घेरती काली सिन्ध व आहू नदी, पहाड़ी की बनावट से मिलता जुलता होने से दूर से न दिखाई देना इसका यूनिक पॉइन्ट है।[58] दुर्ग के विश्व विरासत के मापदण्डानुसार विकास व संरक्षण का कार्य भी पुरातत्त्व विभाग द्वारा किया जा रहा है, वह भी सराहनीय है।

5.2 चित्तौड़गढ़ दुर्ग

राजस्थान का चित्तौड़ दुर्ग भारतवर्ष में स्वाधीनता का प्रेरक एवं स्वतंत्रता प्रेमियों व देशभक्तों का तीर्थ स्थल है। जो वीर राजपूतों के मान, मर्यादा, शौर्य, पराक्रम, त्याग, बलिदान तथा शूरवीरता का प्रतीक है। यह सांगा के पराक्रम, कुम्भा के शौर्य, पद्मिनी के जौहर, गोरा–बादल के बलिदान, साकों का रक्त रंजन, मीरा की भक्ति, माँ के बलिदान व पन्ना के त्याग की कहानी कहता है। सम्पूर्ण दुर्ग ऐतिहासिक स्मारकों का अजायबघर है। इसके लिए ठीक ही कहा गया है कि

''गढ़ तो गढ़ चित्तौड़गढ़ बाकी सब गढ़ैया''[59]

दुर्ग को जल प्रबन्धन के लिए 'राजस्थान का वैल्लोर' की सँज्ञा दी गयी है। ज्ञातव्य है कि वैल्लोर दुर्ग जल प्रबन्धन के क्षेत्र में भारत के सभी दुर्गों का सिरमोर तथा उनका प्रेरणा स्रोत है।

5.2.1 दुर्ग की स्थापना व नामकरण

वीर विनोद के अनुसार मौर्य राजा चित्रांगद ने 7 वीं सदी[60] में बनवाकर अपने नाम पर इसका नाम चित्रकोट रखा। इसी का अपभ्रंश चित्तौड़ है।

5.2.2 दुर्ग कोटि

शिल्पशास्त्र में उल्लेख है कि प्रत्येक दुर्ग कपिशीर्ष (कंगूरे) व काण्डवारिणियों (छाल दीवार) से युक्त, विस्तृत एवं सुदृढ़ दीवारों से परिवेष्ठित होना चाहिए।[61] इसी प्रकार मयमत ग्रन्थ[62] में उल्लेख है कि प्रत्येक दुर्ग में समाप्त न हो ऐसे अन्न भण्डार, अनन्त पानी के स्रोत, आन्तरिक दुर्ग, विस्तृत शस्त्रागार होने चाहिए, मार्ग ऊँचे व घने वृक्षों व कंटीली झाड़ियों से आच्छादित व सुदृढ़ उन्नत दीवारों से रक्षित होना चाहिए। कोटिल्य का दुर्ग विधान कहता है कि सुरक्षित दुर्ग वह है जो नदियों के संगम स्थल पर हो, सुदृढ़ घुमावदार प्राचीरें, उन्नत विशाल बुर्ज, सात अभेद्य प्रवेश द्वार व टेड़ा मेड़ा सर्पिला मार्ग हो। चित्तौड़गढ़ दुर्ग में शिल्पशास्त्र, मयमत शास्त्र तथा कोटिल्य के दुर्ग विधान की सभी विशेषताएँ देखी जा सकती है। इस आधार पर दुर्ग को गिरी दुर्ग, सैन्य दुर्ग, विषमाख्य दुर्ग, वन दुर्ग, औदक दुर्ग, वार्क्ष दुर्ग, नृदुर्ग आदि कोटियों में रखा जा सकता है।

5.2.3 क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति व जलवायु

चित्तौड़गढ़ शहर $24^{0}13'$ से $25^{0}13'$ उत्तरी अक्षांश व $74^{0}04'$ से $75^{0}53'$ पूर्वी देशान्तर के मध्य तथा समुद्र तल से 404 मी. ऊँचाई पर स्थित है। दुर्ग से दिल्ली 630 कि.मी., उदयपुर 112 कि.मी., अजमेर 189 कि.मी. जयपुर 320 कि.मी. तथा झालावाड़ से 217 कि.मी. दूर है। गम्भीरी व बेड़च नदियों के संगम स्थल के समीप स्थित है। गम्भीरी नदी में बाढ़ आने पर दुर्ग तक पहुँने का मार्ग अवरूद्ध हो जाता था। यहाँ 77.23 से.मी. औसत वार्षिक वर्षा होती है, सर्दियों में न्यूनतम तापमान 1 डिग्री से. तथा गर्मियों में अधिकतम तापमान 45 डिग्री से. हो जाता है।[63] यहाँ की मिट्टी अधिक उपजाऊ नहीं है। ऋतुनुसार फसले उत्पादित होती थी। किले की तलहटी में तम्बाकू व अफीम के खेती की जाती थी।

5.2.4 किले का महत्त्व

दिल्ली से मालवा व गुजरात जाने वाले मार्ग पर स्थित होने से इसका व्यापारिक व सामरिक महत्त्व था। इसलिए इसे राजस्थान का दक्षिण–पूर्वी प्रवेश द्वार कहा गया।[64] यही कारण है कि यह दुर्ग साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा रखने वाले शासकों, बाहय आक्रमणकारियों व स्थानीय शासकों की प्रतिष्ठा का केन्द्र बिन्दू होने के साथ–साथ राजपरिवार की आन्तरिक राजनीति का क्रीड़ा स्थल भी रहा है। यहाँ का शासक पूरे

मारवाड़ का अधिपति कहलाता था। दुर्ग ने अनेक जौहर–साके, युद्ध, हार–जीत व चढ़ाव–उतार देखे।

सन् 2013 में दुर्ग के महत्त्व को देखते हुए कम्बोड़िया के नामपेन्ह शहर में यूनेस्को की विश्व विरासत कमेटी की 37 वीं बैठक में चित्तौड़ सहित छह पहाड़ी दुर्गों को यूनेस्को की विश्व विरासत सूची में स्थान प्रदान किया गया।

5.2.5 दुर्ग रचना

बनास, गम्भीरी व बेड़च नदियों से तीन ओर से घिरी धरातल से 152 फीट व समुद्र तल से 1850 फीट ऊँची पहाड़ी पर दुर्ग निर्मित है। इसका झुकाव दक्षिण पश्चिम की ओर है। पहाड़ी के नीचे की परिधि 13 कि.मी तथा इसके शिखर भाग की ऊँचाई 500 फीट, आन्तरिक लम्बाई 3 मील 2 फर्लांग तथा सर्वाधिक केन्द्रीय चौड़ाई 1200 फीट है।[65] यह पहाड़ी विंध्याचल पर्वत श्रेणी की शुरूआती पर्वत श्रृंखला है।[66] निर्मित दुर्ग की सर्वाधिक लम्बाई 8 कि.मी. तथा चौड़ाई 2 कि.मी. है। दुर्ग का कुल क्षेत्रफल 27.5 वर्ग कि.मी. है।[67] विशाल व्हेल के समान[68] आकृति में पहाड़ी पर स्वर्ण मुकुट के समान नजर आता है[69] ब्रिटिश पुरतात्विद ने भी इसके आकार को देख कर कहा कि

While rambling in the deserted fort of chittorgarh, I felt as is f I was walking on the deck of huge ......[70]

शहर से दुर्ग की ओर जाने पर मार्ग में गम्भीरी नदी पर बना 172.5 मीटर लम्बा पुल पार करना पड़ता है। दस महराबो युक्त इस पुल का निर्माण अलाउद्दीन के पुत्र खिज्रखाँ ने कई हिन्दू व जैन मन्दिरों को गिराकर उनके पत्थरों से करवाया था।[71] दुर्ग के परकोटे की प्राचीरें सुदृढ़, मोटी व चौड़ी है। यह पाषाण निर्मित है, स्थान–स्थान पर मजबूत, विस्तृत व ऊँचे बुर्ज बने हुए है। प्राचीर का शीर्ष भाग कमल की पत्ती की तरह है जिसमें तीर व बन्दूक चलाने हेतु छेद बनाए गए है, बीच के भाग का लम्बा व तिरछा छेद शत्रु पर गरम तेल डालने हेतु बनाया गया था।[72]

दुर्ग में प्रवेश हेतु एक के बाद एक सात द्वार है। पाड़ल पोल, भैरव पोल, हनुमान पोल, गणेश पोल, लक्ष्मण पोल, जोडला पोल व रामपोल। दुर्ग के प्रथम प्रवेश द्वार पाडनपोल के बाहर रावत बाघासिंह का समारक है। वे इसी द्वार पर शहीद हुए थे अतः यहाँ पर उनका स्मारक बनाया गया। दुर्ग में हुए एक भीषण रक्तपात में रक्त की धारा में एक पाड़ा बह कर यहाँ आ गया इसलिए इस द्वार को पाड़नपोल कहा गया।

इतिहासकार इसे स्वीकार नहीं करते। गुजरात के शासक सिद्धराज ने इस द्वार का निर्माण कराया था। गुजरात की राजधानी पाटन की ओर उन्मुख यह द्वार पाटनपोल तथा अपभ्रंश होकर पाड़नपोल कहलाया।[73] दुर्ग में प्रवेश करते ही दाहिनी ओर एक झरना नयनाभिराम दृश्य उत्पन्न करता है। दुर्ग का द्वितीय प्रवेश द्वार भैंरूपोल कहलाता है। 1537 में चित्तौड़गढ़ के दूसरे साके में देसूरी के शासक भैंरूदास सौलंकी ने इसी द्वार की रक्षार्थ अपने प्राण उत्सर्ग किये थे। पुराना दरवाजा टूट जाने पर महाराणा फतेहसिंह ने नये सिरे से इस द्वार का निर्माण करवाया था। इसलिए यह द्वार नयीपोल या फतेहपोल के नाम से भी प्रसिद्ध है। भैंरूपोल से आगे चलने पर दाहिनी ओर क्रमशः छः और चार खम्भों वाली दो छतरियाँ मिलती हैं जो चित्तौड़ के वीर सेनानायक जयमल व कल्ला राठौड़ के इस स्थान पर शहीद होने के स्मरण में बनायी गयी हैं। दुर्ग का तीसरा दरवाजा हनुमान पोल है। इसके समीप हनुमान जी का छोटा सा मन्दिर बना हुआ है। इस द्वार के बाद सड़क की चढ़ाई बढ़ने लगती है। सड़क के घुमाव पर दुर्ग का चौथा दरवाजा गणेश पोल आता है, यहाँ गणेश जी का मन्दिर है। सड़क के दूसरे घुमाव पर दुर्ग का पाँचवा व छठा द्वार क्रमशः जोड़ला पोल व लक्ष्मण पोल आते हैं। लक्ष्मण पोल पर लक्ष्मण जी का छोटा सा मन्दिर है। दुर्ग का सांतवा व अन्तिम प्रवेश द्वार रामपोल है। इसके समीप भगवान श्री रामचन्द्र का मन्दिर बना हुआ है। यहाँ से दुर्ग के भीतर जाने के लिए दो मार्ग है एक उत्तर की ओर दुर्ग की बस्ती की तरफ तथा दूसरा दक्षिण की ओर दुर्ग के प्रमुख दर्शनीय स्थलों की ओर ले जाता है।

दक्षिण की ओर के मार्ग पर आगे बढ़ने पर पत्ता सिसोदिया का स्मारक आता है। ये अकबर से युद्ध में शहीद हुए थे। दक्षिण दिशा में आगे बढ़ने पर पुरोहित जी की हवेली के खण्डहर नजर आते है। इसी मार्ग पर आगे एक मन्दिर आता है जो तुलजा भवानी का मन्दिर है। कहा जाता है कि बनवीर ने अपने तुलादान के धन से इस मन्दिर का निर्माण कराया था। तुलजा माता के मन्दिर के आगे दुर्ग का समतल भाग आ जाता है यहाँ से दुर्ग की तलहटी में बसे चित्तौड़ शहर का सुन्दर दृश्य नजर आता है। दासी पुत्र बनवीर दुर्ग के अन्दर एक छोटा अन्तर दुर्ग बनवाना चाहता था, वह एक विशाल बुर्ज एवं भारी भरकम दीवार ही बना पाया था कि महाराणा उदयसिंह ने उसे परास्त कर दिया। यह स्थान बनवीर की दीवार कहलाता है। इस दीवार के पश्चिम सिरे पर एक अर्द्धवृत्ताकार बुर्ज तथा कमरा बना हुआ है जो नौलखा भण्डार कहलाता है। इसकी बनावट से इस भण्डार के भेद को कोई नहीं जान (लख) सकता था। इसलिए 'न लखा'

भण्डार कहलाया, बाद में इसे 'न लखा' से नौलखा भण्डार कहा जाने लगा। बनवीर की दीवार के मध्य भाग में राजपूत व जैन स्थापत्य कला के समन्वय का उत्कृष्ठ नमूना है जो शृंगार चंवरी के नाम से प्रसिद्ध है। इसके मध्य एक छोटी से वेदी पर चार खम्भों वाली छतरी बनी हुई है। कहा जाता है कि यहाँ महाराणा कुम्भा की पुत्री शृंगार देवी का विवाह हुआ था, यह उसी की चंवरी (वह स्थान जहाँ पाणिग्रहण संस्कार होता है) है, किन्तु यहाँ से प्राप्त एक शिलालेख के अनुसार महाराणा कुम्भा के कोषाध्यक्ष शाह वेलाक ने वि.सं. 1505 में भगवान शान्तिनाथ को समर्पित इस जैन मन्दिर का निर्माण कराया जिसकी प्रतिष्ठा खतरगच्छ के जैन आचार्य जिनसेनसूरी ने की थी। इस वर्गाकार भवन का प्रवेशद्वार उत्तर–पश्चिम दिशा में है जिसके ऊपर पार्श्वनाथ की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। शृंगार चंवरी के आगे तोपखाने की इमारत है। इसमें शम्भुबाण, गजबाण और अरिभंजण नामक तोपें रखी हुई हैं। इसके समीप ही भारतीय पुरातत्त्व विभाग का कार्यालय व संग्रहालय है। कार्यालय के समीप भामाशाह की हवेली के खण्डहर दिखाई देते है। इसके समीप ही पातालेश्वर महादेव का प्राचीन मन्दिर है। कुम्भा के महलों का प्रवेश द्वार बड़ी पोल बहुत ही ऊँचा दरवाजा है। बादशाह अकबर ने इसी द्वार के अनुरूप फतेहपुर सीकरी में बुलन्द दरवाजा बनवाया। इसके पास ही हाथी ठाण यानि हाथियों को बाँधने का स्थान है।

बनवीर की दीवार के दक्षिण में राजपूत पद्दति के बने प्राचीन महल भग्नावस्था में विद्यमान है। ये महल भारतीय स्थापत्य कला के उत्कृष्ट नमूने हैं तथा बहुत प्राचीन हैं, किन्तु महाराणा कुम्भा द्वारा जीर्णोद्धार करवाये जाने व इसके साथ नये भवनों के निर्माण के कारण ये महाराणा कुम्भा के महल कहलाते हैं।[74] पुरातत्त्व विभाग द्वारा की गयी खुदाई में इन महलों के नीचे तहखाने मिले हैं, जहाँ से एक सुरंग गोमुख तक जाती थी, अनुमान है कि रानी पद्मिनी का जौहर इसी स्थान पर हुआ था। इनके पास कंवरपदा महलों के खण्डहर हैं। उदयसिंह का जन्म, पन्ना द्वारा उदयसिंह को बचाने के लिए अपने पुत्र का बलिदान, मीरा द्वारा कृष्ण की आराधना, महाराणा विक्रमादित्य द्वारा मीरा को विषपान करवाना आदि घटनायें इन्हीं महलों में हुई। इन्हीं महलों में रानी पद्मिनी निवास करती थी, कालिका मन्दिर के आगे का महल पद्मिनी का ग्रीष्म निवास था। राजमाता करूणावती भी यही निवास करती थी जिसने दूसरे जौहर का नैतृत्व किया था। भक्त शिरोमणि मीरा भी इन्हीं कँवरपदा महलों में रहती थी। बड़ी पोल से निकलने पर महाराणा फतहसिंह द्वारा निर्मित दो मंजिला भव्य महल है जिसे फतह प्रकाश महल

कहते है। वर्तमान में यहाँ एक संग्रहालय संचालित है। फतहप्रकाश महल के पश्चिम में मुख्य सड़क पर पुरानी दुकानों के खण्डहर है, यहाँ मुगल तर्ज पर मोती बाजार या मीना बाजार लगता था। मोती बाजार से कुछ आगे एक गली में चारभुजा नाथ का विशाल मन्दिर है। इसे बाड़ी मन्दिर भी कहते है।

चारभुजा मन्दिर से एक पैदल रास्ता भीमगोडी नामक स्वच्छ पानी की बावड़ी तक जाता है। सड़क पर ही 11 वीं शताब्दी में बना एक भव्य जैन मन्दिर है जिसमें 27 देवरियां होने के कारण यह सतबीस देवरा कहलाता है। मन्दिर के अन्दर गुम्बजनुमा छत व खम्भों पर की गयी खुदाई हमें दिलवाड़ा के जैन मन्दिर की याद दिलाती है। यहाँ से कुछ आगे विष्णु के वराह अवतार को समर्पित एक विशाल मन्दिर है जो अपने निर्माता महाराणा कुम्भा के नाम से कुम्भश्याम मन्दिर कहलाता है, जिन्होने 1449 ई0 में इसका निर्माण कराया गया था। यह मन्दिर कुम्भा द्वारा कुम्भस्वामी नामक तीन विष्णु मन्दिरों में से एक है, इस प्रकार के दो अन्य मन्दिर कुम्भलगढ़ तथा अचलगढ़ में बने हुए हैं। इन सभी मन्दिरों में भूरे रंग के बलुआ पत्थर का प्रयोग हुआ है। ये उच्च शिखरों से अलंकृत व ऊँची प्रसाद पीठ पर स्थित है। इसकी दीवारों, मण्डप की छतों एवं स्तम्भों पर सुन्दर मूर्तियों का अंकन किया गया है। मन्दिर मूर्तियों के अतिरिक्त अंकित दृश्यों के लिए भी महत्त्वपूर्ण है, इन दृश्यों से 15 वीं शती के मेवाड़ के जनजीवन की झाँकी प्राप्त होती है। कुम्भा ने मन्दिर में भगवान वराह की मूर्ति पधराई थी किन्तु आक्रमणकारियों द्वारा की गयी तोड़फोड़ से मूल मूर्तियों के टूट जाने से मन्दिर में राधा–कृष्ण की मूर्ति स्थापित करायी गयी। मन्दिर के सम्मुख ऊँची छतरी पर गरूड़ की मूर्ति स्थापित है। इस मन्दिर के अहाते में मन्दिर के बायीं तरफ एक छोटा सा मन्दिर मीरां मन्दिर के नाम से विख्यात है। इसके सामने मीरा के गुरू रैदास का स्मारक छतरी के रूप में बना है।[75] कुम्भस्वामी मन्दिर से विजय स्तम्भ जाने वाले मार्ग पर दाहिनी ओर सड़क से कुछ हटकर 'जटाशंकर का मन्दिर' है। विजय स्तम्भ के उत्तर में घी–तेल की बावड़ी के नाम से प्रसिद्ध एक बावड़ी है। आगे बढ़ने पर विजय स्तम्भ आता है। जिसे महाराणा कुम्भा ने मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी पर विजय के प्रतीक के रूप में 1440 ई0 में बनवाया था। 47 फीट वर्गाकार व 10 फीट ऊँचे आधार पर 122 फीट (लगभग 34 मीटर) ऊँचा नौ मंजिला यह स्मारक भारतीय स्थापत्य कला की सुन्दर कारीगरी का प्रतीक है।[76] इसमें ऊपर जाने के लिए 157 सीढ़ियाँ है जो केन्द्रीय दीवार के साथ –साथ घूमती हुई चली गयी है। इसे बनने में 10 वर्ष लगे व 90 लाख का

खर्च आया। इसके आन्तरिक तथा बाह्य भागों में अनेक हिन्दू देवी देवताओं की मूर्तियाँ नाम सहित खुदी हुई हैं। इतनी मूर्तियों के कारण इसे 'मूर्तियों का अजायबघर' या 'भारतीय मूर्तिकला का शब्दकोष' कहा जाता है।

विजय स्तम्भ के दक्षिण–पश्चिम में समिद्धेश्वर महादेव का एक प्राचीन मन्दिर है। इसमें शिवलिंग के पीछे दीवार पर शिव की त्रिमूर्ति है। इसका निर्माण मालवा के राजा भोज ने करवाया था। इस मन्दिर में दो शिलालेख है। विजय स्तम्भ एवं समिद्धेश्वर मन्दिर के बीच का खुला समतल भाग महाराणाओं व राजपरिवार का शमशान घाट था, जहाँ अनेक क्षत्राणियाँ सती हुई थी। इस स्थल उत्तर तथा पूर्व में दो द्वार है। उत्तर का द्वार महारावल समरसिंह ने बनवाया था, इस द्वार पर एक अभिलेख लगा हुआ है, दोनो द्वारों को महासती द्वार कहते हैं। मान्यतानुसार चित्तौड़ का प्रथम व दूसरा जौहर इसी मैदान में हुआ था। मैदान में बहुत से टूटे मन्दिर है, मन्दिर के समीप एक सन्त का निवास स्थान था। शिव मन्दिर से आगे गोमुख कुण्ड है। कुण्ड के उत्तरी किनारे पर एक छोटा सा पार्श्वनाथ का जैन मन्दिर है। मूर्ति पर खुदे कन्नड़ लिपि के लेख से अनुमान लगाया जाता है कि मूर्ति दक्षिण से लायी गयी थी। मन्दिर के समीप एक सुरंग का द्वार है। गोमुख कुण्ड से बाहर आकर दक्षिण की दिशा में जाने वाली मुख्य्य सड़क पर चलने पर दो कुण्ड दिखाई पड़ते है। एक हाथी कुण्ड तथा दूसरा कातण बाव है। इसी सड़क के मोड़ पर पश्चिम में चट्टानों के बीच जयमल और पत्ता के महलों के खण्डहर है। महलों के पूर्व में एक जलाशय है जो जयमल पत्ता का तालाब कहलाता है। इस तालाब के किनारे पत्थर के छह स्तूप मिले थे। इसी सड़क पर आगे चलने पर पश्चिम में कालिका माता का सुन्दर व विशाल ऊँची कुर्सी पर बना प्राचीन मन्दिर है। प्रारम्भ में यह सूर्य मन्दिर था, बाद में मुगल आक्रमणों में मूर्ति तोड़ दिये जाने से यहाँ कालिका माता की मूर्ति स्थापित करायी गयी। मन्दिर के सामने एक शीतल जल का कुण्ड है जो सूर्य कुण्ड कहलाता है। कालिका मन्दिर के दक्षिण पश्चिम में नौगजा पीर की कब्र है, जो नौ गज लम्बे पत्थर की बनी हुई है। इसके पास ही सलूम्बर की हवेली या चूंडा हवेली के खण्डहर दिखाई देते है। इसी सड़क की पूर्व दिशा में तालाब की पाल पर रतनसिंह की रानी महारानी पद्मिनी के ग्रीष्मकालीन महल है। एक छोटा महल तालाब के बीच में भी बना है, महल के एक कमरे में बड़े–बड़े काँच लगे हुए है, जिनमें पानी वाले महल में खड़े व्यक्ति का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। कहा जाता है कि अलाउद्दीन खिलजी ने इन्हीं काँचों से महल की द्वितीय सीढ़ी पर बैठी महारानी पद्मिनी

का प्रतिबिम्ब देखा था। पद्मिनी तालाब के दक्षिणी किनारे पर स्थित पुराने महलों के खण्डहर खातन रानी के महल कहलाते है। महाराणा क्षत्रसिंह, जो इतिहास में 'खेता' के नाम से प्रसिद्ध है, की उपपत्नियों (पासवानों) में एक सुन्दर खातिन रानी भी थी। ये उसी रानी के महल है। आगे बढ़ने पर सड़क के पश्चिमी किनारें पर रामपुरा व बून्दी के सामन्तों की हवेलियों के खण्डहर हैं। इन हवेलियों से कुछ आगे सड़क के पूर्वी किनारे पर भाक्सी (कैदखाना) है। इस कैदखाने में कुम्भा ने मालवा के सुलतान महमूदशाह को 5 माह तक कैद रखा था। भाक्सी से कुछ आगे एक विस्तृत मैदान है जो चौगान कहलाता है। यह घोड़े दौड़ाने व सेना की परेड़ हेतु काम आता था।

चौगान के आगे चतरंग मोरी नामक एक विशाल तालाब स्थित है, इसे चित्तौड़गढ़ के संस्थापक चित्रांगद मौर्य ने बनवाया था। तालाब के दक्षिण–पश्चिम में दुर्ग का प्रसिद्ध 'बीका खोह' नामक बुर्ज है। चतरंग तालाब से पूर्व में एक सड़क राजटीला को जाती है। यह एक ऊँचा टीलेनुमा स्थान है, यहाँ शासकों का राज्याभिषेक होता था। राजटीला से दक्षिण में सड़क पर ही मृगवन का प्रवेश द्वार दृष्टिगत होता है। इसकी स्थापना वन विभाग द्वारा की गयी थी। दक्षिण में दुर्ग का अन्तिम बुर्ज है जिसे चित्तौड़ी बुर्ज कहते है। इस बुर्ज से 150 फीट नीचे चित्तौड़ी मगरी नामक एक छोटी सी पहाड़ी है। जनश्रुति है कि अकबर ने मिट्टी डलवा कर इस पहाड़ी को ऊँचा करवाया था, इस हेतु मजदूरों को प्रत्येक मिट्टी की टोकरी के बदले एक–एक मोहर दी थी, इसलिए इसे मोहर मगरी भी कहा जाता है। राजटीला से एक सड़क सूरजपोल होती हुई कीर्तिस्तम्भ को जाती है। इस मार्ग पर गोरा–बादल के मकानों के गुम्बज दिखाई देते हैं। गोरा पद्मिनी का चाचा तथा बादल चचेरा भाई था। गुमटियों से आगे बढ़ने पर राव रणमल की हवेली के खण्डहर हैं तथा उनके आगे भीमलत कुण्ड है। कुण्ड से कीर्ति स्तम्भ की ओर जाने वाली सड़क के किनारे एक जीर्णशीर्ण शिव मन्दिर है। इसके भीतर शिवलिंग के पीछे की दीवार पर विशाल त्रिमूर्ति है, इस अद्भुत प्रतिमा के कारण ही मन्दिर का नाम अद्‌बुदजी का मन्दिर पड़ गया। मन्दिर से आगे दाहिने हाथ पर दूर्ग का पूर्वी प्रवेश द्वार आता है, जिसे सूरज पोल कहा जाता है। सूरज पोल के पास नीलकण्ठ महादेव का मन्दिर है।

सूरज पोल से आगे सड़क पर पूर्व की ओर जैन कीर्ति स्तम्भ है। यह आदिनाथ को समर्पित है तथ्सस सात मंजिला व 75 फीट ऊँचा है, इसका निर्माण बघेरवाल महाजन शाहनायका के पुत्र शाह जीजा ने कराया था। कीर्ति स्तम्भ के पास ही महावीर

स्वामी का जैन मन्दिर है। आगे बढ़ने पर यह सड़क दुर्ग की बस्ती में जाती है। यह 500 मकानों की बस्ती है जिसमें तालाब, कुण्ड, मन्दिर, स्कूल, डाकघर आदि बने हुए हैं। इन मन्दिरों में बाणमाता का मन्दिर, अन्नपूर्णा का मन्दिर व राघवदेव की छतरी प्रमुख हैं, ये सभी एक ही अहाते में निर्मित हैं। उक्त मन्दिरों के अहाते के दक्षिण द्वार के समीप चतुर्भुज जी एवं लक्ष्मीनारायण जी के मन्दिर आमने–सामने है, जिन्हें सास–बहू का मन्दिर कहा जाता है। इन मन्दिरों के उत्तर–पश्चिम में एक जलाशय है जो माताजी का कुण्ड कहलाता है। बस्ती के उत्तर में एक ऊँची चट्टान पर महल के कुछ खण्डहर दिखाई देते हैं। ये महल हिंगलू अहाड़ा के महल या राणा रतनसिंह के महल कहलाते हैं। रतनसिंह ने अपने इन महलों के आगे एक तालाब बनवाया था, जिसे रत्नेश्वर तालाब कहा जाता है। रतनसिंह के महलों से नीचे सड़क के पूर्वी किनारें पर स्थित एक गहरा जलाशय कूकड़ेश्वर कुण्ड कहलाता है। कुकड़ेश्वर कुण्ड से आगे बढ़ने पर दुर्ग का प्रवेश द्वार रामपोल आ जाता है।

5.2.6 चित्तौड़गढ़ का इतिहास

मेवाड़ के प्राचीन इतिहास का प्रारम्भ नगरी (माध्यमिका) से हुआ। नगरी एक औद्योगिक केन्द्र था जो कताई, बुनाई एवं छपाई के लिए प्रसिद्ध था। चीन का रेशम यहीं से मध्य एशिया व रोम तक जाता था। यूनानी सेनानायक अपोलोडोटस ने मध्यमिका पर घेरा डाला था। मध्यमिका शिवि जनपद की राजधानी भी रहा। शिवियों के बाद मालव कुल व साल्व श्रेणियों के जनपद भी यहाँ पर स्थापित हुए।

जनश्रुतियों के अनुसार यह किला महाभारत कालीन है, पाण्डव भीम ने अपनी लात से भूमि में से पानी निकाला था, जिससे बना भीमलत कुण्ड दुर्ग में मौजूद है। कर्नल टॉड ने वि.स. 770 के शिलालेख[77] में मौर्य शासक भीम का नाम होना बताया था। इसी के नाम से महाभारत के भीम का नाम जोड़ दिया गया।[78] ऐतिहासिक स्रोतों के अनुसार मौर्य शासक चित्रांगद मौर्य ने चित्तोड़गढ़ दुर्ग बनवाया था। इस वंश के अन्तिम शासक मानमोरी द्वारा बनवाया गया तालाब आज भी किले के भीतर मौजूद है, जिसे चतरंगमोरी या मानमोरी तालाब कहते है। यह कहना कठिन है कि चित्रांगद या मानमोरी एक थे या अलग अलग। इस तालाब के आगे दबे हुए खण्डहरों का उत्खनन किया जाए तो छिपा हुआ इतिहास सामने आ सकता है।[79] अधिकांश इतिहासकार मानते है कि 8 वीं सदी में बप्पा ने अन्तिम मौर्य शासक मानमौरी को मारकर दुर्ग प्राप्त किया।[80] परन्तु वि.स. 811 के कुकड़ेश्वर के शिलालेख से पता चलता है कि इस समय कुकड़ेश्वर

नामक मौर्यवंशी राजा राज्य कर रहा था इसलिए बप्पा द्वारा मौर्यों से चित्तौड़ लेने की धारणा गलत है। सम्भवतः प्रतिहारों ने मौर्यों से चित्तौड़ लिया हो फिर परमारों तथा उसके बाद गुजरात के सौलंकियों के पास यह दुर्ग आया।[81] बप्पा के बाद मेवाड़ के 18 शासकों के सम्बन्ध में कोई प्रमाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। इस वंश के कर्णसिंह के बाद मेवाड़ राज्य की दो शाखाऐं बन गयी, एक रावल दूसरी राणा। ज्येष्ठ पुत्र क्षेमसिंह के वंशज रावल कहलाए, इन्होंने चित्तौड़ पर शासन किया, छोटे पुत्र राहप से राणा शाखा प्रारम्भ हुई। इस बीच 9 वीं से 12 शताब्दी तक यह दुर्ग राष्ट्रकूटों, प्रतिहारों, परमारों और गुजरात के सौलंकियों के हाथ में रहा, इस काल में राजा भोज व मुंज ने यहाँ कुछ निर्माण कराये, सौलंकी जयराज ने यशोवर्मन को हराया। 1207 में यह दुर्ग पुनः गुहिलों के अधिकार में आ गया। सन् 1213 ई0 में रावल जैतसिंह मेवाड़ की गद्दी पर बैठा, वह मेवाड़ की राजधानी नागदा से हटाकर चित्तौड़ ले आया, तब से 1567 तक चित्तौड़ मेवाड़ की राजधानी रहा, इसने गियासुद्दीन तुगलक को पराजित किया। रावल समर सिंह के शासन में जैन धर्म को प्रश्रय मिला। चित्तौड़ 9 वीं से 15 वीं शताब्दी तक जैन धर्म का प्रमुख केन्द्र रहा। यहाँ हरिभद्र सूरी व इलाचार्य जैसे महान जैन सन्त हुए। समर सिंह का एक पुत्र रावल रतन सिंह चित्तौड़ का शासक बना तथा दूसरा पुत्र कुम्भकरण नेपाल चला गया, नेपाल राजवंश के शासक कुम्भकरण के ही वंशज है।[82] रावल रतन सिंह के समय अलाउद्दीन खिलजी का आक्रमण तथा चित्तौड़ का प्रथम साका हुआ। चित्तौड़ का प्रभार अपने पुत्र खिज्र खाँ को सौंप कर अलाउद्दीन दिल्ली लौट गया। खिज्र खाँ ने दुर्ग का नाम खिज्राबाद रखा व गम्भीरी नदी पर पुल बनवाया।[83] 1311 में किले का शासन प्रबन्ध जालौर के सरदार मालदेव सोनगरा को सौंप कर खिज्र खाँ दिल्ली लौट गया।

लगभग 34 वर्ष के मुस्लिम शासन के पश्चात् 1336 में गुहिलों की सिसोदिया शाखा के राणा हम्मीर ने दुर्ग पर पुनः अधिकार कर लिया। इसने महाराणा की उपाधि धारण की। महाराणा लाखा के पुत्र चूण्डा ने अपने छोटे भाई मोकल के हक में राजगद्दी त्यागने की प्रतिज्ञा की तथा मेवाड़ के भीष्म कहलाए। महाराणा मोकल ने कविराज बाणी बिलास व योगेश्वर जैसे कवियों तथा माना, फन्ना व विशाल नामक शिल्कारों को आश्रय दिया। उसने दुर्ग में अनेक मन्दिर बनवाये व महलो का जीर्णोद्धार कराया। 1433 ई0 में राणा कुम्भा मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। इन्होने अपने राज्य का विस्तार किया, अनेक शत्रुओं को पराजित किया, मालवा के मेहमूद को 6 माह दुर्ग में केद रखा, इस विजय

की स्मृति में दुर्ग में विजय स्तम्भ बनवाया। गुजरात, मालवा व नागौर के सुल्तानों को अनके बार पराजित किया। कुम्भा साहित्य, कला व ज्ञान के पोषक थे। इन्होंने चित्तौड़ दुर्ग का विस्तार, कुम्भा के महल, कुम्भस्वामी मन्दिर, विजय स्तम्भ, दुर्ग के प्रवेशद्वार, बुर्ज, एकलिंगजी का मन्दिर, कुम्भलगढ़, आबू व अचलगढ़ दुर्ग सहित मेवाड़ के 84 दुर्गों में से 32 किले बनाए। वे स्वयं संस्कृत भाषा के विद्वान, संगीतज्ञ, कवि एवं श्रेष्ठ वीणा वादक थे। उन्होंने संगीत राज, संगीत मीमांसा, सूरप्रबन्ध आदि ग्रन्थों की रचना की। कुम्भा के शासनकाल को मेवाड़ का स्वर्णयुग कहा जाता है। 1468 में कुम्भा की हत्या इनके पुत्र उदयकर्ण ने की। उदयकर्ण के छोटे भाई रायमल ने उदयकर्ण को परास्त कर चित्तौड़ का राज्य प्राप्त किया।

रायमल के पुत्र महाराणा सांगा 1509 में गद्दी पर बैठे। सांगा मेवाड़ के ही नहीं अपितु भारत के महान व्यक्ति थे। इन्होंने दिल्ली के सिकन्दर लोदी, गुजरात के महमूदशाह बेगड़ा और मालवा के नसिरूद्दीन खिलजी को अनेक बार परास्त किया। अपने जीवन काल में यवनों के विरूद्ध लड़े 16 युद्धों में विजय प्राप्त की। खानवा के युद्ध में मुर्छित हो जाने से परिस्थितिवश बाबर की विजय हुई। सांगा की मृत्यु साथी सरदारों द्वारा विष दिये जाने से हुई थी। बाबर ने भी सांगा की प्रशंसा की थी।[84] महाराणा विक्रमादित्य अल्पायु व अयोग्य शासक था। 1534 में सुल्तान बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। सांगा की हाड़ी रानी कर्मावती ने हुमायूँ को राखी भेज कर रक्षा की प्रार्थना की। मेवाड़ के सरदार प्रतपागढ़ के रावत बाघासिंह ने महाराणा के प्रतिनिधि के रूप में युद्ध का नैतृत्व किया। बाघासिंह पाडलपोल के समीप शहीद हुए तथा दुर्ग में राजमाता कर्मावती ने 13000 वीरांगनाओं के साथ जौहर किया। यह चित्तौड़ का दूसरा साका कहलाता है। बाद में हुमायूँ ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर बहादुरशाह को परास्त कर दिया। तत्पश्चात् विक्रमादित्य ने पुनः दुर्ग प्राप्त कर लिया। दासी पुत्र बनवीर विक्रमादित्य को मार कर मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा। पन्नाधाय के त्याग से उदयसिंह को बचा लिया गया। बनवीर को हरा उदयसिंह चित्तौड़ की गद्दी पर बैठे। 1544 में शेरशाह सूरी ने चित्तौड़ की तरफ कूच किया। उदयसिंह दुर्ग की चाबियाँ शेरशाह को भेजकर पहाड़ों में चला गया। शेरशाह की मृत्यु के बाद उदयसिंह ने पुनः चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया।

उदयसिंह के समय अकबर ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। 20 अक्टूबर 1567 को चित्तौड़ पर घेरा डाल दिया गया। उदयसिंह किले का भार जयमल राठौड़ (बदनोर),

पत्ता सिसोदिया (केलवा) तथा साईदास (सलूम्बर) को सौंप कर स्वयं पहाड़ों में चला गया।[85] महाराणा की अनुपस्थिति में इन वीरों ने मुगल सेना का डट कर मुकाबला किया। अकबर ने जयमल को प्रलोभन दिया किन्तु वह नहीं माना।[86] अन्त में लम्बे घेरे व पराजय को सम्मुख देखकर राजपूत सरदारों ने साका करने का निश्चय किया और स्वयं केसरिया पहन कर युद्ध में कूद गये, दूसरी तरफ हजारों क्षत्राणियों ने जौहर किया। विजय प्राप्ति के बाद अकबर ने किले में 30,000 स्त्री–पुरूषों का कत्लेआम कराया। यह चित्तौड़ का तीसरा साका था। अकबर जयमल एवं पत्ता की वीरता से इतना प्रभावित हुआ था कि उसन आगरा के किले के प्रवेश द्वार पर जयमल व पत्ता की हाथी पर सवार आदमकद मूर्तियाँ बनवा दी थी। ये मूर्तियाँ 1663 तक विद्यमान थी, फ्रांसीसी यात्री बर्नियर ने भी इन्हें देखा था बाद में औरंगजेब ने इन्हें तुड़वा दिया। इससे प्रभावित होकर बीकानेर के किले के सूरज पोल के बाहर जयमल व पत्ता की वैसी ही मूर्तियाँ स्थापित करायी गयी जो कि आज भी विद्यमान है। महाराणा उदयसिंह ने उदयपुर को मेवाड़ की नयी राजधानी बनायी इसके साथ ही लगभग 350 वर्ष बाद चित्तौड़ ने मेवाड़ की राजधानी होने का गौरव खो दिया।

उदयसिंह के पश्चात् वीर शिरोमणी महाराणा प्रताप मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। वे जीवन पर्यन्त मुगलों से लड़ते रहे। 21 जून 1576 ई0 को हल्दीघाटी का प्रसिद्ध युद्ध अकबर के सेनापति मानसिंह व प्रताप के बीच हुआ जिसमें मानसिंह की विजय हुई। प्रताप जंगलों की खाक छानते रहे, घास की रोटी खाई किन्तु अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की। प्रताप ने चावण्ड को अपनी राजधानी बनाया। भामाशाह सदियों से महाराणाओं का खजांची रहा। संकटकालीन समय के लिए भामाशाह शाही खजाने में से थोड़ा थोड़ा धन जमा करता रहा। जब महाराणा प्रताप के साथ विपत्ति की घड़ी आयी तब उसने वह सारा धन महाराणा को दान कर दिया और इतिहास में अमर हो गया। 1615 में मुगल सम्राट जहाँगीर ने अमरसिंह के साथ सन्धि के फलस्वरूप चित्तौड़ मेवाड़ को सौंप दिया। इस प्रकार 1567 से 1615 तक 48 वर्ष चित्तौड़ मुगलों के अधीन रहा। राजसिंह के समय मेवाड–मुगल सम्बन्ध कटु हो गये। औरंगजेब से उनका संघर्ष हुआ।

मेवाड़ की राजधानियाँ समय के साथ बदलती रही। नागदा, अल्लट, चित्तौड़, गोगुन्दा, कुम्भलगढ़, चावंड और आखिर में उदयपुर।

5.2.7 दुर्ग के जल स्रोत

किसी समय दुर्ग में 84 जल स्रोत थे, उनमें से मात्र 22 ही वर्तमान में मौजूद हैं। ये सभी जल स्रोत प्राकृतिक जल आगोर से वर्षा जल से पुनर्भरित होते है, और आज भी 4 बिलियन लीटर पानी संग्रहित रखते हैं। ये जल इतना हैं कि इससे आज भी लगभग 50000 सैनिक अपनी पेयजल सम्बन्धी सभी आवश्यकताएँ पूरी कर सकते है, वो भी चार वर्षों तक, चाहे इन वर्षों मे बारिश हो या न हो। ये जल स्रोत तालाब, कुँए व बावडियों के रूप में है जो 400 हैक्टर पहाड़ी भूमि पर गिरने वाले वर्षा जल को अपने में समा सकते है, जबकि वार्षिक वर्षा 700 मिली मीटर हो।[87]

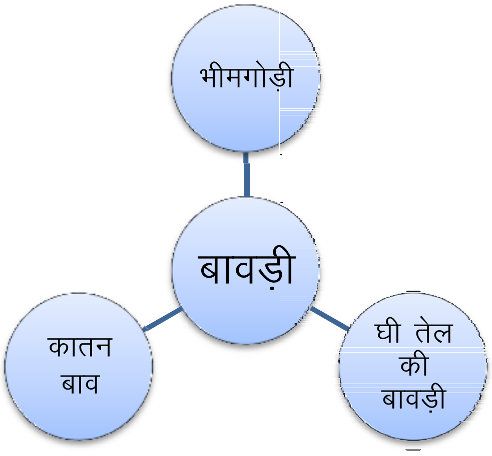

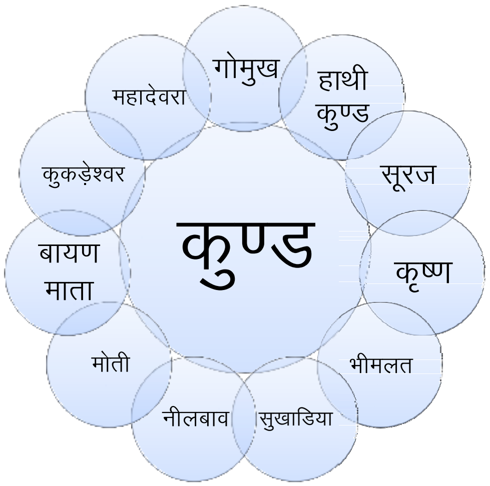

5.2.7.1 नदी

चित्तौड़ दुर्ग को तीन ओर से बनास की सहायक नदियों गम्भीरी व बेड़च ने घेर रखा है। यह दुर्ग इनके संगम के समीप स्थित है। गम्भीरी नदी की ओर से जाने वाला मार्ग किले के मुख्य द्वार पाडनपोल की ओर ले जाता है। दुर्ग तक जाने का केवल मात्र एक यही सड़क मार्ग है। खिज्र खाँ ने इसी नदी पर पुल बनवाया था। गम्भीरी व बेड़च बरसाती नदियाँ हैं, ये वर्ष भर जल से परिपूर्ण नहीं रहती तथापि दुर्ग के समीप प्रमुख जल स्रोत है।

5.2.7.2 झरने

दुर्ग में दो झरने हैं। जो पर्यटको को आकर्षित व आनन्दित करते हैं। प्रथम झरना किले के प्रथम द्वार पाड़नपोल से प्रवेश करते ही दाहिनी ओर दिखाई पड़ता है।

यह झरना वर्ष पर्यन्त चलता रहता है तथा आगुन्तकों को प्रेरणा देता है कि इस दुर्ग के देशभक्त रक्षकों ने भी आजादी की जंग मे ऐसे ही कई रक्त के परनाले बहाए है।

परनाळां पांणी पड़ै, झरणां रही इण ठौड़।
खून खाळ खळकाविया, जुध वीरां री जोड़।।[88]

किले का दूसरा झरना कुकड़ेश्वर कुण्ड के पास है।

5.2.7.3 भीम गोड़ी बावड़ी

चारभुजा मन्दिर के समीप एक स्वच्छ पानी की बावड़ी है। कहा जाता है कि माता कुन्ती की प्यास बुझाने के लिए भीम ने अपने घुटने (गोड़े) को जमीन पर मार कर इस जलाशय का निर्माण किया था। इसलिए भीम के नाम पर इसे भीमगोड़ी कहा जाता है। इस बावड़ी में उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। सीढ़ियाँ इस तरह बनायी गयीं थी कि बावड़ी के मुख्य कुण्ड में पानी के तल के ऊपर नीचे होने पर भी सीढ़ियाँ पानी के तल को छूती रहे।

5.2.7.4 घी तेल की बावड़ी

विजय स्तम्भ के समीप एक बावड़ी स्थित है जिसे घी–तेल की बावड़ी कहा जाता है। बावड़ी के इस नाम के पीछे एक कारण रहा। महाराणा रायमल की पुत्री का विवाह गागरोन के खींची राजा के साथ हुआ था। उस विवाह में इतना घी–तेल इकट्ठा किया गया कि उसे रखने हेतु पक्के कुण्ड तैयार कराने पड़े थे। एक अन्य प्रचलित मान्यता के अनुसार कुम्भश्याम मन्दिर की प्रतिष्ठा में होने वाल भव्य आयोजनों के समय इन्हीं कुण्डों में घी–तेल का संग्रहण किया गया था। यद्यपि इतिहासकार इस बावड़ी को नाम के आधार पर घी–तेल संग्राहक मानने पर एक राय नहीं है तथापि जल स्रोत के रूप में इसका उपयोग अवश्य किया जाता होगा। इस बावड़ी में भी उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनवायी गयी थी।

रायमल्ल री धीवड़ी, गागरूण परणाय। घी'र तेल री बावड़्यां, खुदी'ज हेत बियाव।।

5.2.7.5 कातण बावड़ी

हाथी कुण्ड के पास सड़क के पूर्व की ओर एक सुन्दर बावड़ी कातण बावड़ी कहलाती है, लोग इसे खातण बावड़ी भी कहते है जबकि सही नाम कातण बावड़ी है। कहा जाता है कि इस बावड़ी का निर्माण जेतू नामक वैश्य महिला ने अपने चरखे की कताई से अर्जित धन से कराया। अतः चरखा कातने के धन से निर्मित होने के कारण

इसका नाम कातण बावड़ी पड़ा।

जनहित विणियाणी जबर, जेती बाव खुदाव।
सूत कात बणवायडी, बाजी कातण बाव।।[89]

इसे चारों तरफ से पक्की तथा चूने पत्थर की चिनाई से बनी दीवारों से मजबूती प्रदान की गयी है। इसमे भी नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इसका पानी शीतल तथा कुमुदनी युक्त है।

5.2.7.6 गोमुख कुण्ड

समद्धेश्वर महादेव मन्दिर से आगे चलने पर गोमुख कुण्ड आता है। यह कुण्ड आसपास की पहाड़ी ढलान से लगभग 50 फीट नीचे है। पहाड़ों की चट्टानों के भीतर से जल इस कुण्ड में आता है, जिस स्थान से पानी इस कुण्ड में गिरता है, वहाँ पत्थर को तराश कर एक गोमुख बनाया गया है जिससे जल गोमुख से ही निकले। गोमुख से निकलने वाले जल की धार्मिक मान्यता है, पवित्र गंगा भी गोमुख से निकल रही है। अतः यहाँ भी गोमुख से निकले इस जल को गंगा जल के समान पवित्र व इसमें स्नान, आचमन गंगा स्नान के समान पुण्यदायी माना जाता है। गोमुख से निकलने के बाद यह जल जिस स्थान पर गिरता है वहाँ भगवान शिव का शिवलिंग स्थापित कराया गया है, जिससे गोमुख का पानी शिवलिंग पर गिरता रहता है तथा शिवलिंग से निकलकर कुण्ड में एकत्रित होता है। इस प्रकार कुण्ड का जल गंगा जल व शिवजी का चरणामृत समझ कर पवित्र माना गया है। कुण्ड के पवित्र जल से अभिसिंचित होकर वीरांगनाएं प्रलय सदृश्य विकराल अग्नि में कूद कर जौहर कर लेती थी और मेवाड़ी वीर रक्त की नदियाँ प्रावाहित करते थे। इसके लिए कवि ने कहा है –

इक गंगा खळकी वठै, हेम पहाड़ां मोड़। बीजी गौमुख कुण्ड में, गढ़ थारै चित्तौड़।।[90]

कुण्ड तथा जल की स्वच्छता व पवित्रता का विशेष ध्यान रखा जाता है। कुण्ड की सीढ़ियों पर शिवजी का प्राचीन मन्दिर भी है। मन्दिर में शिव परिवार की मूर्तियों पर कुण्ड का पवित्र जल चढ़ाया जाता है। कुण्ड के समीप धार्मिक संस्थान द्वारा कुण्ड के जल का महत्त्व बताने एवं इसमें स्नान न करने का चेतावनी बोर्ड भी लगाया गया है। इसके समीप प्रतिवर्ष जौहर मेले का आयोजन होता है साथ ही सावन में शिव मेले का आयोजन होता है। दूर–दूर से धर्मावलम्बी कुण्ड के पवित्र जल का आचमन तथा शिवजी के दर्शन करने आते है। अतः यह धार्मिक पर्यटन को बढ़ावा देता है।

शिव मन्दिर तथा पार्श्वनाथ जैन मन्दिर से थोड़ा आगे चलने पर कुण्ड में नीचे उतरने के लिए घुमावदार चौड़ी सीढ़ियाँ बनायी गयीं हैं, सीढ़ियों के प्रारम्भ पर एक कलात्मक पाषाण निर्मित तोरणद्वार बनाया गया है। नीचे उतरने पर सीढ़ियों के बीच में ही दीवार पर गणेश प्रतिमा तथा गोमुख मन्दिर बना है, मन्दिर के भीतर सुरंग का द्वार है कहा जाता है कि यह सुरंग कुम्भा महल तक जाती थी, वर्तमान में सुरंग बन्द है या नष्ट हो चुकी है, इसी मन्दिर के भीतर भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा तथा दीवार पर उत्कीर्ण रानी पद्मिनी की काल्पनिक मूर्ति है, जो दर्शनार्थियों को महारानी के सौन्दर्य का बोध कराती है। यह कुण्ड एक तरह का लघु चैक डेम या एनिकट है, इसमें पहाड़ी जल को रोके रखने के लिए प्राकृतिक चट्टानों के साथ साथ प्राचीरनुमा दीवार का भी सहारा लिया गया है। यही कारण है कि यह कुण्ड एक निश्चित मात्रा में जल से सदैव परिपूर्ण रहता है। इस कुण्ड के पूर्ण भराव के पश्चात् अतिरिक्त जल की निकासी का भी प्राकृतिक मार्ग है। इस मार्ग से अतिरिक्त जल एक झरने के रूप में गिरता रहता है।

वर्तमान में कुण्ड के किनारें दुर्ग की प्राचीर के समीप एक आधुनिक पम्प हाऊस बनाया गया है, विद्युत ऊर्जा चलित पम्प्स के प्रेशर से पाइप लाईन के माध्यम से किले के विभिन्न स्थानों तक कुण्ड का जल पहुँचाया जाता है।

5.2.7.7 हाथी कुण्ड

गोमुख कुण्ड से बाहर निकल कर मुख्य सड़क पर चलने पर सड़क के पश्चिम में एक प्राकृतिक कुण्ड आता है, जिसे हाथी कुण्ड कहते है। यह कुण्ड पीछे की तरफ पत्थर की दीवारों से घिरा हुआ है, इसमें बरसात का पानी प्राकृतिक रूप से एकत्रित होता है। यह काफी बड़ा जलाशय है तथा तल पथरीला है। इसके चारों तरफ विशाल मैदानी भू–भाग है जहाँ खेती की जाती थी। किले के वैभव काल में इस कुण्ड का पानी यहाँ की बड़ी सेना के हाथी, घोड़ों व अन्य जानवरों के पीने के उपयोग लिया जाता था। कहा जाता है कि इस कुण्ड में हाथी स्नान करते थे, जिससे इसका नाम हाथी कुण्ड पड़ा।

फीलखाने सफील सम, गज ही घणा भुसंड। संपाड़ो करवावणे, यो है हाथी कुण्ड।।

वर्तमान में किले में ना तो सेना है और ना ही हाथी, घोड़ें, यदि कोई जानवर हैं वो या तो मृगवन में संरक्षित हिरण है या बस्ती के पालतू मवेशी, जो कुण्ड का उपयोग नहीं करते है। अतः कुण्ड पानी से भरे एक मात्र अनुपयोगी जलाशय के समान हो गया

है, इसके जल का कोई उपयोग नहीं है, रूके हुए पानी के कारण पानी पर काई व अन्य जलीय वनस्पतियाँ जमा हो गयी हैं।[91]

5.2.7.8 सूरज कुण्ड

कालिका मन्दिर के सामने का कुण्ड सूरज कुण्ड कहलाता है। इसका नाम सूरज कुण्ड होने से इस दावे की पुष्टि होती है कि मन्दिर में कालिका माता की मूर्ति से पहले सूर्य देव की मूर्ति थी तथा उन्हीं के मन्दिर के सामने स्थित होने के कारण इस कुण्ड का नाम सूरज कुण्ड पड़ा।

मिन्दर काळी मात रै, साम्हे सूरज कुंड। सूरज मिन्दर होण री, साखी आहि प्रचण्ड।।

5.2.7.9 कृष्ण कुण्ड

सूरज पोल की तरफ चलने पर भीमलत कुण्ड के ऊपर की तरफ कृष्ण कुण्ड है।

5.2.7.10 सुखाड़िया कुण्ड

मृगवन से आगे कीर्ति स्तम्भ के मार्ग पर चलने पर राजटीला से आगे तथा भाक्सी के पीछे मुख्य सड़क से बायीं तरफ थोड़ी दूरी पर एक सुन्दर जलाशय है। जिसका नाम सुखाड़िया है। इसकी सतह पथरीली है, आगोर काफी विशाल है। इसकी एक तरफ जहाँ पानी का भराव सर्वाधिक है, वहाँ पर पक्का घाट बनवाया गया है। इस घाट पर बावड़ी के समान सोपान पाद बनाए गए हैं इन सोपान पादों के ऊपर बैठने, कुण्ड से पानी भरने, नहाने आदि के लिए चबुतरेनुमा सीढ़ियाँ बनायी गयी हैं। इसकी ऊपरी दीवार में बनी सुन्दर रथिकाओं में देवताओं की मूर्तियाँ पधराई गयी हैं। ये मूर्तियाँ कुण्ड को धार्मिक रूप से पवित्रता प्रदान करने व कुण्ड का उपयोग करने वाले व्यक्तियों के पूजा हेतु स्थापित की गयी होगी।

कुण्ड के समीप बड़े—बड़े खेत थे जिनमें इसका जल सिंचाई हेतु प्रयुक्त होता था। वर्तमान में कुण्ड के पास एक पौधशाला है जिसमें पानी की आपूर्ति इसी कुण्ड से होती है।

5.2.7.11 भीमलत कुण्ड

इसी मार्ग पर चलने पर राणा रणमल की हवेली के खण्डहरों के आगे पक्का बंधा हुआ एक विशाल जल कुण्ड आता है, जिसे भीमलत कुण्ड कहते है। यह कुण्ड

किले के पवित्र जल स्रोतों में से एक है, इसकी पवित्रता व धार्मिक महत्त्व उतना ही है जितना भीमगोड़ी, गोमुख कुण्ड तथा कुकडेश्वर कुण्ड का है। 15 वीं सदी तक यह पूज्य सती स्थल था। कुण्ड निर्माण के सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है। जिसके अनुसार महाभारत काल में पाण्डव इस स्थान से गुजरे थे तब उन्हें ज्ञात हुआ कि इस पर्वत पर निर्भयनाथ जी नामक ऋषि तपस्या कर रहे है। उनके पास पारस पत्थर है। भीम ने ऋषि से पारस पत्थर की मांग की। ऋषि ने शर्त रखी, यदि तुम पूरी रात्रि में प्रातः काल में मुर्गा बोलने से पहले इस पहाड़ के चारों तरफ दीवार बना दो तो मैं यह पारस पत्थर तुम्हें दे दूंगा। भीम ने शर्तानुसार रात्री में दीवार बनाना प्रारम्भ किया, रात्री का एक प्रहर शेष रहते ही मुर्गा बोल गया जिसे प्रातः काल का सूचक माना गया। अपनी इस असफलता पर क्रोधित होकर भीम ने धरती पर लात मारी जिससे एक विशाल गड्डा बन गया। यही गड्डा भीमलत कुण्ड है। यह कुण्ड भू वैज्ञानिकों के अनुसार एक भुगर्भीय गर्त है जो पृथ्वी की आन्तरिक हलचल से निर्मित है। इसमें भू–गर्भिक जल भर जाने से पानी का कुण्ड बन गया है। इसके चारों तरफ पक्की दीवार, घाटों व सीढ़ियों से बाँध देने के कारण इसका पानी स्वच्छ बना रहता है। कुण्ड का पानी पेयजल हेतु उपयोग लिया जाता था, इसके समीप एक फलों का बाग तथा खेत है, अपने वैभव काल में इस कुण्ड के पानी से इन्हें सिंचित किया जाता होगा।

इसके समीप राणा रणमल की हवेली के खण्डहर है, सम्भव है कि इस हवेली के निवासी इस कुण्ड का उपयोग करते हो तथा इनकी सुरक्षा, स्वच्छता व सार–सम्भाल की जिम्मेदारी उन्हीं की हो।

5.2.7.12 नीलबाव कुण्ड

कीर्ति स्तम्भ के आगे बढ़ने पर सड़क के बायीं ओर नील बाव नामक पानी का कुण्ड आता है। यह कुण्ड काफी बड़ा तथा विशाल है। इसके जल में जलीय वनस्पतियाँ उगी हुई है, आस–पास घने वन क्षेत्र में बड़े–बड़े वृक्ष, झाड़ियाँ, घास उगी हुई हैं, पास में विशाल मेदान है जहाँ खेती की जाती थी। कुण्ड का जल कृषि हेतु प्रयुक्त किया जाता था।

5.2.7.13 मोती कुण्ड

नील बाव से थोड़ा आगे चलने पर शमशान भूमि में एक छोटा सा कुण्ड है, जिसे मोती कुण्ड कहते है। किले के भीतर एसे अनेक गर्त हैं जिनमें बरसात का पानी

भर जाता है, मोती कुण्ड उन्हीं मे से एक है।

5.2.7.14 बायण माता कुण्ड या अन्नपूर्णा कुण्ड

सास–बहू मन्दिर के उत्तर में तथा अन्नपूर्णा मन्दिर के पश्चिम में एक जलाशय है जो बायण माता कुण्ड कहलाता है।

5.2.7.15 राठोड़िया कुण्ड

यह कुण्ड बस्ती क्षेत्र में तथा रत्नेश्वर तालाब के समीप है।

5.2.7.16 कुकड़ेश्वर कुण्ड

रत्नेश्वर तालाब से लखोटा बारी की ओर जाने वाली सड़क पर पश्चिम की ओर मुड़ने पर किले की बस्ती में सड़क के पूर्वी किनारे पर एक गहरा जलाशय है, जो कुकड़ेश्वर कुण्ड कहलाता है।

यह सभी जलाशयों में सबसे प्राचीन व गहरा है। भीम ने पारस पत्थर की आस में सन्त निर्भयनाथ जी के कथनानुसार किले के चारों तरफ एक दीवार बनाने का कार्य प्रारम्भ किया था तथा मूर्गे की रात्री में ही आवाज से उसका प्रयास विफल हो गया था। मुर्गे की यह आवाज निर्भयनाथ के शिष्य यतिनाथ ने निकाली थी। यतिनाथ ने यह आवाज इस कुण्ड के समीप से निकाली थी। अतः मुर्गे (कूकड़े) की आवाज के कारण इस कुण्ड का नाम कुकड़ेश्वर कुण्ड पड़ा। किन्तु ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार इस कुण्ड का निर्माण 755 ई0 में राजा कुकड़ेश्वर ने करवाया था तथा उन्हीं के नाम पर इसका नाम कुकड़ेश्वर कुण्ड पड़ा।

इस कुण्ड का दृश्य बड़ा मनोहारी है। समीप ही कुकड़ेश्वर महादेव का मन्दिर है तथा इसके समीप एक झरना बह रहा है।

5.2.7.17 महादेवरा कुण्ड

यह कुण्ड बस्ती क्षेत्र में माताजी कुण्ड व रत्नेश्वर तालाब के समीप है। इसका पानी कुकड़ेश्वर कुण्ड में जाता है।

5.2.7.18 जयमल पत्ता तालाब या फतेह जी का तालाब

कातण बावड़ी से आगे मुख्य सड़क के बायीं तरफ एक सुन्दर तालाब स्थित है। यह जयमल पत्ता का तालाब कहलाता है, इसे फतेह जी का तालाब भी कहते है। इस तालाब का नाम मेवाड़ के दो शूरवीरों जयमल राठौड़ व पत्ता सिसोदिया के नाम पर

रखा गया है, जिनकी हवेली इस तालाब के पास ही है। यह तालाब दुर्ग के सभी तालाबों से सुन्दर है। इस तालाब की विशेषता इसमें खिलने वाले कमल के फूल है। तालाब में कमल के फूलों के खिलने का क्रम राजपूत युग से लगातार जारी है। यही कारण है कि इतिहास में भी इस तालाब की प्रसिद्धि में कमल के फूलों का योगदान है।

जैमल पता तलाव री, छटा छाय अरविन्द। भड़ भंवरा बण सुरग सूं, आवै लेण अणंद।।

तालाब की सतह पथरीली है, पथरीली सतह के कारण तालाब का पानी भूगर्भ में कम समाता था। इसके एक तरफ पक्के घाट तथा बावड़ी के समान सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इन सीढ़ियों की संख्या व क्रम विन्यास से पता चलता है कि तालाब की पूर्ण भराव क्षमता पर पानी काफी ऊपर तक आ सकता था। तालाब का जल सिंचाई के लिए भी उपयोग लिया जाता था। इसके घाट पर पक्के ढ़ाने बने हुए हैं जहाँ से बेलों द्वारा लाव चड़स से पानी खींचा जाता था। इसका प्राकृतिक वातावरण जलीय जीव व जलीय वनस्पति के उपयुक्त है। तालाब के जल में कलरव करते जलीय जीवों, पानी पीने आने वाले पक्षियों, जानवरों व जलीय वनस्पति के दर्शन का आनन्द उठाने व शिकार करने के लिए घाट पर वाच टावर्स व शिकारगाह बने हुए हैं।[92]

5.2.7.19 पद्मिनी तालाब व जल महल

कालिका मन्दिर के आगे सड़क पर पूर्व दिशा में पद्मिनी महल व पद्मिनी तालाब स्थित हैं। ये महल रानी के ग्रीष्मकालीन निवास स्थान थे। ग्रीष्मकालीन महल होने से पता चलता है कि महल गर्मियों में भी ठण्डे रहते थे तथा इनमें रहने वाले व्यक्तियों को

तेज गर्मी में शीतलता प्रदान करते थे। चित्तौड़ की प्रधान रानी पद्मिनी गर्मियों में इन्हीं महलों में रहती थी। ये उस वीरांगना द्वारा अपने शील और सतीत्व की रक्षा हेतु आत्मोसर्ग की कहानी के मूक साक्षी है।[93] महल एक तालाब से घिरे हुए हैं, इस तालाब का नाम रानी पद्मिनी के नाम पर पद्मिनी तालाब है। महल दो अलग अलग भवनो में बँटा हुआ है तथा दोनों ही भवन पद्मिनी महल कहलाते हैं। प्रथम भवन विशाल है जिसमें कई कमरे, रसोई, बरामदें, झरोखे, गैलरियाँ आदि बनी है, इसमें रानी सहित उसकी निजी दासियाँ व अन्य सेविकाऐं रहती थी, इसी में राणा रतनसिंह ने दर्पण युक्त कक्ष में रानी पद्मिनी का प्रतिबिम्ब अलाउद्दीन खिलजी को दिखाया था। महल का दूसरा भाग जिसे जनाना महल कहते है, पूरी तरह से तालाब के बीच में बना हुआ है जो किसी जल महल के समान है। यह रानी पद्मिनी का निजी महल था। यह मेहराबयुक्त प्रवेश द्वारों के साथ तीन मंजिला भवन है जो सरलता व सादगी से परिपूर्ण है। इनकी बनावट को देखने से इनकी प्राचीनता के बारे में संदेह उत्पन्न होता है। सम्भव है अलाउद्दीन खिलजी द्वारा नष्ट किये जाने के बाद में उसी स्थान पर उस घटना की स्मृति में प्राचीन खण्डहरों का जीर्णोद्धार कर नये महल का निर्माण किया गया हो। वर्तमान में महल के मुख्य भवन के आखिरी हिस्से की सुरक्षा दीवार के एक हिस्से के टूट जाने से उसके बीच पुरानी दीवार के अवशेष स्पष्ट नजर आ रहे हैं जो उक्त जीर्णोद्धार सम्बन्धी सम्भावना की सत्यता की पुष्टि करते हैं। महाराणा सज्जन सिंह ने सन् 1881 में इन महलों की दीवारों पर पुनः प्लास्टर करवाया था तथा कुछ नवीन निर्माण कार्य भी करवाया था, क्योंकि 23 नवम्बर 1881 को चित्तौड़ दुर्ग पर उक्त महाराणा का दरबार हुआ था जिसमें भारत के तत्कालीन गवर्नर–जनरल लार्ड रिपन स्वयं चित्तौड़ आये तथा महाराणा को जी.सी.एस.आई. की उपाधि प्रदान की थी। उसी अवसर पर महाराणा ने इन महलों की मरम्मत करवायी थी।

पद्मिनी तालाब भी अन्य तालाबों के समान पथरीली सतह का है तथा आगोर भी काफी विशाल है। यह भी वर्ष भर जल से परिपूर्ण रहता है। इसमें पद्मिनी महल के अतिरिक्त तालाब की पाल पर खातण रानी का महल भी है।

5.2.7.20 चतरंग मोरी तालाब

चौगानिया मैदान के आगे मुख्य सड़क की पूर्व दिशा में किले का सबसे प्राचीन व सबसे विशाल तालाब स्थित है। इस तालाब के निर्माण का श्रेय दुर्ग के संस्थापक चित्रांगद मौर्य को दिया जाता है। यह दुर्ग के सभी जलस्रोतो की तुलना में सर्वाधिक

ऊँचाई पर स्थित है तथा ऊँचाई के कारण दुर्ग के सभी जल स्रोतों को सतही जल तथा भूमिगत सीरे प्रदान करता है। तालाब काफी बड़ा व विस्तृत है। इसके किनारों की रक्षा हेतु चट्टानों से बनी प्राकृतिक पाल है, इसका तल व आगोर पथरीला है, जिससे पानी का भूगर्भ में रिसाव कम होता है तथा तालाब सदैव पानी से परिपूर्ण बना रहता है। तालाब का जल सिंचाई हेतु भी उपयोग लिया जाता था। इसके एक किनारों पर पक्के घाट बने हुए है।

चतरंग मोरि रो अठै, सरवर योज सुगट्ठ। मन अपछर हद मोयवे, जल केळी रै ठट्ठ।।[94]

तालाब के आसपास अनेक छोटे कमरे व मन्दिरनुमा संरचनाएं मौजूद है। इनके यहाँ होने का कोई स्पष्ट कारण ज्ञात नहीं है। सम्भव है कि ये कोई मन्दिर, घर या यज्ञशाला रहे हों। तालाब के किनारे की एक घुमटी नागरशैली के मन्दिर का एक उदाहरण है।

5.2.7.21 काला नाड़ा

यह छोटा तालाब पद्मिनी तालाब व सूरज कुण्ड के बीच है।

5.2.7.22 रक्त तलाई

राजटीले से कुछ आगे दाहिनी ओर एक गहरा गर्त है जो रक्त तलाई कहलाती है। चित्तौड़ के विभिन्न साकों के दौरान बहने वाले रक्त से भर जाने के कारण इसे रक्त तलाई कहते है। किले के भीतर पथरीली जमीन पर अनेक छोटे–मोटे गड्ढें हैं जो बारिश के दिनों में पानी से भर जाते है, रक्त तलाई भी इसी तरह पानी से भर जाती है तथा एक लघु तालाब सदृश्य हो जाती है।

5.2.7.23 बोलिया तालाब

यह तालाब नील बाव के आगे भांकरिया के पास है।

5.2.7.24 रत्नेश्वर तालाब

किले की बस्ती के उत्तर में ऊँची चट्टानों पर कुछ महलों के खण्डहर हैं जो रतन सिंह या हिंगलू अहाड़ा के महल कहलाते हैं। इनमें कभी राणा रतन सिंह रहते थे। इन्हीं महलों के सामने रतनसिंह ने एक तालाब बनवाया जिसे अपने निर्माता के नाम पर रत्नेश्वर तालाब कहा जाता है।

5.2.7.25 कुम्भ सागर

यह तालाब बस्ती क्षेत्र में राजपुरोहित गणेश मन्दिर के सामने है।

5.2.7.26 खाकी कुई

यह बस्ती क्षेत्र में नाथ जी की बगीची में स्थित है। इसमें कुकड़ेश्वर कुण्ड का पानी जाता है।

5.2.8 जल स्रोतों का आपसी जुड़ाव (लीकेज व सीपेज सिस्टम)

दुर्ग में जल प्रबन्धन की सबसे बड़ी विशेषता किले के जल स्रोतों का आपस में जोड़ा जाना है। यहाँ विभिन्न तालाब व कुण्ड आपस में इस प्रकार जुड़े हुए थे कि ऊँचाई पर स्थित तालाब का अतिरिक्त पानी समीप के तालाब में चला जाता था तथा दूसरे तालाब का पानी तीसरे में व तीसरे का चोथे में यह सिलसिला कई तालाबों तक चलता था।[95] इस व्यवस्था के तहत लगभग सभी जल स्रोत आपस में जुड़े हुए थे जो निम्न प्रकार है। चतरंग तालाब से निकलने वाला अतिरिक्त पानी पद्मिनी तालाब में जाता है तथा पद्मिनी तालाबा का अतिरिक्त पानी दो तरफा बँट कर एक तरफ काला नाड़ा में जाता है तथा काला नाड़ा का अतिरिक्त पानी फतेह तालाब में जाता है। पद्मिनी तालाब का अतिरिक्त पानी दूसरी तरफ से सुखाड़िया कुण्ड में, सुखाडिया का भीमलत कुण्ड में तथा भीमलत का फतेह तालाब में चला जाता है। इस प्रकार पद्मिनी तालाब दोनो तरफ से फतेह तालाब से जुड़ा हुआ है। तत्पश्चात् फतेह तालाब का अतिरिक्त पानी हाथी कुण्ड में, हाथी कुण्ड का पानी गोमुख कुण्ड में तथा गोमुख कुण्ड का अतिरिक्त पानी पाड़नपोल के समीप के झरने के माध्यम से किले से बाहर निकल जाता है। किले में नील बाव एक अन्य बड़ा जलाशय है जो बोलिया तालाब व मोती कुण्ड से जुड़ा हुआ है। इनका पानी राठोड़िया कुण्ड में जाता है। राठोड़िया कुण्ड के पानी से रत्नेश्वर तालाब रिचार्ज होता है, रत्नेश्वर का पानी महादेवरा कुण्ड में जा सकता है। राठोड़िया व रत्नेश्वर का पानी कुम्भसागर में भी जाता है। दूसरी ओर से माताजी कुण्ड का पानी भी महादेवरा कुण्ड में आता है। इसके बाद महादेवरा कुण्ड का पानी कुकड़ेश्वर कुण्ड में जाता है। कुकड़ेश्वर कुण्ड से एक झरना निकलता है जिससे निरन्तर पानी गिरता रहता है।[96]

इस प्रणाली के अतिरिक्त प्राकृतिक भूमिगत सीरों की सहायता से भी जल स्रोत आपस में जुड़े हुए है। जिसे स्थानीय भाषा में रिसन पद्दति (सीपेज सिस्टम) कहते है।

वृहद्संहिता के अनुसार जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में नाड़िया होती है उसी प्रकार धरती में भी कई ऊँची व कई नीची शिराएं या नाड़ियां होती हैं। इन शिराओं के माध्यम से भूमिगत पानी एक स्थान से दूसरे स्थान तक जा सकता है। इस पद्दति के तहत एक तालाब का पानी कम होने पर उसका भूमिगत पानी सीरों के माध्यम से समीप की बावड़ी या कुण्ड को पुनर्भरित (रिचार्ज) कर देता है। उदाहरणार्थ हाथी कुण्ड का पानी रिसन पद्दति से गोमुख कुण्ड में आता है। इसी प्रकार सूर्यकुण्ड काला नाड़ा के नीचे, कातण बावड़ी फतेह जी तालाब के नीचे, भीमलत कुण्ड सुखाडिया तालाब के नीचे है, जिससे यदि तालाब सूख भी जाए तो भूमिगत सीरों से कुण्ड व बावड़ियों में पानी बना रहे। इस क्रमिक व्यवस्था में गोमुख कुण्ड हाथी कुण्ड की सीरों से, हाथी कुण्ड में फतेह जी तालाब की सीरों से, कुकडेश्वर कुण्ड महादेवरा कुण्ड की सीरों से, महादेवरा कुण्ड रत्नेश्वर कुण्ड की सीरों से एवं रत्नेश्वर कुण्ड राठोड़िया कुण्ड की सीरों से जुड़े हुए हैं तथा आपस में पुनर्भरित (रिचार्ज) होते हैं।[97]

उक्त प्रणाली लीकेज एवं सीपेज सिस्टम के नाम से भी प्रसिद्ध है।

5.2.9 स्रोतों से जल प्राप्ति व्यवस्था

किले के जल स्रोतों से जल प्राप्त करने हेतु अलग–अलग व्यवस्थाएँ की गयी थी। अधिकांश तालाबों व कुण्डों को पक्के घाटों से बाँधा गया है। इन घाटो से पानी के तल तक जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। सीढ़ियों से उतर कर पात्र में जल भर कर लाया जाता था। सीढ़ियाँ पर्याप्त लम्बाई, चौड़ाई व संख्या में बनायी गयी थी कि एक ही समय में अधिकतम व्यक्ति उपयोग कर सके। इसके अतिरिक्त सिंचाई हेतु जानवरों की सहायता से लाव–चड़स, रहँट आदि का प्रयोग से एक जल उत्थान प्रणाली भी विकसित की गयी थी। बावड़ियों, कुँइयों से पानी खींचने हेतु नेज, डोर, डोली, ढेकली, डोलची आदि का प्रयोग किया जाता था।[98]

5.2.10 जल संग्रहण व्यवस्था

चूँकि दुर्ग में जल स्रोतों की संख्या काफी अधिक थी तथा सभी सदानीरा थे। इनसे वर्ष पर्यन्त जल प्राप्त किया जा सकता था। अतः दुर्ग में जल को लम्बे समय तक संग्रहित रखने के लिए कृत्रिम व्यवस्था करने की आवश्यकता न के बराबर थी। फिर भी दुर्ग के महलों में धातु के बर्तन, पत्थर की टंकियाँ, छोटे टेंक, मटकें आदि देखे जा सकते हैं, जिनमें सेवक पानी भर दिया करते थे।[99]

5.2.11 जल वितरण प्रणाली

किले के विभिन्न स्थानों पर पानी पहुँचाने का अधिकांश कार्य सेवकों द्वारा किया जाता था। समीप के जल स्रोत से पानी भर कर सेवक अपने सिर पर रखकर या मसक में भर कर विभिन्न स्थानों तक पहुँचाते थे। इसके अतिरिक्त दुर्ग में पाइपलाईन के माध्यम से भी जल वितरित किया जाता था। इस व्यवस्था में एक लम्बे, सीधे वृक्ष के तने को अनुर्दैध्य काट कर खोखला कर दिया जाता था। इन आधे चिरे तनों को आपस में जोड़कर नाली बना दी जाती थी। इस नाली को आवश्यक ढाल प्रदान करने हेतु खम्बों पर स्थापित कर दिया जाता था। ये खम्बे सूरजपोल के समीप आज भी देखे जा सकते हैं। समीप के जल स्रोत से उत्थित पानी को नाली में प्रवाहित कर किले के विभिन्न स्थानों तक जल वितरित कर दिया जाता था।[100]

5.2.12 जल का उपयोग

दुर्ग में स्रोतों से प्राप्त जल विभिन्न प्रयोजनो में उपयोग आता था। किले में 50,000 की जनसंख्या, एक बड़ी सेना तथा उनके जानवर पेय जल हेतु इन स्रोतों का सर्वाधिक प्रयोग करते थे। किले के अधिकांश जल स्रोत पेयजल हेतु आरक्षित रखे गये थे, उनमें नहाने–धोने, जानवरों को पानी पिलाने तथा सिंचाई हेतु जल लेने की पाबन्दी थी। इसी तरह कुछ जल स्रोत मात्र सिंचाई हेतु प्रयुक्त होते थे। जल द्वारा किले को सामरिक सुरक्षा भी प्रदान की गयी थी। ज्ञातव्य है कि किला तीन ओर से नदी द्वारा घिरा हुआ है, जिसे पार करके आक्रमणकारियों को किले तक पहुँचना कठिन था। गम्भीरी नदी पर खिज्र खाँ ने पुल बनाकर इस प्राकृतिक सुरक्षा व्यवस्था को तोड़ा। अधिकांश जल स्रोत वन क्षेत्र में हैं जिनके किनारे वन्य जीव पानी पीने आते थे तथा पक्षी कलरव करते थे, यहाँ पर शिकार करने हेतु शिकारगाहे बनायी गयी थी, तालाबों में मछली व अन्य जलीय जीवों का भी शिकार किया जाता था। किले के कुछ जल स्रोतों के पवित्र जल से स्नान–आचमन–तर्पण करने, देवताओं को अर्पित करने व इनके किनारे मेले, परम्पराएँ, रीतिरिवाज आदि सम्पादित करने का धार्मिक महत्त्व है, अर्थात इनका जल धार्मिक प्रयोजनों में उपयोग लिया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ जल स्रोत पर्यटकों के लिए भी आकर्षण का केन्द्र भी है।

5.2.13 जलनिकास प्रणाली

किले के जल स्रोतों में नेष्टा, मोरी, मोखे, पाळ आदि देखे जा सकते हैं जो जल

की अधिकता या पूर्ण भराव से थोड़ा पहले ही अतिरिक्त जल को स्रोत से बाहर निकाल देते थे ताकि अतिरिक्त जल अपने स्रोत के किनारों, दीवारों व घाटों को न तोड़े और ना ही कटाव की स्थिति उत्पन्न हो। इसके अतिरिक्त जलनिकास व्यवस्था की किले के जल स्रोतों को आपस में जोड़ने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

5.2.14 वर्तमान स्थिति

किले के मौजूदा 22 जल स्रोतों में से अधिकांश नष्ट होने की कगार पर हैं, कई गन्दगी से अटे पड़े हैं, पेयजल के लिए प्रसिद्ध कुण्डों का भी पानी गन्दा व बदबूदार हो गया है, जल संग्रहण मार्ग अवरूद्ध हो जाने से तालाबों में पानी की आवक कम हो गयी है जिससे वे सूखने लगे हैं, बावड़ियाँ जर्जर हो गयीं हैं, उनमें झाड़ियाँ उग आयी हैं। दुर्ग में वर्तमान में 30,000 व्यक्ति बस्ती क्षेत्र में निवास कर रहे हैं उन्हें जल की आपूर्ति सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं इंजिनियरिंग विभाग फैड़ द्वारा की जाती है। पिछले कई वर्षों से आधुनिक चित्तौड़ शहर पानी की कमी के भीषण संकट से जूझ रहा है इसका कारण चित्तौड़ दुर्ग की जल प्रबन्धन परम्परा का मृतप्राय हो जाना है। दुर्ग की सार–सम्भाल व प्रबन्धन भारतीय पुरातत्त्व विभाग करता है।[101]

कुछ वर्ष पूर्व राज्य सरकार द्वारा राजस्थान के पहाड़ी किलों को यूनेस्कों की विश्वविरासत में शामिल कराने हेतु प्रयास किये गये। फलतः कम्बोडिया के नामपेन्ह शहर में यूनेस्कों की विश्वविरासत सम्बन्धी वैश्विक समिति की 37 वीं बैठक में शुक्रवार 21 जून 2013 को राजस्थान के 6 पहाड़ी किलों के विश्वविरासत में शामिल किये जाने की घोषणा की गयी जिनमें चित्तौड़गढ़ भी एक है।[102]

सन्दर्भ

1. शर्मा, ललित, जलदुर्ग गागरोन, झालावाड़ विकास मंच, झालावाड़, 2013, पृ 19
2. शर्मा, ललित, जलदुर्ग गागरोन, पूर्वोक्त, पृ 20 एवं मिश्रण सूर्यमल्ल कृत वंश भास्कर, खण्ड 2, पं. रामकरण आसोपा (सं.), मरूधर प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर, पृ 600
3. शर्मा, ललित, जलदुर्ग गागरोन, पूर्वोक्त, पृ 34
4. पत्रिका कोठारी, गुलाब (सं) पत्रिका इयर बुक, पत्रिका प्रकाशन, 2007, पृ 804
5. उक्त, पृ. 805
6. शर्मा, ललित, जलदुर्ग गागरोन, पूर्वोक्त, पृ 33

7. शर्मा, ललित, जलदुर्ग गागरोन, पूर्वोक्त, पृ 127
8. मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, रा.हि.ग्र.अका., जयपुर, 2013 पृ 44
9. देसाई, लल्लू भाई, भीम भाई, चौहान कुल कल्पद्रुम, भाग 1, प्रकरण 13 (क) – चौहान राजपूतों की शाखाओं का इतिहास एवं वंश वृक्ष राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 1995 पृ 94
10. उक्त, पृ. 92, 97
11. नैणसी मुहणोत, मुहणोत नैणसी री ख्यात, बद्रीप्रसाद सांकरिया (सं), भाग 1, राज. प्रा. विद्या. प्रति. जोधपुर, 1984 पृ 250–51
12. खींची, रघुनाथ सिंह, गोपाल सिंह, खींची वंश प्रकाश, जयपुर परिशिष्ट 1, पृ 53
13. दुबे, दीनानाथ, भारत के दुर्ग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, 1991, पृ 97
14. देसाई, लल्लू भाई, भीम भाई, चौहान कुल कल्पद्रुम, भाग 1, प्रकरण 13 (क) राज. प्रा. विद्या. प्रति. जोधपुर, 1984 पृ 100–103
15. उक्त पृ 100–103
16. खींची, आर.एस. एवं तंवर, सांवर लाल, संत पीपाजी एवं सीता स्मृति ग्रंथ, पृ 38
17. शर्मा, ललित, जलदुर्ग गागरोन, पूर्वोक्त, प 30
18. डे, उपेन्द्र नाथ, मेडिवल मालवा, मुंशी लाल मनोहर लाल, नई दिल्ली, 1965 पृ 81–176
19. कुम्भलगढ़ प्रशस्ति, वि.सं. 1517, श्लोक सं 259 देखें वीर विनोद भाग 1 पृ 411–416
20. निजामी, ए. एच., गागरोन फोर्ट–द सेकण्ड साका, शोध पत्र, शोध साधना, साभार।
21. अहमद, निजामुद्दीन, तबकाते अकबरी, देव बी.एन. एवं बेनी प्रसाद (अनु.), भाग 3, उपभाग 2 लो प्राइस पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1995 पृ 367–368
22. अबुल फजल, अकबरनामा, बेवरीज (अनु.), भाग 2, लो प्राइस पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2010 पृ 630–631 एवं गहलोत, सुखबीर सिंह, राजस्थान के इतिहास का तिथिक्रम, हिन्दु साहित्य मन्दिर, जोधपुर, 1967 पृ 22
23. मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पूर्वोक्त, पृ. 48
24. नैणसी मुहणोत, मुहणोत नैणसी री ख्यात, बद्रीप्रसाद सांकरिया (सं), भाग 3, पूर्वोक्त, पृ 206
25. मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पूर्वोक्त, पृ. 49
26. शर्मा, ललित, जलदुर्ग गागरोन, पूर्वोक्त, पृ. 86
27. चूण्डावत, लक्ष्मीकुमारी, मांझलरात, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2015 पृ. 104
28. शर्मा, ललित, जलदुर्ग गागरोन, पूर्वोक्त, पृ. 12
29. उक्त, पृ. 138
30. उक्त, पृ. 128
31. उक्त, पृ. 130
32. उक्त, पृ. 131–140
33. खींची, रघुनाथ सिंह, गोपाल सिंह, खींची वंश प्रकाश, जयपुर, परिशिष्ट 1, पृ. 53
34. डे, उपेन्द्र नाथ, मेडिवल मालवा, पूर्वोक्त, पृ. 176

35. शर्मा, मथुरा लाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पूर्वोक्त, पृ. 540
36. इन्टेक, भा.सा.नि. की गागरोन रिपोर्ट (टंकित), कोटा चैप्टर, पृ. 15
37. उक्त, पृ. 14
38. उक्त, पृ. 22
39. उक्त, पृ. 17
40. मुंशी मूलचन्द, तवारिख राज कोटा (उर्दू) हिस्सा अव्वल, पृ. 144
41. खान, मोहम्मद अशरफ, गागरोन दुर्ग एक अध्ययन, टंकित लघुशोध प्रबन्ध, पृ. 26 साभार
42. व्यक्तिगत साक्षात्कार, ललित शर्मा, इतिहासकार एवं स्थानीय निवासी, झालावाड़, दि. 05.06.2014
43. इन्टेक, भा.सा.नि. की गागरोन रिपोर्ट (टंकित), कोटा चैप्टर, पृ. 13
44. खान, एस. आर. सीरत सरकारे मालवा, पृ 27
45. व्यक्तिगत सर्वेक्षण, ललित शर्मा एवं जितेन्द्र सिंह गोड़, स्थानीय निवासी एवं इतिहासकार, झालावाड़ के आधार पर साभार।
46. गुलाटी, बी. आर. एवं पेंढारकर, सेन्सस ऑफ इण्डिया, गागरोन मोनोग्राफ, 1961, पृ 4 से साभार
47. शर्मा, ललित, जलदुर्ग गागरोन, पूर्वोक्त, पृ. 143
48. गुलाटी, बी.आर. एवं पेंढारकर, सेन्सस ऑफ इण्डिया, गागरोन मोनोग्राफ, 1961, पृ 4 से साभार
49. व्यक्तिगत सर्वेक्षण, गागरोन दुर्ग, ललित शर्मा एवं जितेन्द्र सिंह गोड़, स्थानीय निवासी एवं इतिहासकार, झालावाड़ के आधार पर साभार
50. इन्टेक, भा.सा.नि. की गागरोन रिपोर्ट (टंकित), कोटा चैप्टर, पृ. 9
51. शर्मा, ललित, जलदुर्ग गागरोन, पूर्वोक्त, पृ. 147
52. गाडण, शिवदास, अचलदास खींची री वचनिका, शम्भू सिंह मनोहर (सं), ऑरियन्टल रिसर्च इन्सट्यूट, जोधपुर, 1972, पृ. 82
53. मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पूर्वोक्त, पृ. 46
54. शर्मा, ललित, जलदुर्ग गागरोन, पूर्वोक्त, पृ. 132
55. द्विवेदी, अर्चना, गागरोन दुर्ग और उसका अवदान, शोध पत्र, 3,4 से साभार
56. इन्टेक, भा.सा.नि. की गागरोन रिपोर्ट (टंकित), कोटा चैप्टर, पृ. 21
57. शोध यात्रा, गागरोन दुर्ग, दि. 06.06.2014
58. साप्ताहिक उदय इण्डिया, समाचार पत्र में प्रकाशित समाचार के आधार पर, 22 जून 2013
59. प्रचलित जनश्रुति।
60. विकिपिडिया, द फ्री एनसाइक्लोपिडिया, डब्ल्यू. डब्ल्यू. डब्ल्यू. विकिपिडिया. ओर्ग/जैसमेर दुर्ग से साभार
61. शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान का इतिहास, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं. आगरा, 1971, पृ. 594

62. उक्त पृ. 594
63. कोठारी, गुलाब (सं), पत्रिका इयर बुक 2007, पूर्वोक्त, पृ. 845
64. भार्गव, वी.एस., राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण, रा.हि.ग्र.अका. जयपुर, पृ 845
65. ओझा, रायबहादुर पंण्डित गोरीशंकर हीराचन्द, उदयपुर का इतिहास, वैदिक यंत्रालय अजमेर, 1927, पृ. 357
66. व्यक्तिगत साक्षात्कार, डॉ. लोकेन्द्र सिंह चूण्डावत, व्याख्याता इतिहास एवं निदेशक, रावत शम्भूसिंह स्मृति पुरा अभिलेखागार, ठि. ज्ञानगढ़, दि. 03.01.2014
67. व्यास, राजेश कुमार, सांस्कृतिक पर्यटन, रा.हि.ग्र. अका. जयपुर, 2009, पृ. 162
68. आचार्य, जी.एस., चित्तौड़ : दुर्ग का संक्षिप्त इतिहास एवं दुर्ग परिचय, शिव प्रकाशन, 1971, पृ 38
69. केलवा, औंकार सिंह, मेवाड़ की प्राचीन धरोहर एवं विरासत गढ़, किले, दुर्ग एवं रावले, जौहर साका स्मारिका 2011, सुशीला लढ्ढा (प्र. सं), जौहर स्मृति संस्थान, चित्तौड़गढ़, पृ 106 से साभार
70. आचार्य, जी.एस., चित्तौड़ : दुर्ग का संक्षिप्त इतिहास एवं दुर्ग परिचय, पूर्वोक्त, पृ. 38
71. आचार्य, जी.एस., चित्तौड़ : दुर्ग का संक्षिप्त इतिहास एवं दुर्ग परिचय, पूर्वोक्त, पृ. 39
72. मिश्र, रतनलाल, राजस्थान के दुर्ग, साहित्यागार, जयपुर, 2008, पृ. 38
73. राठौड़ उम्मेद सिंह ठाकुर एवं चूण्डावत लोकेन्द्र सिंह, ऐतिहासिक गढ़ चित्तौड़, शार्दुल स्मृति संस्थान, धोली भीलवाड़ा, 2003, पृ. 27
74. आचार्य, जी.एस., चित्तौड़ : दुर्ग का संक्षिप्त इतिहास एवं दुर्ग परिचय, पूर्वोक्त, पृ. 46
75. आचार्य, जी.एस., चित्तौड़ : दुर्ग का संक्षिप्त इतिहास एवं दुर्ग परिचय, पूर्वोक्त, पृ. 50
76. आचार्य, जी.एस., चित्तौड़ : दुर्ग का संक्षिप्त इतिहास एवं दुर्ग परिचय, पूर्वोक्त, पृ. 54
77. इर्सकिन, के.डी., राजपूताना गजेटियर, भाग 2, मेवाड़ रेजीडेन्सी, 1908, पृ 101
78. व्यास, राजेश्वर, मेवाड़ की कला और स्थापत्य, राजस्थान प्रकाशन, जयपुर, 1988, पृ 56
79. टॉड कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्क्विटिज ऑफ राजस्थान, भाग 1, एम.एन. पब्लिशर्स पृ 625
80. ओझा, रायबहादुर पंण्डित गोरीशंकर हीराचन्द, उदयपुर का इतिहास, पूर्वोक्त, पृ. 45
81. शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान का इतिहास, पूर्वोक्त, पृ. 560
82. ओझा, रायबहादुर पंण्डित गोरीशंकर हीराचन्द, उदयपुर का इतिहास, पूर्वोक्त, पृ. 55
83. राठौड़ उम्मेद सिंह ठाकुर एवं चूण्डावत लोकेन्द्र सिंह, ऐतिहासिक गढ़ चित्तौड़, पूर्वोक्त, पृ. 25
84. कुमार, राजेश, वीरता एवं शौर्य की भूमि चित्तौड़गढ़, टूरिस्ट पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010, पृ 22
85. धमोरा, सवाई सिंह, चित्तौड़गढ़ के तीन साके, जो.सा. स्मारिका 2011, पूर्वोक्त, पृ. 70
86. कुमार, राजेश, वीरता एवं शौर्य की भूमि चित्तौड़गढ़, पूर्वोक्त, पृ. 24
87. अग्रवाल अनिल एवं नारायण सुनीता, अरावली के किले, सेन्टर फॉर साइन्स एण्ड एनवायरमेन्ट, नई दिल्ली, 1998, पृ. 156—157
88. राठौड़ उम्मेद सिंह ठाकुर एवं चूण्डावत लोकेन्द्र सिंह, ऐतिहासिक गढ़ चित्तौड़, पूर्वोक्त, पृ. 28

89. उक्त, पृ. 79

90. उक्त, पृ. 78

91. शोधयात्रा, चित्तौड़गढ़ दुर्ग, दि. 04.01.2014

92. शोधयात्रा, चित्तौड़गढ़ दुर्ग, दि. 04.01.2014

93. मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पूर्वोक्त, पृ. 34

94. राठौड़ उम्मेद सिंह ठाकुर एवं चूण्डावत लोकेन्द्र सिंह, ऐतिहासिक गढ़ चित्तौड़, पूर्वोक्त, पृ. 96

95. अग्रवाल अनिल एवं नारायण सुनीता, अरावली के किले, पूर्वोक्त, पृ. 156—157

96. व्यक्तिगत साक्षात्कार, डॉ0 लोकेन्द्र सिंह चूण्डावत, व्याख्याता इतिहास एवं निदेशक, रावत शम्भूसिंह स्मृति पुरा अभिलेखागार, ठि. ज्ञानगढ़, दि. 03.01.2014

97. अग्रवाल अनिल एवं नारायण सुनीता, अरावली के किले, पूर्वोक्त, पृ. 156—157 एवं व्यक्तिगत साक्षात्कार, श्री जगदीश जी, रजिस्टर्ड गाइड एवं स्थानीय निवासी, चित्तौड़गढ़ दुर्ग, दि. 02. 01.2014

98. व्यक्तिगत साक्षात्कार, श्री जगदीश जी, रजिस्टर्ड गाइड एवं स्थानीय निवासी, चित्तौड़गढ़ दुर्ग, दि. 02.01.2014 जगदीश जी या स्थानीय निवासी

99. शोध यात्रा, चित्तौड़गढ़ दुर्ग, दि. 04.01.2014

100. व्यक्तिगत साक्षात्कार, डॉ0 लोकेन्द्र सिंह चूण्डावत, व्याख्याता इतिहास एवं निदेशक, रावत शम्भूसिंह स्मृति पुरा अभिलेखागार, ठि. ज्ञानगढ़, दि. 03.01.2014

101. चित्तौड़गढ़ दुर्ग, पर्यटक सूचना फोल्डर, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, जयपुर मण्डल, जयपुर, 2010 पृ 1—5

102. साप्ताहिक उदय इण्डिया, समाचार पत्र में प्रकाशित समाचार के आधार पर, 22 जून 2013

अध्याय षष्ठम

पूर्वी राजस्थान के प्रमुख दुर्गों का इतिहास, स्थापत्य एवं जल प्रबन्धन

प्रस्तुत अध्याय में पूर्वी राजस्थान के दो किलों आमेर तथा जयगढ़ के इतिहास, स्थापत्य एवं जल प्रबन्धन का अध्ययन किया गया है।

6.1 आमेर दुर्ग

मध्यकालीन इतिहास के गौरवशाली राजपूत युग के वैभव व शक्ति का प्रतीक आमेर राज्य वर्तमान राजस्थान की राजधानी जयपुर के निर्माता शासकों की कर्मभूमि रहा है।

6.1.1 भौगोलिक स्थिति व जलवायु

प्राचीन ढूंढाड़ प्रदेश में कछवाहा राजपूतों की राजधानी आमेर वर्तमान राजस्थान की राजधानी जयपुर शहर से 9 किमी दूर उत्तर में कालीखोह पहाड़ियों के मध्य समुद्र तल से 1500 फीट ऊँचाई पर स्थित है।[1] आमेर शहर $25^{0}41'$ एवं $28^{0}24'$ उत्तरी तथा $74^{0}71'$ एवं $77^{0}13'$ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। आमेर का किला पहाड़ी के शिखर पर बनाया गया है। इस किले के नीचे आमेर नगर तथा आमेर के महलों से 500 फीट ऊपर पहाड़ी श्रृंखला की सर्वोच्च ऊँचाई पर जयगढ़ किला निर्मित किया गया है। आमेर दुर्ग दिल्ली से दूरी 308 कि.मी., आगरा से दूरी 294 कि.मी. जोधपुर से 353 कि.मी. चित्तौड़गढ़ से 334 कि.मी. अजमेर से 150 कि.मी. बीकानेर से 358 कि.मी. दूर स्थित है।

यहाँ वर्षा का औसत 56.38 से.मी. वार्षिक है।[2] मैदानी प्रदेश में पहाड़ियों के मध्य स्थित होने के कारण आमेर में भूमिगत तथा वर्षा जल की सदैव निर्बाध उपलब्धता रही है। जल की कमी के कोई साक्ष्य नहीं मिलते।

6.1.2 दुर्ग निर्माण व नामकरण

ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार इस स्थान पर आदिवासी मीणा जाति का राज था[3], जिन्होंने अम्बा माता के नाम पर आमेर की स्थापना की। 11 वीं सदी में कछवाहा राजपूतों ने मीणों से उक्त प्रदेश छीन लिया तब से इस स्थान पर राजपूत शासन करते आ रहे थे। आमेर का नामकरण अंबा, आम्बेर, आम्रदाद्रि, अम्बिकापुर आदि नामों से हुआ है। यहाँ के जैन मन्दिर से विक्रम संवत् 1657 का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है, जो वर्तमान में जयपुर संग्रहालय में सुरक्षित है, इस अभिलेख में इसे ढूंढ़ाड़ की प्राचीन राजधानी बताते हुए अम्बावती नाम से सम्बोधित किया गया है।

राजदेव (1179–1216) ने आमेर में महल बनवाए। काकिलदेव ने अम्बिकेश्वर महादेव मन्दिर बनवाया। सम्भवतः आमेर नाम अम्बिकेश्वर महादेव के नाम से ही पड़ा। कुन्तल देव (1276–1317) ने पहाड़ी पर दुर्ग बनवाया। यह दुर्ग वर्तमान में नष्ट हो चुका है।[4] यद्यपि आमेर दुर्ग के महल 11 वीं सदी से ही निर्मित होने लगे थे किन्तु मुख्य प्राचीन भाग मानसिंह महल 1599 में महाराजा मानसिंह ने बनवाए। निर्माण का यह क्रम सवाई जयसिंह द्वितीय के शासन काल तक चलता रहा।[5] वास्तुकला में हिन्दू व पारसी शैली का सम्मिश्रण है।

6.1.3 दुर्ग का इतिहास

कछवाहा राजपूत गवालियर से ढूंढ़ाड़ प्रदेश आए थे। काकिलदेव (सं 1093–1096) ने आमेर राज्य मीणों से छीना तथा इसे अपनी राजधानी बनाया। यद्यपि कछवाहो ने मीणाओं से आमेर अधिग्रहित किया था, तथापि मीणा ही राज्य के विश्वस्त सैनिक बने रहे। मीणा ही आमेर–जयगढ़ के दुर्ग रक्षक रहे, शाही खजाने की रक्षा की, उनकी देखरेख व सुरक्षा में ही राजपरिवार की महिलाएँ लम्बी यात्रा करती थीं, वे ही शाही खजाने के स्वर्ण सिक्कों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाते थे। वे ही राजपरिवार का राजतिलक कराते थे।[6] इस वंश के पीढ़ी दर पीढ़ी शासकों के काल में आमेर तरक्की करता रहा तथा भारमल के राज्यारोहण के पश्चात् आमेर के उत्थान व समृद्धि के मार्ग खुले। भारमल ने मुगलों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कराए। उसने

अपनी पुत्री का विवाह अकबर के साथ कराया। उस समय आमेर सहित राजपूताने की अन्य रियासतों को टक्कर केवल मुगलों की केन्द्रीय सत्ता ही दे सकती थी, इस प्रकार यह सम्बन्ध बनाकर भारमल ने आमेर को बाह्य आक्रमणों से सैकड़ो वर्षों तक के लिए निष्कंटक बना दिया। तत्पश्चात् आमेर ने मुगल सत्ता के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हुए अपनी आन्तरिक स्थिति को सुदृढ़ बनाया। हिन्दू–मुस्लिम सांस्कृतिक आदान प्रदान का असर कला पर भी पड़ा फलतः आमेर में बनने वाले भव्य राजप्रासादों पर मुगल कला का प्रभाव परिलक्षित होने लगा। भारमल के पुत्र भगवानदास व पौत्र मानसिंह अकबर के नवरत्न तथा मनसबदार थे। उन्होंने अकबर के सेनापति के रूप में अनेक युद्ध लड़े तथा राजपुतानें में आमेर की धाक जमाई। 1678 में जयसिंह आमेर के राजा बने, औरंगजेब ने इन्हें मिर्जा राजा की उपाधि दी ये मुगल दरबार में 7000 के मनसबदारी थे। सं. 1756 में जयसिंह द्वितीय गद्दी पर बैठे इन्हें औरंगजेब ने सवाई की उपाधि प्रदान की। सवाई जयसिंह ने ही जयपुर बसाया।

मुगलों से अन्तरंग सम्बन्धों के कारण आमेर किले को कभी बड़े आक्रमणों का सामना नहीं करना पड़ा। आमेर दिल्ली से आगरा होते हुए गुजरात, मालवा सहित दक्कन को जाने वाले व्यापारिक मार्ग पर स्थित था।[7] जिससे इसका राजनैतिक व व्यापारिक महत्त्व सदैव बना रहा।

6.1.4 दुर्ग रचना

किले की प्राचीरें व बुर्ज चारों ओर की पहाड़ियों पर मुख्य महल को शामिल करते हुए एक गोलाकार घेरे में निर्मित की गयी है। जो उसे दौगुनी सुरक्षा प्रदान करती है। आमेर किले के महल आकर्षक एवं तत्कालीन समृद्धि के मूक परिचायक है। पहाड़ी उपत्यका पर दक्षिण से उत्तर तक एक ही पंक्ति में बने ये राजभवन तीन राजाओं राजा मानसिंह, मिर्जा राजा जयसिंह, एवं सवाई जयसिंह की कलाप्रियता की उत्तम अभिव्यक्तियाँ है। पहाड़ी के मस्तक पर मुकुट की भाँति दिखाई देने वाले महल मावठा झील में प्रतिबिम्बित होकर मनोहारी दृश्य उत्पन्न करते हैं। आन्तरिक रूप से अलग परन्तु बाहर से समरूप महल सुन्दरता एवं वास्तु विन्यास में अद्वितीय है।

किले में प्रवेश करने हेतु मावठा झील के समीप स्थित दलाराम (दिल–ए–आराम) बाग के पीछे पत्थरों से एक घुमावदार मार्ग बनाया गया है। एक अन्य मार्ग जो हाथी, घोड़े, रथ के आवागमन के लिए बनाया गया था, से भी किले में प्रवेश किया जा सकता

है। ऊपर चलने पर किले का प्रथम प्रवेश द्वार जयपोल आता है इसके बाद सूरज पोल व चाँदपोल आते है। पूर्वी द्वार को सूरज पोल (सूर्योदय पूर्व दिशा में) तथा इसके ठीक सामने पश्चिम की ओर से प्रवेश हेतु बनाया गया द्वार चाँदपोल कहलाता है।[8] इन द्वारों के मध्य स्थित मैदान जलेब चौक कहलाता है, जहाँ राजा की अंगरक्षक सेना की परेड़ होती थी। इसके आगे सिंहपोल है, पोल के अन्दर दीवाने आम तथा पोल के पीछे महिषमर्दिनी शिलादेवी का मन्दिर है। इस देवी की प्रतिमा राजा मानसिंह प्रथम बंगाल के जैसोर के राजा केदार पर विजय के पश्चात् बंगाल से लाये थे, उन्होंने यह मन्दिर 1604 में बनवाया।

सांगानेर को सांगो बाबो, जयपुर को हनुमान।
आमेर की सिल्ला देवी ल्यायो राजा मान ।।[9]

मानसिंह द्वितीय व उसकी दो रानियों ने मन्दिर में संगमरमर व चाँदी के द्वार लगवाए।[10] यह देवी कछवाहों की अधिष्ठात्री देवी है। गणेशपोल के ऊपर सुहाग मन्दिर है, यह एक आयताकार कक्ष है। पोल में प्रवेश करने पर मानसिंह के महल तथा जनाना महल आते हैं जो किले के सबसे प्राचीन महल हैं। यहाँ उत्कीर्ण शिलालेख के अनुसार यह महल शहंशाह अकबर के शासनकाल मे राजा भारमल के पौत्र और राजा भगवानदास के पुत्र मानसिंह प्रथम ने हिजरी संवत 1008 (सन् 1587) में बनवाया था।[11] इन महलों में जयमन्दिर (दीवान–ए–खास अथवा शीश महल), जसमन्दिर, सुख मन्दिर आदि स्थित है। जयमन्दिर व सुख मन्दिर के मध्य उद्यान है। जयमन्दिर के उत्तर में हम्माम है। सुखमन्दिर के उत्तर में भोजनशाला स्थित है। दीवाने खास, दीवाने आम, जसमन्दिर व सुखनिवास का निर्माण मिर्जा राजा जयसिंह (1622–1667) ने तथा भोजनशाला, गणेशपोल आदि सवाई जयसिंह ने बनवाये। ये महल लाल बलुआ पत्थर से बनाए गए तथा इनमें संगमरमर का भी बहुतायत से प्रयोग किया गया। तत्कालीन वैभव व सम्पन्नता का बयान करते ये महल आज एकांगी तथा मूक है, किन्तु इनका सौन्दर्य वाचाल है, सजीव है। यही कारण है आज भी यह असंख्य सौन्दर्य प्रेमियों को अपनी ओर आकर्षित करता है। एक बड़ी दीवार मानसिंह महल व जयसिंह महल को पृथक करती है। इसके मध्य के चौक में बारादरी बनी हुई है। बारादरी के चारों तरफ जनाना महल बने हुए है।[12] आमेर के प्रारम्भिक शासक राजदेव के प्राचीन महलों तक चाँदपोल से एक अन्य मार्ग द्वारा पहुँचा जा सकता है। ये जयगढ़ की पहाड़ी की तलहटी में बने हुए है। इनमें राम–सीता को समर्पित एक साल बनी हुई है। सवाई जयसिंह ने साल में

रखी राम–सीता की मूर्तियों को सिटी पैलेस में विस्थापित करा दिया था।[13]

आमेर किले के वास्तु विन्यास से इसे मोर्चाबन्दी युक्त महलों की सँज्ञा देना ही उपयुक्त है।[14] बाद में बने जयगढ़ दुर्ग को ही किला कहा जाना चाहिए क्योंकि इसकी दुर्ग रचना, ऊँचाई, बख्तरबन्द प्राचीरें, बुर्जें आदि गिरी दुर्ग के लिए आदर्श है। नाहरगढ़ दुर्ग के बन जाने के बाद नाहरगढ़ सबसे सुरक्षित स्थान माना जाने लगा।

6.1.5 किले के जल स्रोत तथा जल संग्रहण व्यवस्था

राजस्थान के अन्य बड़े किलों की ही भाँति आमेर दुर्ग में भी जल प्रबन्धन की विशेष व्यवस्था की गयी थी। दुर्ग में जल संग्रहण एवं आपूर्ति हेतु एक झील व चार टांके बनाये गये है।[15] प्रथम टांका जलेब चौक में दूसरा दीवाने आम के पास तीसरा मानसिंह महल में तथा चौथा टांका मानसिंह महल के पूर्व में बाह्य भाग में बना है। दुर्ग के सभी टांके भूमिगत होने से पानी शुद्ध रहता था तथा वाष्पीकरण के अभाव में इनकी मात्रा भी कम नहीं होती थी।[16]

6.1.5.1 मावठा झील

आमेर किले की मुख्य पहाड़ी की तलहटी में एक झील स्थित है। जिसे स्थानीय भाषा में मावठा कहा जाता है। मावठा महावटा शब्द का अपभ्रंश है, पूर्व में इस सरोवर के तट पर विशाल वट वृक्ष हुआ करते थे, जिसके कारण इसका नाम महावटा पड़ा बाद में इसे मावठा कहा जाने लगा।[17] यह आमेर की बड़ी बस्ती तथा आमेर किले का जलापूर्ति का एक बड़ा स्रोत था। मावठा आस पास की पहाड़ियों से आने वाले वर्षा जल को संग्रहित करके भरता था तथा वर्ष पर्यन्त भरा रहता था चाहे राजस्थान में कितना ही अकाल पड़े। यह आज भी वर्षा जल पुनर्भरण (रेनवाटर हार्वेस्टिंग) का जीता जागता ऐतिहासिक उदाहरण है। इस झील का पानी किले मे पहुँचाने के लिए रहँट सिस्टम द्वारा एक जलोत्थान प्रणाली विकसित की गयी थी, जो आज भी पर्यटकों एवं शोधार्थियों के लिए कोतुहल का विषय है।

यह एक विशाल झील है जो असीम जलराशि को अपने भीतर समेटे हुए है। इस झील में दिखाई देने वाला किले का प्रतिबिम्ब आकर्षक है। इसके किनारे व बीच में बाग लगाए गए हैं, जिनमें जलापूर्ति इसी से होती है। झील में पर्यटकों के लिए नौकायन की भी व्यवस्था है।

झील के तटबन्ध पर दोनों ओर अष्टकोणीय मेहराबदार छतरियाँ बनी हुई हैं

जिन पर गोल गुम्बद लगे हैं। मेहराबों में बाहर की ओर अलंकरण हैं। इन दानों छतरियों के मध्य एक आयताकार छतरी भी बनी है जिसकी छत ढलवाँ है तथा खम्बें पत्थर को तराशकर बनाऐ गए हैं। इन्हें बनाने में लाल बलुआ पत्थर का प्रयोग किया गया है। इनमें तीन द्वार हैं तथा दोनों पार्श्व में भी एक–एक द्वार और हैं। ये सभी द्वार मेहराबयुक्त हैं। इनके छज्जे ढलावदार एवं बंगलेदार हैं।[18]

6.1.5.2 टांका जलेब चौक

किले में सूरज पोल से घुसते ही जलेब चौक में बायें हाथ पर एक भूमिगत टांका है, जिसे जलेब चौक का टांका कहते है। यह काफी बड़ा टांका है जो आधुनिक वाटर स्टोरेज एवं हारर्वेस्ट टेंक के समान है। जलेब चौक के फर्श पर इसका केवल ढक्कन ही दिखाई देता है। यह पक्का टांका है तथा वर्षा जल से पुनर्भरित होता है। वर्तमान में इससे जल प्राप्ति हेतु पाईप लाईन लगाई गयी है, परन्तु पहले सेवकों द्वारा ढक्कन हटा कर जल निकाला जाता था। आज भी यह नीचे के पूरे परिसर में जल प्राप्ति का प्रमुख साधन है। सम्पूर्ण भराव क्षमता से भरने पर इससे वर्ष भर जल प्राप्त किया जा सकता है।

6.1.5.3 टांका दीवाने आम

जलेब चौक से आगे बढ़ने पर महल के प्रवेश द्वार के दायें हाथ पर भोजनशाला के समीप स्थित टांका, दीवाने आम का टांका कहलाता है। यह बहुत बड़ा एवं भूमिगत टांका है, इसका एक हिस्सा नीचे की ओर भी खुलता है। इस टांके के समीप भोजनशाला तथा शिला माता का मन्दिर भी है। इसका जल पवित्र मान कर भोजनशाला में भोजन बनाने, हवन, पाठ–पूजा आदि के काम आता था। इसमें जल के शुद्धिकरण की भी व्यवस्था थी तथा जल प्राप्ति महल के सेवकों की सहायता से की जाती थी।[19]

6.1.5.4 मानसिंह महल का टांका

मानसिंह महल के भीतर एक अन्य भूमिगत टांका स्थित है, जिसे मानसिंह महल का टांका कहते है। इसमें अन्दर जाने के लिए सीढ़ियाँ है। यह छत से ढ़ँका हुआ है। इसका पानी पेय जल हेतु उपयोग लाया जाता था। यह टांका वर्षा जल पुनर्भरण (रेन वाटर हारवेस्टिंग सिस्टम) तथा जल उत्थान प्रणाली (वाटर लिफ्ट तकनीक) से पुनर्भरित होता था। यह टांका भी पवित्र माना जाता था तथा इसकी साफ–सफाई की भी विशेष

व्यवस्था की गयी थी। इसमें आज भी पानी है।[20]

6.1.5.5 मानसिंह महल के पूर्वी भाग में बना टांका

यह टांका इस किले का चौथा टांका है। यह मावठा सागर के जल रहँट प्रणाली के द्वारा जल को लिफ्ट करके भरा जाता था। तत्पश्चात् इस टांके का पानी सकोरों की बनी पाईप लाईन के माध्यम से महल के विभिन्न हिस्सों में वितरित किया जाता था।

6.1.5.6 बड़े पात्र

आमेर दुर्ग में विभिन्न स्थानों यथा शौचालयों, स्नानागारों, महलों, रनिवास आदि में धातु के बड़े पात्र रखे हुए हैं। ये पात्र अष्ट धातु, पकी मिट्टी, ताम्बा, काँसा से बने हुए हैं।[21] इनमें किले के सेवकों द्वारा जल भरा जाता था। इनका उपयोग राजपरिवार, अतिथि तथा सैनिक अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु करते थे।

6.1.6 जल उत्थान प्रणाली

आमेर के किले की जल उत्थान प्रणाली विश्वप्रसिद्ध तथा आश्चर्य जनक है, इसे तत्कालीन विज्ञान एवं इंजिनियरिंग का आश्चर्यजनक निर्माण कहा जा सकता है। राजस्थान के किलों में इस प्रकार की प्रणाली बहुत कम देखने को मिलती है तथा यह दूसरे किलों के लिए भी एक प्रेरणा का कार्य कर रही थी।

इस प्रणाली के अन्तर्गत मावठा झील का पानी मानसिंह महल के पूर्वी भाग में बने चौथे टांके में रहँट के माध्यम से लिफ्ट करके ऊपर पहुँचाया जाता था। मावठा जलाशय से इस टांके में पानी पहुँचाने की तकनीक को रहँट प्रणाली या जल उत्थान प्रणाली (वाटर लिफ्ट तकनीक) कहा जाता है। यह तकनीक अपने आप मे विलक्षण एवं अद्वितीय है तथा आज भी पूर्णतः सुरक्षित एवं दर्शनीय है। इसके तहत एक चार मंजिला इमारत बनी हुई है, इमारत की प्रत्येक मंजिल पर पानी जमा करने के लिए बड़े–बड़े हौज तथा दीवारों पर नालियाँ भी बनायी गयी हैं। सर्वप्रथम पहली मंजिल का होज तत्पश्चात् क्रमशः दूसरी, तीसरी व चौथी मंजिल का होज मावठा झील के जल से भरता था। इसके बाद मानसिंह महल के बाह्य भाग के टांके में पानी पहुँचाने की सुदृढ़ व्यवस्था की गयी थी। यह एक जल उत्थान प्रणाली है जो तीन चरणों में पूरी होती थी जिसमें मावठे का जल 600 फीट ऊँचाई पर स्थित आमेर के महलों तक पहुँचता था। प्रक्रिया के विभिन्न चरण निम्न प्रकार है – **प्रथम चरण** : केसर क्यारी की पूर्वी दीवार के सहारे स्थित पानी खींचने की चर्खियों की सहायता से मावठे से पानी खींचकर संग्रहण

टांकों में डाला जाता था, जो कि केसर क्यारी के ऊपरी तल पर बनाये गये थे। इन टांकों का अगला सिरा लगभग 125 मीटर लम्बी सकोरों से बनी पाईप लाईन से जुडा था जिसमें से होकर पानी दूसरे चरण की प्रणाली के भूतल पर स्थित संग्रहण टांके में पहुँचाया जाता था। **चरण द्वितीय** : महल की दक्षिण दिशा में चार मंजिला प्रणाली बनायी गयी थी जिसकी हर मंजिल पर एक टांका तथा इसके ऊपर पानी खींचने के लिए चर्खियाँ लगी रहती थी। पशुबल से चड़स के द्वारा पानी नीचे से ऊपर खींच कर ऊपरी मंजिलों तक चढ़ाया जाता था। प्रत्येक तल पर पानी को लगभग 10 से 13 मीटर की ऊँचाई तक खींचना होता था। इस प्रकार इस चरण में पानी केसर क्यारी पर स्थित संग्रहण टांकों से लगभग 45 मीटर ऊँचाई पर स्थित बलिदान पोल (ध्रुव पोल) के प्रथम तल तक ले जाया जाता था। **चरण 3** : अन्तिम चरण की प्रणाली में रहँट (पर्शियन वाटर व्हील) कार्यशील रहता था। पानी खींचने की इस प्रकार की प्रणाली को फारसी में 'साकिया' कहा जाता था। इस युक्ति के 500 ईसा पूर्व में भी प्रचलित होने का पता चलता है। महल में लगे रहँट में धुरी के रूप में विशाल लकड़ी का स्तम्भ था जिसे घुमाने पर प्रणाली में लगे पहिये पर स्थित रस्सा ऊपर नीचे घूमता था। इस रस्से पर मिट्टी से बनी बाल्टियाँ लगी हुई थी जो कि पानी को ऊपर बने वितरण टेंक में उड़ेल देती थी। इसके पश्चात् पानी महल के विभिन्न भागों तक सकोरों से बनी पाईपों के माध्यम से पहुँचा दिया जाता था।[22]

उक्त तीन चरणों में सम्पन्न होने वाली रहँट प्रणाली की कार्यपद्दति में निम्न वस्तुऐं या उपकरण प्रयोग में लाए गए थे – लकड़ी की लाटें, लकड़ी की बड़ी चकरियाँ या चक्र, लकड़ी के आरे, मोटे आकार के रस्से, लोहे के बड़े कीले, छोटे कक्ष, मिट्टी के बड़े सकोरे या बाल्टियाँ, होज आदि।[23] इन उपकरणों को निम्न प्रकार से व्यवस्थित किया गया है।

प्रणाली की प्रथम लाट, जिसकी लम्बाई लगभग 16 फीट है, को छत के ऊपरी हिस्से के दोनों छोरों पर दीवार के अन्दर लगाया गया है। यह लाट खड़ी व आड़ी दोनों लाटों को सहारा देती है। इन दोनों लाटों पर टांके से महल के अन्दर पानी खींचने के लिए तीन बड़े चक्रे लगे हुए हैं। दूसरी खड़ी लाट लगभग 23 फीट लम्बी है। इस लाट का एक छोर ऊपर लगी लाट से जोड़ा गया है तथा दूसरा छोर जमीन पर बनाये गये गढ़ढ़े में रखा गया है। इस छोर पर मोटा लोहे का कीला लगा हुआ है। इस खड़ी लाट को उगड़िया कहा जाता है। इस लाट पर जमीन से लगभग 3 फीट की ऊँचाई पर एक

आड़ी लकड़ी लगी हुई है। इस आड़ी लकड़ी को गांदेल कहा जाता है। सेवकों द्वारा जब गांदेल को पकड़ कर बीच में लगी खड़ी लाट को घुमाने से खड़ी लाट के ऊपरी भाग पर लगा लगभग 5 फीट का वृत्ताकार चक्र घुमने लगता था। इस चक्र में 12 (बारह) दाँते बने हुए हैं तथा चक्र जमीन से लगभग 15 फीट की ऊँचाई पर लगा हुआ है। तीसरी बड़ी लाट लगभग 16 फीट की है। इस लाट को ऊपरी भाग पर आड़ा लगाया गया है। इसका एक छोर प्रथम लाट से जोड़ा गया है तथा दूसरा छोर टांके के अन्दर बनी दीवार पर रखा गया है। इसके दोनों छोरों पर लगभग 5 फीट का एक–एक वृत्ताकार चक्र लगा हुआ है। लेकिन दोनों चक्रों की बनावट एवं कार्य शैली अलग–अलग है। प्रथम वृत्ताकार चक्र में बारह दाँते हैं। इनका दूसरी खड़ी लाट के ऊपरी हिस्से पर लगे वृत्ताकार चक्र के बारह दाँतों से मिलान किया गया है। बीच में खड़ी लाट में लगी गांदेल को पकड़ कर सेवकों द्वारा घुमाने से इसके ऊपरी हिस्से में लगा 12 दाँतों का वृत्ताकार चक्र घूमने लगता था। जिससे आड़ी लाट में लगा 12 दाँतों का वृत्ताकार चक्र भी घूमने लगता था। इन दोनों वृत्ताकार चक्रों के घुमाने पर टांके के अन्दर लगा वृत्ताकार चक्र भी घुमता था।

टांके के अन्दर लगा हुआ चक्र गोलाकार है। इस चक्र को चरखी की भाँति तैयार किया गया है। इस गोलाकार चक्र को आवंला कहा जाता है। जिस पर टांके के अन्दर से पानी को ऊपर लाने के लिए रस्सी लगी रहती है। इस रस्सी को माल कहा जाता है। इस रस्सी में लगभग 50–60 मिट्टी के बड़े सकोरें बन्धे होते थे। इन सकोरों को गेड़ कहा जाता है। इनमें पानी भर कर ऊपर लाया जाता था।

इस प्रकार प्रथम बारह दाँतों का चक्र को घुमाने पर दूसरा बारह दातों का चक्र भी घूमने लगता था। इसी प्रकार दसरे चक्र के घूमने पर टांके के अन्दर लगा गोलाकार चक्र भी घूमने लगता था। इस चक्र में लगी माल (रस्सी) से बंधे गेड़ो का पानी रहँट की बाल्टियों के साथ ऊपर उठता था।[24] जिसे सेवकों द्वारा खाली कर महल की दीवारों में बने सकोरों की नालियों द्वारा महल में पहुँचाया जाता था।

यह रहँट प्रणाली राजस्थान के मेवाड़ क्षेत्र में अत्यधिक प्रचलित थी। वहाँ के किलो में भी रहँट प्रणाली थी। आमेर महल के जीर्णोद्धार कार्यों के दोरान इस रहँट प्रणाली को फिर से पुनर्स्थापित कर दिया गया।

6.1.7 जल वितरण प्रणाली

आमेर महल के प्रत्येक कक्ष, शौचालय, स्नानागार, सुख निवास, समर पैलेस, गार्डन, जनाना हॉल आदि में पानी पहुँचाने हेतु पाईप लाईनों का जाल बिछाया गया था। इस हेतु मावठा सागर का लिफ्ट किया गया पानी मानसिंह महल के बाह्य टांके में एकत्र करने के बाद उसे सकोरों की पाईप लाईन द्वारा महल के विभिन्न हिस्सों में पहुँचा दिया जाता था। यह पद्दति तत्कालीन अभियांत्रिकी, विज्ञान, स्थापत्य एवं वास्तु कला का मिला जुला अद्वितीय उदाहरण है। इसकी तुलना में अन्य किलों का वाटर सप्लाई सिस्टम छोटा प्रतीत होता है। वर्तमान में भी सकोरों की पाईप लाईन को आमेर महलों की दीवारों, अहातों, शौचालयों, सुख मन्दिर आदि स्थानों पर आसानी से देखा जा सकता है।[25]

इसके अतिरिक्त किले के विभिन्न महलों, देवालयों, भवनों आदि में जल सेवकों, दास–दासियों, पणिहारिणों के माध्यम से पहुँचाया जाता था। इस कार्य में पशुबल की भी मदद ली जाती थी।

6.1.8 जल का उपयोग व प्रबन्धन

आमेर दुर्ग में झील एवं टांके के जल का उपयोग पेयजल एवं अन्य दैनिक कार्यों में करने के अतिरिक्त सामरिक उपयोग, विभिन्न बाग–बगीचों, आरामगाह, शौचालयों, स्नानगार, अश्वशाला, नौका विहार, धार्मिक व मांगलिक कार्यों में किया गया था।

6.1.8.1 पेयजल व अन्य दैनिक कार्यों हेतु

दुर्ग के सभी जल स्रोतों के जल का सर्वाधिक उपयोग पीने व भोजन पकाने हेतु किया जाता था। इसके अतिरिक्त इनका जल अन्य दैनिक कार्यों यथा शोच, स्नान आदि के लिए भी प्रयुक्त होता था।

6.1.8.2 सामरिक उपयोग

किले में एक बड़ी सेना सदैव तैनात रहती थी। इतनी बड़ी सेना के लिए जल की उपलब्धता सुनिश्चित करना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य था। किले की तलहटी में बनी मावठा झील तथा किले के भीतर के टांके सेना के लिए जल आपूर्ति का प्रमुख स्रोत थे। किले में तैनात सैना के लिए कभी जल की कमी नहीं आयी।

6.1.8.3 मोहनबाड़ी या केसर क्यारी

मावठा सरोवर के मध्य में एक छोटे टापू के समान पथरीली सतह पर तीन मंजिला नयनाभिराम उद्यान बनाया गया है, जिसे मोहनबाड़ी कहा जाता है। प्रत्येक मंजिल पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। यह बाग सितारा आकृति में बंटी पक्की ज्यामितिक क्यारियों में विभक्त है। इस पर आगरा व दिल्ली के मुगल गार्डन्स का प्रभाव है।[26] कहा जाता है कि यहाँ केसर की खेती की जाती थी इसलिए इस बाग को केसर क्यारी बाग भी कहा जाता है। ऊपरी मंजिल के मध्य फव्वारें लगाए गए हैं, यहाँ से क्यारियों में पानी पहुँचाने के लिए पक्की नालियों का निर्माण किया गया है। इन नालियों से क्यारियों में जाने वाले पानी की व्यवस्था इर तरह की है कि एक क्यारी के भरने पर पानी दूसरी क्यारी में स्वतः ही चला जाता है, दूसरी से तीसरी एवं उत्तरोतर सभी क्यारियाँ भरने के बाद पानी नीचे की मंजिल में चला जाता है।

इसका आकार, झील के मध्य स्थिति, सितारा समान पक्की क्यारियाँ, बीच में लगे फव्वारें, झील से जल प्राप्ति हेतु की गयी व्यवस्था एवं बाग पर मुगल प्रभाव आदि पर्यटकों के लिए आकषर्ण के केन्द्र हैं। महल के झरोखों से झाँकती हुई इसकी सुन्दरता मन मोह लेती है। यहीं कारण है कि आज भी अनेक फिल्मों की शूटिंग इस स्थान पर की जाती है।

6.1.8.4 दिल–ए– आराम बाग

मावठा झील के किनारें दिल–ए–आराम बाग नामक एक सुन्दर बाग स्थित है। बादशाह अकबर जब आमेर पधारे थे तो उनके विश्राम हेतु एक विश्राम गृह सहित इस उद्यान का निर्माण राजा भारमल ने 1558 ई0 में करवाया था।[27] डॉ0 राघवेन्द्र सिंह मनोहर के अनुसार इस बाग का निर्माण 1664 ई0 में मिर्जा राजा जयसिंह ने करवाया था।[28] बाग में विश्रामगृह होने एवं मनमोहक सुन्दरता के कारण इस बाग को दिल–ए–आराम बाग अर्थात दिल को आराम पहुँचाने वाला बाग नाम दिया गया। वर्तमान में यह दिल–ए–आराम शब्द का अपभ्रंश रूप दलाराम बाग के नाम से विख्यात है। इस बाग में बने इस विश्रामगृह को बन्द कर इसे पुरातत्त्व संग्रहालय का रूप दे दिया गया है, जहाँ पुरामहत्त्व की सामग्री यथा मृण्मूर्तियाँ, पाषाण मूर्तियाँ, औजार, हथियार, मुद्रायें, ताम्रपत्र व स्तम्भों का प्रदर्शन किया गया है। बाग के मध्य चबूतरा बना है तथा इस चबूतरें पर चतुष्कोणीय हौज बना है, जिस पर चढ़ने के लिए चारों तरफ से सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इस हौज से चारों ओर नहरें भी निकाली गयीं हैं, जिनमें बीच–बीच में फव्वारें लगे हुए

हैं। चबूतरें, हौज एवं नहरों से बाग चार भागों में विभक्त हो गया है। ये नहरें बाग के पैड़–पौधों एवं क्यारियों में मावठा झील का पानी पहुँचाती हैं। बाग मे सन्त दादू का थान भी है, दादू ने अपने सन्त काल के 18 वर्ष आमेर में बिताए थे।[29]

6.1.8.5 रामबाग

दिल–ए–आराम बाग के उत्तर में नीचे की ओर एक और उद्यान है जिसे रामबाग कहा जाता है। मध्य में एक चौकोर आरामगाह बनी हुई है। इस उद्यान के बाहर उत्तर में ऊँचा चबूतरा बना है जिस पर चढ़कर पर्यटक हाथी पर बैठते हैं।

उपर्युक्त सभी बाग मोहनबाड़ी, दलाराम बाग व रामबाग मुगल शैली आधारित चहार बाग पद्दति पर बने है। इनमें जलापूर्ति मावठा सागर झील के पानी को लिफ्ट करवाकर की जाती थी। वर्तमान में भी इनके जल का स्रोत मावठा सागर झील ही है।[30]

6.1.8.6 आरामगाह

महल के दीवान–ए–आम के नीचे तलघर में एक विशिष्ट कक्ष बना है। जिसे राजपरिवार द्वारा अपने आराम एवं गुप्त मंत्रणा हेतु प्रयोग में लाया जाता था। अतः इसे आरामगाह कहा जाता है। इस कक्ष में दीवानेआम के भूमिगत टांके का एक हिस्सा खुलता है। कक्ष की दीवारें पत्थर के ब्लॉक्स से बनी थी, इन ब्लॉक्स को इस तरह से डिजायन किया गया था कि कक्ष हवादार एवं सर्दी के मौसम में गरम तथा गर्मी के मौसम में ठण्डा बना रहे। साथ ही इसकी छत जिसे ''लड़ाओं की छत'' कहा जाता है की भी विशेषता है कि वह इस कक्ष को सर्दी में गरम व गर्मी में ठण्डा बनाए रखती है। इसकी सभी दीवारें व छत अलंकृत है। कक्ष के फर्श पर ठीक बीच में एक चोकोर पानी का टेंक बना है, इसमें फव्वारा भी लगाया गया था। फव्वारें से निकलने वाली पानी की फुहारें कक्ष को ठण्ड़ा बनाए रखती थी, कक्ष में बैठने वाले को गर्मी में शीतलता का अनुभव कराती थी। इस कक्ष की अन्य विशेषता इसके पश्चिमी भाग में रंगीन पत्थर की बनी जालियाँ हैं। जालियाँ अपने अलंकरण एवं ज्यामितिय बनावट के कारण विशिष्ठ है। ये जालियाँ लकड़ी के नक्काशीदार दरवाजों से बन्द की जा सकती है।[31]

इस प्रकार कक्ष में बैठने वालो की निजता, सुख सुविधा तथा आराम का विशेष ध्यान रखा गया है। इस टांके के पानी का प्रयोग कक्ष को ठण्डा बनाने में भी किया गया है।

6.1.8.7 शौचालय

आमेर किले के महलों के विभिन्न हिस्सों में अनेक शौचालय मिलते हैं। जो राजपरिवार व इनसे जुड़े सदस्यों के लिए बनाए गए थे। ये शौचालय शीश महल, मानसिंह महल, हम्माम के पास आदि स्थानों पर बने है। जिनमें पानी के लिए बड़े बड़े बर्तन रखवाये गये थे। जिनमें नोकरों के द्वारा पानी भर दिया जाता था साथ ही ये महल में बनी सकोरों की पाईप लाईन से भी जुडे हुए थे। यहॉ रखे बर्तन आज भी मौजूद है। इनमें गरम व ठण्डे दोनो तरह के पानी की व्यवस्था थी।[32] पूरे महल में इस तरह की सो से अधिक लेट्रिन पायी गयी है। शौचालयों में रोशनी के लिए मशाल लगाई जाती थी।

6.1.8.8 अश्वशाला/पील खाना

आमेर दुर्ग एक सैन्य दुर्ग था। सैनिकों, राजकुमारों, राजा, सामन्तों आदि के घोड़ों व अन्य युद्धोपयोगी जानवरों को रखने के लिए एक अश्वशाला, पील खाना (हाथी रखने का स्थान) तथा हाथी ठान बने हुए थे। यहाँ के हाथी, घोड़ो व जानवरों को पेयजल की आपूर्ति मावठा झील तथा किले के टांकों से की जाती थी।[33]

6.1.8.9 नौका विहार

मावठा झील में नौकायन की व्यवस्था की गयी थी। यहाँ राजपरिवार व आगुन्तक अतिथि नौकाविहार का आनन्द लेते थे।

6.1.8.10 धार्मिक व मांगलिक कार्य

हिन्दू धर्म में प्रत्येक धार्मिक व मांगलिक उत्सवों के दौरान कुँआ पूजने, जल से संकल्प लेने, अनुष्ठान, यज्ञ, हवन आदि से पूर्व पवित्र जल से स्नान करने का विधान है साथ ही जल स्रोतों यथा तालाब, झील, नदी, कुँओं आदि के समीप धार्मिक उत्सव, संस्कार, मांगलिक कार्य परम्पराएँ व रीति–रिवाज पूरे करने की भी प्रथा है। मावठा झील के किनारे बनी छतरियाँ, केसर क्यारी व मन्दिर झील के प्रति धार्मिक आस्था के प्रतीक है। झील के जल का दुर्गवासियों के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण आमेर व आसपास के गाँवों के निवासियों के लिए भी धार्मिक महत्त्व रहा है। सरोवर के पवित्र जल से स्नान करना, देवताओं को जल चढ़ाना, इसके किनारे हवन, पूजा–पाठ, आचमन, पितरो को तर्पण, अस्थि विसर्जन, जडूले उतारने, नवविवाहितों को ढोक दिलाने आदि की परम्पराएँ वर्षों से चली आ रही हैं।

6.1.9 जल आधारित विशिष्ट तकनीक/प्रणालियाँ

आमेर दुर्ग में तत्कालीन विज्ञान व अभियांत्रिकी कुशलता का प्रयोग कर जल के उपयोग से विशिष्ट तकनीकों का प्रयोग किया गया था। आमेर के शासक मुगलों के अधीन विभिन्न स्थानों पर युद्ध एवं अन्य कार्यों से जाते रहते थे। इन यात्राओं के दौरान उन्होंने वहाँ के ज्ञान–विज्ञान को देखा व सीखा तथा उनका प्रयोग अपनी राजधानी में किया।

6.1.9.1 हम्माम (तुर्किश बाथ) एवं वाटर हीटींग सिस्टम

जयगढ़ किले के समान इस किले में भी राजपरिवार के स्नान करने एवं वस्त्र बदलने हेतु तुर्किश (रॉयल) बाथ एवं वाटर हीटींग सिस्टम की व्यवस्था की गयी थी। इसके अन्तर्गत दीवाने आम एवं दीवाने खास के बीच एक सर्व सुविधा युक्त हम्माम (तुर्किश बाथ) बना है। हम्माम में स्नान, शौचालय के साथ–साथ पानी गरम करने एवं इससे जुड़े कमरे को गरम रखने का विशेष इंतजाम किया गया था। हम्माम में पानी गरम करने के लिए बनाया गया वाटर हीटींग सिस्टम अपने आप में अनूठा है तथा अन्य किलो में इस प्रकार की तकनीक का अभाव है। इसमें एक चौड़ी दीवार के सहारे अण्डाकार टंकी की तरह की एक भट्टी बनी हुई है। जिसके नीचे लकडियाँ जलाने व उसकी राख के लिए गड्ढेनुमा संरचना है। जब लकड़ियाँ जलाई जाती थी तो भट्टी गरम होती थी फलतः उसमें भरा पानी भी गरम हो जाता था। यह गरम पानी एक टंकी में इकठ्ठा होता था तथा एक नाली के माध्यम से जकूजी बाथ टब में चला जाता था। इसके पास ही एक ठण्डे पानी की भी टंकी है। जिसका पानी भी छोटी नाली के माध्यम से जकूजी बाथ टब में जाता था। ठण्डे पानी व गरम पानी की नालियाँ जकूजी बाथ टब में खुलती है। जिससे नहाने के लिए गरम व ठण्डा पानी आपस में मिलाया जा सकता था। पानी में गुलाब जल, केवड़ा आदि भी मिला दिया जाता था। स्नान पश्चात् टब का गन्दा पानी एक नाले के माध्यम से बाहर निकाल दिया जाता था।

जकूजी बाथ टब एवं गरम व ठण्डे पानी की टंकियों के बीच एक मसाज रूम भी बनाया गया है। इस कक्ष के झरोखे पूर्व दिशा में मावठा सागर की तरफ खुलते हैं जहाँ से सूर्य की रोशनी व धूप सीधे कमरे में आती है। इस कमरें में राजपरिवार के सदस्य नहाने से पूर्व योगाभ्यास करते थे तथा स्नान के पश्चात् कपड़े बदलने, मसाज करवाने, सजने संवरने आदि का कार्य करते थे।[34]

इस पूरी संरचना जिसमें पानी गरम करने की टंकी, जकूजी बाथ टब, स्नानागार तथा स्नानागार से जुड़े कक्ष आदि की दीवारों पर चिकनी पॉलिश की गयी थी, यह पॉलिश आज भी ज्यों की त्यों मौजूद है।[35] इस हम्माम में पानी दीवाने आम के टांके का लिया जाता था। यह हम्माम दीवाने आम, दीवाने खास व गणेश पोल से सीधा जुड़ा हुआ है।

6.1.9.2 मानसिंह महल के जकूजी बाथ एवं पानी गरम करने की तकनीक

किले के दक्षिण छोर पर स्थित मानसिंह महल इन राजप्रासादों का सबसे प्राचीन भाग है। जो राजा मानसिंह द्वारा (1589–1614) में निर्मित करवाये गये थे। मानसिंह महल में भी जकूजी बाथ टब एवं पानी को गरम करने की तकनीक मौजूद है जो काफी पुरानी है। यहाँ के वाटर हीटींग सिस्टम में भी उसी तरह की पानी की टंकीनुमा भट्टी बनायी गयी है। इस भट्टी में भी लकडियाँ जलाने एवं उसकी राख को एकत्र करने की गड्डेनुमा संरचना थी। लकड़ियाँ जलाने पर टंकी का पानी गरम होता था तथा जकूजी बाथ टब में पाईप के माध्यम से आ जाता था। इसमें ठण्डा पानी मिलाने की भी व्यवस्था की गयी थी।[36]

6.1.9.3 शीश महल, समर पैलेस एवं विन्टर पैलेस

आमेर महल में बाऐं हाथ पर गार्डन एवं सुख निवास के सामने शीश महल स्थित है। शीश महल को दीवाने खास या जयमन्दिर भी कहते है। जिसका निर्माण मिर्जा राजा जयसिंह ने करवाया था।[37] इसमें दो आयताकार कक्ष हैं जो एक दूसरे से जुड़े तथा चौड़े बरामदे से घिरे हैं। सम्पूर्ण भवन दुधिया संगमरमर के पाषाण से निर्मित है। इसके पीछे वाले कक्ष के पार्श्व में तीन खिड़कियाँ बनी हैं जिनमें रंग बिरंगे काँच जड़े हैं। इन खिड़कियों में से आमेर का लुभावना दृश्य दिखाई देता है। दीवाने खास अथवा जय मन्दिर में शीशे की पच्चीकारी का अति उत्कृष्ट कार्य है इसलिए यह शीशमहल कहलाता है। इसकी छतों व दीवारों पर चूने के मध्य कांच को जड़ कर विभिन्न प्रकार के अलंकरण बनाए गए है। मिर्जा राजा के दरबारी कवि बिहारी ने 'बिहारी सतसई' में लिखा है–

प्रतिबिम्बित जयसाह द्युति दीपित दर्पण धाम।

सब जग जीतन को किये काम व्यहमन काम।।

अर्थात शीशमहल (दर्पण धाम) में मिर्जा राजा जयसिंह की कीर्ति (द्युति) ऐसे

दीपित है मानो सारे जगत की जीतने के लिए स्वयं कामदेव ने काया का व्यूह बनाया हो।[38]

महल का मुख्य भवन दो मंजिला है, जिसकी ऊपरी मंजिल समर पैलेस तथा नीचे वाली मंजिल विन्टर पैलेस कहलाती है। समर पैलेस गर्मियों में तथा विन्टर पैलेस सर्दियों में उपयोग लिया जाता था। इस महल की प्रथम मंजिल की छत पर गुम्बद बने हुए हैं। इन गुम्बदों में पानी की टंकियाँ बनायी गयी थी तथा उनको कॉपर के पाईप से जोड़ा गया था। इसमें भी पानी जल उत्थान प्रणाली के माध्यम से मावठा झील का एकत्रित होता था तथा पानी पाईप लाईन के माध्यम से शीश महल के विभिन्न हिस्सों में उपयोग हेतु प्राप्त किया जा सकता था। समर पैलस को गर्मियों में ठण्डा रखने के लिए इसके ऊपर बने गुम्बदों में पानी की टंकियाँ बना कर उनमें पानी भर दिया जाता था। पानी भरे रहने के कारण यह हिस्सा उष्मा के चालन में अवरोध उत्पन्न करता था। फलतः उष्मा गतिकी के वैज्ञानिक सिद्वान्त के अनुसार समर पैलेस गर्मियों में ठण्ड़ा रहता था। इसके अतिरिक्त इस पैलेस की खिड़कियों में घास की टांटियाँ लगाई जाती थी। इन टांटियों पर टंकियों का पानी थोड़ा थोड़ा गिरता रहता था। पानी से भीगी हुई टांटियों से टकराकर आने वाले हवा के झोंके एयर कूलर का कार्य करते थे तथा गर्मी में कक्ष को ठण्डा बनाए रखते थे।[39]

इसी प्रकार शीश महल का नीचे का हिस्सा सर्दियों में गरम रहने के कारण विन्टर पैलेस के रूप में उपयोग लिया जाता था। इस कक्ष के झरोखे पूर्व दिशा में है जहाँ से सूर्य की धूप सीधे प्रवेश करती है। इसके अतिरिक्त सर्दियों में अलाव जलाने हेतु कोने में स्थान भी बना हुआ है जिसमें लकड़िया जला कर कक्ष को गरम किया जा सकता था। ऑयल लेम्प, मशाल आदि से रोशनी व गर्मी प्राप्त की जा सकती थी।[40]

इस प्रकार महल के इस हिस्से में जल का उपयोग महल को ठण्डा व गरम रखने में किया गया था।

6.1.9.4 सुख निवास या सुख मन्दिर

गणेश पोल से प्रवेश करने पर पश्चिम की ओर सुख मन्दिर स्थित है, जिसे सुख निवास अथवा आराम मन्दिर भी कहा जाता है। इसका निर्माण मिर्जा राजा जयसिंह प्रथम ने करवाया था। इसके मध्य में एक बड़ा आयताकार कक्ष है इस कक्ष के दोनों ओर दो छोटे कक्ष भी बने हैं। इनके सामने खुला बरामदा है, जो राजपूती वास्तु कला

का उदाहरण है। इस कक्ष का उपयोग राजपरिवार द्वारा ग्रीष्म ऋतु में किया जाता था। मुख्य कक्ष के मध्य सामने दीवार पर संगमरमर की मेहराबदार चौखट में एक सुन्दर पत्थर की सतह पर कृत्रिम झरना बहता है, जिसमें हवा आने जाने के लिए सुराख बने है। इसमें पानी जल उत्थान प्रणाली से सकोरों की पाईप लाईन के माध्यम से आकर एक जाली दार सतह पर गिरकर छोटी छोटी पानी की धार के रूप में बहता था। इस जाली के छिद्रों से गुजर कर आने वाली हवा पानी के सम्पर्क में आने पर ठण्डी होकर सम्पूर्ण कक्ष को ठण्डा कर देती थी, इस प्रकार यह व्यवस्था किसी एयर कूलर या वाटर स्प्रिंग सिस्टम का काम करती थी। इससे बहकर निकलने वाला अतिरिक्त पानी छोटी नहर के माध्यम से सामने स्थित चहार बाग में चला जाता था। इस नहर में सफेद संगमरमर का लहरियानुमा अलंकरण बना हुआ है जो बहते पानी में काफी सुन्दर प्रभाव उत्पन्न करता है। इस कक्ष में तीन द्वार हैं, जिनमें मध्य का चौड़ा तथा दोनों ओर के संकरे हैं। सम्पूर्ण कक्ष में चारों ओर उभरे हुए अलंकरण हैं जिन पर मुगल प्रभाव दिखाई पड़ता है। सामने दीवार पर सुराहियाँ बनी है जिन पर पीला, गुलाबी व आसमानी रंग पोता गया है। इसके चन्दन के दरवाजों पर हाथी दाँत की जड़ाई का सुन्दर कार्य है।[10] दक्षिणी दालान के पास दो मंजिला गलियारा है जो जनाना महल से जुड़ा हुआ है। गलियारें की छत पर झूला डालने के कड़े बने हैं। इन पर डाले गए झूलों में रानियाँ झूला झूलती थी। महल की छत पर हौज बना हुआ है जिसमें मावठा सरोवर से रहँट सिस्टम द्वारा उत्थित (लिफ्टेड़) पानी भरा जाता था। हौज का पानी नीचे बने झरने में आता था।

आमेर महल का यह हिस्सा रानियों के उपयोग आता था, रानियाँ यहाँ दोपहर में तथा गर्मियों के मौसम में शीतलता प्राप्त करने हेतु बैठा करती थी। अतः इसका नाम सुख मन्दिर उपयुक्त ही है।[41]

6.1.9.5 चहार बाग एवं फव्वारा सिस्टम

शीश महल एवं सुख मन्दिर के बीच एक मुगल स्थापत्य शैली का एक छोटा बाग लगाया गया है, जिसे चहार बाग कहते है। इस बाग के बीचों बीच सितारे के आकार का फव्वारा युक्त केन्द्रीय पूल (पोखर) भी बनाया गया है। इस केन्द्रीय पूल के चारों तरफ बाग चार भागों में बंटा है तथा इसकी क्यारियाँ भी सितारा आकार में बनायी गयी हैं। इनमें पानी पहुँचाने के लिए छोटी–छोटी नहरें भी बनायी गयी है।

इस बाग के केन्द्रीय पूल के मध्य अष्टकोणीय चबूतरा बना है जिसमें चारों ओर

चार फव्वारें लगाए गए हैं। जो शीश महल की ऊपरी टंकी से पाईप लाईन द्वारा आने वाले प्रेशर युक्त पानी से चलते थे। फव्वारों के आस–पास रानियों के बैठने की जगह थी। ये फव्वारें गर्मियों में शीतलता का अहसास कराते थे, इनसे निकलने वाला पानी उद्यान के पैड़–पौधों की क्यारियों में जाता था। पानी व्यर्थ न जाए इसका पूरा इंतजाम किया गया था। बाग के चारों ओर संगमरमर की विभिन्न डिजायन की जालियाँ (रेलिंस) भी लगाई गयी हैं।[42]

6.1.10 जल निकास व वर्षा जल संग्रहण व्यवस्था

आमेर दुर्ग के प्रत्येक महल की छतें एवं बरामदें विभिन्न प्रकार के नालों एवं पाईपों के माध्यम से फर्श के भीतर की भूमिगत नालियों से जुड़े हुए है तथा फर्श की नालियाँ भी आपस में जुड़ी हुई हैं। इन नालियों के माध्यम से महल में गिरने वाला वर्षा जल आधुनिक रेनवाटर हारवेस्टिंग सिस्टम की तर्ज पर महल में बने विभिन्न टांकों में एकत्रित हो जाता था। मानसिंह महल के टांके में मानसिंह महल के विभिन्न हिस्सों का वर्षा जल संग्रहित होता था। इस हेतु बनायी गयी नालियाँ टांके के भूमिगत कक्ष में दिखाई देती है। यह तकनीक जलेब चौक के टांके तथा दीवान –ए– आम के टांके में भी अपनायी गयी है। इसी तरह पहाड़ों पर गिरने वाला वर्षा जल मावठा झील में संग्रहित होता हैं।

6.1.11 वर्तमान स्थिति

आमेर विकास प्राधिकरण के साथ–साथ राजस्थान राज्य पुरातत्त्व विभाग सम्पूर्ण किले की देखरेख करता है।[43]

आमेर दुर्ग के सभी टांके तथा मावठा झील सही स्थिति में है। समय–समय पर इनकी साफ–सफाई व मरम्मत करायी जाती है। कुछ वर्ष पहले आमेर विकास प्राधिकरण व पी.एच.ई.डी. के संयुक्त तत्वावधान में आमेर में मावठा सहित आमेर के परम्परागत जल स्रोतों के पुनर्भरण, साफ–सफाई व आगोर आदि की मरम्मत सहित विकास कार्य कराये गये।[44] पर्यटन मंत्री बीना काक ने 2011 में इस **'आमेर जल स्रोतों के पुनर्भरण व जल संरक्षण कार्य'** का विधिवत उद्घाटन किया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत मावठा झील को भरने के लिए बीसलपुर परियोजना का पानी लाने हेतु ब्रह्मपुरी से झील तक पाँच कि.मी. लम्बी पाइप लाईन बिछायी गयी, झील की सफाई व मरम्मत करायी गयी, फव्वारें व नौकायन शुरू कराया गया, किनारें की छतरियों की मरम्मत,

केसर क्यारी उद्यान का विकास आदि कराया गया।[45] मावठा झील एवं आमेर के परम्परागत जल स्रातों का विकास इस कार्यक्रम से हुआ किन्तु किले की वाटर लिफ्ट प्रणाली, जल वितरण व निकास प्रणाली का विकास व जीर्णोद्धार, टांकों की सफाई आदि का कार्य नहीं कराया गया। किले के भीतर भी इस प्रकार के कार्यक्रम की आवश्यकता है।

राजस्थान के किलों के ऐतिहासिक व सांस्कृतिक महत्त्व को अन्तर्राष्ट्रीय पहचान दिलाने तथा समग्र विकास व सुरक्षा की आवश्यकता को दृष्टिगत रखकर राजस्थान सरकार द्वारा इन्हें यूनेस्कों की विश्वविरासत में शामिल कराने हेतु प्रयास किये गये। फलतः कम्बोडिया के नामपेन्ह शहर में यूनेस्कों की विश्वविरासत सम्बन्धी वैश्विक समिति की 37 वीं बैठक में शुक्रवार 21 जून 2013 को राजस्थान के 6 पहाड़ी किलों के विश्वविरासत में शामिल किये जाने की घोषणा की गयी। ये किले आमेर, जैसलमेर, गागरोन, चित्तौड़गढ़, कुम्भलगढ़ व रणथम्बोर है। जब किसी ऐतिहासिक स्मारक को वर्ल्ड हेरिटेज इमारत का दर्जा दिलाना होता है तो उसकी रिपोर्ट में इमारत का यूनिक पोईन्ट बताना होता है। यूनिक पोइन्ट से यूनेस्को सुनिश्चित करता है कि एसी विशेषता वाली कोई दूसरी इमारत नहीं है, तब उस इमारत विशेष को विश्व धरोहर घोषित किया जाता है। आमेर के महलों को ही दुर्ग का रूप दे दिया जाना तथा इसका जल प्रबन्धन इसकी अनूठी विशेषता है।[46]

इस प्रकार हम देखते है कि आमेर के महलों मे जल का उपयोग अनेक प्रकार से अनेक प्रयोजन हेतु किया गया था। यहाँ पर जल को लिफ्ट करने, पाईप लाईन के माध्यम से वितरित करने, जल को गरम–ठण्डा करने, पानी का प्रेशर बनाने, पीने, नहाने–धोने एवं अन्य दैनिक कार्यों के साथ–साथ विपरित परिस्थितियों हेतु संग्रहण के साथ–साथ सामरिक उपयोग के लिए भी किया गया था। इन महलों को बनाने वाले तत्कालीन वास्तुकारों व इंजिनियरों द्वारा महल की हर खूबी के साथ–साथ जल वितरण व जल का उपयोग करने की वैज्ञानिक प्रणाली को भी अपनाया गया। इस बात का पूरा–पूरा ध्यान रखा गया था कि इस महल में रहने वाले राजपरिवार व आगुन्तक विशिष्ट अतिथियों को अन्य सुख सुविधाओं के साथ–साथ जल की कोई कमी न रहे। साथ ही यह किला वर्षा जल संग्रहण पद्दति का भी विशिष्ट उदाहरण है। युद्ध के हालात, किले पर घेरा पड़ने, उपद्रव, अकाल जैसी विपरीत परिस्थियों में भी किले में जल के पर्याप्त संग्रहण की व्यवस्था थी।

6.2 जयगढ़ दुर्ग

जयगढ़ दुर्ग कछवाहा राजपूतों की शक्ति व अजेयता का प्रतीक है। यह आमेर शहर में आमेर दुर्ग के समीप ही स्थित है। एक ही शहर या राजधानी को सुरक्षा प्रदान करने हेतु दो दुर्ग बनाना विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता है। अधिकांश इतिहासकार, शोधार्थी तथा विद्वान आमेर व जयगढ़ को दो पृथक–पृथक दुर्ग कहते हैं। वास्तव में आमेर दुर्ग न होकर महलों का समूह है जिसे बाहर से दुर्ग का आकार दे दिया गया जबकि सही अर्थों में दुर्ग जयगढ़ ही है।[47]

6.2.1 दुर्ग की स्थापना व नामकरण

आमेर के कछवाहा शासक जयगढ़ दुर्ग के निर्माता थे किन्तु इनमें से किस शासक ने कब तथा किस तत्कालीन प्रयोजन से इस दुर्ग का निर्माण कराया यह विवादास्पद है। स्पष्ट दस्तावेजों के अभाव में इसके निर्माण को लेकर विद्वानों में मतभेद है।

कुछ विद्वान जो इसे राजा मानसिंह प्रथम द्वारा निर्मित मानते हैं का तर्क है कि दुर्ग का निर्माण महाराजा मानसिंह प्रथम ने 1600 ई0 में कराया तथा मिर्जा राजा जयसिंह व सवाई जयसिंह ने इसे परिवर्द्धित कराया।[48] इसी प्रकार डूंडलोद ठिकाने के जागीरदार ठाकुर हरनाथ सिंह ने भी इसे मानसिंह प्रथम द्वारा निर्मित माना है।[49] एक जनश्रुति के अनुसार राजा मानसिंह ने अकबर के सेनापतित्व के दौरान काबुल, कन्धार, अफगानिस्तान आदि अभियानों में बड़ी मात्रा में खजाना लूटा जिसे छिपाने[50] तथा मुगलों से सीखी गयी तोप निर्माण तकनीक के आधार पर तोप निर्माण का गुप्त संयत्र लगाने के लिए आमेर किले की ऊपरी पहाड़ी पर जयगढ़ दुर्ग का निर्माण कराया। यह खजाना उसने किले के टांकों के भूमिगत कक्षों में छिपाया। पोथीखाना के नक्शों से स्पष्ट है कि प्राचीन काल मे चील का टीला कहलाने वाले इस स्थान पर एक खुला बड़ा टांका तथा दो कक्ष निवास हेतु बने हुए थे।[51]

कुछ विद्वान इस दुर्ग को मिर्जा राजा जयसिंह द्वारा निर्मित मानते हैं। इन विद्वानों में जगदीश सिंह गहलोत, डॉ0 गोपीनाथ शर्मा, कुंवर देवी सिंह मण्डावा प्रमुख हैं। इनके अनुसार किले का नामकरण जयगढ़ इसके निर्माता मिर्जा राजा जयसिंह के नाम पर किया गया। ईश्वर विलास महाकाव्य भी दुर्ग निर्माता मिर्जा राजा जयसिंह को

ही मानता है।[52]

कुछ अन्य विद्वानों ने सवाई जयसिंह को दुर्ग निर्माता अथवा दुर्ग का परिवर्द्धनकर्ता माना हैं। ए.के. राय के अनुसार सवाई जयसिंह ने दुर्ग निर्माण में उत्कृष्ट कार्य करने वाले विद्याधर चक्रवती को पुरस्कृत किया था।

संवत 1783 मिति भादवा बदी 5 मुकाम का वहस्य विद्याधर संतोषराम का पण्डा ज्यों सवाई जैगढ़ सिताब आछयो बणयो सो अजरूप महरबानी बखस्या सिरौपाव ।।[53]

इस सम्बन्ध में सवाई जयसिंह के दरबारी कवि पूरन ने भी कविता में लिखा है

अम्बावती हूँ ते अधिकाई, पल्बे उपरि सवाई।
जयगढ़ मधि किने महल नवीनै ई ।।[54]

अतः सवाई जयसिंह ने इस किले में कुछ नये महल व प्राचीरें तथा बुर्ज अवश्य बनवायी थी।

दुर्ग को ध्यान से देखने पर यह तथ्य उद्घाटित होता है कि यह दुर्ग किसी एक शासक द्वारा न बनवाया जाकर अलग–अलग समय में अनेक शासकों ने अपनी सामरिक आवश्यकता व उपलब्ध संसाधनों व तकनीक की मदद से दुर्ग का परिलक्षण कराया। रक्षा प्राचीरों की ऊँचाई बढ़ाई गयी, तीर चलाने के छिद्रों को बड़ा कर बन्दूक चलाने लायक बनाया गया इस सब कार्य के जोड़ आज भी प्राचीरों में दिखाई पड़ते हैं।

उक्त विवेचन से निष्कर्ष निकलता है कि काकिल देव द्वारा आमेर के महलों के निर्माण के समय से ही चील का टीला नामक पहाड़ी पर निर्माण कार्य प्रारम्भ हो चुका था। उसने इस स्थान को अपना निवास बनाया। उसके बाद के शासकों ने नवीन निर्माण कराए तथा इसे सुदृढ़ किले का वर्तमान रूप मिर्जा राजा जयसिंह व सवाई जयसिंह ने दिया।

6.2.2 भौगोलिक स्थिति व जलवायु

जयगढ़ किला आमेर किले से डेढ़ कि0मी0, जयपुर शहर से 15 कि.मी. आगरा से 294 कि.मी., दिल्ली से 308 कि.मी. दूर स्थित है। यह जिस पहाड़ी पर निर्मित है उस पहाड़ी का नाम 'चील का टीला' है। आमेर एवं जयगढ़ एक ही पहाड़ी शृंखला पर बने हैं जयगढ़ पहाड़ियों की चोटी पर तथा आमेर नीचे स्थित है। दोनों किले एक सुरंग तथा पैदल मार्ग से जुड़े हुए है। इसकी ऊँचाई समुद्र तल से 602 मीटर[55] तथा आमेर किले से 500 फीट है। आमेर शहर $25^0 41'$ एवं $28^0 24'$ उत्तरी तथा $74^0 71'$ एवं $77^0 13'$

पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। दुर्ग उत्तर से दक्षिण की ओर तीन किमी लम्बाई में तथा पूर्व से पश्चिम में एक किमी चौड़ाई में फैला है।[56] दुर्ग को ऊँची पहाड़ियाँ, घाटियाँ तथा वन क्षेत्र प्राकृतिक सुरक्षा प्रदान करते हैं। यहाँ वर्षा का औसत 56.38 से.मी. वार्षिक है।[57] मैदानी प्रदेश में पहाड़ियों के मध्य स्थित होने के कारण आमेर में भूमिगत तथा वर्षा जल की सदैव उपलब्धता रही है। जल की कमी के कोई साक्ष्य नहीं मिलते हैं।

जयपुर शहर से आमेर किले के सूरज पोल के पास से एक मार्ग जयगढ़ की पहाड़ी की ओर जाता है। दूसरा मार्ग आमेर किले से सुरंग के माध्यम से जयगढ़ तक जाता है तथा तीसरे प्रमुख मार्ग द्वारा जलमहल की ओर से आने वाली पक्की सड़क पर चलते हुए नाहरगढ़ की ओर मुड़ने वाली सड़क के रास्ते जयगढ़ तक पहुँचा जा सकता है।

6.2.3 दुर्ग का इतिहास

मध्यकालीन दिल्ली–आगरा से गुजरात, मालवा तथा दक्कन को जाने वाले महत्त्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग पर स्थित होने तथा मुगलों के सम्बन्धी कछवाहा शासकों की अधीनता से इसका राजनैतिक व व्यापारिक महत्त्व सदैव बना रहा।

जयगढ़ एवं आमेर दुर्ग का इतिहास एक ही है। यह दुर्ग सदैव आमेर के शासकों के ही अधीन रहा। दुर्ग रहस्यमयी है तथा इसके राज को अनेक वर्षों तक शासकों एवं किलेदारों के अलावा कोई नहीं जान सका। किले में राजा व उसके विश्वासपात्र किलेदारों के अलावा कोई प्रवेश नहीं कर सकता था। मुख्य द्वार पर पहरेदार चौबीसो घण्टे तैनात रहते थे। सैकड़ो वर्षों तक दुर्ग के भीतर क्या है किसी को पता नहीं लग सका। कहा जाता है कि किले में महाराजा का खजाना छिपा था जिसकी सुरक्षा इस स्थान के पुराने मीणा शासकों के वंशज किया करते थे।[58] इस किले में राजनैतिक बन्दियों को भी कैद रखा जाता था। इसके अतिरिक्त राजस्थान का यही एक मात्र दुर्ग है जिसमें तोप बनाने का कारखाना था। चूँकि मुगल तकनीक के उपयोग से गुप्त रूप से तोप बनाना यहाँ के मुगल मनसबदार शासकों के लिए मुगलों के कोप का कारण बन सकता था। अतः इस दुर्ग को रहस्यमयी बनाए रखा गया।

25 फरवरी 1976 में भारत सरकार द्वारा प्राचीन स्मारक एवं पुरातात्त्विक स्थल अधिनियम के तहत राष्ट्रीय स्मारक घोषित किया गया।[59] 250 साल पुराने एक बीजक के अनुसार दुर्ग में खजाना छिपा होना बताया गया। इसके भूमिगत टांके के नीचे बने

एक कक्ष में कीमती खजाना मौजूद था, जिसके एक भाग का प्रयोग कर सवाई जयसिंह ने जयपुर शहर बसाया था। शेष खजाने की आस में 1976 में तत्कालीन प्रधान मंत्री इन्दिरा गाँधी के निर्देशानुसार किले में खुदाई करायी गयी। पाँच महिनों की खुदाई के पश्चात् कुछ प्राप्त नहीं हुआ। आम जनता की कही–सुनी बातें कि कई हेलीकॉप्टर्स एवं 9 ट्रक भर कर सोना ले जाया गया, दिल्ली जयपुर हाईवे आम जनता के लिए बन्द कर दिया गया, सभी झूठी खबरे थी। तथापि इन सभी अफवाहों व खजाने की खुदाई ने जयगढ़ को अन्तरराष्ट्रीय ख्याति दिला दी।[60]

सरकार द्वारा जयपुर महाराजा को मई 1982 में जयगढ़ दुर्ग हस्तगत कर दिया गया। 11 दिसम्बर 1982 में महाराजा द्वारा जयगढ़ पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट बनाया गया। इस दुर्ग की देखरेख वर्तमान में यही ट्रस्ट करता है। 27 जुलाई 1983 को महाराजा मानसिंह द्वितीय की इच्छानुसार इसे आम जनता के लिए खोल दिया गया।[61]

6.2.4 दुर्ग रचना

जयगढ़ की प्राचीरें सम्पूर्ण पर्वत श्रृंखला को घेरते हुए इसे गिरी दुर्ग की सँज्ञा देती हैं। इसकी संरचना व वास्तु विन्यास शास्त्रों में वर्णित एक आदर्श गिरी दुर्ग के रूप में इसे परिभाषित करता है। इसकी उन्नत प्राचीरें, प्राचीरों में बन्दूक चलाने, तोप चलाने, तीर कमान, पत्थर गिराने, गरम तेल पानी गिराने के छेद, बुर्ज, प्राचीरों पर सैनिकों के एक बुर्ज से दूसरे बुर्ज पर जाने का मार्ग आदि के साथ–साथ प्रत्येक पोल पर बने विशाल दरवाजें एवं दरवाजों में हाथियों को रोकने के लिए गाडी गयी कीलें साथ ही किले के विभिन्न भागों में सुरक्षा हेतु बनी 27 सुरक्षा चौकियाँ एवं तोप बनाने का कारखाना, गोला बारूद रखने का स्थान आदि किले को शत्रुओं से अभय सुरक्षा प्रदान करती थी।[62] दुर्ग में खजाना छिपाने, तोप बनाने व बारूद रखे जाने के कारण दुर्ग की सुरक्षा महत्त्वपूर्ण थी। अतः प्रत्येक शासक ने इसको अधिक सुरक्षित बनाने के लिए इसे परिवर्द्धित व परिवर्तित कराया। फलतः यह अजेय बन गया। सम्भवतः यह इसके जयगढ़ नामकरण का भी यही कारण रहा। इस पर कभी शत्रु आक्रमण करने का साहस न कर सका।

दुर्ग के तीन प्रमुख दरवाजे हैं, डूंगर दरवाजा जो नाहरगढ़ की ओर से, अवनी दरवाजा आमेर के राजप्रासादों की ओर से तथा दुर्ग दरवाजा या खेरी दरवाजा या सागरी दरवाजा सागर जलाशय की ओर से दुर्ग के प्रवेश द्वार है।

अवनी दरवाजे से प्रवेश करने पर यह मार्ग जलेब चौक में ले आता है। जलेब चौक के दोनो तरफ दो बड़े बरामदे हैं। 16 वीं शताब्दी के बाद इन बरामदों में तोप बनाने के कारखाने संचालित किये गये थे। 1942 में महाराजा मानसिंह द्वितीय ने इनमे सैनिकों की बैरकें बनवा दी। वर्तमान में इन बरामदों में चित्रशाला, वस्त्र, सामान, तोप, बन्दूकें तथा अन्य वस्तुओं का संग्रहालय बनाया गया है। जलेब चौक के एक छोर पर शस्त्रागार के ठीक समीप राम हरिहर का मन्दिर है। जलेब चौक के उत्तर की ओर किले के महल बने हैं, जिनकी शैली विशुद्ध राजपूती है। इन महलों में प्रवेश करने पर भैरव मन्दिर, सुभट निवास, खिलवती निवास आते हैं। सुभट निवास 18 खम्बों पर खड़ा तीन तरफ से खुला हॉल है। यहाँ महाराजा अपने सैनिकों को सम्बोधित करते थे तथा संकटकाल में रणनीति बनाते थे। इसका चौक 168 फीट लम्बा व 150 फीट चौड़ा है। खिलबती निवास महाराजा के निजी अंगरक्षकों व उच्च पदाधिकारियों, सामन्तों आदि की गुप्त मंत्रणा का स्थान था। इसका मुख्य हॉल 32 गुना 13 वर्ग फीट आकर का है तथा एक ऊँचे मंच पर निर्मित है। इसके दोनों तरफ कमरे तथा अटेच्ड शौचालय बने हुए हैं। इनसे आगे बढ़ने पर लक्ष्मी विलास तथा ललित मन्दिर आते हैं। लक्ष्मी विलास महाराजा का निजी निवास था। यह जयगढ़ का सबसे सुन्दर महल है। यह 68 गुना 25 वर्ग फीट क्षेत्र में निर्मित है। इसका निर्माण मिर्जा राजा जयसिंह ने करवाया था। इसे बनवाने के कारण ही विद्याधर को सिरोपाओ (पुरस्कार) दिया गया था।[63] ललित मन्दिर भी शाही निवास था। यह दो मंजिला भवन है जिसे गर्मियों में निवास हेतु उपयोग लिया जाता था। इसकी एक गैलरी में दो शौचालय बने हैं। इसके भीतर का केन्द्रीय हॉल 31 फीट लम्बा व 30 फीट चौड़ा है, जिसके खम्बों व दीवारों पर अराइश की पॉलिश की गयी है। इसकी ऊपरी मंजिल शयन कक्ष है, इसमें भी अटेच्ड़ शौचालय व स्नानागार है।[64] ललित मन्दिर के बाद विलास मन्दिर तथा भोजनशाला बनी है। विलास मन्दिर 16 वीं सदी में बना था। यह राजपरिवार की रानियों व राजकुमारियों का महल था। महल की छत पत्थरों के खम्बों पर टिकी है, दीवारों व खम्बों पर अराइश की पॉलिश की गयी है। इसकी खिड़कियों से आमेर का मावठा व जयपुर–दिल्ली मार्ग दिखाई पड़ता है। समीप ही कठपुतलीघर है। यह दोमंजिला सभागार है, जिसकी बालकनी में राजपरिवार के बैठने की व्यवस्था थी। अवनी गेट से पूर्व की ओर आगे बढ़ने पर राणावत चौक, सूर्य मन्दिर तथा बन्दुक बनाने का कारखाना है। राणावत चौक एक दरबार हॉल है तथा सूर्य मन्दिर 11 वीं सदी में बना महल है जिसमें सात बरामदे तथा कमरे है। वर्तमान में यहाँ

बन्दूकें प्रदर्शित की गयी हैं।

डूंगर गेट दुर्ग का दक्षिणी प्रवेश द्वार है, इसके दायें हाथ पर नाथावतों का टांका व नाथावतों का डेरा है इसी के पास ऊपरी मंजिल पर जयबाण तोप रखी गयी है। यह तोप विश्व की सबसे बड़ी तथा पहियों पर खड़ी तोप है, इसका निर्माण इसी किले में किया गया था। इसका वजन 50 टन है। एक बार के प्रहार में 100 कि.ग्रा. बारूद तथा 50 कि.ग्रा. गोला काम आता था। आगे एक अन्य द्वार से प्रवेश करने पर एक विशाल चौक आता है, इस चौक में पानी के तीन बड़े टांके बने हैं। इसी से जुड़ी नाहरगढ़ की तरफ से आने वाली नहर है जो टांके में वर्षा जल उड़ेलती है। दायीं तरफ चलने पर शस्त्रागार, इसके समीप विजयगढ़ी, दिवा बुर्ज व शिव मन्दिर है। शस्त्रागार में अनेक अस्त्र–शस्त्र रखे गये हैं, जिनमें बजरंग बाण, नागिन, सिंहवान, धूमवान, नाहरमुखी, कड़क बिजली, बादली, माधुरी, बंजारी, शिववान, मुल्क मैदान, फतेहजंग आदि तोपें प्रमुख हैं। विजयगढ़ी लघु अन्तः दुर्ग है। जिसमें सवाई जयसिंह द्वितीय के भाई विजय सिंह को कैद रखा गया था। दिवा बुर्ज सात मंजिला वॉच टॉवर है, जो दुश्मन के आमेर के नजदीक पहुँचने से पहले ही गतिविधि की सूचना दे सकता था। खेरी दरवाजा या दुर्ग दरवाजे से किले में प्रवेश करने पर किले का बाहरी टांका, चहार बाग, आराम मन्दिर, रॉयल बाथरूम्स आदि दृष्टिगत होते हैं।[65]

दुर्ग तीन स्तर की उच्च सुरक्षा प्रणाली से रक्षित किया गया था। प्रथम ऊँचे वॉच टॉवर्स व खाई, द्वितीय ऊँची पहाड़ी, गहरी घाटियाँ व वन क्षेत्र तथा तृतीय विशाल प्राचीरें।[66] किले में भूमिगत सुरंगों का जाल बिछा था। लक्ष्मी विलास से ललित मन्दिर के बीच 116 फीट लम्बी, रसोइघर से ललित मन्दिर के बीच 107 फीट लम्बी व विलास मन्दिर से कठपूतलीघर के बीच 93 फीट लम्बी सुरंगें थी। सुभट निवास के नीचे से एक सुरंग खिलबती निवास को जाती थी। एक अन्य सुरंग जयगढ़ दुर्ग के अवनी गेट की ओर से आमेर के महलों तक जाती है, वर्तमान में पर्यटक जयगढ़ आने के लिए इस सुरंग का प्रयोग करते हैं।

6.2.5 किले के जल स्रोत तथा जल संग्रहण व्यवस्था

राजस्थान के अन्य बड़े किलों की ही भाँति जयगढ़ दुर्ग में भी जल भण्डारण की विशेष व्यवस्था की गयी थी। किले में पाँच बड़े टांके, एक नष्ट टांके के अवशेष, नहर व्यवस्था, सागर झील आदि मौजूद हैं।

6.2.5.1 सागर झील

जयगढ़ किले के पीछे, महल से काफी नीचे उतरने पर पहाड़ियों की तलहटी में एक झील है जिसे सागर झील कहा जाता है। यह दो पृथक भागों में बँटी हुई है, एक भाग कुछ ऊँचाई पर तथा दूसरा नीचे स्थित है। इन दोनों का ही सम्मिलित रूप से नाम सागर है। इन झीलों के तटबन्द मजबूत हैं। नीचे की झील के तटबन्ध पर अर्ध वृत्ताकार व अर्ध अष्टकोणीय बुर्जे बनी हैं व झील के मध्य एक द्वीप भी है जिस पर पेड़–पौधे लगे हुए हैं। ऊपर वाली झील के किनारे उत्तर में तीन मंजिला सीढ़ीदार छतरी है जिसकी तीसरी मंजिल पर संगमरमर के स्तम्भ वाली चौकोर छतरी है जिसके मध्य चरण बने है। प्राचीन दस्तावेजों में ये चरण सवाई जयसिंह के गुरू रत्नाकर पुण्डरिक के बताए गए हैं। इसलिए इस झील को रत्नाकर सागर भी कहा जाता है। छतरी तक जाने के लिए पूर्व पश्चिम में दोनों तरफ सीढ़ियाँ बनाई गयी हैं। किले से झील तक आने के लिए सीढ़ियाँ भी बनाई गयी हैं।[67]

यह झील किले के लिए अधिक पानी की आवश्यकता हेतु उपयोग लायी जाती थी। यहाँ से पानी हाथियों व सैनिकों के द्वारा मसक भर कर किले के बाहरी टांके में लाया जाता था।

6.2.5.2 बड़े चौक में स्थित तीन टांके

डूंगर गेट से किले में प्रवेश करने पर सामने की ओर एक दूसरे के समीप स्थित तीन टांके दिखाई देते हैं। ये टांके वर्षा जल संग्रहण का सबसे अनूठा उदाहरण है जिसकी विशिष्ट वास्तुकला इसे संसार के दूसरे सभी वर्षा जल संग्रहकों से अलग करती है तथा उनके लिए मार्गदर्शक भी है। इनमें दो ढँके हुए तथा एक खुला टांका है।

सबसे बड़ा टांका ढँका हुआ है, जिसका पानी किले में रहने वाले व्यक्ति सदियों से पीते आ रहे हैं। यह टांका 158 फीट लम्बा 138 फीट चौड़ा तथा 40 फीट गहरा है। इसकी दीवारों में हवा व रोशनी आने के लिए खिड़कियाँ बनी हुई हैं। इसकी छत 81 खम्बों पर टिकी है। टांके में भीतर जाने हेतु दोनों कोनों पर दो प्रवेश द्वार बने हुए हैं, दोनों दरवाजों को एक लम्बा गलियारा जोड़ता है, दोनों तरफ से पानी तक उतरने के लिए सीढ़ियाँ भी बनी हुई हैं। वर्षा जल पुनर्भरण हेतु इसे बड़ी नहरों से जोड़ा गया है। इसकी जल भराव क्षमता 60 लाख गैलन है।

इसके ठीक दायीं ओर एक छोटा टांका है जो 69 फीट लम्बा 52 फीट चौड़ा और 52 फीट गहरा है। इसकी छत में 9 सुराख हैं तथा प्रत्येक सुराख के नीचे एक कमरा है इन्हीं कमरों में राजसी खजाना छिपाया गया था। सवाई जयसिंह ने इस खजाने को निकाल कर 1728 में जयपुर शहर बसाया तथा 1976 में टांके का पानी निकाल कर खजाने की तलाश करायी किन्तु कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ।

इसके समीप तीसरा अन्य टांका और है जो 61 फीट लम्बा 52 फीट चौड़ा व 27 फीट गहरा है। यह टांका खुला है। इसका पानी नहाने एवं कपड़े धोने के काम आता है। सेना के घोड़ों व अन्य जानवरों को नहलाने व पानी पिलाने हेतु भी इसी टांके का जल प्रयुक्त किया जाता था।[68]

6.2.5.3 बाहरी छोटा टांका

किले के बाहर की ओर किले से सटते हुए उत्तर पूर्व दिशा में एक छोटा टांका है। इस टांके में भी पानी अन्य टांकों की भाँति वर्षा जल संग्रहण पद्दति द्वारा आता था। किले की चारदीवारी व बुर्जों पर गिरने वाला वर्षा जल तथा किले के भीतर का अतिरिक्त पानी विभिन्न नालियों के माध्यम से टांके में पहुँचता था। इसमें भी पानी के स्वतः शुद्ध होकर प्रवेश करने की व्यवस्था थी। यह ढँका हुआ है। इसका पानी जानवरों को पिलाने तथा किले की मरम्मत आदि के लिए काम लिया जाता था, इसके अतिरिक्त संकटकाल में यह जल प्राप्ति का महत्त्वपूर्ण स्रोत भी था। सागर झील का पानी इसमें एकत्रित किया जाता था।

6.2.5.4 चहार बाग का टांका

चहार बाग में भी एक टांका स्थित है जिसे गार्डन टेंक कहते है। बाग के पेड़ पौधों को पानी इसी टेंक से दिया जाता था। इस टांके में पानी वर्षा जल संग्रहण पद्दति के तहत विभिन्न नहरो के माध्यम से आता था। इसमें भी पानी के स्वतः शुद्ध होकर प्रवेश करने की व्यवस्था थी। आज भी इस टांके का पानी आराम महल, रानी की सुरंग स्थित स्नानागार व शौचालयों तथा बाग में जलापूर्ति हेतु उपयोग में लिया जाता है।[69]

6.2.5.5 आमेर जाने वाले मार्ग में स्थित टांका

जयगढ़ से आमेर की ओर जाने वाले पैदल मार्ग में जहाँ सुरंग खत्म होती है वहाँ दरवाजे के भीतर दायीं ओर नष्ट हो चुके एक टांके के अवशेष हैं। किले के निर्माण के समय निर्माण कार्यों मे जल की आवश्यकता हेतु इस टांके को बनाया होगा, बाद में

उपयोग के अभाव में नष्ट हो गया होगा।[70] यही कारण है कि विद्वानों में इसके अस्तित्व को लेकर मतभेद है। यह टांका भी वर्षा जल से पुनर्भरित होता था।

6.2.5.6 नाथावतों का टांका

किले के दक्षिण की तरफ डूंगर गेट के पूर्व दिशा में नहर के पास नाथावतों के डेरे के समीप एक टांका स्थित है, जिसे नाथावतों का टांका कहा जाता है।[71] यह टांका अन्य टांकों से भिन्न है तथा इसका पानी पीने के उपयोग में न लेकर अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ही काम में लिया जाता था। यह न तो ढँका हुआ है और ना ही इसका जल शुद्ध है। यह एक बहुत बड़े तालाब के समान है तथा किले में गिरने वाले वर्षा जल से ही भरता है।

6.2.6 वर्षा जल संग्रहण (रेन वाटर हारवेस्टिंग) तकनीक

यह किला विश्व में अपनी विशिष्ट वर्षा जल संग्रहण प्रणाली के लिए सुप्रसिद्ध है, जो तत्कालीन कला विज्ञान एवं इंजिनियरिंग का अनुपम उदाहरण है। किले में स्थित 5 मुख्य टांके किले के आसपास के गहन वन एवं पहाड़ी क्षेत्र मे होने वाली वर्षा के जल को संग्रहित करते हैं। इस हेतु किले के चारों तरफ कई किलोमीटर लम्बा छोटी बड़ी पक्की नहरों का गहन जाल बनाया गया है, जो पहाड़ों की तलहटी से प्रारम्भ होकर किले के भीतर टांकों में प्रवेश करता है तथा बनावट एवं तकनीक की दृष्टि से विशिष्ट है। सबसे लम्बी नहर की लम्बाई 4 कि.मी. से भी अधिक है जो नाहरगढ़ के रास्ते की पहाड़ी ढ़लानों से वर्षा जल प्राप्त करती है। ये नहरे प्रारम्भ में चौडी तथा कम गहरी हैं जिनमें पहाड़ों पर गिरने वाला वर्षा जल बहकर आसानी से प्रवेश कर जाता हैं तत्पश्चात् ये घुमाव व ढ़लान युक्त हो जाती हैं, कई स्थानों पर यह 60^0 से 90^0 तक घूम जाती हैं, इन तीव्र घुमावों पर इनमें गहरे गड्डे बने हुए हैं जिनमें पानी के साथ आया कचरा, मिट्टी, गन्दगी व पत्थर आदि फँस जाते हैं, फलतः यहाँ से आगे बढ़ने वाला पानी स्वतः शुद्ध हो जाता है। घुमावों के बाद नहरें सकड़ी व गहरी होकर टेंक मे प्रवेश करती हैं। टेंक के नहरी प्रवेश मार्ग के समीप नहरों में गहरे खांचे बने हुए हैं जिनमें अतिरिक्त मिट्टी, गन्दगी, कचरा आदि भर जाता है। इस प्रकार टेंक में अन्तिम रूप से प्रविष्ट होने वाला पानी पूर्ण रूप से शुद्ध होकर प्रवेश करता है। इस पूरी प्रक्रिया में जल के शुद्धिकरण का विशेष ध्यान रखा गया है।[72]

इन टांकों के जल को पवित्र माना जाता था तथा दुरूपयोग पर दण्ड का

प्रावधान था। इनके पास जूते चप्पल ले जाना जल को गन्दा करना, अपव्यय करना धार्मिक एवं नैतिक दृष्टि से पाप समझा जाता था। आज भी इन टेंकों की छत पर चढ़ने की अनुमति नहीं है। इनका पानी पेयजल के साथ–साथ पूजा–पाठ, हवन–अनुष्ठान आदि धार्मिक व मांगलिक कार्यों में उपयोग लिया जाता था। संकटकालीन परिस्थितियों में इस टेंक का पानी लम्बे समय तक पूरे किले की पेयजल की आवश्यकताओं को पूरी कर सकता था।

6.2.7 जल उत्थान व वितरण प्रणाली

दुर्ग के पीछे पहाड़ों की तलहटी में आमेर के मावठा सागर के समान एक विशाल कृत्रिम झील बनायी गयी है। जिसे सागर झील कहा जाता है। यह दुर्ग में जल आपूर्ति का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत थी। इस झील का पानी हाथियों की सहायता से चमड़े के बड़े–बड़े मसकों में भर कर किले की पश्चिम दीवार से सटे बाहरी टांके में एकत्र किया जाता था। झील से किले में जल प्राप्ति हेतु एक जल उत्थान प्रणाली भी विकसित की गयी थी। यह प्रणाली दो भागों में बंटी थी, पहले चरण में सागर झील का पानी एक छोटे टेंक में पूका नहरों द्वारा एकत्र किया जाता था तत्पश्चात् इस टेंक के भर जाने के बाद अतिरिक्त जल विभिन्न स्टेप्स की सहायता से ऊपरी टेंक में चला जाता था। एक बार ऊपरी टेंक के भर जाने के बाद उसका पानी चकलियों की सहायता से उत्थित (लिफ्ट) कर किले में उपयोग लिया जाता था।[73] किले के भीतर बने महल आदि में दैनिक आवश्यकता, पीने, नहाने– धोने, शौच, रसोई आदि के लिए पानी लाने की व्यवस्था भिश्ती के माध्यम से की जाती थी। भिश्ती मशक या अन्य किसी पात्र में पानी भर कर लाते थे।

6.2.8 जल का उपयोग

किले के महलों के भीतर भोजनशाला, रसोईघर, शौचालय व स्नानागार बने हुए हैं जो विलासिता पूर्ण हैं, जिनमें टांकों एव सागर झील का जल उपयोग लिया जाता था।

6.2.8.1 पेयजल

किले में निवास करने वाले राजपरिवार, सेवकों, अन्य व्यक्यिों तथा आगुन्तक अतिथियों के लिए शुद्ध पेयजल की व्यवस्था की गयी थी। सबसे बड़े ढँके हुए टांके का जल पीने के उपयोग में लिया जाता था।

6.2.8.2 सैन्य उपयोग

जयगढ़ एक सैन्य दुर्ग था। यहाँ तैनात सेना की बड़ी टुकड़ी को जल उपलब्ध कराना अति आवश्यक था। इस हेतु सागर झील तथा किले के टांकों का जल उपयोग लिया जाता था। संकटकाल में भी किले के टांकों में पर्याप्त जल रहता था, जिसे सेना प्रयोग ले सकती थी। किले में तोप व बन्दूकें बनाने का बड़ा कारखाना भी था, जिसमें जल की आपूर्ति टांकों से की जाती थी।

6.2.8.3 भोजनशाला

विलास मन्दिर तथा ललित मन्दिर के मध्य भोजनशाला व रसोईघर बने हुए हैं। इन जुड़वा कक्षों का निर्माण 11 वीं या 12 वीं सदी में हुआ था। रसोईघर में अनेक चूल्हे आज भी मौजूद हैं। भोजनकक्ष को हवादार तथा खुशनुमा बनाया गया है, इसमें अतिथियों हेतु जल पान आदि करने का भी स्थान है। स्त्री पुरूषों के लिए भोजन करने के स्थान अलग–अलग हैं। इसमें जल की आपूर्ति गार्डन टेंक से की जाती थी।

6.2.8.4 उद्यान

किले के अनेक छोटे–बड़े उद्यान, बाग–बगीचें, फुलवारी एवं पेड़ लगाए गए थे, जिनमें जल की आपूर्ति सागर झील तथा टांकों से की जाती थी। लक्ष्मी विलास महल के सामने एक सुन्दर बगीचा स्थित है जिसे चहार बाग कहते है। ये सुन्दर महल व बगीचा मिर्जा राजा जयसिंह के समय विद्याधर चक्रवती की देखरेख में बनाए गए थे। बाग की लम्बाई चौड़ाई 171 फीट है।[74] इस बाग में महल की छत से उतरने के लिए तीन ओर संकड़े एवं ढलावदार मार्ग बने हैं, जो बाग में आवागमन के मार्ग हैं। बाग के बीच में अष्टभुजाकार चबूतरा बना है, इस चबूतरे के चारों ओर नहरें बनी हैं जो उद्यान को चार बराबर भागों में बाँटती है। इन नहरों में फव्वारें लगे हुए थे। इन नहरों से बाग में पानी दिया जाता था। ये चबूतरें एवं नहरें सभी लाल पत्थरों से बने हुए हैं, इनके किनारे बैठ कर फव्वारों का आनन्द लिया जा सकता था। बाग के उत्तर–पूर्व में एक जालीदार अष्टकोणीय छतरी भी बनी हुई है। यहाँ ग्रीष्म ऋतु में राजपरिवार अपना समय व्यतीत करता था।[75]

6.2.8.5 शौचालय व स्नानागार

किले के महलों में बने विभिन्न कक्षों में अटेच्ड़ शौचालय व स्नानागार बने हुए हैं। इन सभी में जल की आपूर्ति समीप के टांकों से की जाती थी।[75]

6.2.8.6 रॉयल बाथ (शाही स्नानागार)

रॉयल बाथ नामक संरचना के अन्तर्गत एक स्नानागार व दो शौचालय आते हैं। शौचालय में गर्मियों के दृष्टिकोण से तीन खिडकियाँ बनायी गयी हैं जो महल के बाहर की ओर खुलती हैं। इनमें हाथ से चलने वाला छत का पंखा लगा हुआ था। सर्दियों में इसकी तीनों खिडकियाँ काँच से जड़ कर बन्द कर दी जाती थी। रॉयल बाथ के अन्तर्गत दूसरी संरचना स्नानागार है। इस स्नानागार का आकार 21x19x21 घन फीट है तथा दीवारों व छत पर संगमरमर का पत्थर लगा हुआ है। इसमें गरम या ठण्डे पानी से नहाने की सुविधा थी। इसमें रखा मार्बल से बना बाथ टब गरम व ठण्डे पानी के टेंकों जुड़ा हुआ था। गरम पानी का टेंक बायलर टेंक से जुडा हुआ था। इस बायलर टेंक में पानी भर कर लकडियाँ जलायी जाती थी तो इससे गरम हुआ पानी बाथ टब में चला जाता था। इस बाथ टब के ठण्डे पानी के टेंक से भी जुड़े होने के कारण इसमें तापमान के अनुकूल गरम व ठण्डे पानी का सम्मिश्रण किया जा सकता था।[77]

6.2.8.7 भाप स्नान कक्ष

रॉयल बाथ के स्नानगार के साथ लगता हुआ एक ओर कक्ष है जो स्टीम बाथ काम्पलेक्स (भाप स्नान कक्ष) के रूप मे काम आता था। इसका आकार 13x10 वर्ग फीट है। इसमें भी एक बाथ टब है तथा यह कक्ष भी बायलर टेंक से जुड़ा हुआ है। इसके टेंक की सतह पर 2 फीट की वृत्ताकार कांसे की प्लेट लगी है। जब पूरे कक्ष को चारों तरफ से बन्द कर लिया जाता था तथा बायलर टेंक में पानी गरम किया जाता था तो गरम पानी से निकलने वाली भाप पूरे कक्ष में भर जाती थी। इस कक्ष में स्नान हेतु उपस्थित व्यक्ति भाप स्नान (स्टीम बाथ) का आनन्द उठा सकता था। इस प्रकार इस कक्ष में जल का उपयोग शीतकाल में भाप बनाकर भाप स्नान हेतु किया गया था।[78]

6.2.8.8 सेन्ट्रल हिटिंग सिस्टम

यूरोपियन्स के अनुकरण पर विकसित की गयी इस व्यवस्था के अन्तर्गत एक वृत्ताकार भट्टी बनी हुई है, जिसकी ऊँचाई 3 फिट तथा व्यास 4 फीट है। ये दो तरफ से खुली हुई है। एक तरफ ईंधन जलाने तथा दूसरी तरफ हवा के निर्बाध आने जाने का मार्ग था। इस भट्टी की छत पर उसी तरह की कॉपर प्लेट लगी थी जिस तरह की प्लेट पानी बॉयलर टेंक के तल में लगी हुई थी। जब भट्टी में ईंधन जलाया जाता था तो गरम हवाओं के झोंके फर्श के भीतर बनी छोटी–छोटी नालियों मे से निकल कर

महल के एक विशेष हिस्से को गरम कर देते थे। इस युक्ति का उपयोग सर्दियों में महल को गरम रखने हेतु किया जाता था। इस प्रकार इस पद्दत्ति के अन्तर्गत जल का उपयोग सर्दियों में महल को गरम रखने हेतु किया गया था।[79]

6.2.8.9 वाटर कूलर

दुर्ग में एक लकड़ी का बना वाटर कूलर आकर्षण का केन्द्र है। यह तत्कालीन विज्ञान एवं अभियांत्रिकी का सुन्दर उदाहरण है। इसमें धातु की पत्तियों, पंखों, चकरियों व लकड़ी के आवरण का प्रयोग किया गया है। यह युक्ति उष्मा गतिकी के भौतिक विज्ञान के सिद्धान्त पर कार्य करती है। इसमें ऊपर से जल भरा जाता है जो इसकी विशिष्ट बनावट व क्रियाविधि से ठण्डा हो जाता है। यह ठण्डे जल के साथ–साथ ठण्डी हवा भी देता था। इस प्रकार का यंत्र राजस्थान के किसी अन्य किले में नहीं था।[80]

6.2.9 जल निकास प्रणाली

किले में तथा किले की आस–पास की पहाड़ियों पर गिरने वाले वर्षा जल की एक–एक बून्द को कीमती मान कर टांकों में एकत्रित कर लिया जाता था। इस कारण किले से बाहर वर्षा जल की निकासी की व्यवस्था दिखाई नहीं पड़ती तथापि अनुपयोगी व गन्दे पानी को किले से बाहर निकालने के लिए छोटी नालियों का प्रयोग किया गया था।

6.2.10 वर्तमान स्थिति

जयगढ़ पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट किले की देखरेख, सुरक्षा व प्रबन्धन करता है।[81]

वर्तमान में किले के सभी टांके व उनकी नहरें सही स्थिति में हैं। बड़े चौक में स्थित टांकों का जल आज भी शुद्ध है तथा पीने में उपयोग लिया जाता है। समय–समय पर इनकी सफाई करायी जाती है। बरसात के मौसम से पहले टांकों में जल उड़ेलने वाली नहरों की भी सफाई करायी जाती है ताकि टांकों में शुद्ध जल प्राप्त हो सके।

सागर झील जयगढ़ व आमेर आने वाले पर्यटकों के लिए आकर्षण का प्रमुख केन्द्र है। कुछ वर्षों पहले तक साफ सफाई के अभाव, प्रदूषण, टूटे फूटे मार्ग व समाज कंटकों के जमावड़े के कारण सागर झील के प्रति पर्यटकों का आकर्षण कम हो गया था, परन्तु सागर झील के विकास व पर्यटकों को आकर्षित करने हेतु प्रशासन ने एक पायलट प्रोजेक्ट की शुरूआत की। इस प्रोजेक्ट के तहत जयगढ़ से सागर झील तक

के मार्ग को सही किया गया, पहाड़ियों से झील तक आने वाले जल मार्गों की मरम्मत की गयी, गन्दगी व कचरा हटाया गया, साफ–सफाई की गयी, झील के पानी का वाटर ट्रीटमेन्ट कर स्वच्छ किया गया, झील के चारों तरफ पैदल व बाइक से चलने वाला ट्रेक बनाया गया। झील के बीच स्थित द्वीप तक जाने के लिए लकड़ी का रैम्पनुमा ट्रेक बनाया गया, किनारे स्थित छतरी से झील के अवलोकन हेतु छतरी की सीढ़ियों की मरम्मत की गयी। फलतः सागर झील स्वच्छ हुई, पर्यटकों की आवाजाही बढ़ी।[82]

अन्त में कहा जा सकता है कि इस किले में जल प्रबन्धन तकनीक के अन्तर्गत नहर, टांका, झील, भट्टी, वाटर कूलर, बायलर टेंक, शौचालय व स्नानागार, भाप स्नान कक्ष आदि का निर्माण कर वर्षा जल प्राप्ति एवं संग्रहण, वर्षा जल का स्वतः शुद्धिकरण, जल को लिफ्ट करना, भाप स्नान, जल को गरम ठण्डा करना, आदि कार्य किये गये। ये सभी कार्य उच्च स्तरीय है एवं अपने समय के ज्ञान–विज्ञान व अभियांत्रिकी कुशलता के परिचायक है।

सन्दर्भ

1. शर्मा, गीता, आमेर स्थापत्य एवं चित्रकला, राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2011 पृ. 1
2. कोठारी, गुलाब (सं), पत्रिका इयर बुक, राजस्थान पत्रिका प्रकाशन, 2010, पृ. 719
3. गहलोत, जगदीश सिंह, कछवाहों का इतिहास, यूनिक ट्रेडर्स, 1991, पृ 59
4. माथुर, एल.पी., फोर्ट्स एण्ड स्ट्रोंगहोल्ड्स ऑफ राजस्थान, इन्टर इण्डिया पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1989, पृ. 82
5. कोठारी, गुलाब (सं), पत्रिका इयर बुक, पूर्वोक्त, पृ. 722
6. गुप्ता, टी.एन. एवं खंगारोत आर.एस., आम्बेर जयपुर : ए ड्रीम इन द डेजर्ट, क्लासिक पब्लि. हाउस, 1994, पृ. 61
7. उक्त।
8. मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, रा.हि.ग्र.अका., 2013, पृ. 95
9. गुप्ता, टी.एन. एवं खंगारोत आर.एस., आम्बेर जयपुर : ए ड्रीम इन द डेजर्ट, पूर्वोक्त, पृ. 66
10. माथुर, एल.पी., फोर्ट्स एण्ड स्ट्रोंगहोल्ड्स ऑफ राजस्थान, पूर्वोक्त, पृ. 85
11. डुंडलोद, हरनाथ सिंह, जयपुर एण्ड इट्स एनविरन्स, राजस्थान एजूकेशनल प्रिन्टर्स, जयपुर, 1970 पृ 62
12. माथुर, एल.पी., फोर्ट्स एण्ड स्ट्रोंगहोल्ड्स ऑफ राजस्थान, पूर्वोक्त, पृ. 86
13. उक्त, पृ. 87

14. मिश्र, रतनलाल, राजस्थान के दुर्ग, साहित्यागार, जयपुर, 2008, पृ. 128
15. खान, जफरूल्लाह, द आम्बेर पैलेस, पृ. 11
16. पर्यटन सूचना पट्ट, टांका मानसिंह महल, आमेर दुर्ग
17. पर्यटन सूचना पट्ट, मावठा झील, आमेर दुर्ग
18. शर्मा, गीता, आमेर स्थापत्य एवं चित्रकला, पूर्वोक्त, पृ. 38
19. व्यक्तिगत साक्षात्कार, विजय कुमार, सुरक्षा कर्मी, आमेर दुर्ग, दि. 22.05.2014
20. व्यक्तिगत साक्षात्कार, महेन्द्र कुमार, रजिस्टर्ड गाइड़, आमेर दुर्ग, दि. 22.05.2014
21. शोध यात्रा, आमेर दुर्ग, दि. 23.05.2014
22. पर्यटन सूचना पट्ट, रहँट प्रणाली प्रदर्शन कक्ष, आमेर दुर्ग
23. शोध यात्रा, आमेर दुर्ग, दि. 23.05.2014
24. खान, जफरूल्लाह, आमेर महल में रहँट प्रणाली, शोध पत्र, पुरासम्पदा, राज. पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग, जयपुर, पृ 059—061
25. शोध यात्रा, आमेर दुर्ग, दि. 24.05.2014
26. गार्डन ऑफ मुगल इण्डिया, ए हिस्ट्री एण्ड ए गाइड़, विकास पब्लिशिंग हाउस देहली, 1973, पृ 26—27
27. माथुर, एल.पी., फोर्ट्स एण्ड स्ट्रोंगहोल्ड्स ऑफ राजस्थान, पूर्वोक्त, पृ. 83
28. मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पूर्वोक्त, पृ. 95
29. माथुर, एल.पी., फोर्ट्स एण्ड स्ट्रोंगहोल्ड्स ऑफ राजस्थान, पूर्वोक्त, पृ. 84
30. व्यक्तिगत साक्षात्कार, ठाकुर उम्मेद सिंह, स्थानीय नागरिक, आमेर, दि. 27.5.2014
31. शर्मा, गीता, आमेर स्थापत्य एवं चित्रकला, पूर्वोक्त, पृ. 39
32. खान, जफरूल्लाह, द आम्बेर पैलेस, पृ. 20
33. शोध यात्रा, आमेर दुर्ग, 25.5.2014
34. व्यक्तिगत साक्षात्कार, विजय कुमार, सुरक्षा कर्मी, आमेर दुर्ग, दि. 22.05.2014
35. शोध यात्रा, आमेर दुर्ग, 25.5.2014
36. व्यक्तिगत साक्षात्कार, महेन्द्र कुमार, रजिस्टर्ड गाइड़, आमेर दुर्ग, दि. 22.05.2014
37. मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पूर्वोक्त, पृ. 95
38. आमेर पुरातत्त्व संग्रहालय, आमेर में प्रदर्शित बिहारी सतसई के दोहे की प्रतिलिपि में उल्लेख।
39. व्यक्तिगत साक्षात्कार, विजय कुमार, सुरक्षा कर्मी, आमेर दुर्ग, दि. 22.05.2014
40. उक्त।
41. मिश्र, रतन लाल, राजस्थान के दुर्ग, पूर्वोक्त, पृ. 122
42. व्यक्तिगत साक्षात्कार, महेन्द्र कुमार, रजिस्टर्ड गाइड़, आमेर दुर्ग, दि. 22.05.2014
43. पब्लिकेशन्स, राजस्थान पुरातत्त्व एवं संग्रहालय विभाग, जयपुर।
44. व्यक्तिगत साक्षात्कार, ठाकुर उम्मेद सिंह, स्थानीय नागरिक, आमेर, दि. 27.5.2014
45. स्थानीय अखबार, राजस्थान पत्रिका, नवभारत टाइम्स व अन्य।

46. साप्ताहिक उदय इण्डिया, समाचार पत्र में प्रकाशित समाचार के आधार पर, 22 जून 2013
47. गुप्ता, टी.एन. एवं खंगारोत आर.एस., आम्बेर जयपुर : ए ड्रीम इन द डेजर्ट, पूर्वोक्त, पृ. 69
48. शावर्स, एच. एल., नोट्स ऑन जयपुर, (प्रिन्सली स्टेट), यूनिवर्सिटी ऑफ विसकोन्सिन, 1909 पृ. 54
49. डूण्डलोद, हरनाथ सिंह, जयपुर एण्ड इट्स एन्वायर्न्स, पूर्वोक्त, पृ. 58
50. मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पूर्वोक्त, पृ. 100
51. भयमत, 9, उद्वभत् डॉ0 द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल, भारतीय वास्तु शास्त्र, संस्कृत विभाग, लखनऊ, पृ 129
52. कवि कलानिधि, देवर्षि श्री कृष्ण भट्ट विरचितम् ईश्वर विलास महाकाव्यम्, राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर, पृ. 29
53. शर्मा, गीता, आमेर स्थापत्य एवं चित्रकला, पूर्वोक्त, पृ. 18
54. खंगारोत, आर.एस. एवं नाथावत पी.एस. जयगढ़ द इन्विन्सिबल फोर्ट, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर, जयपुर, पृ. 16
55. ए गाइड़ टू द जयगढ़ फोर्ट ऑफ आम्बेर, द जयगढ़ पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट, जयपुर, 2003, पृ. 7
56. उक्त, पृ 7
57. कोठारी, गुलाब (सं), पत्रिका इयर बुक 2007, पूर्वोक्त, पृ. 719
58. मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पूर्वोक्त, पृ. 98
59. गुप्ता, टी.एन. एवं खंगारोत आर.एस., आम्बेर जयपुर : ए ड्रीम इन द डेजर्ट, पूर्वोक्त, पृ. 69
60. व्यक्तिगत चर्चा, विभिन्न गाइड्स जयगढ़ दुर्ग एवं स्थानीय नागरिक आमेर के आधार पर।
61. गुप्ता, टी.एन. एवं खंगारोत आर.एस., आम्बेर जयपुर : ए ड्रीम इन द डेजर्ट, पूर्वोक्त, पृ. 69
62. ए गाइड़ टू द जयगढ़ फोर्ट ऑफ आम्बेर, पूर्वोक्त, पृ. 11
63. उक्त, पृ. 11
64. खंगारोत, आर.एस. एवं नाथावत पी.एस. जयगढ़ द इन्विन्सिबल फोर्ट, पूर्वोक्त, पृ. 56
65. शोधयात्रा, जयगढ़ दुर्ग, दि. 06.09.2014
66. गुप्ता, टी.एन. एवं खंगारोत आर.एस., आम्बेर जयपुर : ए ड्रीम इन द डेजर्ट, पूर्वोक्त, पृ. 70
67. शोधयात्रा, जयगढ़ दुर्ग, दि. 06.09.2014
68. पर्यटक सूचना बोर्ड़, बड़ा चौक स्थित टांकों के समीप, जयगढ़ दुर्ग।
69. व्यक्तिगत साक्षत्कार, दुर्ग परिचारक श्री छोटू जी, दि. 07.09.2014
70. व्यक्तिगत साक्षात्कार, श्री देवराज सिंह एवं दलवीर सिंह, प्रबन्धक, जयगढ़ पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट, जयगढ़ दुर्ग, दि. 07.09.2014
71. ए गाइड़ टू द जयगढ़ फोर्ट ऑफ आम्बेर, पूर्वोक्त, टूरिस्ट मेप, पृ 29 के अनुसार
72. मिश्र, अनुपम, राजस्थान की रजत बून्दें, गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 1995 पृ 77
73. राजोरा, नेहा, कल्चरल लेण्डस्केप्स ऑफ आम्बेर, राजस्थान, शोध प्रबन्ध, यूनिवर्सिटी ऑफ

इलिनोइस एट अरबाना, केम्पाहेगन, यूएसए, 2013, पृ 38 से साभार

74. शर्मा, गीता, आमेर स्थापत्य एवं चित्रकला, पूर्वोक्त, पृ. 22
75. राजोरा, नेहा, कल्चरल लेण्डस्केप्स ऑफ आम्बेर, पूर्वोक्त, पृ 42 से साभार
76. शोधयात्रा, जयगढ़ दुर्ग, दि. 06.09.2014
77. ए गाइड़ टू द जयगढ़ फोर्ट ऑफ आम्बेर, पूर्वोक्त, पृ. 17
78. उक्त, पृ. 17
79. उक्त, पृ. 18
80. व्यक्तिगत साक्षात्कार, श्री देवराज सिंह एवं दलवीर सिंह, प्रबन्धक, जयगढ़ पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट, जयगढ़ दुर्ग, दि. 07.09.2014 के आधार पर
81. सूचना एवं स्वागत बोर्ड, जयगढ़ पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट, जयगढ़।
82. राजोरा, नेहा, कल्चरल लेण्डस्केप्स ऑफ आम्बेर, पूर्वोक्त, पृ 40 से साभार

अध्याय सप्तम

पश्चिमी राजस्थान के प्रमुख दुर्गों का इतिहास, स्थापत्य एवं जल प्रबन्धन

प्रस्तुत अध्याय में पश्चिमी राजस्थान के दो किलों जोधपुर के मेहरानगढ़ तथा जैसलमेर के सोनारगढ़ के इतिहास, स्थापत्य एवं जल प्रबन्धन का अध्ययन किया गया है।

7.1 मेहरानगढ

रणबंका राठौड़ों की शूरवीरता व प्रजा वत्सलता का यशोगान करता मेहरानगढ़ राजस्थान ही नहीं अपितु भारत के सुदृढ़ दुर्गों में एक माना जाता है। यह मारवाड़ की ह्रदय स्थली तथा वीर दुर्गादास राठौड़ की कर्मभूमि है। प्रायः तीन शताब्दियों तक दुर्ग ने उत्थान व पतन के अनेक उतार–चढ़ाव पार किये हैं।

7.1.1 दुर्ग की स्थापना व नामकरण

राव जोधा ने विक्रम संवत 1515 की ज्येष्ठ सुदी 11 शनिवार (12 मई 1459 ई0) को नींव रखी[1] व जोधपुर शहर बसाया। मारवाड़ की इससे पहले राजधानी मण्डोर थी। ख्यातों के अनुसार जोधा का विचार मसूरिया नामक पर्वत पर दुर्ग निर्माण का था किन्तु पानी की कमी से विचार त्याग दिया। जिस पर्वत पर यह किला बनाया गया है, उसके पास झरने के समीप चिड़ियानाथ योगी नामक सन्त तपस्या करते थे। जब जोधा ने उनसे पहाड़ी पर दुर्ग बनाने व सन्त को कहीं ओर जाने को कहा तो सन्त तीन शाप देकर चला गया। प्रथम किले में सदैव जल की कमी रहेगी, द्वितीय दुर्ग कभी सीधा नहीं बन पायेगा तथा तृतीय कि दादा के जीवीत रहते पोता कभी राजा नहीं बन पायेगा। इस

स्थान पर राव जोधा ने एक कुण्ड तथा शिव मन्दिर बनवा दिया।

किले की नींव में राजाराम नामक एक व्यक्ति को जीवित चुना गया। अनेक इतिहासकारों ने इस तथ्य की पुष्टि की है, जिनमें नैणसी, चन्दन मल नवल, पं0 विश्वेश्वरनाथ रेउ, शक्तिदान कविया प्रमुख हैं।[2] प्राचीन मान्यताओं के अनुसार नींव में नरबलि दिये जाने वाला दुर्ग सदैव अभेद्य, अजेय और बनाने वालों के वंशधरों के अधीन रहता है। उसके परिवार को इस बलिदान के बदले जागीरे दी गयी तथा जिस स्थान पर उसे गाड़ा गया उसके ऊपर खजाना तथा नक्कारखाना महल बनवाया गया।[3] एक अन्य मान्यता के अनुसार चिड़ियानाथ जी के शाप को मिटाने के लिए जोधा ने पुष्करणा ब्राह्मण गणपतदत्त जी को बुलाया।[4] गणपतदत्त जी ने शाप मिटाने के लिए जीवित पुरूष गाड़ने की सलाह दी। गणपतजी के पुत्र मोरध्वज ने प्रसन्नतापूर्वक स्वयं को नींव में गड़वा लिया। इसलिए किले का नाम मोरध्वजगढ़ भी रखा गया।[5]

किले की स्थापना के समय इसका नाम चिन्तामणि गढ़ रखा गया था।[6] मयूराकृति होने के कारण मयूरध्वज गढ़ कहा गया जबकि इसका प्रसिद्ध नाम मेहरानगढ़ है। संस्कृत में मेहर का अर्थ सूर्य होता है तथा राठौड़ सूर्यवंशी थे, अतः सूर्यवंशियों के गढ़ पर मेहरानगढ नाम पड़ा। चन्दनमल नवल[7] के अनुसार मेहरानगढ़ मेहर+आन+गढ़ से बना है, मेहर = सूर्य, आन = मान से यहाँ के शासकों का मान सूर्य के समान दर्शाकर दुर्ग का नाम मेहरानगढ़ रखा गया।

शास्त्रों में वर्णित दुर्ग विधान के अनुसार यह किला पहाड़ी पर बना होने के कारण गिरी दुर्ग, सेना द्वारा रक्षित होने के कारण सैन्य दुर्ग, मरूस्थल के एक भाग में निर्मित होने के कारण धान्वन दुर्ग की कोटि में रखा जा सकता है।

7.1.2 क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति व जलवायु

जोधपुर शहर राजस्थान के पश्चिम भाग में 26.0 से 27.37 उत्तरी अक्षांश एवं 72. 55 से 73.52 पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है।[8] यह लूनी नदी के उत्तर में स्थित है। राव जोधा जी के नाम पर इसे जोधपुर कहा गया। इसके अन्य नाम सूर्य नगरी व ब्लू सिटी है। यह जिला थार के मरूस्थल के हम्माद, रैग व रेतीले रेगिस्तान नामक उपभागों में स्थित है, यह शुष्क क्षेत्र है जहाँ रेत के टीले सामान्यतया देखे जा सकते हैं। गर्मी में लू चलती है और रातें प्रायः ठण्डी व सुखद होती हैं। वर्षा का औसत 31.37 सेमी वार्षिक है। प्रतिकूल जलवायु, अनुपजाऊ मिट्टी व सिंचाई के साधनो के अभाव में कृषि

की दृष्टि से भी यह पिछड़ा क्षेत्र है।

7.1.3 किले का महत्त्व

मेहरानगढ़ दुर्ग मारवाड़ के विशाल राज्य की राजधानी के केन्द्र होने तथा जैसलमेर बीकानेर मार्ग पर स्थित होने से सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था। स्वतंत्रतापूर्व भारत के राज्यों में जम्मू कश्मीर व हैदराबाद के बाद तीसरा बड़ा राज्य था।[9] इसकी सोनारगढ़ से दूरी 265 कि.मी. तथा बीकानेर से दूरी 246 कि.मी. एवं जयपुर से दूरी 353 कि.मी. है।

7.1.4 दुर्ग रचना

शास्त्रों में वर्णित दुर्ग विधान के अनुरूप सभी विशेषताएँ इस दुर्ग में हैं। स्थापत्य की दृष्टि से दुर्ग आदर्श है, जिसमें राजपूत शैली की सुदृढ़ता और भव्यता के साथ मुगल कला के प्रभाव को भी देखा जा सकता है। महलों में उत्कीर्ण भित्ति चित्र, जालियाँ, झरोखे, छज्जे, चित्र आदि तत्कालीन कला के सुन्दर उदाहरण हैं।

400 फीट ऊँची चिड़िया टूंक पहाड़ी पर निर्मित दुर्ग दूर से देखने पर किसी पहाड़ी पर मुकुट के समान दिखाई पड़ता है। यह पहाड़ी अरावली पर्वत श्रेणी के एक विस्तार चोखा डाइजर श्रेणी के अन्तर्गत आती है, यह श्रेणी जल ग्रहण के मामले में बहुत अच्छी है। पश्चिम दिशा में इसकी ऊँचाई सीधी सपाट है जहाँ से किले पर आक्रमण असम्भव था। समुद्र तल से दुर्ग की ऊँचाई 241 मीटर है। दुर्ग का क्षेत्रफल लम्बाई में 500 गज चौड़ाई में 250 गज है।[10] इसका आकार मयूराकृति का है। दुर्ग के निर्माण में बालुकामय लाल पत्थरों का प्रयोग किया गया है। दुर्ग 20 फीट से 120 फीट ऊँचा और 12 से 20 फीट चोडे परकोटे से घिरा है। प्राचीरों ने 1500 फीट लम्बे व 750 फीट चौडे क्षेत्र को घेर रखा है। प्रचीरों के शीर्ष तथा बुर्ज पर तोपों के मोर्चें हैं तथा उनमें की मारें और रंध्र बने हुए हैं इन तोपों की मार में 4 मील लम्बा भू–भाग आता है। दुर्ग के दो बाह्य प्रवेश द्वार हैं उत्तर पूर्व में जयपोल तथा दक्षिण पश्चिम में शहर की तरफ फतेह पोल।

जोधपुर शहर से दुर्ग की ओर चलने पर नागौरी गेट से एक टेढ़ा–मेढ़ा, चढ़ाई युक्त मार्ग दुर्ग के उत्तर–पूर्व में स्थित मुख्य प्रवेश द्वार जयपोल तक ले जाता है।[11] इस द्वार का निर्माण 1808 ई0 में महाराजा मानसिंह ने कराया। इसके गेट ठाकुर अमरसिंह अहमदाबाद से लूटकर लाए थे बाद में मानसिंह ने उन्हें जयपोल में फिट करवाया।[12]

पोल के भीतर दोनों ओर सैनिकों के रहने के लिए साळे बनी हुई हैं। बायीं ओर वीर योद्धा कीरत सिंह की छतरी है। जयपोल से दाहिनी ओर लिफ्ट के सामने महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश है। जिसकी स्थापना महाराजा मानसिंह ने 1805 में की थी, वे स्वयं उच्च कोटि के विद्वान थे। यह एक शोध केन्द्र है जिसमें 5000 से अधिक पाण्डूलिपियाँ तथा ताड़–पत्रों पर हस्तलिखित ग्रन्थ तथा कई आधुनिक पुस्तके हैं। पुस्तक प्रकाश से थोड़ा आगे भूरे खाँ की मजार है। इससे आगे लखना पोल है जिसका निर्माण राव मालदेव ने करवाया था।[13] लखना पोल का दूसरा नाम डेढ कंगूरा पोल भी है। इस पोल के भीतर दायीं ओर ढलान तथा बायीं ओर चढाई युक्त मार्ग है। पश्चिम की ओर ढलान से उतरने पर मार्ग पर दायीं ओर धन्ना–मियां की छतरी है। छतरी के आगे चलने पर बायीं ओर परेड़ मैदान तथा दायीं ओर चौकेलाव महल है। आगे बढ़ने पर भैंरव पोल तथा गोपाल पोल आते हैं। गोपाल पोल का निर्माण राव मालदेव ने करवाया था। गोपाल पोल के नीचे की ओर फतेह पोल है जो दुर्ग का पश्चिमी प्रवेश द्वार है। इसका निर्माण महाराजा अजीत सिंह ने जोधपुर से मुगल प्रभाव समाप्त करने के उपलक्ष में 1707 ई0 में कराया। फतेह पोल पर जयपुर की सेना को असफल होना पड़ा था। लखनापोल से बायीं ओर के चढ़ाई वाले मार्ग पर इमरती पोल आती है, जो राव मालदेव द्वारा बनवायी गयी थी।[14] आगे राव जोधाजी का फालसा तथा उसके सामने शहीद राजा राम का स्मारक है। फालसे के आगे लोहा पोल स्थित है। लोहापोल का अगला भाग 1548 ई0 में राव मालदेव ने बनवाना प्रारम्भ कराया था जिसे महाराजा विजयसिंह ने पूरा कराया। पोल के भीतर बायीं ओर सतियों के हाथों के छापे है तथा थोड़ा आगे पूर्वाभिमुख सूरज पोल है। इसका निर्माण राव सूजा द्वारा प्रारम्भ कराया गया तथा सूर सिंह द्वारा पूर्ण कराया गया। इन द्वारों के भीतर की साळों का निर्माण महाराजा भीमसिंह ने कराया था।

दुर्ग के भीतर चामुण्डा माता व नागणेचिया माता के मन्दिर के बीच सलेम कोट है, जो बन्दी गृह था।[15] चामुण्डा माता मन्दिर दुर्ग के पश्चिमी भाग में स्थित है यह राठौड़ो की इष्ट देवी है, इसकी प्रधान मूर्ति को जोधा मण्डोर दुर्ग से लाये थे।[16] जोधा ने दुर्ग में राठौड़ों की कुलदेवी नागणेचिया माता का मन्दिर भी बनवाया।[17] दुर्ग के भीतर के अन्य आस्था स्थलों में मुरलीमनोहर जी का मन्दिर, आनन्दघन जी का मन्दिर, चिड़ियानाथ जी की धूणी, झरनेश्वर मन्दिर, काला–गोरा भैंरूजी, भैंरू पोल वाले भैंरू जी, चौकेलाव वाले भैंरूजी, शहीद भूरे खाँ का मजार, रावत मल्लिनाथ जी का थान

प्रमुख हैं।

मेहरानगढ़ के शासकों ने अनेक सुन्दर महलों का निर्माण कराया। विद्वान लेखक तिलोत्सन कहते है कि जोधपुर दुर्ग के अधिकांश महलों में से लगभग दो तिहाई जनाना महल हैं।[18]

लखना पोल से ढलान पर उतरने पर आगे चलकर चौकेलाव महल आते हैं। इसका निर्माण महाराजा गजसिंह ने करवाया था।[19] इसमें शासकों की पासवाने (उपपत्नी) रहती थीं। लोहापोल से दायीं ओर सूरज पोल के आगे श्रृंगार चौक है, यहाँ नरेशों का राजतिलक होता था। श्रृंगार चौक से ही राजसी महलों का क्रम प्रारम्भ होता है।

महाराजा गजसिंह ने मार्च 1973 में दुर्ग के महलों को संग्रहालय का रूप देकर 'मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट' की स्थापना की तथा संग्रहालय में पुरानी दुर्लभ वस्तुओं, हाथियों के होदे, अस्त्र–शस्त्र, हस्तलिखित ग्रन्थ, पाण्डूलिपियों, पोशाकों, पालकियों आदि को प्रदर्शित किया। हाथी होदा कक्ष संग्रहालय का प्रथम कक्ष है, इसमें लकड़ी तथा चांदी के बने हुए हौदों पर सोने की झाल चढ़े हुए हाथियों के होदे रखे हुए हैं। पालकी कक्ष में राजपरिवार की स्त्रियों, राजकुमारियों, जागिरदारिणियों, विशिष्ट अतिथियों की महिलाओं आदि के लिए प्रयोग में लायी जाने वाल पालकियाँ रखी हैं। दौलतखाना छह स्तम्भों एवं पाँच दरवाजों से युक्त महल है। भीम प्रबन्ध में इस महल को सुख निवास लिखा गया है।[20] नाम से ही पता चलता है कि कक्ष मेहरानगढ़ का खजाने वाला कक्ष है, पूर्व में यहाँ खजाना रखा जाता था। संग्रहालय के इस भाग में हथियार, दैनिक जीवन में उपयोगी सामग्री, तोप, तलवार, पगड़ी आदि रखी गयी है। जिनमें काँसे से बनी तोप सबसे महत्त्वपूर्ण है।[21] इसे जापान के टोकियो शहर में आयोजित भारत महोत्सव के समय भेजा गया था।[22] यहाँ एक विशाल पारम्परिक तोरण प्रदर्शित है। कक्ष के मध्य में मकराने का सिंहासन बना हुआ है जिसपर महाराजा बैठते थे, इसका नाम इन्द्र झरोखा है।[23] महाराजा तखतसिंह द्वारा बनवायी गयी श्रृंगार चोकी पर राजाओं का राजतिलक होता था। इस प्रकार यह मात्र संग्रहालय का कक्ष न होकर राठौड़ राज्य के 500 वर्षों के इतिहास की झलक प्रस्तोता है। इस महल के पास हवामहल है।

दौलतखाना के आगे कंवरपदे महल है, इसे फतह महल भी कहा जाता है। जोधपुर से मुगल खालसा उठाने के उपलक्ष में महाराजा अजीत सिंह ने बनवाया। राजतिलक से पूर्व सारी तैयारियां इसी कक्ष में होती थी। यह महल युवराज का महल

हुआ करता था।[24] संग्रहालय का सिलेखाना कक्ष शस्त्रागार है। यहाँ प्रदर्शित हथियारों का विवरण हिन्दी व अंग्रेजी में दिया गया है। फूल महल का निर्माण महाराजा अभय सिंह ने करवाया था। महल की छत पर अत्यन्त आकर्षक फूल–पत्तियाँ, राजाओं के चित्र, देवी–देवताओं के चित्र आदि बनाये गये हैं। छत्तीस राग–रागिनियों का चित्रांकन अद्भुत है।[25] अजीत विलास के पास सबसे ऊपरी मंजिल पर महाराजा तखत सिंह जी का शयन कक्ष है जिसे तखत विलास कहते है। कक्ष की सम्पूर्ण दीवारें चित्रों से सुसज्जित है। इनमें ढोला–मारू, लवाजमें के साथ जुलूस, महिषासुर मर्दिनी, नृत्य करती अप्सराएँ, मैदान की ओर कूँच करती सेना, रासलीला का चित्रांकन आकर्षक है। छत पर हाथ से खींचा जाने वाला विशाल पंखा लटका हुआ है। इसमें रंगीन पारदर्शी शीशे लगे हैं जिनसे रंगीन रोशनी कक्ष में पहुँचती थी। तखत विलास महल के समीप ही जापा महल है। यहां रानियों–महारानियों के प्रसव होते थे। महाराजा सरदार सिंह की स्मृति में एक कक्ष का नाम सरदार विलास रखा गया है। तखत विलास से नीचे उतरने पर यह कक्ष आता है, इसके दरवाजों, अलमारियों के पल्लों आदि की लकड़ी पर खुदाई का कलात्मक कार्य किया गया है। इसमें दायीं तरफ लकड़ी का बना मन्दिर है जिस पर सुन्दर नक्काशी की गयी है तथा बायीं तरफ एक सुन्दर नारी की मूर्ति है। नारी अनेक गहने पहने हुए है, जो नारी के शरीर के उन्हीं हिस्सों पर हैं जो एक्यूप्रेशर के बिन्दू हैं।

उम्मेद विलास के निकट शीश महल है। इस पर मुगल प्रभाव दिखाई देता है। इसके निर्माण में 19000 रूपये खर्च हुए थे।[26] महल की छत एवं दीवारों पर चमकीले शीशों को जड़ा गया है। इसमें देवी–देवताओं के चित्र हैं जिन्हें देखकर प्रतीत होता है कि यह पूजा कक्ष रहा होगा। उम्मेद विलास में मारवाड़ी संस्कृति के चित्र प्रदर्शित है। ख्वाबगाह चौक के पश्चिम में एक कक्ष है जिसमें राज्य का दीवान बैठता था। इसमें एक डेस्क पर बही खुली हुई है, पास में कलम दान स्याही की दवात इत्यादि रखे हुए हैं। बिछायत फर्श पर गद्दी, जाजम, मसनद लगी हुई है। महाराजा मानसिंह के काल में इस कक्ष के दरवाजे पर इन्द्रराज सिंघवी की हत्या अमीर खाँ पठान ने करवा दी थी।

संग्रहालय के अगले महल जिसे दीपक महल या ख्वाबगाह महल कहा जाता है, में राजपरिवार का वंशवृक्ष प्रदर्शित है। इसमे सरदार सिंह जी का त्रिआयामी (3डी) चित्र लगा है। इस चित्र की विशेषता है कि चित्र को किसी भी तरफ से देखे जाए तो महाराजा दर्शक की ओर ही देखते नजर आएंगे। यह महाराजा का शयनकक्ष था, इसलिए इसे ख्वाबगाह कहा जाता है। मोती महल का निर्माण सवाई सूरसिंह ने करवाया

था। इसकी छत पर सोने की कलम से कार्य किया गया है। बीच–बीच में शीशों का जड़ाव भी है। इस महल के विशाल कक्ष में आठ पहलू वाला मुगल सिंहासन रखा है। महल के सामने के संगमरमरी चौक में विभिन्न उत्सवों का आयोजन होता था। आगे जनाना चौक से दक्षिण की ओर सुख चौकी है जहाँ महाराजा के पार्थिव शरीर को अन्तिम दर्शन हेतु रखा जाता था। मोती महल के ठीक पहले मोती महल चौक है, इस चौक में होली खेली जाती थी, इसलिए इसे होली चौक भी कहा जाता है। महल के महारानी कक्ष में महारानी का पलंग, पलंग पर बिछावन, ऊपर डोरी वाल पंखा, सिरहाने पीकदान प्रदर्शित हैं। जनानी ड्योढ़ी चार ड्योढ़ियों में बंटा दुर्ग का महत्त्वपूर्ण महल है। यह महल महारानियों का निवास था। नागणेचिया माताजी की ओर की ड्योढ़ी को बाड़ी के महलों के नाम से जाना जाता है। यहाँ से नीचे जाने वाली सीढ़ियाँ मकराना पोल से होते हुए जाती है, जो संग्रहालय से बाहर आने का मार्ग है।[27]

चामुण्डा मन्दिर की ओर जाने वाले मार्ग पर सलेम कोट के आगे बढ़ने पर किले की बुर्जों पर विशाल तोपे रखी हुई हैं जो पर्यटकों को दुर्ग की सामरिक शक्ति से परिचित कराती है। दुर्ग में इनके अतिरिक्त और भी विशाल तोपे हैं, जो पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र हैं। इनमें किलकिला, शम्भूबाण व गजनी खाँ तोप प्रमुख है। किलकिला तोप को महाराजा अजीत सिंह ने अहमदाबाद में बनवाया था जब वे वहाँ के सूबेदार थे, शम्भूबाण तोप महाराजा अभयसिंह ने सरबलन्द खाँ से छीनी थी तथा गजनी खाँ तोप 1607 में गजसिंह ने जालौर विजय द्वारा प्राप्त की थी।

7.1.5 दुर्ग का इतिहास

13 वीं शताब्दी में कन्नौज राजवंश के सीहा जी द्वारिका यात्रा के दौरान पुष्कर रूके।[28] उस समय मेर–मीणों के आक्रमणों से त्रस्त पालीवाल ब्राह्मणों ने राव सीहा से अपनी रक्षा की प्रार्थना की। सीहा ने अपने सैनिकों की सहायता से ब्राह्मणों की रक्षा की तथा आस–पास के गाँवों को भी अपने अधीन कर लिया। यहीं से राजस्थान में राठौड़ों की कीर्ति का प्रारम्भ होता है। सीहा के वंशज पश्चिमी राजस्थान में अपने साम्राज्य का विस्तार करते रहे। इस वंश का राव चूण्डा मारवाड़ का प्रथम बड़ा शासक था। राव चूण्डा के बाद रणमल शासक बना। इसके मेवाड़ के शासकों के साथ अच्छे सम्बन्ध थे, चित्तौड़ के एक षड़यंत्र में इसकी हत्या कर दी गई। राव जोधा से पूर्व के सभी 11 प्रारम्भिक शासक युद्ध भूमि में ही शहीद हुए। प्रारम्भिक राठौड़ो के गौरवपूर्ण कार्यों से उन्हें रणबंका, कबंध तथा रळतळी के स्वामी जैसे विरूद प्रदान किये गये।[29]

रणमल का पुत्र राव जोधा राठौड़ सत्ता का वास्तविक संस्थापक था।[30] जोधा ने ही जोधपुर दुर्ग की स्थापना कर राठौड़ों को सुरक्षित स्थान प्रदान किया। अपने पिता की हत्या का बदला लेने के उद्देश्य से जोधा ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया तथा दुर्ग के द्वार जला दिये।[31] जोधा के एक पुत्र बीका ने बीकानेर की स्थापना की। वे एक महान निर्माता भी थे। जोधपुर दुर्ग, कोड़मदेसर तालाब के साथ उनकी हाड़ी रानी जसमादेवी ने किले के पास रानीसर तालाब बनवाया।

राव जोधा की मृत्यु के बाद सूजा के शासन काल में बीकानेर के संस्थापक शासक राव बीका ने राजचिह्न लेने के लिए जोधपुर पर आक्रमण कर दिया। सरदारों तथा माता जसमादे द्वारा मेल मिलाप करवाये जाने पर बीका वापस लौट गया। राव गंगा ने बाबर व राणा सांगा के मध्य हुए युद्ध में अपने चार हजार सैनिक सांगा की सहायता हेतु भेजे।

मालदेव इस वंश का महत्त्वपूर्ण शासक था। उसने अनेक विजयों से साम्राज्य का विस्तार किया, गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह से मारवाड़ की रक्षा की, सांगा के पुत्र उदयसिंह को बनवीर के विरूद्ध सहायता देकर चित्तौड़ के सिंहासन पर बिठाया। इनका विवाह जैसलमेर की राजकुमारी उम्मादे से हुआ था जो इतिहास में रूठी महारानी के नाम से प्रसिद्ध है। इनके राज्यकाल में दिल्ली के बादशाह शेरशाह सूरी ने 1544 ई0 में जोधपुर पर आक्रमण कर दिया। गिरी–सुमेल के युद्ध में मारवाड़ के वीरों जैता, कूंपा, अखैराज आदि के कारण शेरशाह को काफी परेशानी हुई। इस पर शेरशाह ने कहा था ''मुट्ठी भर बाजरे के लिए मैं हिन्दुस्तान की बादशाहत खो देता।''[32] शेरशाह ने विजय पश्चात् किले में एक मस्जिद बनवाई। बाद में शेरशाह की मृत्यु के बाद मालदेव ने दुर्ग पुनः हस्तगत कर लिया।

मालदेव के पुत्र राव चन्द्रसेन ने अकबर के समय मुगल आधिपत्य कभी स्वीकार नहीं किया। इसीलिए उनको मारवाड़ का प्रताप कहा जाता है। इनके समय 1565 में मुगल सूबेदार हसन कुली खाँ ने किले को जीत लिया। तदुपरान्त मुगल आधिपत्य स्वीकार कर लेने पर यह दुर्ग मोटा राजा उदय सिंह को जागीर के रूप में मिला। उसने अपनी पुत्री जगतगुसाईं का विवाह अकबर के पुत्र जहाँगीर के साथ कराया। मोटा राजा के पुत्र सूरसिंह ने मुगल साम्राज्य विस्तार में अपनी वीरता प्रदर्शित की इससे प्रसन्न होकर अकबर ने उसे सवाई की उपाधि प्रदान की। महाराजा जसवंत सिंह जोधपुर के महान शासक थे। उन्होंने मुगल उत्तराधिकार संघर्ष में धरमत के युद्ध में

औरंगजेब के विरूद्ध दारा का साथ दिया। 1674 ई0 में महाराजा जसवन्त सिंह की काबूल में जमरूद नामक स्थान पर मृत्यु हो गयी। इस पर औरंगजेब ने ''आज कुफ्र का दरवाजा टूट गया'' कहकर जोधपुर पर मुगल खालसा बिठा दिया साथ ही जसवंत सिंह के अल्पव्यस्क पुत्र अजीत सिंह को दिल्ली में कैद कर लिया। जोधपुर के सेनापति वीर दुर्गादास राठौड़ ने अजीत सिंह को मुगल कैद से छुड़ाकर मारवाड़ पहुँचाया।[33] 1707 ई0 में औरंगजेब की मृत्यु के बाद अजीत सिंह ने किला पुनः हस्तगत कर लिया। महाराजा अभयसिंह ने 1740 ई0 में बीकानेर का जूनागढ़ दुर्ग घेर लिया। बीकानेर के शासक जोरावर सिंह ने जयपुर नरेश सवाई जयसिंह से सहायता मांगी। सवाई जयसिंह ने मेहरानगढ़ पर घेरा डाल दिया फलतः बाध्य होकर अभयसिंह को बीकानेर का घेरा उठाना पड़ा।[34]

महाराजा मानसिंह के समय उदयपुर की राजकुमारी कृष्णा कुमारी के विवाह सम्बन्धी विवाद व मृत्यु के कारण जयपुर व जोधपुर के मध्य संघर्ष उत्पन्न हो गया। अतः जयपुर के महाराजा जगतसिंह ने मेहरानगढ़ पर घेरा डाल दिया। मानसिंह के शासनकाल में मारवाड़ में साहित्य, चित्रकला, संगीतकला व धर्म के क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास हुआ। महाराजा तखतसिंह ने कन्या वध पर प्रतिबन्ध लगाया। इनके काल में अनेक निर्माण हुए जिनमें रानीसर, पद्मसर, गुलाब सागर, फतेह सागर के पट्टे तथा उनकी नहरों का विस्तार आदि प्रमुख हैं।

महाराजा उम्मेद सिंह को आधुनिक मारवाड़ का निर्माता, मारवाड़ का शाहजहाँ जैसी अनेक उपाधियाँ दी गई हैं। इनके द्वारा बनवाये गए उम्मेद भवन पैलेस को मारवाड़ का ताजमहल कहा जाता है।

7.1.6 दुर्ग के जल स्रोत

दुर्ग जिस पहाड़ी पर बनाया गया है वह अरावली पर्वत श्रेणी के एक विस्तार चोखा डाइजर श्रेणी के अन्तर्गत आती है। यह श्रेणी जल ग्रहण के मामले में बहुत अच्छी है। इस पहाड़ी का पत्थर बालुकामय (सेण्डस्टोन) है। इसमें छोटे–छोटे रंध्र होते हैं जिनसे जल सीरों के रूप में प्रवाहित हो सकता है। अच्छा भूमिगत जल प्रवाह जल को वाष्पीकृत होने से बचाने तथा भूमि में पहुँचाने में मदद करता है।[35]

दुर्ग के जल स्रोत बावड़ी, कुँए, सरोवरों का निर्माण ऐसे स्थानों पर किया गया जहाँ जल संग्रहण का प्राकृतिक आगोर है। जिससे बारिश का पानी नहरों, धोरों व

ढलान से बहकर एकत्रित हो जाता है। दुर्ग की दीवारें, परकोटा इस तरह से बनाए गए थे कि भूमिगत पानी के प्रवाह में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो सके। जल प्रबन्धन की इस तकनीक से पर्याप्त मात्रा में जल की प्राप्ति हो जाती थी, यह यहाँ की अनूठी विशेषता है।[36]

किले में जल प्राप्ति का मुख्य स्रोत वर्षा जल था। वर्षा जल को संग्रहित करने के अधिकतम प्रयास किये गये थे। इस हेतु एक नियत प्रक्रिया थी जिसमें वर्षा जल को एकत्रित करना, संग्रहित करना तथा आवश्यकतानुसार विभिन्न स्थानों तक पहुँचाना शामिल था। यह प्राचीन भारतीय ज्ञान–विज्ञान व पराम्परा पर आधारित थी।

दुर्ग में जल प्रबन्धन दो भागों में बँटा हुआ था। प्रथम वर्षा जल संग्रहण (रेनवाटर हारवेस्टिंग) प्रणाली से महलों के कृत्रिम टांकों में पानी एकत्रित करना। द्वितीय रानीसर व पद्मसर का पानी जल उत्थान प्रणाली (वाटर लिफ्ट टेक्नीक) से किले में पहुँचाना। राजपरिवार की जल सम्बन्धी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु दुर्ग के परकोटे के भीतर ही जल स्रोत विकसित किये गये।

7.1.6.1 रानीसर तालाब

दुर्ग की पहाड़ी की तलहटी में चौकेलाव बाग के समीप परकोटे के भीतर एक विशाल ऐतिहासिक तालाब है। जो रानीसर के नाम से प्रसिद्ध है। यह तालाब दुर्ग में जल प्राप्ति का प्रमुख स्रोत होने के साथ–साथ पुराने शहर की भूजल व्यवस्था को बनाये रखने का एक मात्र स्थान भी है जो फतेहपोल से जालौरी गेट तक पड़ने वाले सभी कुँओं, बावड़ियों, हेण्डपम्पों का इन्द्रदेवता है। दुर्ग निर्माता राव जोधा की हाड़ी रानी जसमोद ने वि.सं. 1516 में पंचोली सदासुख झाबरिया के हस्ते रानीसर का निर्माण कराया। वह बून्दी के ग्राम नबर–दोतरा के हाड़ा देवादास की पुत्री थी। हाड़ी रानी ने रानीसर बनवाने के लिए 20,251/– रूपये खर्च किये। उन्होंने माली बेरा का निर्माण भी करवाया था।

संवत् पनरसौ सोलोतरे, समय माल असंक्ख।
हाडी रान सर–कियो, जाणै लोग खलक्क।।

बाद में राव मालदेव ने वि.स. 1612 में दुर्ग का विस्तार कराते समय रानीसर पर कोट एवं दरवाजा बनवाकर रानीसर एवं पद्मसर को दुर्ग की प्राचीरों के भीतर ले लिया। इस कार्य में 1,25,000/– रूपये व्यय हुए। नगर के परकोटे के कमठे के अधूरे

रहने पर श्री बखतसिंह जी ने इसे 9 लाख रूपये व्यय कर पूर्ण करवाया। पहले रानीसर व पद्मसर का पानी केवल दुर्ग निवासी ही उपयोग लेते थे किन्तु 1915 में महाराजा तखत सिंह जी ने आखातीज पर आम जनता को भी इसके उपयोग की अनुमति दे दी।[37]

इस तालाब का निर्माण प्राकृतिक चट्टानों के बीच के गर्त में किया गया है। जल प्राप्ति हेतु इसे उत्तर तथा पश्चिम की ओर से खुला रखा गया है, इन दिशाओं की पहाड़ी ढलानों से पानी बहकर रानीसर में आता है। तालाब की भराव क्षमता को बढ़ाने एवं मजबूती प्रदान करने हेतु इसे छोटे एनीकट, लघु बाँध या चेकडेम का आकार देकर इसकी पूर्वी व दक्षिणी दिशा को मजबूत दीवारों से बाँधा गया। यह तालाब दो भागों में बँटा हुआ है। एक भाग जूना (पुराना) तथा दूसरा नवा (नया) रानीसर कहलाता है। जूना रानीसर अधिक जल को नहीं रोक पाता, इसके पूर्ण भराव क्षमता से भर जाने के बाद पानी नवा रानीसर में आ जाता है। नवा रानीसर की भराव क्षमता काफी अधिक है।

दुर्ग की पश्चिमी व उत्तरी ढलान रानीसर के लिए बेहतरीन प्राकृतिक आगोर का कार्य करती थी। रानीसर का जल ग्रहण आगोर (वाटर केचमेन्ट एरिया) काफी बड़ा है। बारिश के दिनों में पानी की आवक इतनी होती है कि यह तालाब विशाल होते हुए भी आसानी से भर जाता है। इसके पूर्ण भराव पश्चात् छलकने पर पानी (ओवरफ्लो वाटर) पदमसर में चला जाता है। ज्ञातव्य है कि रानीसर व पदमसर का जलग्रहण आगोर एक ही है। इस सरोवर का तटबन्ध अधिक ऊँचा नहीं है जिससे कम बारिश में ही यह भर जाता है। जिससे प्रसिद्ध हुआ कि

रानीसर पद्मसर हुयग्या ओटे व्यापारी हुयग्या टोटे[38]

इनके ओटने का अर्थ है इनका छलकना। इनके छलकने से निकलने वाला अतिरिक्त पानी फतेहपोल से आगे वाल सड़क से जालोरी गेट की ओर एक 'बाळे' के रूप में बहने लगता था। जिस कारण सड़को पर पानी भर जाता था तथा आवागमन सहित व्यापार प्रभावित होता था, जिससे यह कहावत प्रचलित हुई। इनके छलकने को जोधपुर निवासी बड़ा महत्त्वपूर्ण व शुभ मानते है, ज्योतिषविद् भी इसी आधार पर अगले वर्ष की भविष्यवाणी किया करते है।

तालाब पर एक घाट का निर्माण भी किया गया है। जो पानी भरने व अतिरिक्त पानी के निकास मार्ग पर नहाने के लिए काम आता है। यह 8 से 10 फीट चौड़ा तथा

20 फीट ऊँचा है। इसमें पानी के तल तक उतरने के लिए दीवार से सटी हुई सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। ये सीढ़ियाँ बावड़ी की सीढ़ियों के समान कई श्रेणियों में बंटी है जिससे अधिक से अधिक लोग इनका उपयोग कर सके। घाट से तालाब के किनारों पर चलने हेतु एक पक्का व चौड़ा पैदल मार्ग बनाया गया है। इस मार्ग का उपयोग रानीसर की सुरक्षा, अवांछित व्यक्तियों को तालाब तक आने से रोकने व समय–समय पर सफाई से निकलने वाले कचरे को अन्यत्र ले जाने हेतु किया जाता है। घाट की पानी रोकने वाली दीवारें दायीं तरफ बनी हुई हैं, जो इस प्रकार निर्मित हैं कि पदमसर में अधिकतम पानी जा सके। पानी का दबाव सहने के लिए तटबन्ध व घाट की दीवारें डबल लेयर में बनी हुई हैं।

इसका जल ग्रहण क्षेत्र 2 कि0मी0 लम्बा है जो आस–पास की 11 से.मी. बारिश का जल अपने में समेट सकता है। इसकी गहराई 16 मीटर है।[39] जलग्रहण क्षेत्र को बढ़ाने के लिए इससे कुछ दूरी पर स्थित जल स्रोतों यथा रावती, कागा, कागरी एवं सूरसागर के जल ग्रहण क्षेत्र से भी कुछ नहरें (यथा हाथी नहर) रानीसर तक खोदी गयी थीं। जिससे रानीसर का जलग्रहण क्षेत्र बढ़ गया था।[40]

इसके भीतर जल प्राप्ति हेतु पाँच बेरियां खोदी गयी थीं। किसी जलाशय के भीतर बेरियां एक पराम्परागत सिद्धान्त के तहत खोदी जाती है, जिसे आधुनिक भूवैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं। इसके अनुसार किसी जलाशय का पानी सूख जाए या कम अथवा गंदला हो जाए तब वह अनुपयोगी हो जाता है किन्तु यदि उसके पेटे में बेरियां खोद दी जाए तो जलाशय की भूमिगत सीरों से बेरियों में पानी आता रहता है, जो स्वच्छ व उपयोगी होता है। इन बेरियों में से तीन बेरियां रानीसर में पानी कम होने पर आसानी से दिखाई दे जाती है। इनके नाम क्रमशः शक्कर बेरी (केसर बेरी), जिया बेरी तथा पाट बेरी है। इनमें से शक्कर बेरी का पानी बर्फ की तरह साफ व ठण्डा रहता था तथा अपने वर्चस्व काल में इसका पानी पम्प लगाकर किले में भेजा जाता था। 2003 में मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट द्वारा रानीसर की सफाई करायी गई तब उसके पेटे में से दो बेरियाँ और निकली। जोधपुर राजमाता साहिबा ने उनका नाम क्रमशः गज बेरी तथा शिव बेरी रखा।

1807 ई0 में पोकरन के ठा0 सवाई सिंह चांपावत के बहकावे में आकर जयपुर के राजा जगत सिंह एवं बीकानेर के राजा सूरतसिंह तथा अमीर खाँ[41] की संयुक्त सेना ने जोधपुर पर आक्रमण कर दिया। इस सेना में मराठे व पिण्डारी भी थे, जिनकी संख्या

3 लाख थी।[42] उनका यह विचार था कि रानीसर पर अधिकार करने से किले को आसानी से जीत लिया जायेगा। इस हेतु उन्होंने तीन मोर्चे लगाऐ, प्रथम मोर्चा सिंघोरियों की भाखरी पर, दूसरा भागी पोल के समीप ब्रह्मपुरी पर तथा तीसरा फतहपोल के पास व्रजलंका पर। उनकी सेना की एक टुकड़ी मदोन्मत हाथी को लिए हुए रानीसर पोल की ओर अग्रसर हुई। वे पोल के किवाड़ों को हाथी की टक्कर से तोड़ना चाहते ही थे कि इतने में रानीसर के बुर्ज पर से एक कड़ाबीन छूटी और हाथी को निशाना बना गयी। इधर कीरत सिंह सोढ़ा[43] ने 'लोहा पोल' पर से तोप दाग कर सिंघोरियों की भांखरी का मोर्चा तोड़ दिया। गढ़ की पश्चिमी बुर्ज की बिछुबाण तोप से 'भागीपोल' का मोर्चा बिखर गया और उबलता हुआ तेल डालने से व्रजलंका में स्थित आक्रमणकारी भाग गये। इस प्रकार शत्रुओं के तीनों मोर्चे निष्फल हुए तथा महाराजा मानसिंह की विजय हुई। रानीसर के मोर्चे पर शहीद होने वाले व्यक्तियों के नामों का शिलालेख इस प्रकार है—

राजाजी बहादुर सिंह वख्तावर सिंघदानसिंघोत खांप तुंवर राजस्थान ....(नाम)........ राणीसर रा मोरचा में काम आया तीण ऊपर छतरी कराय ने प्रतिष्ठा कराई।[44]

श्रीमाली ब्राह्मणियाँ इस तालाब के तट पर स्थित वट के नीचे ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को वट सावित्रि का उत्सव बड़े समारोह के साथ मनाती आ रही हैं। उस समय भरा हुआ तालाब समुद्र के समान शोभा देता है। इसके उत्तरी भाग में मखतुल जी व्यास का शिव मन्दिर है जहाँ पर पहले कदम्ब का वृक्ष हुआ करता था।

7.1.6.2 पदमसर तालाब

पदमसर तालाब रानीसर से जुड़ा हुआ है तथा किले सहित जोधपुर शहर का रानीसर के बाद दूसरा मुख्य जल स्रोत है। इसके निर्माण को लेकर कई मत प्रचलित है। प्रथम मतानुसार चित्तौड़ आक्रमण से लौटते हुए राव जोधा मेवाड़ के सेठ पद्मचंद को पकड़ लाए।[45] इस सेठ को बहुत सा धन वसूल कर छोड़ा, यह धन मेहरानगढ़ निर्माण में प्रयुक्त किया गया। इसी कारण सेठ की स्मृति में किले के पास पदमसर बनवाया।[46] द्वितीय मतानुसार राव गांगा की देवड़ी रानी पद्मावती ने पदमसर तालाब मेवाड़ के सेठ पद्मचन्द के रूपयों से निर्मित कराया था जिसे राव जोधा ने मेवाड़ पर आक्रमण के समय पकड़ा था। सम्भव है रानी पद्मावती ने तालाब के घाट आदि भी बनवाये हो। तृतीय मतानुसार किसी ख्यात में इस तालाब का निर्माण महाराजा सांगा प्रथम की पुत्री पद्मावती द्वारा कराने का उल्लेख है। सम्भव है उसने भी उसमें कुछ

सुधार किए हो।[47] चतुर्थ मतानुसार इस जलाशय का निर्माण वि.स. 1577 में राव मालदेव के समय हुआ हुआ, मालदेव के काल में अनेक जलाशय बनाए गए जिनमें से पद्मसर भी एक है। पाँचवें मत के अनुसार मेवाड़ का सेठ पद्माशाह एक छोटे से बाँध के रूप मे पदमसर तालाब का निर्माण करवाकर मेवाड़ चला गया। बाद में जोधपुर गढ़ के बन जाने पर पद्माशाह जब अपने घर गया तो उसकी माता ने कहा कि गढ़ तो राजा ने तथा तालाब तुमने बनवाया किन्तु तुमने उसमें अपना नाम अंकित नहीं कराया। यह सुनकर पद्माशाह वापस मारवाड़ आया तथा भूरी भाखर की गाल में नीचे की ओर एक छोटा सा बाँध और बनवाया। इस प्रकार पद्मसर का निर्माता पदमाशाह ही था। छठे मतानुसार राव गंगा जी की दूसरी रानी महाराणा सांगा की पुत्री उत्तमदे थी जिनके पीहर का नाम पद्मावती था उसने इस तालाब को पूर्णरूप से बनवाया था, इसी के नाम से तालाब को पद्मसर कहा गया। तालाब के निर्माण में इकतालीस हजार रूपये व्यय हुए थे।

राव गंगा जी की एक अन्य रानी देवड़ी जो सिरोही के राव जगमाल की पुत्री थी, ने तालाब का विस्तार कराया। महाराजा बखत सिंह जी ने तालाब के पट्टे के ऊपर की सात पेडियाँ एवं श्रीमालियों के थाले की ओर का गौ घाट बनाकर श्रीमाली ब्राह्मणों को अर्पण कर दिया। इस तालाब को भरा हुआ देखकर बखतसिंह जी ने एक दोहा कहा था –

'वखता कर सके तो कर, सरवर भरियो नीर।
हंसो फिर नहि आवसी, इण सरवर री तीर।।

अर्थात् ''हे बखत सिंह, यह मारवाड़ राज्य समुद्र रूपी जल से भरा हुआ है। यदि प्रजा की भलाई कर सके तो कर ले अन्यथा तू फिर से इस राज्य का राजा नहीं होगा।''

तालाब के किनारें पर श्रीमाली ब्राह्मणों के अनेक मन्दिर बने हुए हैं, इस समाज के ब्राह्मण ही इस तालाब के किनारे धार्मिक अनुष्ठान, संस्कार, कर्मकाण्ड सहित पूजा पाठ कराते हैं।

इस तालाब के पश्चिम् की ओर एक नाला तथा भीतर महालक्ष्मी जी का एक मन्दिर है। पूर्व की ओर रानीसर के ओटे का द्वार है। वर्षा काल में इस ओटे से गिरता जल व इसका घोष किसी हिमनदी की धारा के वेग का अहसास कराते हैं। यहाँ पर

एक अश्वत्थ का थान है जिस पर शिव मूर्ति स्थापित है। दक्षिण की ओर तालाब के वक्षस्थल पर महाराजा श्री मानसिंह की बड़ी रानी भटियाणी जी रायकंवर (ग्राम खारिया के भाटी सूरजमल भगवान दासोत की पुत्री) ने नाथ सम्प्रदाय का मन्दिर बनाकर उसे तालाब के लिए 'आडा होड़ा' कर दिया।[48]

7.1.6.3 बसन्त सागर तालाब

राठौड़ों की कुलदेवी चामुण्डा माता के मन्दिर की ओर चलने पर किले की प्राचीर के समीप के मार्ग पर दायीं ओर एक तालाब बना हुआ है। यह तालाब बसन्त सागर कहलाता है। मुहंता नैणसी की 'मारवाड़ परगना री विगत' में उल्लेख है कि एक तालाब किले के भीतर भी है, यह तालाब बसन्त सागर ही है। इसका निर्माण महाराजा जसवंत सिंह के समय नाजर बसन्त ने वि.स. 1716 में करवाया था। तालाब तक जाने के लिए चामुण्डा माता मन्दिर के सामने से सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इसके किनारों को घाटों व सीढ़ियों से बाँधा गया है, समीप बारादरी भी है।

7.1.6.4 इमरती बावड़ी

यह बावड़ी दुर्ग के इमरतिया पोल दरवाजे के पास पहाड़ी के मूल में बनी है, इसीलिए इसे इमरत बावड़ी कहा जाता है। इसे राव मालदेव द्वारा बनवाया गया था। वर्तमान में यह बावड़ी मिट्टी व कचरे से भरी हुई है तथा आसानी से नजर भी नहीं आती है।

7.1.6.5 पुरानी बावड़ी

किले में सवाई राजा सूरसिंह जी द्वारा निर्मित एक बावड़ी का सन्दर्भ मिलता है किन्तु वर्तमान मे यह बावड़ी अस्तित्व में नहीं है। इसके अवशेष के चिन्ह आज भी नागणेच्या मन्दिर के पिछवाड़े की दीवार पर देखे जा सकते है। बावड़ी से पानी खींचने के लिए उपयोग किया जाने वाला घड़ाईदार सुन्दर पत्थर आज भी सुरक्षित हैं जो वर्तमान में किले के भीतर स्थित जनरल स्टोर के सामने देखा जा सकता है। कई बार विदेशी पर्यटक उन पत्थरों को बड़ी कौतुहल भरी नजर से देखते हुए उनके उपयोग के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करते हैं।[49] इन अवशेषों की पुष्टी कुवरं महेन्द्र सिंह नगर ने की है। इसके पास बने महलों के नाम इस बावड़ी के कारण बाड़ी के महल पड़ा।[50]

7.1.6.6 चौकेलाव कुँआ

चौकेलाव महल के पीछे की ओर चौकेलाव बाग में एक विशाल, चौड़ा और

वर्गाकार गहरा कुँआ अपने आप में अद्भुत है। इसका निर्माण वि.सं. 1786 में महाराजा अभयसिंह जी ने करवाया था। इस कुँए के निर्माण सम्बन्धी एक कहानी प्रचलित है। कुँआ निर्माण के समय इसकी आधी खुदाई हो जाने के बाद मजदूरों ने कुँए में एक विषेले सर्प को घूमते हुए देखा। साँप पकड़ने में दक्ष एक जोगी को बुलाया गया, उसने सर्प पकड़ तो लिया किन्तु उसके विष से उसका शरीर नीला पड़ने लगा। महाराजा ने जब उससे उसकी अन्तिम इच्छा पूछी तो जोगी ने कहा 'महाराज जीवता आपरा अर मूंवा म्हारा' अर्थात जीवित प्रजा पर आपका अधिकार और मरने के बाद मेरे वंशजो का। तब से शमशान तक पहुँचने वाली सभी वस्तुओं पर जोगियों का ही अधिकार होता है।

इस कुँए की शिराऐं रानीसर से जुड़ी हुई हैं जिस कारण कुँए में सदैव विशाल जलभण्डार उपलब्ध रहता हैं। अपने वर्चस्व काल में इस कुँए का पानी किले के भीतर जल उत्थान प्रणाली (वाटर लिफ्ट टेक्नोलोजी) द्वारा पहुँचाया जाता था।

चौकेलाव कुँए की बनावट और निर्माण व्यवस्था से यह समझ में आता है कि इस कुँए से पानी निकालने के लिए पग–पावड़ियों की व्यवस्था रही होगी और बैलों के द्वारा कुँए से पारस्परिक लाव–चरस व सूंडियों से पानी खींचा जाता होगा। इस कुँए का पानी खींचने के लिए कभी अरहट नहीं लगाया गया होगा, ऐसा आभास होता है। यह कुँआ लाल पत्थरों पर प्लास्टर कर मजबूती से चिना गया है, इसकी मुण्डेर लाल पत्थरों से बने छोटे–छोटे खम्भों से निर्मित है, मुण्डेर के एक किनारे पर मजबूत ढाना है तथा लाव–चड़स आदि प्रयोग हेतु कुंड़ियाँ भी बनी हुई हैं। इसमें उतरने के लिए लोहे की सीढी भी लगी हुई है, जो आधुनिक है। कुँए के समीप ही एक टेंक बना हुआ है जिसमें वर्तमान में कमल के फूल खिलते है। इसके ढाने से पक्की बनी छोटी नालियाँ व नहरे निकली हुई हैं जो चौकेलाव बाग में जल वितरण करती हैं।[51]

7.1.6.7 नौरसवा कुँआ या पतालिया बेरा

चिड़ियानाथ जी की धूणी की ओर जाने वाले मार्ग पर पहाड़ी से सटा हुआ एक गहरा व पुराना कुँआ है। इस कुँए का निर्माण राव मालदेव जी ने करवाया था। वर्तमान में यह कुँआ अधिक गहरा नजर आने के कारण ''पताळिया बैरा'' के नाम से ही जाना जाता है। इस कुँए के पास ही पतालिया महादेव जी का मन्दिर भी है सम्भव है कि इस कुँए के नाम पर महादेव जी के मन्दिर का नाम पतालिया पड़ा। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि इस कुँए से नौ प्राकृतिक जलशिराऐं जुड़ी हुई थी इसलिए इसका नाम ''नौरसवा बैरा'' रखा गया था। मुहणोत नैणसी ने इसका नाम 'मेलियाव' बताया है[52] श्री

वाई.डी. सिंह जी ने भी इसकी पुष्टि की है। राव मालदेव के जमाने से इस कुँए का पानी कुछ खारापन लिए हुए है तथा मुख्यतः सैनिकों व घोड़ों के पीने के काम आता था साथ ही दुर्ग में पेयजल हेतु लिफ्ट भी किया जाता था।

आज भी यह कुँआ लाल पत्थरों से आवृत अन्दर तक मजबूती से चुना हुआ है। वर्तमान में काम में नहीं लिए जाने के कारण यह असंख्य चमकादड़ों से भरा हुआ है। यदि इस कुँए की पुनः सफाई करवायी जाऐ तो दुर्ग को अतिरिक्त स्वच्छ जल इस कुँए से भी प्राप्त हो सकता है। इसकी सफाई का कार्य विशेषज्ञों की सलाह से सुरक्षा के पूरे प्रबन्ध करके ही कराया जाना चाहिए।

7.1.7 जल संग्रहण व्यवस्था

किले में जल संग्रहण हेतु कुण्ड, टांके, माटे, पाषाण टंकियाँ तथा विभिन्न पात्र प्रयुक्त किये गये थे। दुर्ग के परकोटे के भीतर अनेक छोटे–बड़े टांके बने हुए हैं। उनमें से अधिकांश नष्ट होकर इतिहास के पन्नों में ही सिमट कर रह गये हैं। यथा

7.1.7.1 झरनेश्वर महादेव के समीप का कुण्ड

चिड़ियानाथ जी की धूणी एवं झरनेश्वर महादेवजी के मन्दिर के पास एक छोटा कुण्ड है, जिसका निर्माण चिड़ियानाथ जी के आश्रम के पास वाले झरने का पानी एकत्रित करने एवं पूजा–अर्चना करने के लिए किया जाता था। वर्तमान में भी महादेव जी की पूजा के लिए इसी का जल काम में लिया जाता है।[53]

7.1.7.2 झरनेश्वर महादेव जी का टांका

झरनेश्वर महादेव जी की गुफा के सामने कुण्ड के समीप एक ऐतिहासिक टांका है। इस टांके का निर्माण राव जोधा ने करवाया था ताकि चिड़ियानाथ जी के आश्रम के पास वाले झरने के पानी को सुरक्षित रखा जा सके। यह झरना प्राकृतिक है जो दुर्ग की पचेटिया पहाड़ी से पवित्र शिवलिंग पर गिरता है, इसके जल को एक छोटी नहर या नाली द्वारा इस टांके में पहुँचा दिया जाता था। टांके में समीप की पहाड़ियों से बहकर आने वाला वर्षा जल भी संग्रहित होता था। इसके जल का उपयोग महादेव जी की पूजा–अर्चना हेतु किया जाता था। इस जल को किसी के द्वारा लांघना धर्मसंगत नहीं होता इसलिए इस खुली नाली को महाराजा गजसिंह ने ढँकवाया।

7.1.7.3 पतालिया टांका

पतालिया कुँए के पास राव मालदेव द्वारा निर्मित एक टांका स्थित था, इसे पतालिया कुँए के समीप होने के कारण पतालिया टांका कहा जाने लगा। वर्तमान में इस टांके के कोई भी अवशेष नजर नहीं आते हैं। सन् 1914 में जब बारूद के गोदाम में विस्फोट हुआ तब संभव है यह टांका भी इस विस्फोट में नष्ट हो गया होगा। इसकी बनावट किसी सीढ़ीदार कुँए या बावड़ी के समान थी। इस टांके का ऐतिहासिक नाम ''मेवावाव'' अर्थात मेवे के समान मीठे पानी की बावड़ी था क्योंकि यह टांका विशाल रहा होगा व उसमें अन्दर जाने के लिए सीढ़ीयाँ भी रही होगी इसलिए इसका नाम मेवावाव रखा गया।

7.1.7.4 बाबा आत्माराम जी का टांका

महाराजा विजयसिंह जी ने अपने गुरू आत्माराम जी[54] की स्मृति में सं. 1816 में इसका निर्माण करवाया था तथा संत आत्माराम जी का स्वर्गवास भी इसके आसपास हुआ था अतः इसका नाम बाबा आत्माराम जी का टांका पड़ा। यह टांका फतेह महल के ठीक नीचे स्थित था। वर्तमान में यह पूर्णतः नष्ट हो चुका है किन्तु इस टांके का अस्तित्व महाराजा तख्तसिंह जी के शासनकाल तक सुरक्षित था।[55] इसका सन्दर्भ यह मिलता है कि एक समय जब नागौरी गेट के पास बाजार में आग लगी थी तो उसे बुझाने के लिए इस टांके का पानी भी काम में लिया गया था। बाबा आत्माराम जी की छोटी छतरी जैसलमेर के घड़े हुए पत्थर से बड़ी कलात्मकता पूर्वक बनाई हुई है। 1985 तक वह फतहमहल के बाहर वाले पट्ठे पर लगी हुई थी। महाराजा गजसिंह जी की आज्ञा से ठेकेदार गोकुल जी व उनके पुत्र अशोक माकड़ की देखरेख में संत चिड़ियानाथ जी की धूणी के पास स्थित चट्टान पर उसका स्थानान्तरण किया गया। उन्होंने इस छतरी को चिड़ियानाथ जी की धूणी के पास स्थापित करने की आज्ञा दी थी ताकि उस स्थान की कलात्मक शोभा बढ़े परन्तु त्रुटिवश उसे गलत स्थान पर स्थापित कर दिया गया था जिसे बाद में बदला नहीं गया। फतहमहल में समय–समय पर फेरबदल किये जाने से ही इसका अस्तित्व समाप्त हुआ होगा।[56]

7.1.7.5 फतहमहल का टांका

महराजा अभय सिंह ने फतहमहल के नीचे अभेशाही बुर्जों का निर्माण कराया। बुर्ज निर्माण के समय ही फतहमहल के नीचे एक टांका भी बनवाया जिसे फतहमहल का

टांका कहा जाता है। इस टांके का जीर्णोद्धार महाराजा मानसिंह ने करवाया। फतहमहल के नीचे खासा रसोड़ा हुआ करता था, संभव है कि इस टांके का जल रसोड़े में उपयोग लिया जाता होगा। वर्तमान में यह टांका पूरी तरह से नष्ट हो चुका है तथा इसके कोई अवशेष भी नजर नहीं आते है।

7.1.7.6 जनानी ड्योढ़ी का टांका

जनानी ड्योढ़ी का अर्थ है राजपरिवार की महिलाओं का व्यक्तिगत महल। इन महलों के समीप परकोटे से घिरा एक विशाल चौक है जिस पर कोई निर्माण नहीं किया गया है। इसके नीचे पारम्परिक तरीकों से निर्मित एक सुदृढ़ एवं विशाल टांका है। टांके में नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ तथा हवा आने के लिए झरोखे बने हैं। टांके की छत के ऊपर या मैदान के फर्श पर पक्का प्लास्टर किया गया है। जनाना महलों की छत पर तथा चौक पर बरसने वाले पानी की एक–एक बून्द को टांके में पहुँचाने की व्यवस्था की गयी थी। छत का ढलान इस प्रकार था कि पानी पूरी तरह से टांके के भीतर पहुँचे। टांके में जल ले जाने वाली समस्त नालियाँ जालियों से ढँकी हुई है जिससे टांके में किसी प्रकार की गन्दगी नहीं पहुँच सके। बताया जाता है कि बारिश के दिनों में पहली दो या तीन बारिश के पानी टांके के भीतर नहीं जाने दिया जाता था ताकि शुरूआती बरसात आगोर को धो कर स्वच्छ कर दे तथा समस्त गन्दगी बह कर बाहर चली जाए। टांके की सीढ़ियों की जालियों पर ताला लगाया हुआ है ताकि कोई अवांछित व्यक्ति इसमें बिना अनुमति प्रवेश न कर सके। सीढ़ियों से टांके में उतरने पर अन्दर से टांके की विशालता नजर आती है, इसकी छत को सहारा देने के लिए मेहराबदार पाषाण के खम्बे बनाये गये हैं, टांका भीतर से पूरा पक्का चिना हुआ है, दीवारों पर मजबूत प्लास्टर किया गया है, बरसों से पानी के सम्पर्क में रहने पर भी प्लास्टर कहीं से भी खिरा हुआ नजर नहीं आता है, दीवारें चिकनी हैं ताकि इस पर काई न जम सके। इस टांके का जल निर्मल एवं ठंडा रहता है तथा पानी में कभी भी कीड़े नहीं पड़ते है।

श्री जबरदान जी कविया ने इस टांके का नाप तोल एवं वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन किया है। उनके अनुसार काजरी द्वारा जितने भी टांकों का अध्ययन किया गया हैं उनमें यह टांका सर्वाधिक जलसंग्रह करता है। आज भी इसके समीप तथा टांके में चप्पल–जूते ले जाना तथा बिना पाँव धोये जाना मना है, यह इस टांके की स्वच्छता के लिए बनाया गया आवश्यक नियम है। किले पर लम्बे घेरों के समय यह टांका ही किले

में जल उपलब्ध कराने का सर्वप्रमुख स्रोत था। वर्तमान में भी इस टांके का जल पीने के पानी के रूप में उपयोग लिया जाता है।[57]

7.1.7.7 बाड़ी के महलों का टांका

राठौड़ो की आराध्य देवी श्री नागणेच्या माता के मन्दिर के समीप के महल बाड़ी के महल कहलाते हैं। मन्दिर तथा महलों के समीप एक टांका बना हुआ है। इस टांके का निर्माण सवाई राजा सूरसिंह ने अहमदाबाद के कारीगरों से करवाया था। यह ईंटों से निर्मित है। मन्दिर के मुख्य द्वार के पास इस टांके में भीतर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। टांके की दीवार पर गहराई नापने हेतु फीट व इंचों की स्केल आज भी बनी हुई है। प्रति वर्ष इसकी सफाई भी करायी जाती है।

महाराजा हनुमन्त सिंह जी जब चुनाव के समय 1951–52 में इस दुर्ग में ही अजीत विलास में निवास करते थे तब इसी टांके के जल को ही पीने के काम लेते थे। सन 1974 में जब इस दुर्ग मे संग्रहालय स्थापित किया गया तब तक यहाँ के प्रथम निदेशक ठा. सगतसिंह जी के समय तक इस टांके में जल रहता था। वर्तमान में यह टांका जलरहित एवं अनुपयोगी है।

7.1.7.8 चामुण्डा मन्दिर के पास वाला टांका

महाराजा तखत सिंह के समय में यह मन्दिर व उसके आसपास का क्षेत्र बारूद के विस्फोट से उड़ गया था जिसमें यह टांका भी पूरी तरह से समाप्त हो गया था। तत्पश्चात् महाराजा तखत सिंह जी ने मन्दिर एवं टांके का पुनर्निर्माण करवाया। यह टांका आज अपने मूल स्थान पर नहीं है पुनर्निर्माण के समय इसे स्थानान्तरित कर चिड़ियानाथ जी के आश्रम के सामने बनवाया गया। स्थानान्तरण के पश्चात् भी इसका मूल नाम नहीं बदला गया। इसे आज भी चामुण्डा माता के मन्दिर का टांका कहा जाता है। यह आज भी अच्छी स्थिति में है तथा इसी स्थान पर विद्यमान है।

7.1.7.9 अयस नाथ जी की समाधि का टांका

वर्तमान में यह टांका अस्तित्व में नहीं है केवल उपलब्ध साहित्य ही इसके बारे में बताते हैं। यह टांका अयसनाथ जी की समाधि के समीप महाराजा मानसिंह जी द्वारा बनवाया गया था इसलिए इसे अयसनाथ जी की समाधि का टांका कहा जाता है। इसके सम्बन्ध में एक घटना का वर्णन मिलता है, एक बार बागर में आग लगी तब इस टांके के जल से ही उसे बुझाया गया था। महलों के विस्तार से इस समाधि व टांके का

अस्तित्व समाप्त हो गया।

7.1.7.10 दौलत खाना का टांका

वर्तमान दौलत खाना के ठीक सामने एक भूमिगत टांका स्थित है। जिसे दौलतखाने के सामने होने के कारण दौलतखाना का टांका कहा जाता है। राव गंगा जी के समय इस स्थान पर भैंरूजी के मन्दिर के लिए तहखाना बनवाया गया था तथा उसमें उतरने के लिए सीढ़ियुक्त मार्ग भी बनवाया गया। इस मन्दिर के समीप सवाई राजा सूरसिंह जी ने इस टांके को बनवाया। कालान्तर में मन्दिर व टांके के ऊपर महाराजा अजीत सिंह ने अजीत विलास (वर्तमान में दौलतखाने के नाम से प्रसिद्ध) नामक महल बनवाया। इन महलों में जल इसी टांके से प्राप्त किया जाता था।

इसमें उतरने का दोतरफा मार्ग लोहे की जालियों से ढँका हुआ है तथा उस पर ताला लगाया गया है। आज भी बिना अनुमति इस टांके में प्रवेश वर्जित है। इसमें उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। भीतर से टांका अच्छी स्थिति में है तथा जल से परिपूर्ण है। दीवारों पर चिकना प्लास्टर है तथा छत को सहारा देने के लिए मेहराबदार खम्भे हैं, हवा आने के लिए झरोखे भी है।

7.1.7.11 माटे या पत्थर के मटके

माटे एक ही पत्थर को तराश कर विशेष ज्यामिति में गोलाकार घड़े के रूप में बनाये जाते थे। ये एक प्रकार के मटके ही हैं, इनमें तथा मटकों में इतना ही अन्तर है कि मटके मिट्टी के तथा माटे पत्थर के होते हैं। परम्परागत मिट्टी के घड़ों की बाहरी सतह से पानी वाष्पीकृत हो जाता है किन्तु पत्थर के माटों का पानी वाष्पीकृत नहीं होता तथा विशेष ज्यामितिय संरचना के कारण इनमें भरा गया पानी ठण्डा भी रहता है। इनकी बाहरी सतह चिकनी है जो सूर्य की किरणों को परावर्तित कर देती है जिससे माटे की बाहरी सतह गरम नहीं होती तथा उष्माचालन न होने से भीतर के पानी का तापमान स्थिर बना रहता है। इनके ऊपर का मुँह संकरा है, मुँह पर मटके के समान रिंग भी बनायी गयी है दूर से ये बड़े घड़े के समान दिखाई देते है। वर्तमान में किले के भीतर विभिन्न स्थानों यथा दौलतखाना चौक में, दौलतखाना के मुख्य द्वार पर, जनानी ड्योढ़ी के समीप तथा चौकेलाव महल के टेंक के पास देखे जा सकते है।[58]

7.1.7.12 पाषाण टंकियाँ

किले के भीतर विभिन्न स्थानों पर ढँकी एवं बिना ढँकी पाषाण टंकियाँ विद्यमान

हैं। इनका उपयोग जल भरने में किया जाता था। इन्हें एक ही पत्थर को तराश कर बनाया जाता था, अधिकांश आयताकार तथा कुछ गोलाकार है, इन पर पत्थर का ढक्कन भी है। ऐसी अनेक टंकियाँ चामुण्डा माता जी मन्दिर के मार्ग पर तथा बुर्ज पर तोपों के समीप रखी हुई हैं।

7.1.7.13 धातु पात्र

किले के भीतर कई स्थानों पर धातु के बड़े–बड़े पात्र रखे हुए हैं। जिनमें जल भरा जाता था। ये ताम्बें व अष्टधातु के बने हुए हैं।

7.1.8 जल उत्थान (वाटर लिफ्ट) प्रणाली

किले का जल प्रबन्धन का दूसरा भाग किले के राजसी महलों में रानीसर व पदमसर का पानी पहुँचाना था। ये तालाब, किले की पहाड़ी की तलहटी में हैं जबकि महल, पहाड़ी के ऊपर बने हुए हैं। इतनी ऊँचाई पर जल पहुँचाने के लिए किसी अभियांत्रिकी तकनीक की आवश्यकता महसूस की गयी जो इन तालाबों का जल 150 फीट ऊँचाई पर स्थित महलों में पहुँचा सके फलतः एक परम्परागत जल उत्थान प्रणाली का विकास किया गया। यह प्रणाली तत्कालीन विज्ञान व अभियांत्रिकी कुशलता का उदाहरण है, जो किले के वर्चस्व काल के वैभव को दर्शाती है।

यह प्रणाली चार चरणों में बंटी हुई है। **प्रथम चरण** : चौकेलाव गार्डन से रानीसर की ओर जाने पर एक मंचनुमा प्लेटफॉर्म बना हुआ है। इसके ठीक नीचे रानीसर तालाब का एक किनारा है। यहाँ पर अरहट लगाया गया था, इसके द्वारा उठाया गया जल एक पक्की नाली में उड़ेल दिया जाता था। यह नाली चौकेलाव गार्डन से होती हुई एक बड़े जल कुण्ड तक जाती है। फलतः नाली में प्रवाहित जल उस टेंक में चला जाता था। **द्वितीय चरण** : रानीसर के उत्थित जल को संग्रहण करने वाला यह टेंक चौकेलाव महल के समीप बना हुआ है। यह अति विशाल व चोकोर है, इसे बड़े पत्थरों की मजबूत चिनाई से बनाया गया है तथा इसमें उतरने के लिए सीढ़ियाँ भी बनी हुई हैं। इस टेंक का पानी भी रहँट प्रणाली से ऊपर उठाया जाता था। इस हेतु डेढ़ कंगूरा बुर्ज पर एक अरहट लगाया गया था। यहाँ से उत्थित जल एक अन्य टेंक में एकत्रित होता था जो डेढ़ कंगूरा बुर्ज पर स्थित है। **तृतीय चरण** : डेढ़ कंगूरा बुर्ज वाले टेंक का जल जयपोल पर लगे अरहट द्वारा ऊपर उठाया जाता था तथा जयपोल पर बने टेंक में एकत्रित किया जाता था। **चतुर्थ चरण** : जल उत्थान प्रणाली के चतुर्थ चरण

में एक अन्य रहँट जो कि फतह महल की छत पर बना है के माध्यम से जयपोल वाले टेंक का पानी ऊपर उठाया जाता था तथा राजसी आवासों में विभिन्न नालियों के माध्यम से पहुँचाया जाता था। इस प्रकार बिना डीजल, बिना बिजली के रानीसर का पानी उत्थान करके महलों में लगभग 100 से 120 फीट की ऊँचाई तक पहुँचता था।[59] इस सम्पूर्ण प्रणाली में तीन टेंक तथा चार अरहट काम में लिये गये थे। प्रथम अरहट रानीसर पर, द्वितीय डेढ़ कंगूरा बुर्ज पर, तृतीय जयपोल पर तथा चतुर्थ फतहमहल की छत पर लगाया गया था। वर्तमान में इन अरहटों के अवशेष देखे जा सकते है। इस प्रणाली के टेंक्स में प्रथम टेंक चौकेलाव महल के समीप, द्वितीय डेढ़ कंगूरा बुर्ज पर तथा तृतीय जयपोल पर बनाया गया था।

रानीसर के अतिरिक्त चौकेलाव कुँए एवं पातालेश्वर कुँए का पानी भी जल उत्थान प्रणाली से महलों तक पहुँचाया जाता था।

जोधपुर में प्रथम बार रेलगाडी वि.स. 1940 के चैत्र वुदी 8 (शीतलाष्टमी) के दिन दोपहर 12 बजे आयी थी। उसके पश्चात् रानीसर पर एक इंजनघर बनाया गया इसमें रेलवे का कोयलाचलित इंजन लगाकर किले में पानी पहुँचाया गया। महाराजा श्री सुमेर सिंह जी के राज्य में जब जोधपुर में बिजली घर बना तो वहाँ से कोयले का इंजन हटा कर बिजली की मशीन द्वारा पानी पहुँचाने की व्यवस्था की गई। 1890 में 12 हॉर्स पावर का इंजन पम्प रानीसर पर लगाया गया। इस पम्प से 400 फीट ऊँचाई तक पानी लिफ्ट कराया जाता था। इस हेतु 1200 फीट लम्बाई में 4 इंच व्यास के पाइप लगाए गए थे। यह पम्प मै. हाथोर्न डेवी एण्ड कम्पनी का था।[60]

7.1.9 जल वितरण प्रणाली

जल उत्थान प्रणाली द्वारा रानीसर का पानी फतह महल तक पहुँचाया जाता था, यहाँ से विभिन्न नालियों के माध्यम से पानी महलों के विभिन्न हिस्सों तक पहुँचता था। महल के विभिन्न हिस्सों तक जल समीप के टांके से सेवकों द्वारा वितरित किया जाता था।

7.1.10 जल निकास प्रणाली

किले के महलों, फर्श, छत, भीतरी भाग से बारिश के पानी के निकास एवं जल स्रोतों के पूर्ण भराव के पश्चात् अतिरिक्त जल के निकास हेत विशेष व्यवस्थाएँ की गयी थी। महलों की छतों, बरामदों व खुले चौक में गिरने वाला बारिश का पानी परनालों व

छोटी नालियों आदि से निकलकर समीप के टांकों में चला जाता था। टांके में प्रवेश करने वाला जल अपने साथ गन्दगी न ले जाए इस हेतु नालियों के सिरों पर जालियाँ लगाई गयी थीं। महलों के झरोखों के समीप के परनाले झरोखों के समान ही कलात्मक हैं तथा आसानी से दिखाई नहीं पड़ते, जिससे झरोखों की सुन्दरता पर कोई असर नहीं पड़ता। इसी प्रकार किले के प्रमुख जल स्रोत रानीसर से भी अतिरिक्त पानी के निकास की व्यवस्था की गयी थी। इसका तटबन्ध इस प्रकार बनाया गया था कि इसका अतिरिक्त पानी (ओवर फ्लो वाटर) पूरा का पूरा पदमसर में ही गिरे।

7.1.11 वर्तमान स्थिति

वर्तमान में भी किले के भीतर जल की कोई कमी नहीं है। आधुनिक संसाधनों के प्रयोग से किले के प्रत्येक हिस्से में शुद्ध जल की आपूर्ति रानीसर तालाब व अन्य जल स्रोतों से की जाती है, जिनकी साफ सफाई का विशेष ध्यान रखा जाता है।

रानीसर व पदमसर तालाब शहर की भूजल व्यवस्था को बनाये रखने तथा समीप के कुँओं, बावड़ियों, हैण्डपम्पों के इन्द्र देवता के रूप में आज भी स्वीकार किये जाते है। कुछ समय पहले तक दोनों ही जलाशय एक सीमा से अधिक प्रदूषित, नाकारा और क्षेत्र में फैलने वाली दुर्गन्ध का कारण बने हुए थे। अतः इनकी सफाई तथा स्वच्छता की जिम्मेदारी मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट ने उठाई। अभियंता शैलेश माथुर व अरूण हर्ष की देखरेख में रानीसर से सिंघोड़िया भाखरी तक सड़क बनायी गयी ताकि तालाब के मलबे को उस मार्ग से बाहर लाया जा सके। रानीसर का पानी पम्पों के माध्यम से पद्मसर में डाला गया, रानीसर की मछलियों व अन्य जलीय जीवों को भी मत्सय विभाग की सहायता से पदमसर में शिफ्ट किया गया। इस कार्य में स्थानीय नागरिकों व स्वयंसेवकों का भरपूर सहयोग मिला। सफाई के दौरान रानीसर की तलहटी से सर्वप्रथम तीन बेरियाँ जया बेरी, पाट बेरी तथा शक्कर बेरी (केसर बेरी) निकली। कुछ समय पश्चात् दो और बेरियाँ शिव बेरी व गजबेरी भी निकली। रानीसर बनने के बाद यह पहला अवसर था जब ये दो बेरियाँ भी दिखाई दी। इन सभी बेरियों की बाहरी दीवारों की मरम्मत की गयी। इस प्रकार 15 जून 2003 को रानीसर की सफाई पूर्ण कर ली गयी। पूरे सफाई अभियान में ट्रस्ट के लगभग 13 लाख रूपये खर्च हुए। परिणामतः रानीसर की भराव क्षमता में 5 फुट की बढ़ोत्तरी हुई जो बढ़ कर 64 फीट हो गयी, आसपास के सभी कुँओं हेण्डपम्पों आदि का जल स्तर बढ़ गया, भूजल स्तर में भी बढ़ोत्तरी हुई, किले तथा चौकेलाव बाग को शुद्ध व स्वच्छ जल प्राप्त होने लगा। इस

पुनीत कार्य के लिए मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट साधुवाद का पात्र है।

इस प्रकार मेहरानगढ़ दुर्ग जल प्रबन्धन की दृष्टि से आदर्श दुर्ग है तथा क्षेत्र के अन्य दुर्गों के लिए इस सन्दर्भ में प्रेरणा स्रोत रहा है।

7.2 सोनारगढ़ दुर्ग

पश्चिमी राजस्थान में थार मरूस्थल के बीच एक ऊँची पहाड़ी पर स्वर्ण मुकुट के समान दमकता जैसलमेर का सोनारदुर्ग उत्तर भंड़ किवाड़ के विरूद वाले कृष्ण वंशज भाटी वीरों के त्याग, बलिदान, मान–मर्यादा, सम्मान, यश, गौरव, शौर्य एवं बाहुबल के साथ–साथ जैन सन्तों के अहिंसावादी आदर्शों व मानवीय मूल्यों का भी गवाह रहा है।

7.2.1 दुर्ग की स्थापना व नामकरण

चन्द्रवंशी रावल जैसल ने संवत् 1212 (सन् 1156 ई0) सावन शुक्ला द्वादशी बुधवार के दिन दुर्ग की नींव रखी।[61] लगभग 7 वर्षों के निर्माण के बाद एक पोल तथा कुछ बुर्ज बने। संवत् 1219 में यहाँ राजधानी बनायी गयी। नैणसी इस दिवस को बुधवार के बजाय रविवार लिखते है। जैसल ने पुष्करणा ब्राह्मण ईशाल को बहुत सा द्रव्य, दो कोस की सीवदी व पाँच बेरे दिये। पुरोहितों को दक्षिणा दी गयी । गढ में चार महल बनवाये गये जिनकी लागत 16940/– रू0 आयी।[62]

संवत बारह सो बारह सावन मास सुमेर। जैसल थाप्यो जोरावर महिपत जैसलमेर।।
लंका जो अगजीत है घणा घाट रे घेर। रघु रहसी भाटियों महिपत जैसलमेर।।[63]

दुर्ग निर्माता जैसल तथा पहाड़ी पर निर्मित होने के कारण मेरू अतः जैसल + मेरू से जैसलमेरू नाम पड़ा जो कालान्तर में जैसलमेर हुआ। लोक साहित्यों में इसे जैसाणगढ़ कहा जाता है। पीले पत्थरों ने निर्मित होने तथा स्वर्ण के समान चमकने के कारण सोनारगढ़ या सोणगढ़ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। किले की पहाड़ी की आकृति त्रिभुजाकार होने से त्रिकुटगढ़ तथा पहाड़ी का नाम गोरहरा होने से गोरहरागढ़ कहलाया।

गढ़ दिल्ली गढ़ आगरो, अधगढ़ बीकानेर।
भलो चिणायो भाटियों सिरै तो जैसलमेर।।[64]

7.2.2 भौगोलिक स्थिति व जलवायु

किला पश्चिमी राजस्थान में जैसलमेर शहर के बीच बना है। प्राचीन काल में जैसलमेर का भू भाग माड़धर अथवा वल्लभमण्डल के नाम से प्रसिद्ध था। जैसलमेर जिला थार के मरूस्थल के हम्माद, रैग व रेतीले रेगिस्तान नामक उपभागों में स्थित है। किला मेहरानगढ़ से 265 कि.मी., जूनागढ़ से 330 कि.मी., आमेर से 556 कि.मी., नागौर से 319 कि.मी. तथा पाकिस्तान से 150 कि.मी. दूरी पर स्थित है। यह $26^0 10'$ से $28^0 20'$ उत्तरी अक्षांश एवं $69^0 29'$ से $72^0 20'$ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है तथा समुद्र तल से इसकी पहाड़ी के आधार की ऊँचाई 959 फीट है। मरूस्थल का भाग होने के कारण यह क्षेत्र रेतीला, सूखा, बंजर तथा पानी की कमी वाला रहा है। यहाँ दूर दूर तक स्थायी व अस्थायी रेत के ऊँचे–ऊँचे टीले हैं जो आंधियों के साथ अपना स्थान बदलते रहते हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण जैसलमेर को रेगिस्तान की राजधानी कहा जाता है। यहाँ गर्मियों में अधिकतम तापमान 48^0 से. तथा सर्दियों में न्यूनतम तापमान 4^0 से. रह जाता है। जलवायु शुष्क है, सम्पूर्ण प्रदेश में जल का कोई स्थायी स्रोत नहीं है, बारिश बहुत कम या नहीं के बराबर होती है, वर्षा का औसत 18.55 से.मी. वार्षिक है, अधिकांश कुँओं का पानी खारा है, यहाँ की एक मात्र नदी काकणी है, वो भी बारह मासी जलदायी नहीं है। क्षेत्र के एक तिहाई हिस्से में भूगर्भ में बिल्कुल भी पानी नहीं है, जबकि एक तिहाई हिस्से में पानी खारा है, शेष एक तिहाई हिस्से में ही पानी है वो भी बहुत नीचा, लगभग 300 फिट गहराई पर है। इस प्रकार यहाँ पानी सबसे मूल्यवान वस्तु रही है। वर्षा जल का संग्रहण ही जल प्राप्ति का एक मात्र साधन है।

सम्पूर्ण क्षेत्र में कोज्यूटालिक चट्टानों के अवशेष यहाँ समुद्र होने का प्रमाण देते हैं। यहाँ से बड़ी मात्रा में जीवाष्मों की प्राप्ति भी यहाँ समुद्र होने का संकेत देती है। भूगर्भ शास्त्री यहाँ प्राचीन काल में टेथिस सागर[65] नामक समुद्र होने का तर्क देते हैं।

7.2.3 किले का महत्त्व

सैंकड़ों मील में फैले रेगिस्तान के बीच से जैसलमेर होते हुए मध्य एशिया, यूरोप तथा समरकन्द तक पैदल मार्ग था। यह मार्ग इतना दुर्गम था कि इसे पार कर पाना अत्यधिक कठिन था। इसके लिए किसी कवि ने ठीक ही लिखा है।

घोड़ा कीजे काठ का, पिण्ड कीजै पाखाण।
बख्तर कीजै लौह का, जद देखो जैसाण।।[66]

अर्थात जैसलमेर पहुँचने के लिए आपके पास लकड़ी का घोड़ा, पत्थर का शरीर तथा लोहे के वस्त्र होने चाहिए। यही इस किले की सुरक्षा का आधार था। यकायक शत्रु इस पर आक्रमण करने की सोच भी नहीं सकता था।

विषम जलवायु के कारण यहाँ वनस्पति बहुत कम होती थी अतः यहाँ के लोग लूटमार, डकैती, चोरी आदि भी किया करते थे। 12 वीं से 15 वीं सदी तक यह स्थल लूटेरों व डाकूओं का गढ़ रहा।[67] मुगल काल में यह शहर रेशम मार्ग (सिल्क रूट) से जुड़ गया था तब इस नगर की काफी प्रगति हुई।[68]

7.2.4 किले का इतिहास

किले के भाटी शासक अपने को कृष्ण का वंशज मानते हैं। द्वारिका के जलमग्न होने से कृष्ण के यदुवंशज जाबुलिस्तान, गजनी, काबुल, लाहौर सहित ऐशिया के अन्य स्थानों पर फैल गये। जहाँ अपने किले, साम्राज्य आदि बना लिए परन्तु मध्य ऐशिया के तुर्क आक्रमणकारियों के आगे टिक न सके और वहाँ से खदेड़ दिये गये। यहाँ से निकलकर वे पंजाब सिन्ध आदि स्थानों पर बस गये। इनमे से एक शाखा ने थार के रेगिस्तान स्थित परमार राजधानी लोद्रवा के शासक को पराजित कर अपना राज्य स्थापित कर लिया। भाटियों की इस क्षेत्र में प्रथम राजधानी तनोट द्वितीय लोद्रवा तथा तीसरी जैसलमेर में रही। यह सम्पूर्ण काल सत्ता के लिए संघर्ष का काल नहीं था बल्कि अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए संघर्ष था।

सन् 1175 ई0 में मोहम्मद गोरी के निचले सिंध व लोद्रवा पर आक्रमण के कारण इनका पतन हो गया तथा राजसत्ता रावल जैसल के हाथ में आ गयी। जिसने उचित स्थान का चयन करके 1178 ई0 में त्रिकुट नामक पहाड़ी पर जैसलमेर दुर्ग बनवाया। रावल जैसल के जैसलमेर पर राज्यारोहण से लेकर भारत के स्वतंत्र होने तक जैसल के वंशजों ने बिना वंश क्रम भंग किये 770 वर्षों तक सतत् राज किया।

संत ईशालू ने भविष्यवाणी की थी कि यहाँ ढाई साके होंगे व भाटियों की कीर्ति धूमिल हो जायेगी।

महारावल जैतसिंह प्रथम के शासन काल में जैसलमेर की सैन्य शक्ति प्रबल थी। उनके पुत्र मूलराज व रत्नसिंह बड़े वीर तथा साहसी थे। इन वर्षों में जैसलमेर में

भयंकर अकाल पड़ा। एक बार अलाउद्दीन खिलजी का शाही खजाना नगरथट्टा, मुलतान तथा भखरकोट से दिल्ली जा रहा था जिसे कुँवर मूलराज व रत्नसिंह ने अपने सैनिकों के सहयोग से लूट लिया। इस घटना से अलाउद्दीन बहुत नाराज हुआ और अपनी सेना सहित जैसलमेर की ओर प्रस्थान किया। सुल्तान अजमेर ही पहुँचा था कि रानी पद्मिनी की प्रशंसा सुनकर उसका इरादा बदल गया। वह स्वयं अपनी आधी सेना लेकर चित्तौड़ चला गया तथा शेष आधी सेना को दो सूबेदारों महबूब खाँ और अली खाँ के नैतृत्व में जैसलमेर पर आक्रमण करने भेज दिया। आठ वर्ष के लम्बे घेरे के बाद भी शाही सेना दुर्ग को नहीं जीत सकी। इस दौरान महारावल जैतसिंह का देहान्त हो गया तथा राजसत्ता महारावल मूलराज के हाथ आ गयी। दूसरी तरफ दुर्ग में खाद्य सामग्री कम पड़ गयी दुर्ग के निवासी व सैनिक भूखे मरने लगे। अतः अपने सेनानायकों के परामर्श से मूलराज ने भोजन के अभाव में भूखे मरने की अपेक्षा शाही सेना से अन्तिम युद्ध करने का निर्णय लिया। वीर राजपूत सैनिकों ने केसरिया धारण किया, कसूम्बा पीया तथा अन्तःपुर में चन्दन की चिता बनवायी। महारानी रत्ना के साथ–साथ बाईस हजार वीर क्षत्राणियाँ जौहर की ज्वाला में अमर हो गयी। प्रातः काल भाटी वीर दुर्ग के द्वार खोल कर शत्रु सेना पर भूखे शेरों की तरह टूट पड़े। एक तरफ भूखे राजपूत और दूसरी तरफ भोज्य सामग्री से परिपूर्ण मुस्लिम सैनिक, अंततः राजपूत वीरगति को प्राप्त हुए। इस युद्ध का परिणाम युद्ध के प्रारम्भ होने से पूर्व ही निश्चित हो चुका था, अगले पाँच वर्ष तक दुर्ग पर मुस्लिम सत्तारूढ़ रहे। जैसलमेर की ख्यात में इस साके का संवत 1351 में होना बताते हुए इस साके का वर्णन दिया गया है।[69]

महारावल मूलराज के पश्चात् अलाउद्दीन के खिलजी सैनिक पाँच वर्ष तक दुर्ग के अधिपति रहे। अन्त में एकाकी जीवन से तंग आकर दुर्ग के ताला लगाकर चले गये। 1327–1330 ई0 में दूदा व तिलोकसी आये और दुर्ग का ताला तोड़कर रहने लगे। दूदा व तिलोकसी ने अपनी वीरता, शौर्य, बहादुरी, कर्मठता व चातुर्य से जैसलमेर को पुनः आबाद कर वैभव सम्पन्न कर दिया। इन्होंनें बहावलपुर, सिन्ध, जालौर और आबू तक अपनी लूट–पाट से आतंक मचा दिया। इनके हौसले इतने बुलन्द हो गये कि इन्होंनें अजमेर के आनासागर से सुल्तान फिरोज शाह तुगलक के बहुमूल्य अश्व चुरा लिये। इस घटना से फिरोज तुगलक क्रोधित हो गया और एक बड़ी सेना सूबेदार कमालूद्दीन के नैतृत्व में जैसलमेर पर आक्रमण करने भेज दी। आठ वर्षों के लम्बे युद्ध व घेरे के कारण दुर्ग में रसद सामग्री की कमी आ गयी। सेना भूख से तड़पने लगी। वीर दूदा व

सैनिकों ने केसरिया धारण किया, कसूम्बा पिया और शत्रु सेना पर टूट पड़े उधर दुर्ग में राजपूत क्षत्राणियों ने अपने सतीत्व की रक्षा हेतु जौहर किया। दूदा व तिलोकसी अमर हुए। एक बार फिर से दुर्ग पाँच वर्षों के लिए मुस्लिम शासकों के हाथ आ गया। जैसलमेर की ख्यात में इस साके का भी वर्णन दिया गया है।[70]

रावल घड़सी ने शमशुद्दीन के साथ युद्ध में अपनी वीरता से सुल्तान फिरोज तुगलक को प्रसन्न कर अपने पूर्वजों का राज्य पुरस्कार स्वरूप पुनः प्राप्त कर लिया।[71] मात्र 12 वर्ष की अवधि के पश्चात् रावल घड़सी ने इसे पुनः अपनी राजधानी बनाया। नये सिरे से दुर्ग, तड़ाग, कुँए, बावड़ियाँ, चौकियाँ आदि का निर्माण कराकर उन्नति प्राप्त की। ये घड़सीसर पर धोखे से मारे गये, इनकी रानियाँ दुर्ग में वि.स. 1418 में सती हुई।

राव लूणकरण के समय सोनारगढ़ को एक ओर साका देखना पड़ा। 1550 ई0 में कंधार का अमीर अली राज्यच्युत होकर जैसलमेर आया जिसे रावल लूणकरण ने शरण दी। अमीर अली ने जैसलमेर के सैन्य प्रबन्ध तथा आन्तरिक कमजोरियों की जानकारी प्राप्त कर राज्य हड़पने की साजिश रची। उसने अपनी बैगमों को अन्तःपुर में रानियों से मिलवाने की अनुमति रावल लूणकरण से प्राप्त कर ली। एक दिन जब राजकुमार अपने विश्वस्त सैनिकों के साथ शिकार पर गये हुए थे तब अमीर अली ने अपने सैनिकों को स्त्री वेश में डोलियों में बैठाकर दुर्ग में भेज दिया और स्वयं 500 सैनिकों के साथ दुर्ग के बाहर खड़ा रहा। दुर्ग के प्रथम प्रवेश द्वार पर ही सारा भेद खुल गया यहीं पर अकेला पहरेदार मुस्लिम सैनिको से भिड़ गया। दुर्ग के द्वार खुले होने से अमीर अली सैनिकों सहित प्रथम प्रवेश द्वार पार कर गया। यद्यपि राजपूत सैनिक इस अप्रत्याशित हमले के लिए तैयार नहीं थे तथापि भयंकर युद्ध छिड़ गया। रनिवास के द्वार बन्द कर दिये गए, जौहर की चिता प्रज्वलन का भी समय नहीं था अतः सतीत्व की रक्षा के लिए रावल लूणकरण तथा अन्य सरदारों ने अपने ही हाथों अपनी ही रानियों, बच्चियों, नारियों, दासियों, राजकुमारियों आदि को तलवार की सहायता से मौत के घाट उतार दिया। वीर क्षत्राणियों ने हँसते–हँसते बलिदान दे दिया। रावल लूणकरण एक हजार सैनिकों के साथ शहीद हुए। अमीर अली युद्ध जीतने ही वाला था कि शिकार पर गये राजकुमार मालदेव सैनिकों सहित गुप्त मार्ग से दुर्ग में प्रविष्ठ हो गया। पुनः भयंकर युद्ध हुआ, मुस्लिम सैनिक मारे गये, अमीर अली पकड़ा गया। उसे चमड़े के कुड़िये में डालकर तोप से उड़ा दिया गया। इतिहास में इसे अर्द्ध साका कहा जाता है किन्तु यह साका अन्य सभी साकों से ज्यादा वीभत्स था। इस साके

में ना तो जौहर हुआ और ना ही सभी राजपूत केसरिया पहन कर काम आये।

रावल लूणकरणजी पाट बिराजे राज
पनरे सो पिच्यासिये आय हुआ महाराज
आय हुआ महाराज कोठार कराया भारी
उदेपुर बीकानेर परणीज्या करके तेयारी
नवाब अली खां आप दगो कर दीनो कावल
मारे मुसला सर्व अर्ध साके में रावल।।[72]

सोनारगढ़ पर जोधपुर के राव मालदेव ने सन् 1552 ई0 में आक्रमण कर दिया। जिसे लम्बे घेरे के बाद सन्धि के लिए विवश होना पड़ा। बीकानेर के राव लूणकरण ने भी जैसलमेर पर आक्रमण किया, राव जैतसी की पराजय हुई, सन्धि व विवाह सम्बन्ध स्थापित किये जाने से राज्य पुनः जैतसी को लोटा दिया गया।

मुगल काल के आरम्भ में जैसलमेर एक स्वतंत्र राज्य था। बाबर व हुमायूँ ने जैसलमेर की स्वतंत्रता के साथ कोई छेड़छाड़ नहीं की। शेरशाह सूरी से हारकर हुमायूँ जैसलमेर से होकर गुजरा तो जैसलमेर के शासकों ने उसे शान्तिपूर्वक जाने दिया। अकबर की राजपूत नीति से प्रभावित होकर जैसलमेर के शासक रावल हरराज ने अकबर का विवाह प्रस्ताव स्वीकार किया तथा अपनी पुत्री नाथी बाई का विवाह अकबर के साथ करा कर राजनैतिक दूरदर्शिता का परिचय दिया। भाटी–मुगल सम्बन्ध आगे बढ़ने पर शहजादा सलीम को रावल हरराज के पुत्र भीम की पुत्री ब्याही गयी जिसे मल्लिका ए जहान की उपाधि दी गयी। जहाँगीर ने अपनी जीवनी में भी उल्लेख किया है कि यह घराना सदैव से हमारा वफ़ादार रहा है इसलिए उनसे सन्धि की गयी। मुगल–भाटी सम्बन्धों के दूरगामी सुपरिणाम प्राप्त हुए। जैसलमेर बाह्य आक्रमणों के प्रति निष्कण्टक हो गया तथा अपनी समृद्धि व सीमाओं का विस्तार करने लगा। राज्य की सीमाएँ पश्चिम में सिन्ध नदी व उत्तर–पश्चिम में मुल्तान तक विस्तृत हो गयी। राज्य में शान्ति, समृद्धि होने व शासकों का न्याय प्रिय व प्रजावत्सल होने से यहाँ बाहरी व्यापारी, कारीगर, शिल्पी, महाजन वर्ग, धार्मिक आचार्य, साधु सन्त आदि के साथ साथ विभिन्न जाति, समुदाय के लोग आकर बसने लगे। जिनमें ओसवाल, पालीवाल, माहेश्वरी आदि वणिक समुदाय के लोग प्रमुख रहे। इस वर्ग ने राज्य की वाणिज्यक समृद्धि में अपना योगदान दिया। इसी प्रकार यहाँ के शासक, राजकुमार, सैनिक, शिल्पी, बढ़ई, कारीगर, विद्वान, सामन्तगण, साहित्यकार, कवि, मिस्त्री आदि मुगल दरबार में जाने तथा सम्मान पाने लगे जिससे जैसलमेर की समृद्दि, संस्कृति अपने वैभव के लिए पूरे देश में विख्यात हो गयी। इन सभी क्रियाकलापों का जैसलमेर की सभ्यता, संस्कृति, प्रशासनिक सुधार,

सामाजिक व्यवस्था, निर्माणकला, चित्रकला एवं सैन्य संगठन पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

मुगल सत्ता कमजोर पड़ने तथा मुगलों के गवर्नरों द्वारा अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित करने से जैसलमेर के कमजोर व शान्तिप्रिय शासकों के काल में आस–पास के राज्यों ने अपनी महत्त्वाकांक्षा के चलते अपनी सीमाओं का विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया। फलतः जैसलमेर की सीमाऐं संकुचित होने लगी, कई प्रान्त हाथ से निकल गए। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आगमन के समय जैसलमेर का क्षेत्रफल मात्र 16 हजार वर्गमील तक सीमित होकर रह गया।

यहाँ यह भी वर्णन योग्य है कि मुगलों के शासन काल में जैसलमेर पर एक ही वंश के शासकों तथा एक ही वंश के दीवानों ने राज्य की बागडोर सम्भाले रखी। जैसलमेर राज्य में महारावल (राजा) के बाद दो ही पद महत्त्वपूर्ण थे, एक दीवान दूसरा प्रधान। जैसलमेर के दीवान पिछले 1000 वर्षों से एक ही वंश मेहता (माहेश्वरी) के व्यक्तियों को बनाया गया दीवान राजा के बाद सर्वप्रमुख था, उस का निर्णय राजाज्ञा की तरह सर्वमान्य होता था, वह योजना बनाने, उन्हें क्रियान्वयन करने आदि का कार्य करता था जबकि प्रधान राजा का राजनैतिक सलाहकार, मुख्य सेनापति आदि के कर्तव्य का निर्वहन करता था। प्रधान पद पर पाहू और सोढ़ा वंश के लोगों का वर्चस्व सदैव बना रहा।

राजा रावल या महारावल की पदवी धारण करते थे। राजा ही राज्य का सर्वोच्च नीति निर्माता, मुख्य न्यायाधीश, प्रधान सेनापति, राजसी खजाने का मालिक आदि था, उसके अधिकार असीमित थे। राज्य के कोई लिखित कानून नहीं थे।

जैन श्रुति के अनुसार चन्द्रावली नामक नगर के मुस्लिम आक्रमण से पूर्णतया ध्वस्त हो जाने पर सुरक्षित स्थान की तलाश में जैन ग्रंथों का एक बहुत बड़ा संग्रह जैसलमेर लाया गया। इस संग्रह के साथ बड़ी संख्या में जैन साधू–सन्त, भिक्षुक, छुल्लक, आचार्य, श्रावक व श्राविका व साध्वियाँ दुर्ग में आयीं और यहीं रहने लगी। इन्होंनें यहाँ रह कर अपनी रचनाएँ लिखी। इनके ग्रंथो में जैसलमेर के संरक्षक शासकों के नाम, वंश, गोत्र, प्रमुख घटनाओं आदि का वर्णन मिलता है जो यहाँ के इतिहास को जानने का विश्वसनीय स्रोत हैं। यहाँ रखे हुए ग्रन्थों की कुल संख्या 2683 हैं। यहाँ पर ताड़ पत्र पर रचित प्राचीनतम ग्रंथ विक्रम संवत 1117 का है। यहाँ पर जैन ग्रंथों के अलावा कुछ जैनेत्तर साहित्य की भी रचना हुई। जिनमें काव्य, व्याकरण, नाटक, सांख्य, मीमांसा, न्याय, आयुर्वेद, योग आदि प्रमुख हैं।[73]

7.2.5 दुर्ग में क्रमिक निर्माण

दुर्ग निर्माण का द्वितीय चरण महारावल घड़सी से लेकर महारावल अमरसिंह तक सभी क्रमिक शासकों ने कराया। इस दुर्ग के 99 गोलाकार बुर्जों और प्रोलों का निर्माण महारावल मनोहर के समय हुआ। नगर का परकोटा तथा अखे प्रोल का निर्माण महारावल अखे सिंह ने 1739 ई0 में कराया। इसका लेख किशनघाट की पोल के पास दीवार में लगा था।[74] महारावल लक्ष्मण सिंह के समय दुर्ग में दो कुँए, लक्ष्मीनाथजी, महादेवजी, पार्श्वनाथ जी व सूर्य देव का मन्दिर बनवाये गए। महारावल वैरसी ने जैन मन्दिर व दुर्ग को पक्का कराया तथा नये कुँए बनवाए। महारावल जैतसिंह द्वितीय ने दुर्ग में एक कुँआ एवं दशावतार की प्रतिमाएँ बनवायी। महारावल भीम ने दुर्ग में सूर्य प्रोल, गणेश प्रोल, रंग प्रोल तथा सात बुर्जों का निर्माण कराया। उसके समय दुर्ग पर पचास हजार रूपये खर्च किये गए। महारावल अखेसिंह ने त्रिपोलिया पर अखे विलास नामक महल बनवाया। महारावल मूलराज ने दुर्ग में अनेक महल यथा मूल विलास, रंग महल, मोती महल, मन्दिर परसालें आदि बनवायी। महारावल गज सिंह ने दुर्ग में गज महल का निर्माण कराया।[75]

7.2.6 दुर्ग रचना

जैसलमेर के सांस्कृतिक इतिहास में यहाँ की स्थापत्य कला का अलग ही महत्त्व है। किसी भी स्थान विशेष के स्थापत्य से वहाँ के निवासियों व प्रबुद्वजनों के चिंतन, विचार, विश्वास एवं बौद्धिक कल्पनाशीलता का आभास होता है। जैसलमेर में स्थापत्यकला का क्रम राज्य की स्थापना के साथ दुर्ग निर्माण से आरम्भ हुआ जो निरंतर चलता रहा। यहाँ के स्थापत्य को राजकीय तथा व्यक्तिगत दोनो का प्रश्रय मिला। इस क्षेत्र के स्थापत्य की अभिव्यक्ति यहाँ के किलों, गढ़ियों, राजभवनों, हवेलियों, जलाशयों, छतरियों, जनसामान्य के प्रयोग में लाये जाने वाले मकानों आदि से होती है। जैसलमेर में हर 20–30 कि0मी0 के फासले पर छोटे–छोटे दुर्ग दृष्टिगोचर होते है जो विगत 1000 वर्षों के इतिहास के मूक गवाह है।

यह दुर्ग 250 फीट (76 मीटर) ऊँची तिखुनी पहाड़ी पर बना है, पहाड़ी के आधार की समुद्र तल से ऊँचाई 959 फीट है। पहाड़ी की आकृति त्रिभुजाकार होने से यह त्रिकुट गढ़ कहलाया। पहाड़ी की लम्बाई 1500 फीट तथा चौड़ाई 750 फीट है।

किले के चारों ओर एक खाई थी जो अब नष्ट हो चुकी है। यह खाई किले की

सुरक्षा हेतु बनवायी गयी थी ताकि शत्रु सेना किले की प्राचीरों के समीप न पहुँच पाये।

दुर्ग मुख्यतः पाषाण निर्मित है, प्रयुक्त पाषाण तीन प्रकार के हैं रेतीला पत्थर (सेण्ड स्टोन), चूने का पत्थर (लाइम स्टोन), मार्बल तथा फोसिलाइज स्टोन, इन्हें जोड़ने के लिए कहीं भी चूने या सीमेन्ट का प्रयोग नहीं किया गया है। दुर्ग के साथ–साथ पूरा नगर ही पीले पत्थरों का बना है जिस पर सूर्य की किरणें पड़ने पर यह स्वर्ण के समान चमकता सा प्रतीत होता है, इसलिए जैसलमेर को स्वर्ण नगरी कहा जाता है।

किले के परकोटे का घेरा डेढ़ मील (3 कि.मी.) के लगभग है। क्षेत्रफल 1500 गुना 750 वर्ग फीट या 11.28 हैक्टर है। परकोटे की दीवारें 3 से 5 मीटर ऊँची एवं 2 से 3 मीटर चौड़ी है। यह दोहरा परकोटा है जो कमरकोट कहलाता है।[76] किले में कुल 99 बुर्जें हैं जो अलग–अलग काल में किले के विस्तार के समय बनायी गयी। सभी बुर्जें गोलाकार हैं, इनके ऊपर सैनिकों के बैठने, तोपे रखने, गोलियाँ चलाने, गरम तेल, गरम पानी डालने के स्थान बने हुए हैं। बुर्ज तथा प्राचीर पर गोल व बेलनाकार पत्थर रखे दिखाई देते हैं। ये पत्थर शत्रु पर बरसाने के काम आते थे।

दुर्ग में एक ही मुख्य द्वार रखने की परम्परा रही है। मुख्य द्वार सहित किले के चार प्रवेश द्वार हैं, अक्षय प्रोल, सूरज प्रोल, गणेश प्रोल (भूताप्रोल), हवा प्रोल (रंगप्रोल) जो अलग अलग काल में बने थे। प्रथम तथा मुख्य प्रवेश द्वार अक्षय प्रोल है[77] जो बाद में बनाया गया था। इस द्वार से प्रवेश कर धनुषाकार, संकरे व घुमावदार मार्ग से आगे बढ़ने पर रामदेव मन्दिर तथा रणछोड़ जी के मन्दिर दिखाई देते हैं, रामदेव मन्दिर के समीप दो कुँए हैं, यह मार्ग सुरक्षा की दृष्टि से बुर्जों व प्राचीरों से घिरा है जो दुर्ग के दूसरे प्रवेश द्वार सूरज प्रोल पर खत्म होता है। सूरज प्रोल प्रारम्भ में दुर्ग का प्रथम प्रवेश द्वार था, इसके आगे बेरीसाल बुर्ज इस तरह बनवाया गया था कि दूर से आने वाले शत्रु को किले का द्वार दिखाई न दे।[78] सूरज प्रोल के बाहर सूर्य मन्दिर है। एक ऊँचे चबूतरे पर गोलाकार सूर्य की प्रतिमा रखी है। मूर्ति के सिर पर मुकुट मिश्र की सभ्यता से प्राप्त सम्राटों की प्रतिमाओं से मिलता जुलता है। सूरज प्रोल से अन्दर चलकर आने पर थोड़ी दूरी पर चढ़ाई तय करने के बाद गणेश प्रोल आता है। इसके पास गणेश जी की प्रतिमा और त्रिशुल की आकृति दीवार में लगाई गयी है। इसकी घूम में बनी प्रोल भूता प्रोल है। इसे भूता प्रोल इसलिए कहा जाता है क्योंकि महारावल लूणकरण के समय अमीर अली से संघर्ष में यहाँ सलखा राजपूत शहीद हुए थे, यहाँ से दुर्गवासी रात्री में जाने से डरते थे तब से इसे भूता प्रोल कहा जाने लगा। भूता प्रोल से

अन्दर जाने पर हवा प्रोल आती है। इसे रंग प्रोल भी कहा जाता है। इस प्रोल के ऊपर सर्वोत्तम विलास व रंग महल बने हुए है।[79] इस मार्ग पर जब राजा का विजय जुलूस निकलने या मांगलिक उत्सव या त्योंहार आदि होने पर राजसी सवारी निकलती तो रंग महल व त्रिपोलिया से जुलूस के ऊपर रंग–गुलाल, फूल बरसाए जाते थे, जिससे इसका नाम रंग प्रोल पड़ा।[80] हवा प्रोल के बाहर अतिथि गृह और नौबत खाने बने हैं। इन नौबत खानों में शहनाई वादक और नक्कारची बैठा करते थे। इस प्रोल में प्रवेश करते ही शीतल हवा दर्शकों की थकावट दूर कर देती है। इसके बाहर महारावल कल्याण दास के राज्य काल का खण्डित गोवर्धन लेख है।[81]

हवा प्रोल से भीतर आने पर एक खुले चौक में आते हैं। इसके सामने राजा रानी के महल बने हैं। यह खुला चौक या मैदान दशहरा चौक है यहाँ मांगलिक उत्सव आयोजित किये जाते थे। इसी में जौहर स्थल भी है जहाँ रानियों ने जौहर किया था। चौक के एक ओर घण्टियाली देवी और खुशालराज राजेश्वरी के मन्दिर बने हैं। इसके दायीं व बायीं तरफ से किले में रहने वाले लोगों के घर व मोहल्ले हैं, इसी बस्ती में जैन मन्दिर बने हुए हैं। सामने राजा का महल है।

राजा का महल अपने भीतर बने कई महलों का समूह है जो तीन मंजिल में बने हुए हैं। महल के मुख्य प्रवेश द्वार पर सतियों के हाथों के छापों की छाप बनी है, इसके ठीक बायीं तरफ एक चबुतरे के बाद सात लम्बी सीढ़ियाँ चढ़कर एक संगमरमर का सिंहासन रखा हुआ है। इसके नीचे दरबारियों के बैठने के स्थान बने हुए हैं जहाँ से चौक में लगने वाले दशहरे मेले का उत्सव देखा जाता था। नीचे गणिकायें, वेश्याएँ आदि गायन–वादन हेतु बैठती थीं। महल के भीतर जाने के लिए मुख्य द्वार से सीढ़ियाँ चढ़ दर्शक एक चौक में पहुँचता है। सामने स्वांगिया देवी का मन्दिर है, यह भाटी राजपूतों की कुल देवी है। चौक के दोनों ओर बनी परसालें टकसाल के रूप में प्रयोग की जाती थीं। चौक के बायीं ओर सीढ़ियाँ चढ़कर प्रथम मंजिल पर जाया जाता है। प्रथम मंजिल की बायीं तरफ हरराज जी का महल है। इस महल के भूतल पर एक ही पत्थर को तराश कर बनायी गयी पानी की टंकियाँ रखी हैं। इस महल से बायीं तरफ चलने पर दीवाने खास महल आता है जो कि अब बन्द है, इसमें फव्वारें लगे हुए हैं तथा दायीं तरफ चलने पर प्रथम मंजिल पर ही शस्त्रागार आता है जिसमें विभिन्न शस्त्र रखे हैं। शस्त्रागार के भीतर दायीं तरफ दीवान खाना है, जिसमें राजाओं के चित्र तथा चाँदी का सिंहासन रखा है। दीवान खाना तथा शस्त्रागार से पुनः बाहर आने पर

सीढ़ियाँ चढ़कर द्वितीय मंजिल पर आते हैं, जहाँ सर्वप्रथम त्रिपोलिया में प्रवेश करते हैं। त्रिपोलिया के बाहर पत्थर का तख्त लगा हुआ है जो उल्टे कमल की आकृति में कलाकृत है। लकड़ी के दरवाजे अलंकृत हैं। इसकी दायीं तरफ एक अभिलेख लगा हुआ है। भीतर प्रवेश करने पर यह कम ऊँचाई का खम्भों वाला हॉल है इसमें 6 खम्भे हैं, बीच के तीन खम्भे ज्यादा मोटे हैं। इस हॉल में वर्तमान में एक चित्र गैलरी है जिसमें विभिन्न शासकों के फोटोग्राफ्स हैं। त्रिपोलिया के झरोखे रंग प्रोल के ऊपर बने हैं जिनसे राजा के राजसी जुलूस पर रंग—गुलाल आदि बरसाये जाते थे। झरोखों पर काँच जड़े तीन गेट होने से इसका नाम त्रिपोलिया रखा गया था।

त्रिपोलिया को पार कर कुछ सीढ़ियाँ चढ़ने पर गज विलास नामक महल आता है। इसमें दायीं तरफ पालकी रखी हुई है, ढाल व अस्त्र रखे हैं, ऊर्दू में लिखा एक अभिलेख है इसके दायीं तरफ राजा का पलंग है साथ में खाने की थाली कटोरी रखी हुई है। इसके बायीं तरफ नरेन्द्र मण्डल व चेम्बर ऑफ प्रिंसेप सहित अन्य फोटोग्राफ्स लगे हैं। इसके मध्य के खुले चौक में नीचे के तरफ भोजनकक्ष के ठीक बाहर की दीवार पर एक अभिलेख खुदा हुआ है। गज विलास से बाहर निकल कर बायीं तरफ कुछ सीढियाँ चढने पर रंग चौक आता है। इसका लकड़ी का गेट काला, छोटा तथा अलंकरण रहित है। रंग चौक में मध्य में संगमरमर के उल्टे कमल के आकार में बने पात्र में एक फव्वारा लगा है। यहाँ रानी राजा परिवार सहित रंग खेलते थे। इस चौक के बायीं तरफ अखे विलास है। इसमें एक लकड़ी का घोड़ा है, लकड़ी के घोड़े के पास कुछ छतरियाँ हैं। इस कक्ष के भीतर दायीं तरफ मूर्ति कक्ष है, इसमें पौराणिक प्रसंगों की देव मूर्तियाँ रखी गयी है।

रंग चौक से ऊपर की तरफ चढने पर तीसरी मंजिल पर दीवाने आम नामक महल है। इस कक्ष के झरोखे के रंगीन काँच जड़ित तीन द्वार हैं। इसमें जमीन पर गद्दा व मसंद लगी है। इसके पीछे लकड़ी की तरह दिखाई देने वाला डिजायनदार पत्थर का गेट एक ताख पर लगा है। इससे बाहर निकल कर दायीं तरफ कुछ सीढ़ियाँ चढ़कर महल की छत पर जाया जा सकता है। यहाँ पर धूप घड़ी व सोलर यंत्र बने हुए हैं। छत से वापस नीचे उतरने पर बायीं तरफ सर्वोत्तम विलास है। इसकी दीवारों पर नीली टाइलनुमा डिजायन है। कक्ष में पलंग व सोफे रखे हैं। थाली, कटोरी, गिलास व स्टूल हैं। 7 फीट की राजा की ड्रेस है। आरती उतारने की थाली सजी हुई है। सर्वोत्तम विलास से बाहर निकल कर सामने की तरफ थोड़ा नीचे उतरने पर गणगौर माता का

मन्दिर है। कक्ष से बाहर निकलने पर उदय विलास आता है। इसके छोटे चौक में किले का नक्शा पत्थर पर बनाया गया है।

उदय विलास से नीचे उतरने पर महारानी कक्ष या हेतु विलास है, इसमें गद्दे तकिये आदि लगे हुए हैं। इससे जुड़े कक्ष में झरोखे बने हुए हैं जिससे रानी राजा को आते–जाते देख सकती थी। हेतु विलास से बाहर निकलने पर एक खुली गैलरी आती है इसमें लोक संगीत कक्ष, आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट ट्रेनिंग सेन्टर आदि बने हुए हैं। इसके आगे एक बन्द गैलरी है इसकी आमने–सामने की दीवारों पर आधुनिक फोटोग्राफ्स लगे हुए हैं। इस गैलरी के आगे अनूप महल है। यह महल वर्तमान में बन्द है। इससे नीचे उतर कर महल से बाहर निकला जा सकता है।

महलों से बाहर निकलकर बायीं तरफ चलने पर एक अन्य द्वार से दीवाने खास महल में प्रवेश किया जा सकता है। इस स्थान को पहले अमर बाग कहते थे। महारावल अमरसिंह ने अमर महल और अमर बाग बनवाया था। इसके बाद यहाँ महारावल अखेसिंह ने मोती महल बनवाया था। मोती महल की दीवारों पर कृष्ण लीला, मल्लयुद्ध, हाथियों की लड़ाई तथा अन्य गणिकाओं के चित्र दर्शनीय हैं। यहाँ बायीं ओर विशाल पीले पत्थर पर शिलालेख लिखा है, जो महारावल मूलराज के समय बने महलों, बागों और भवनों की जानकारी देता है।[83]

7.2.7 दुर्ग के जल स्रोत

विषम जलवायु परिस्थिति व जल की अत्यधिक कमी वाले क्षेत्र में निर्मित किसी दुर्ग के लिए विश्वसनीय, बारहमासी तथा सदानीरा जल स्रोत ढूँढ़ना किसी चुनौती से कम नहीं था, जबकि उस काल में आधुनिक संसाधन, अभियांत्रिकी व तकनीकी ज्ञान–कौशल की कमी थी किन्तु दुर्ग निर्माताओं व वास्तुकारों ने इस समस्या का हल निकाल लिया था। जैसलमेर के बड़े बुजूर्ग बताते हैं कि किसी स्थान पर बस्ती बसाने, छोटी गढ़ी या दुर्ग बनाने, सैन्य चौकी बनाने से पहले पानी का स्थान देखा जाता था। पानी ढूंढने, कुँआ व तालाब का स्थान चयन करने का काम पानी वाले विद्वान करते थे, जिन्हें 'हरवा', गजधर, बुलई, रामनामी आदि कहा जाता था। इस क्षेत्र के विद्वान पानी की खोज के लिए परम्परागत ज्ञान के आधार पर वृक्ष के समीप उगी बेल की लम्बाई व रंग को देख कर बता देते थे कि इस स्थान पर पानी कितना व कितनी गहराई पर है, पानी खारा है या मीठा है।[84] इन्हीं विद्वानों की राय से दुर्ग के जल स्रोत विकसित किये

गये थे।

दुर्ग के जल स्रोतों के अन्तर्गत दुर्ग के बाहर पहाड़ी की तलहटी में एक बड़ा तालाब तथा दुर्ग के भीतर सात पातालतोड़ कुँए प्रमुख थे। इनसे किले को सतत् जल की प्राप्ति होती थी चाहे कुछ वर्ष बारिश ना हो तो भी।

7.2.7.1 घड़सीसर तालाब

दुर्ग के जल स्रोतों में सर्वप्रमुख नाम घड़सीसर का ही आता है। जैसलमेर नगर के पूर्व द्वार पर दुर्ग के प्रवेशद्वार अखेप्रोल से बाहर निकलकर सामने की ओर सालिम सिंह की हवेली से होते हुए बायीं तरफ चलने पर दुर्ग से एक कोस दूरी पर घड़सीसर तालाब स्थित है। स्थानीय लोग इसे घड़ीसर भी कहते हैं। यह कृत्रिम तालाब है जिसका निर्माण जैसलमेर के महाराजा महारावल घड़सी ने वि.स. 1396 में कराया था।[85] इसमें जल की आवक वर्षा जल संग्रहण प्रणाली (रेन वाटर हारवेस्टिंग सिस्टम) से होती है। कहते है कि घड़सीसर नहीं होता तो जैसलमेर नहीं होता या सोनारगढ़ नहीं होता। यह एक मात्र तालाब नहीं था बल्कि जैसलमेर निवासियों की जीवन रेखा (लाईफ लाईन) थी।

सरोवर के किनारे अनेक घाट बने हैं, जो विभिन्न जाति–समुदाय के लागों के लिए जल भरने हेतु बनाये गये थे। राजस्थान में वर्ण व्यवस्था व वर्ग भेद जैसे सामाजिक नियम प्राचीन काल से चले आ रहे हैं। इन नियमों के अन्तर्गत अलग–अलग जाति व वर्ण के व्यक्तियों के लिए तालाब से पानी भरने व नहाने के घाट अलग–अलग बनाये जाने की परम्परा रही है। घड़सीसर के चारों तरफ इस तरह के घाट इसी सामाजिक नियमावली का परिणाम है। घड़सीसर के इन घाटों पर घटोइया बाबा के साथ–साथ लोक देवताओं व पौराणिक देवों के छोटे–बड़े देवालय भी नजर आते हैं, ये देवालय इन घाटों का उपयोग करने वाले जाति समुदाय के व्यक्तियों के आस्था स्थल हैं। सरोवर के किनारे अनेक कलात्मक व अलंकृत छतरियाँ भी दर्शनीय हैं। इन छतरियों को राजपरिवार, सामन्त व स्थानीय व्यक्तियों द्वारा अपने पूर्वजों की याद में बनाया गया था। इन छतरियों पर बैठ कर भरी गर्मी में भी शीतल हवा का आनन्द लिया जा सकता है। आज भी विदेशी के साथ–साथ भारतीय पर्यटक भी इन छतरियों पर बैठ कर मंत्रमुग्ध हो जाता है। सरोवर के किनारों पर अनेक मन्दिर तथा बगीचियाँ बनी हुई हैं। धर्मावलम्बी मन्दिरों में भजन कीर्तन, बगीची में विश्राम तथा गोठ, संगोष्ठियाँ, मुण्डन संस्कार, क्रियाकर्म आदि करते हैं। सरोवर के जल से मन्दिरों में देवताओं का अभिषेक

करते हैं। सरोवर के मध्य मार्ग पर एक विशाल गेट बना हुआ है। इसे टीलो की प्रोल कहा जाता है। टीलो एक वैश्या होने के साथ एक धर्मपरायण महिला भी थी।[86] इसी ने सरोवर के मार्ग पर यह द्वार बनवाया था। जब यह द्वार बन गया तो महारावल शालिवाहन को किसी ने कहलवाया कि धार्मिक महत्त्व के इस सरोवर तक जाने के लिए एक वैश्या के द्वार के नीचे हो कर जाना राजपरिवार के लिए शोभायमान नहीं होगा। अतः शालिवाहन ने इसे तुड़वाने का आदेश दे दिया। टीलों ने किसी के परामर्श पर गेट के ऊपर भगवान सत्यनारायण की मूर्ति पधरा दी फलस्वरूप प्रोल टूटने से बच गयी।

सरोवर की पाल 8 कि.मी. लम्बी है तथा आगौर कई कि.मी. दूर के वर्षा जल की एक–एक बून्द को समेट कर तालाब में भर देने में सक्षम है। सरोवर के मध्य अनेक जल मण्डप बने हुए हैं। इन जल मण्डपों का भी अपना ही अलग महत्त्व है। ये सरोवर में जल की मात्रा बताने वाले पैमाने थे। मुख्य मार्ग से बायें हाथ की ओर से सरोवर के मध्य बने छतरी वाले जल मण्डप में सरोवर के तल पर बीस चौकोर खम्भे हैं इनके ऊपर जालीदार चबुतरे पर आठ खम्भो वाली छतरी बनी हुई है, इस छतरी तक जाने के लिए एक तरफ सीढ़ियाँ बनायी गयी हैं। एक अन्य जल मण्डप कई खम्भों वाले आधार पर एक मकाननुमा खण्डहर बना हुआ है। कहा जाता है कि शासन के वर्चस्व काल में यहाँ राजपरिवार व सामन्त, मंत्रियों आदि की संगोष्ठी व राजनैतिक परिचचाएँ हुआ करती थीं।

7.2.7.2 कुँए

दुर्ग के भीतर जल प्राप्ति का प्रमुख एवं विश्वसनीय स्रोत दुर्ग के भीतर बनाये गये कुँए थे। ये कुँए सदानीरा तथा पाताल तोड़ थे। दुर्ग के भीतर कुल सात कुँए थे। प्रथम कुँआ किले के मुख्य द्वार के पास, द्वितीय रामदेव मन्दिर के पास, तीसरा एवं सबसे महत्त्वपूर्ण कुँआ किले की बस्ती के भीतर अन्नपूर्णा भण्डार के सामने स्थित जैसलू कूप, चौथा कुँआ जैन मन्दिर के पास व्यास पाड़ा मौहल्ले में बिल्ला कुँआ, पाँचवा व छठा कुँआ लक्ष्मीनाथ जी मन्दिर के पास कुण्ड पाड़ा मौहल्ले में तथा सातवां कुँआ किले के बाहर किन्तु समीप ही रिंग रोड़ पर स्थित है।[87] इनमें से पाँच कुँए प्राकृतिक थे तथा सागरू कूप कहलाते थे। सागरू कूप से तात्पर्य है भाटियों के पूर्वज राजा सगर द्वारा खुदवाये गये। ये सागरू कूप क्रमशः कोटड़ी पाड़ा, लधा पाड़ा, व्यास पाड़ा तथा रामदेव जी के मन्दिर के पास स्थित थे।

प्रथम कुँआ किले के मुख्य प्रवेश द्वार अखे प्रोल के समीप स्थित है। यह प्राचीन

कुँआ है, इसकी गहराई असीमीत है अर्थात पाताल तोड़ कुँआ है। इसका पानी कभी नहीं सूखता है। बरसात के दिनों में इसमें पानी का तल ऊपर तक आ जाता था। वर्तमान में इसे ऊपर से ढँक दिया गया है, इसका पानी भी उपयोग में नहीं लिया जाता है।

रामदेव मन्दिर के समीप स्थित द्वितीय कुँआ उपयोग के अभाव में ढँक दिया गया है। यह मन्दिर के मुख्य द्वार के बायीं ओर स्थित है। विद्वान बताते है कि इस कुँए का पानी मन्दिर बनने से पूर्व इसके समीप के बुर्ज एवं प्राचीरों तथा सूरज पोल पर तैनात सैनिकों के पीने व अन्य दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में काम आता था।

तृतीय कुँआ दुर्ग का सबसे महत्त्वपूर्ण कुँआ है। यह जैसलू कूप है। इसके सम्बन्ध में एक किंवदन्ति प्रचलित है कि इस कूप को भगवान श्री कृष्ण ने अपने मित्र अर्जून की प्यास बुझाने के लिए सुदर्शन चक्र से खोदा था। समस्त इतिहासकार इस किंवदन्ति का उल्लेख करते है तथा कहते है कि इसी कूप के कारण इस पहाड़ी पर राजा जैसल ने दुर्ग निर्माण कराया तथा उन्हीं के नाम पर इस कुँए का नाम जैसलू कूप पड़ा। जैसल द्वारा दुर्ग निर्माण कराने के बारे में एक कथा प्रचलित है कि एक बार जैसल ने 120 वर्ष के बूढ़े 'ईसा' नामक पुष्करणा ब्राह्मण को तपस्या करते देखा तो जाकर उन्हें प्रणाम किया और राज्य का आशीर्वाद मांगा। ब्राह्मण राजा को गोरहरा नामक त्रिकूट पहाड़ी पर ले गया और एक जलकुण्ड को दिखाते हुए कहा कि इसे भगवान श्री कृष्ण ने अर्जून की प्यास बुझाने के लिए अपने सुदर्शन चक्र से निर्मित किया था, साथ ही यह भविष्यवाणी भी की थी कि किसी काल में चन्द्रवंश में मेरे यदुकुल से एक राजा यहाँ विशाल दुर्ग बनवायेगा। अजीत सिंह मेहता अपने भाटीनामा में लिखते है कि जब पुष्करणा ब्राह्मण ईसा ने रावल जैसल को त्रिकूट पर्वत पर बने भगवान श्री कृष्ण द्वारा निर्मित कूप के बारे में बताया तथा समीप ही एक भविष्यवाणी वाली शिला बतायी तो जैसल ने तुरन्त ही यहाँ दुर्ग बनाने का निर्णय ले लिया। अतः दुर्ग निर्माण का कारण बनने व श्री कृष्ण द्वारा निर्मित होने से इस कुँए का महत्त्व बढ़ गया जो आज भी यथावत है। इस कुँए का पानी दुर्ग वासी व राजपरिवार उपयोग लेता था। कहा जाता है कि सोनारगढ़ के सभी शासक व रानियाँ इसी का पानी पीते थे। कुँए के पास एक पाषाण स्तम्भ गड़ा है जिस पर एक अभिलेख खुदा हुआ है, इस अभिलेख का जैसलू कूप से कोई सम्बन्ध नहीं है यह लक्ष्मीनाथ जी मन्दिर के समीप के कुँओं से सम्बन्धित लेख है। कालान्तर में जैसलू कूप से पानी निकासी हेतु महारावल जवाहर

सिंह ने एक मशीन, पत्थरों की चौकी तथा लोहे के बीम लगवाये, जो आज भी देखे जा सकते हैं।

चतुर्थ कुँआ व्यास पाड़ा मौहल्ले में बिल्ला कुँआ है। बिल्ला का तात्पर्य उच्च वर्ग वाला। यह दुर्ग के भीतर की बस्ती के ब्राह्मणों के मौहल्ले में स्थित है। शासन के वर्चस्व काल में यह कुँआ बस्ती के व्यास मौहल्ले का प्रमुख पेयजल स्रोत था किन्तु बाद में उपयोग के अभाव में इसे ढँक दिया गया, साथ ही आस–पास नये घर, गली, चबुतरें, बरामदें, झरोखे बना लिये गये। जिससे कुँए का अस्तित्व समाप्त सा हो गया है केवल नाममात्र के अवशेष ही नजर आते हैं।

किले का पाँचवा व छठा कुँआ लक्ष्मीनाथ जी मन्दिर के पास स्थित है। इन कूपों के सम्बन्ध में एक पाषाण स्तम्भ लेख लक्ष्मीनाथ जी के मन्दिर के पास गड़ा हुआ था, जिसे स्थानान्तरित करके जैसलू कूप के पास गाड़ दिया गया।[88] यह स्तम्भ लेख बताता है कि श्री लक्ष्मीनाथ जी मन्दिर व मन्दिर के नीचे हनुमान चौकी के समीप बने एक कूप की प्रतिष्ठा महारावल लक्ष्मण के पुत्र महारावल वैरसी ने 1494 संवत् की माघ शुक्ला षष्ठी के दिन करायी। इस कूप का नाम राणीसर है। इस कूप के पास 10 फुट की दूरी पर एक और कूप बना हुआ है जिसका नाम हरजालू कूप है। इसे भाटियों के गुरू हरजाल पालीवाल ने बनवाया था। यह हरजालू कूप राणीसर से पहले का बना हुआ है। इसके सम्बन्ध में एक घटनाक्रम है कि एक बार महारावल वैरसी की पुत्री की दासी हरजालू कूप आयी और राजकुमारी के लिए जल्दी पानी भरने को कहने लगी तब पालीवालों ने कहा कि बाई सा को पानी की इतनी जल्दी है तो अपने लिए एक नया कूप खुदवा ले। इस ताने से नाराज होकर राजकुमारी ने पिता वैरसी से कह कर उक्त राणीसर कूप खुदवाया जो रानी के नाम से ही राणीसर कहलाया।[89]

सातवां कुँआ कोटड़ी पाड़ा मोहल्ले में रानी महल के समीप स्थित है। इस मोहल्ले में रहने वाली प्रजा इसका पानी उपयोग में लेती थी। इसे भी अब ढँक दिया गया है तथा इसका पानी उपयोग में नहीं लिया जाता है।

7.2.8 जल स्रोतों की विश्वसनीयता

किले के सभी कुँए किले में जल प्राप्ति के विश्वसनीय स्रोत थे। ये पाताल तोड़ कुँए थे इनमें कभी जल की कमी नहीं आती थी, ये बारह मास जल दायी थे। नन्द किशोर शर्मा जी बताते है कि किले की पहाड़ी के नीचे वैदिक नदी सरस्वती की भू

गर्भिक धारा प्रवाहित है।[90] पहाड़ी से खोदे गये कूप सरस्वती की जलधारा से मिल कर पातालतोड़ तथा सदानीरा बन जाते थे। यही कारण है कि किले पर लम्बे–लम्बे कई घेरों पर भी किले में जल की कोई कमी नहीं आयी।

किले की पहाड़ी की तलहटी में स्थित घड़सीसर तालाब भी किले का विश्वसनीय जल स्रोत था। तालाब का पानी किले में पहुँचाया जाता था। यह तालाब सदा नीरा था, इसके निर्माण से लेकर आज तक इसमें कभी पानी समाप्त नहीं हुआ, चाहे राजस्थान में कितने भी अकाल पड़े, वर्षा कितनी भी कम हो। इसका आगोर कई किलोमीटर लम्बा था तथा यह क्रमागत 9 तालाबों से जुड़ा हुआ था। इसका अतिरिक्त पानी कभी व्यर्थ नष्ट नहीं होता था जिसे दूसरे तालाबों में भर लिया जाता था। इस प्रकार यह संकटकाल के अतिरिक्त वर्ष भर दुर्ग में जल आपूर्तिकर्ता स्रोत था। इसके लिए यह भी कहा जाता है कि जब दुर्ग को बाह्य आक्रमणकारी घेर लेते थे तो दुर्ग के कुँए दुर्ग वासियों की तथा यह तालाब आक्रमणकारी सेना की प्यास बुझाता था। इस जलाशय की विश्वसनीयता व महत्त्व का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि इसकी पाल पर बनायी गयी स्थायी चौकी में सदैव राजसी सेना तैनात रहती थी जो तालाब की स्वच्छता, शुद्धता व पवित्रता बनाये रखने के साथ–साथ तालाब में पानी भरने आने वाली जनता की सुरक्षा करती थी। ज्ञातव्य है कि यह तालाब पूरे जैसलमेर वासियों का प्रमुख जल स्रोत था तथा यहाँ सात कोस दूर से भी सभी जाति समुदाय की पणिहारिणें पानी भरने आती थीं, जिनकी सुरक्षा करना शासक वर्ग का दायित्व था। यही कारण है कि यहाँ सेना तैनात की गयी।

7.2.9 जल स्रोतों से जल प्राप्ति प्रणाली

दुर्ग में दो प्रकार के जल स्रोत थे, प्रथम घड़सीसर तालाब तथा द्वितीय दुर्ग के कुँए। इन स्रोतों से जल प्राप्ति हेतु विशिष्ट प्रणाली विकसित की गयी थी।

घड़सीसर किले की पहाड़ी की तलहटी में किले से 1 कोस दूर स्थित है। जैसलमेर जैसे मरूस्थलीय नगर में जल स्रोत की 1 कोस की दूरी कोई मायने नहीं रखती, उस समय कई–कई कोस दूर से पानी लाया जाता था। दिन का एक प्रहर व अधिकांश ऊर्जा पानी लाने में नष्ट हो जाती थी। घड़सीसर से पानी ऊँटों, बैलों, श्रमिकों व महिलाओं के सिर पर मटकों के माध्यम से दुर्ग में लाया जाता था। जिसे दुर्ग में विभिन्न जल संग्राहकों में भर लिया जाता था। घड़सीसर से दुर्ग तक का मार्ग जल

प्राप्ति हेतु विशेष रूप से विकसित कराया गया था। बड़े बुजूर्ग बताते हैं कि जो मार्ग वर्तमान में दुर्ग के अखेप्रोल से निकलकर सालिम सिंह की हवेली की तरफ वाले मार्ग पर चलकर थोड़ा आगे से बायीं तरफ मुड़ कर मुख्य सड़क को पार कर थोड़ा चढाई चढ़कर टीलों की प्रोल से निकलकर घड़सीसर तालाब के घाट तक जाता है, वहीं मार्ग रियासत काल में सरोवर से दुर्ग में जल ले जाने वाला मार्ग था। यह मार्ग दो समानान्तर भागों में बँटा था, मार्ग के दायीं तरफ ऊँट, बैल, घोड़े आदि जानवरों की पीठ पर चमड़े के थेलों में तथा बायीं तरफ श्रमिक व महिलाऐं अपने सिर पर मटकों में जल भर कर ले जाती थी। यह प्रक्रिया सैंकड़ों वर्षों तक चलती रही, 1965 तक भी तालाब से दुर्ग में इसी प्रकार जल ले जाते देखा गया था। बाद में इन्दिरा गाँधी नहर आने तथा घर–घर नल लग जाने से तालाब तक पणिहारिणों की आवाजाही लगभग समाप्त हो गयी।

इसी प्रकार दुर्ग के कुँओं से जल प्राप्ति हेतु जल उत्थान प्रणाली अपनायी गयी थी। यहाँ के सभी कुँओं के सूक्ष्म अवलोकन से प्रतीत होता है कि जल उत्थान हेतु यहाँ के कुँओं का पारा कुछ ऊपर उठा कर उसके चारों तरफ एक चबुतरा बना दिया जाता था, इसके समीप ढाना तथा टैंक भी बनाया जाता था। एक लोहे की गर्डर या बीम कुछ तिरछी गाड़ दी जाती थी जो कुँए के मुख्य घेरे के ऊपर आधी आ जाती थी या कुँए के ठीक ऊपर आड़ी लगा दी जाती थी इस पर लोहे या लकड़ी की चकली लगा दी जाती थी। इस चकली पर बैलों द्वारा लाव चड़स के माध्यम से या महिलाओं द्वारा रस्सी से पानी खींचा जाता था। वर्तमान में बिल्ला कुँआ, राणीसर, व हरजालू कूप में इसी तरह का चबूतरे तथा आड़ा पत्थर देखा जा सकता है इसी तरह जैसल कूप पर लोहे की गर्डर व लोहे की चेन देखी जा सकती है। जो कुँओं से जल खींचने की प्रणाली को दर्शाती है। दुर्ग निवासी मयंक जी बताते है कि व्यास पाड़ा मौहल्ले के बिल्ला कुँए का पानी वर्तमान में कूप के सामने बनी गली में जानवरों द्वारा खींचा जाता था, यह गली ही इस कुँए की सारन थी।

7.2.10 जल संग्रहण व्यवस्था

दुर्ग पर लम्बे घेरे पड़ते रहते थे अतः संकटकालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर दुर्ग में लम्बे समय तक जल को संग्रहित रखने की व्यवस्था की गयी थी। इस हेतु टांके, माटे, पाषाण टंकियाँ, बर्तन व कुण्डियों का उपयोग किया गया।

7.2.10.1 टांके

जल संग्रहण हेतु सर्वाधिक प्रयुक्त साधन टांका था। दुर्ग सहित सम्पूर्ण जैसलमेर में अनेक प्राचीन टांके आज भी जल संग्रहण का कार्य करते है। ये महल के भीतर, किले की बस्ती, हवेलियों, मकान के भीतर आदि स्थानों पर बने हुए हैं। इन टांकों में बरसात का पानी एकत्रित होता था जिसे पीने हेतु उपयोग लिया जाता था। दुर्ग के अनेक टांके वर्तमान में उपयोग के अभाव में मिट्टी से भर दिये गये अथवा समय की मार से नष्ट हो गये। लक्ष्मीनाथ जी मन्दिर के पास एक बड़ा टांका था जो कि अब नष्ट हो गया है।

7.2.10.2 माटे

दुर्ग के भीतर महलों तथा बस्ती में अनेक माटे देखे जा सकते है। माटे एक ही पत्थर को तराश कर विशेष ज्यामिति में गोलाकार घड़े के रूप में बनाये जाते थे। ये एक प्रकार के मटके ही है, इनमें तथा परम्परागत मटकों में इतना ही अन्तर है कि मटके मिट्टी के तथा माटे पत्थर के होते थे। इनमें घड़सीसर या कुँओं से लाया पानी भर दिया जाता था, जो पेयजल हेत उपयोग लिया जाता था। जैसलमेर में पानी की कमी थी इसलिए पानी की एक–एक बूँद बचाना आवश्यक था। परम्परागत मिट्टी के घड़ों की बाहरी सतह से पानी वाष्पीकृत हो जाता है किन्तु पत्थर के माटों का पानी वाष्पीकृत नहीं होता तथा विशेष ज्यामितिय संरचना के कारण इनमें भरा गया पानी ठण्डा भी रहता है। इनकी बाहरी सतह चिकनी है जो सूर्य की किरणों को परावर्तित कर देती है जिससे माटे की बाहरी सतह गरम नहीं होती तथा उष्माचालन न होने से भीतर के पानी का तापमान स्थिर बना रहता है। इनके ऊपर का मुँह संकरा है, मुँह पर मटके के समान रिंग भी बनायी गयी है दूर से ये बड़े घड़े के समान दिखाई देते है।

किले के भीतर माटे महाराजा के महल के मुख्य द्वार, हरराज महल, महारानी महल, दुर्ग के मन्दिरों तथा बस्ती के मकानों में देखे जा सकते हैं।[91]

7.2.10.3 अन्य बर्तन

दुर्ग के महलों में जैसे गजविलास, सर्वोत्तम विलास, हेतु विलास तथा दुर्ग की बस्ती के मकानों में पुराने परम्परागत बर्तन देखे जा सकते हैं। गज विलास महल में गिलास, ताम्बे के चरे, धातु की टोंटीदार गोल टंकी, पानी निकालने का डण्डीदार लौटा आज भी रखे हुए है। ये बर्तन भोजन करने, पानी पीने व पिलाने, हाथ धोने, स्नान

करने, खाना पकाने, परोसने के साथ साथ स्नान व शोच जैसे दैनिक कार्यों में प्रयुक्त किये जाते थे।

7.2.10.4 पानी की टंकियाँ

दुर्ग में स्थान–स्थान पर एक ही पत्थर को तराशकर बनायी गयी टंकियाँ देखी जा सकती है। महाराजा के महल के मुख्य चौक, हरराज महल के भूतल, दुर्ग की बस्ती के घरों, हवेलियों आदि स्थानों पर ये आज भी रखी हुई हैं। इन्हें कुँओं व सरोवर के जल से भर लिया जाता था तत्पश्चात् स्नान करने, जानवरों को पानी पिलाने आदि में काम लिया जाता था। विद्वान कहते है कि इनमें घी भी भरा जाता था।[92]

7.2.10.5 कुण्डियाँ

कुण्डी एक ही पत्थर को तराश कर बनायी जाती थीं। कुण्डी का उपयोग कई तरह से होता था। जब महिला स्नान करती थी तो कुण्डी या खाडिया के पानी निकासी के मोखे पर अपना कपड़ा लगा देती थी। नहाने के बाद बचा हुआ पानी जानवरों के पीने या आँगन में छिड़काव करने के काम लिया जाता था। यह पानी की एक–एक बून्द बचाने जैसा था। पहले प्रत्येक घर के बाहर कुण्डियाँ रखते थे, जैसलमेर के कई घरों के बाहर आज भी कुण्डियाँ नजर आती है। इसमें घरेलू उपयोग से बचा हुआ पानी भर दिया जाता था जिसे जानवर पी लेते थे।

7.2.11 जल का उपयोग

सोनारगढ़ दुर्ग में जल स्रोतों से प्राप्त जल को कई कार्यों में उपयोग लिया जाता था।

7.2.11.1 पेयजल व अन्य दैनिक कार्यों हेतु

दुर्ग के सभी जल स्रोत तथा घड़सीसर तालाब में से ऐसा कोई जल स्रोत नहीं था जिसका जल पीने योग्य न हो, खारा या भारी हो। सभी के जल का सर्वाधिक उपयोग पीने व भोजन पकाने हेतु किया जाता था। इसके अतिरिक्त इनका जल अन्य दैनिक कार्यों यथा शौच, स्नान आदि के लिए भी प्रयुक्त होता था। भगवान श्री कृष्ण द्वारा जैसलू कूप को बनाये जाने के कारण इस कुँए के पानी को अमृत समान मानकर केवल पीने व भोजन पकाने के ही काम लिया जाता है। ज्ञातव्य है कि किले के जल स्रोतो का जल पेयजल के लिए कभी कम नहीं पड़ा।

7.2.11.2 सैन्य उपयोग

किले में एक बड़ी सेना सदैव तैनात रहती थी। इतनी बड़ी सेना के लिए जल की उपलब्धता सुनिश्चित करना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य था। किले के सात कुँए तथा घड़सीसर (संकटकाल के अतिरिक्त) सेना को जल आपूर्ति करते थे। किले में तैनात सैना के लिए कभी कुँओं का जल कम नहीं पड़ा।

7.2.11.3 उद्यान, बाग–बगीचे

जैसलमेर में पानी की कमी सदैव रही है। यहाँ उद्यान, बाग–बगीचे लगाना एक दुष्कर कार्य था किन्तु दुर्ग के शासकों व निवासियों ने अनेक छोटे–छोटे उद्यान लगा रखे थे। दीवाने खास में एक उद्यान के चिन्ह देखे जा सकते हैं। इनमें छोटे पौधे, फुलवारी, घास आदि लगायी गयी थीं। इस उद्यान में जलापूर्ति घड़सीसर तालाब से होती थी। घड़सीसर तालाब जो कि किले से सम्बन्धित था, के समीप भी बगीचियाँ लगायी गयी थी।

7.2.11.4 कृषि कार्य

दुर्ग के भीतर बस्ती है जहाँ पुराने निवासी रहते हैं, उनके मकान, दुकान, खेत आदि हैं। दुर्ग में सेना सहित राजा व उसका परिवार रहता था। किले पर आक्रमणकारियों के लम्बे घेरे के समय किले के निवासियों को भोजन सामग्री के लिए किले के भीतर के खेतों पर निर्भर रहना पड़ता था। किले के भीतर अनेक खेत थे जिनमें अलग–अलग फसले ऋतु के अनुसार बोयी जाती थीं। इन खेतों में जलापूर्ति किले के कुँओं से की जाती थी।

7.2.11.5 अश्वशाला

सोनारगढ़ दुर्ग एक सैन्य दुर्ग था। सैनिकों, राजकुमारों, राजा, सामन्तों आदि के घोड़ों व अन्य युद्धोपयोगी जानवरों को रखने के लिए एक अश्वशाला थी। यह अश्वशाला या पायगा चौगान मौहल्ले की तरफ जाने वाले मार्ग पर बनी थी। यहाँ के घोड़ो व जानवरों को पेयजल की आपूर्ति किले के कुँओं से की जाती थी। स्थानीय निवासी बताते है कि कुँओं से अश्वशाला तक जल ले जाने के लिए छोटी नहरें या धोरें बने हुए थे।

7.2.11.6 फव्वारें

महल के एक भाग दीवाने खास के उद्यान में फव्वारें लगे हुए थे। अब ये फव्वारें नष्ट हो गये है इनके टूटे–फूटे अंश आज भी देखे जा सकते है। इन फव्वारों को कुँओं एवं घड़सीसर के जल से चलाया जाता था। फव्वारों के बीचों बीच एक कुण्ड है तथा कुण्ड के चारों तरफ पत्थर को तराशकर बनायी गयी जालीदार नालियाँ हैं। फव्वारों से चारों तरफ गिरने वाला जल इन नालियों में गिर कर बीच के कुण्ड में आ जाता था जो पुनःचक्रित हो जाता था। दुर्ग में पानी की कमी थी इसलिए फव्वारें कम ही उपयोग में लिये जाते थे। उद्यान में किसी त्योहार, मांगलिक उत्सव, जन्म दिवस, राज्यारोहण, विशिष्ट अतिथि के आगमन पर ही फव्वारें चलाये जाते थे। पत्थर की कुण्डियों में पानी भर दिया जाता था, कुण्डियों के मोखे का डाट हटाने पर पानी पूरे वेग से बाहर आता था तथा फव्वारें चलते थे।

7.2.11.7 नौका विहार

यद्यपि घड़सीसर किले से 1 कोस दूर है किन्तु किले में जल प्राप्ति का प्रमुख स्रोत होने से यह किले से ही सम्बन्धित था। यह सदा जल से परिपूर्ण रहने वाला तालाब है। इसमें नौकायन की व्यवस्था की गयी थी। यहाँ राजपरिवार व आगुन्तक अतिथि नौकाविहार का आनन्द लेते थे।

7.2.11.8 धार्मिक व मांगलिक उत्सव

हिन्दू धर्म में प्रत्येक धार्मिक व मांगलिक उत्सवों के दौरान कुँआ पूजने, जल से संकल्प लेने, अनुष्ठान, यज्ञ, हवन आदि से पूर्व पवित्र जल से स्नान करने का विधान है साथ ही जल स्रोतों यथा तालाब, झील, नदी, कुँओं आदि के समीप धार्मिक उत्सव, संस्कार, मांगलिक कार्य परम्पराएँ व रीति–रिवाज पूरे करने की भी प्रथा है।

चूँकि जैसलू कूप के सम्बन्ध में मान्यता है कि इसे श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र से बनाया था। अतः इस कुँए का धार्मिक महत्त्व है। इसी प्रकार लक्ष्मीनाथ जी मन्दिर के समीप के दोनों कुँए व रामदेव जी मन्दिर के समीप के कुँए सम्बन्धित मन्दिरों में धार्मिक कार्यों में जल प्राप्ति के स्रोत थे। किले के बाहर का घड़सीसर तालाब दुर्गवासियों के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण जैसलमेर व आसपास के गाँवों के निवासियों के लिए भी धार्मिक आस्था का केन्द्र रहा है। सरोवर के पवित्र जल से स्नान करना, देवताओं को जल चढ़ाना, इसके किनारे हवन, पूजा–पाठ, आचमन, पितरों को तर्पण, अस्थि विसर्जन,

जडूले उतारने, नवविवाहितों को ढोक दिलाने आदि की परम्पराएँ वर्षों से चली आ रही हैं।

7.2.11.9 खाई

वर्तमान में किले के बाहर कोई खाई नहीं है। इतिहासकार नन्दकिशोर शर्मा बताते है कि दुर्ग की प्राचीरों के समीप व बाहर एक खाई बनवायी गयी थी। अब यह खाई नष्ट हो चुकी है किन्तु सल्तनत काल में मौजूद थी। यह सदा जल से परिपूर्ण रहती थी अर्थात इसमें जल का उपयोग किले को सामरिक सुरक्षा प्रदान करने में किया गया था। खाई के अस्तित्व को लेकर विद्वानों में मतभेद है।

7.2.12 जल वितरण प्रणाली

किले में किसी स्पष्ट जल वितरण प्रणाली का अभाव है। यद्यपि कुछ कुँओं के समीप जल वितरण हेतु छोटी नहरें व धोरें बनाये गये थे किन्तु अब वे समय के साथ नष्ट हो चुके हैं। अतः उनके सम्बन्ध में कुछ भी कह पाना सम्भव नहीं है। बिल्ला कुँए तथा राणीसर कुँए से सारण चलती थी, इस सारण से खींचा गया पानी समीप के किसी कुण्ड या टेंक में चला जाता होगा जो विभिन्न नालियों व धोरों के माध्यम से किले के विभिन्न स्थानों तक पहुँचाया जाता होगा।

इसके अतिरिक्त किले के विभिन्न महलों, देवालयों, भवनों आदि में जल सेवकों, दास–दासियों, पणिहारिणों के माध्यम से पहुँचाया जाता था। इस कार्य में जानवरों की भी मदद ली जाती थी। राणीसर कुँए का प्रसंग बताता है कि महारावल वैरसी की पुत्री के लिए उसकी दासी हरजालू कूप का पानी भरने गयी थी, स्पष्ट है कि जल वितरण का कार्य दास–दासियाँ ही करती थी। जैसलमेर के बड़े बुजुर्ग बताते है कि घड़सीसर से पणिहारिणों के सिर पर तथा जानवरों की पीठ पर लाद कर जल किले के भीतर पहुँचाया जाता था। जिन्हें महलों में रखे माटों, टोंटीदार बर्तनों व टेंकों में संग्रहित कर लिया जाता था।

7.2.13 जल निकास प्रणाली

सोनारगढ़ दुर्ग के जल प्रबन्धन की एक प्रमुख विशेषता जो इसे दूसरे किलों से अलग करती है, वह है यहाँ की जल निकास प्रणाली।

यह प्रणाली अपने आप में अनूठी है तथा तत्कालीन स्थापत्य व वास्तु विज्ञान के विकास की ऊँचाइयों को प्रकट करती है। यह उस काल मे उपयोग लिया जाने वाला

आधुनिक सीवरेज सिस्टम है। आज भी भारत के बड़े–बड़े नगर सीवरेज सिस्टम से नहीं जुड़े हुए है और जो जुड़े हुए है उनकी व्यवस्था चरमराई हुई है। इसके विपरीत सोनारगढ़ दुर्ग में दुर्ग के वास्तुकारों ने एक ऐसी जल निकास प्रणाली विकसित की थी जो पूरी तरह से भूमिगत थी तथा इतनी कारगर थी कि किले में बरसने वाला अतिरिक्त वर्षा जल तथा किले का अपशिष्ट जल पूरा का पूरा किले से बाहर निकल जाता था।

यह जल निकास प्रणाली किले के अस्तित्व के लिए भी आवश्यक थी। चूँकि दुर्ग मरूस्थलीय क्षेत्र में 250 फीट ऊँची पहाड़ी पर निर्मित है इसकी दीवारें बिना चूना–सीमेन्ट के पत्थरों को आपस में ही जोड़कर बनायी गयी हैं तथा प्राचीरें दो स्तर पर बँटी हुई हैं। यदि किले के भीतर का बारिश का पानी किले से बाहर न निकले तो वह किले की भीतरी जमीन में समाता रहेगा व दीवारों पर दबाव डालेगा, जिससे किले के गिरने का खतरा उत्पन्न हो जाएगा। अतः इसे काफी उन्नत तकनीक से बनाया गया है।[93]

स्थानीय भाषा में इस व्यवस्था की भूमिगत नालियों को 'गुट नालियाँ' कहा जाता है, गुट नालियों से तात्पर्य है भूमि में दबी हुई गुप्त नालियाँ। किले के महलों, भवनों व मन्दिरों की छतें, भूमि का ढलान आदि गुट नालियों से जुड़े हुए हैं। बारिश का पानी सीधे गुट नालियों में चला जाता है तथा गुट नालियाँ बुर्ज के पास मोरी के समीप खुलकर अपना सम्पूर्ण जल मोरी से बाहर निकाल देती हैं। इस व्यवस्था को मोरी सिस्टम भी कहते है।[94] नालियों को लोहे एवं पत्थर की जालियों से ढँका गया है।

7.2.14 जल प्रबन्धन का महत्त्व

सोनारगढ़ दुर्ग का जल प्रबन्धन कई अर्थों में अपना महत्त्व रखता है। दुर्ग ऐसे क्षेत्र में है जो थार के मरूस्थल का एक भाग है, दूर–दूर तक कोई बारहमासी जल स्रोत नहीं है। ऐसे में किले के भीतर जल की निर्बाध आपूर्ति बनाये रखना व जल की कमी न आने देना एक चुनौति था। जिसमें किले का जल प्रबन्धन सफल रहा।

किले की सुरक्षा के साथ –साथ इसे गिरने से बचाने के लिए आवश्यक था कि इसके भीतर पानी का रिसाव नहीं हो। इस हेतु गुट नालियाँ विशेष ज्यामिती में बनायी गयी थी कि इनसे किले का अतिरिक्त पानी पूरी तरह से किले से बाहर निकल जाए। इस उद्देश्य में उक्त जल निकास प्रणाली सफल रही।

किले सहित जैसलमेर में चूँकि पानी की कमी सदैव रही है, जितना भी पानी

मिलता उसे मितव्यता से उपयोग लिया जाता था। जल के सीमित उपभोग के सम्बन्ध में जल प्रबन्धन सफल रहा।

किले पर कई बार लम्बे घेरे पड़े, बावजूद इसके किले में पानी की कोई कमी नहीं आयी अतः संकटकालीन परिस्थिति में भी जल प्रबन्धन सफल रहा।

7.2.15 वर्तमान स्थिति

वर्तमान में किला भारतीय पुरातत्त्व संरक्षण विभाग के संरक्षण में है[95], यूनेस्कों ने इसे विश्वधरोहर सूची में स्थान दिया है।[96]

किले के बाहर का घड़सीसर तालाब पूर्णतया सुरक्षित है। आज भी यह जल से परिपूर्ण है इसमें वर्षा के पानी की आपूर्ति निर्बाध है। यह तालाब कुल 9 तालाबों से जुड़ा हुआ है। इसमे नौकायन की व्यवस्था है, समीप के बाग–बगीचों व उद्यान में झुलों का आनन्द लिया जाता है, गोठ, संगोष्ठियाँ, मीटींग होती है, पर्यटक इसका ऐतिहासिक स्वरूप देखने आते हैं। इन्दिरा गाँधी नहर का पानी इसमें डलवाया जाता है।

किले के भीतर के कुँओं की स्थिति सही नहीं है। अधिकांश उपयोग के अभाव में ढँक दिये गये हैं या समय की मार से नष्ट हो गये हैं। इनके पुनर्निर्माण, साफ–सफाई, मरम्मत की आवश्यकता है। जैसलू कूप ठीक–ठाक स्थिति में है। बिल्ला कुँआ, राणीसर, हरजालूसर, रामदेव मन्दिर के समीप वाले सभी कुँए पाट दिये गये हैं। इनसे जल निकासी नहीं होती है।[97] इन्दिरा गाँधी नहर आने से घर–घर नल कनेक्शन लग गए हैं अब कुँओं व सरोवर से जल भरने की निर्भरता नहीं रह गयी है। कोसो दूर से पानी लाने व पानी की व्यवस्था करने में अपनी ऊर्जा व समय नष्ट करने की बाध्यता भी समाप्त हो गयी है। फलतः उपयोग के अभाव में परम्परागत जल स्रोतों का महत्त्व घट गया तथा सार–सम्भाल के अभाव में वे नष्ट हो गये या हो रहे हैं।

यही हाल किले की गुट नालियों का है, स्थानीय निवासी व राष्ट्रीय शिक्षक पुरस्कार से सम्मानित श्री नन्दकिशोर शर्मा जी कहते है कि वर्तमान में गुट नालियाँ खराब स्थिति में है, किले के सीवरेज–ड्रेनेज सिस्टम में लीकेज–सीपेज से किले का फाउंडेशन हिल गया है और यह कई स्थानों से दरक गया है। गुट नालियों तथा मोरियों का पूरा पानी किले से बाहर नहीं निकल पा रहा है, इससे किले के गिर जाने का खतरा है।[98] आर्कियोलजिकल सर्वे ऑफ इंडिया की हाई–लेवल कमेटी ने अपनी पन्द्रह साल की स्टडी से बताया कि यदि किले के सीवरेज–कैंसर का इलाज नहीं

किया गया तो यह दुर्ग अपना अस्तित्व खो देगा। इसके बाद वर्ल्ड माउंटेन फंड और यूनेस्को ने भी इस किले के संरक्षण के छोटे–मोटे प्रयास किये। इन्हीं की रिपोर्ट्स पर राज्य सरकार व स्थानीय नगर परिषद ने 2011 में किले का सीवरेज सिस्टम डेवलप करने के लिए आरयूआईडीपी को कॉन्ट्रेक्ट दिया। यह काम अब पूरा हो गया है। किले में सीवरेज का अलग सिस्टम बना दिया गया है, जल्द ही किले की बस्ती के सभी घर इससे जोड़ दिये जायेंगे। इसके पश्चात् सीपेज की समस्या समाप्त हो जायेगी।

सन्दर्भ

1. ओझा, रायबहादुर पं गोरीशंकर हीराचन्द, जोधपुर राज्य का इतिहास, वैदिक यंत्रालय अजमेर, 1927, पृ. 75
2. नैणसी मुहणोत, मारवाड़ रा परगना री विगत, (सं.) डॉ0 नारायण सिंह भाटी, भाग प्रथम, राज. प्रा. वि.प्रति. जोधपुर, 1968, पृ. 60 से 66
3. मनोहर राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2013, पृ.60
4. मेहता संग्रह की हस्तलिखित ख्यात, महारणा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, मेहरानगढ़ दुर्ग, पृ 19–20
5. पुरोहित पुरूषोत्तम दास, पुष्करणा ब्राह्मणों का इतिहास, जोधपुर किला और पुष्करणा, पृ 7
6. नैणसी मुहणोत, मारवाड़ रा परगना री विगत, (सं.) डॉ0 नारायण सिंह भाटी, भाग प्रथम, पूर्वोक्त, पृ. 559
7. मेहर, जहूर खाँ एवं नगर, महेन्द्र सिंह, जोधपुर का ऐतिहासिक दुर्ग मेहरानगढ़, मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट, जोधपुर, 2007, पृ 24
8. कोठारी कोठारी गुलाब सं0, पत्रिका इयर बुक, राजस्थान पत्रिका प्रकाशन, 2014, पृ 694
9. रेउ, पं. विश्वेश्वर नाथ, ग्लोरीज ऑफ मारवाड़ एवं ग्लोरियस राठौड़्स, आर्किलोजिकल डिपार्टमेन्ट, जोधपुर, 1947 पृ. 1
10. गहलोत, जगदीश सिंह, मारवाड़ राज्य का इतिहास, म.मा.पु.प्र., मेहरानगढ़, 1991, पृ. 41 एवं नवल, चन्दनमल, मारवाड़ का शहीद राजाराम, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, पृ. 87
11. मिश्र, रतनलाल, राजस्थान के दुर्ग, साहित्यागार, जयपुर, 2008, पृ. 65
12. गहलोत, जगदीश सिंह, मारवाड़ राज्य का इतिहास, पूर्वोक्त, पृ. 41
13. राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, प्रवेशांक 627, बस्ता 58, ग्रंथिका 17, पृ. 4
14. उक्त।
15. भाटी, नारायण सिंह (सं), महाराजा तखतसिंह की ख्यात, राजस्थान ओरियन्टल रिसर्च इन्सट्यूट, जोधपुर, 1979 पृ. 255

16. रेउ, पं. विश्वेश्वर नाथ, मारवाड़ का इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1998 भाग 1,पृ. 95
17. नगर, महेन्द्र सिंह, रसीलेराज, मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट, मेहरानगढ़ दुर्ग, पृ 29
18. मिश्र, रतनलाल, राजस्थान के दुर्ग, पूर्वोक्त, पृ. 65
19. मेहर, जहूर खाँ एवं नगर, महेन्द्र सिंह, जोधपुर का ऐतिहासिक दुर्ग मेहरानगढ़, पूर्वोक्त, पृ. 15
20. टोकियो प्रदर्शनी फाइल, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, मेहरानगढ़ दुर्ग, जोधपुर
21. मेहर, जहूर खाँ एवं नगर, महेन्द्र सिंह, जोधपुर का ऐतिहासिक दुर्ग मेहरानगढ़, पूर्वोक्त, पृ.120
22. टोकियो प्रदर्शनी फाइल, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, मेहरानगढ़ दुर्ग, जोधपुर
23. जनानी ड्योढ़ी तालके री बही, सं. 1967, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, मेहरानगढ़, पृ. 1
24. मेहर, जहूर खाँ एवं नगर, महेन्द्र सिंह, जोधपुर का ऐतिहासिक दुर्ग मेहरानगढ़, पूर्वोक्त, पृ.128
25. मेहर, जहूर खाँ एवं नगर, महेन्द्र सिंह, जोधपुर का ऐतिहासिक दुर्ग मेहरानगढ़, पूर्वोक्त, पृ.130
26. भट्ट बदरी शर्मा की ख्यात, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, मेहरानगढ़ दुर्ग।
27. मेहर, जहूर खाँ एवं नगर, महेन्द्र सिंह, जोधपुर का ऐतिहासिक दुर्ग मेहरानगढ़, पूर्वोक्त, पृ.139
28. दयालदास री ख्यात, खण्ड 1, पृ. 39–41, म. मा. पु. प्र., मेहरानगढ़ दुर्ग।
29. मेहर, जहूर खाँ एवं नगर, महेन्द्र सिंह, जोधपुर का ऐतिहासिक दुर्ग मेहरानगढ़, पूर्वोक्त, पृ. 19
30. शर्मा, दशरथ, लेक्चर्स ऑन राजपूत हिस्ट्री एण्ड कल्चर, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली, 1966 पृ. 85
31. चीतोड़ तणा चूण्डा हरै किंमाडह परजालिया – प्राचीन छप्पय, म.मा.पु.प्र., मेहरानगढ़।
32. अहमद, निजामुद्दीन, तबकाते अकबरी, देव बी.एन. एवं बेनी प्रसाद (अनु.), भाग 3, उपभाग 2 लो प्राइस पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1995 पृ 32
33. अजितोदय, सर्ग 5, श्लोक 55–56 एवं मुआसिरे आलमगिरी (अनु.) पृ 172
34. मनोहर राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पूर्वोक्त, पृ. 62
35. व्यास, एस. पी., वाटर कन्जर्वेशन टेक्नीक्स ऑफ मेहरानगढ़ फोर्ट, शोध पत्र, राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस, पृ. 50 से साभार।
36. उक्त, पृ. 51
37. सिंह, वाई. डी., राजस्थान की झीले व तालाब, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, मेहरानगढ़ दुर्ग, 2002, पृ. 88 एवं रेउ, मारवाड़ का इतिहास, भाग 1, पूर्वोक्त, पृ. 93
38. मेहर, जहूर खाँ एवं नगर, महेन्द्र सिंह, जोधपुर का ऐतिहासिक दुर्ग मेहरानगढ़, पूर्वोक्त, पृ. 85
39. व्यास, एस. पी., वाटर सप्लाई सिस्टम इन द फोर्ट ऑफ जोधपुर, शोध पत्र, 67 वीं इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, दिल्ली, पृ. 55 से साभार।
40. व्यास, एस. पी., वाटर कन्जर्वेशन टेक्नीक्स ऑफ मेहरानगढ़ फोर्ट, शोध पत्र, राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस, पृ. 52 से साभार
41. शादां, मुंशी बसावन लाल, मैमायर्स ऑफ अमीर खाँ, अरबी फारसी शोध संस्थान, टोंक, पृ.318
42. भाटी, नारायण सिंह (सं.) महाराजा मानसिंह री ख्यात, राजस्थान ओरियन्टल रिसर्च

इन्सट्यूट, जोधपुर, 1997 पृ 56
43. उक्त, पृ. 66
44. मेहरानगढ़ के जल स्रोतों पर जारी कलेण्डर, मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट, 2006, पृ. 6
45. पदम चन्द सेठ लायौ पकड़ दाह मेवाड़ौ उर दियौ, प्राचीन छप्पय, म.मा.पु.प्र. मेहरानगढ़।
46. मेहर, जहूर खाँ एवं नगर, महेन्द्र सिंह, जोधपुर का ऐतिहासिक दुर्ग मेहरानगढ़, पूर्वोक्त, पृ. 26
47. रेउ, पं. विश्वेश्वर नाथ, मारवाड़ का इतिहास, भाग 1, आर्कियेलोजिकल डिपार्टमेन्ट जोधपुर , 1940 पृ. 99
48. मेहरानगढ़ के जल स्रोतों पर जारी कलेण्डर, पूर्वोक्त।
49. उक्त।
50. रेउ, पं. विश्वेश्वर नाथ, ग्लोरीज ऑफ मारवाड़ एवं ग्लोरियस राठौड़्स, पूर्वोक्त, पृ. 22
51. शोधयात्रा, मेहरानगढ़ दुर्ग दि. 05.06.2015
52. राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर में संग्रहित प्रवेशांक 627, बस्ता 58, ग्रंथिका 17
53. व्यक्तिगत साक्षात्कार, स्थानीय निवासी एवं सुरक्षा गार्ड श्री भँवर सिंह जी, दि. 06.06.2015
54. नैणसी मुहणोत, मारवाड़ रा परगना री विगत, (सं.) डॉ. नारायण सिंह भाटी, भाग प्रथम, राज. प्रा. वि. प्रति. जोधपुर 1969 पृ. 570
55. मेहर, जहूर खाँ एवं नगर, महेन्द्र सिंह, जोधपुर का ऐतिहासिक दुर्ग मेहरानगढ़, पूर्वोक्त, पृ. 86
56. सिंह, वाई. डी., राजस्थान की झीले व तालाब, पूर्वोक्त, पृ. 57
57. व्यक्तिगत साक्षात्कार, सुरक्षा गार्ड श्री भँवर सिंह जी एवं डॉ. सुनयना असि. क्यूरेटर, मेहरानगढ़ दुर्ग, दि. 06.06.2015
58. शोधयात्रा, मेहरानगढ़ दुर्ग, दि. 05.06.2015
59. मेहर, जहूर खाँ एवं नगर, महेन्द्र सिंह, जोधपुर का ऐतिहासिक दुर्ग मेहरानगढ़, पूर्वोक्त, पृ. 84
60. व्यास, एस. पी., वाटर सप्लाई सिस्टम इन द फोर्ट ऑफ जोधपुर, शोध पत्र, 67 वीं इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, दिल्ली, पृ. 54 से साभार।
61. शर्मा, नन्दकिशोर, सुनहरा नगर जैसलमेर, सीमान्त प्रकाशन जैसलमेर, 2011, पृ 4
62. शर्मा, नन्द किशोर, युग युगीन वल्ल प्रदेश, जैसलमेर राज्य का राजनैतिक इतिहास, सीमान्त प्रकाशन जैसलमेर, 1993, पृ 35
63. शर्मा नन्द किशोर ,जैसलमेर का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, सीमान्त प्रकाशन जैसलमेर, 1993, पृ 57
64. मनोहर राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पूर्वोक्त, पृ. 35
65. भल्ला, एल. आर., राजस्थान का भूगोल, कुलदीप प्रकाशन, जयपुर, 2000, पृ. 38
66. साक्षात्कार, श्री नन्दकिशोर शर्मा, इतिहासकार एवं स्थानीय निवासी जैसलमेर, दूरदर्शन धारावाहिक फोर्ट्स ऑफ इण्डिया : जैसलमेर।
67. व्यक्तिगत साक्षात्कार, श्री नन्दकिशोर शर्मा, इतिहासकार एवं संस्थापक जैसलमेर लोक सांस्कृतिक संग्रहालय एवं मरू सांस्कृतिक केन्द्र, गड़ीसर, दि. 16.12.2014

68. शर्मा, नन्दकिशोर, सुनहरा नगर जैसलमेर, पूर्वोक्त, पृ. 6
69. ओझा, दीनदयाल, जैसलमेर के जौहर साके, शोध पत्र, जौहर साका स्मारिका, लाकेन्द्र सिंह चूण्डावत (प्र.सं.), जौहर स्मृति संस्थान, चित्तोड़गढ़, 2005, पृ. 37 से साभार। ''वारता रावल जी श्री मुलराज जी रतन सी जी साकों किया सं. 1351 की साल। बादशाह गौरी या पीरां की मोहरा की खचरां 550 नगर थरा सूं मुलतान जाती थी, जिण सूं बादशाह खिलजी कुंवर पदे, जैतसी बैठा था। ... बरस 12 तांई फौज सूं युद्ध हुवो। रावल जैतसरी तो घेरा में देवलोक हुवा। गढ़ माहे दाह दीयो। अर मूलराज रतन सी एक बर पछै साको कियो साठ हजार लोकां सूं काम आया।''
70. उक्त, पृ. 38
71. शर्मा, नन्दकिशोर, त्रिकुट गढ़ जैसलमेर, सीमान्त प्रकाशन, 2005, पृ. 41
72. ओझा, दीनदयाल, जैसलमेर के जौहर साके, शोध पत्र, जौहर साका स्मारिका, पूर्वोक्त, पृ. 38
73. शर्मा नन्द किशोर ,जैन तीर्थ जैसलमेर , सीमान्त प्रकाशन जैसलमेर, 1988, पृ. 11
74. शर्मा, नन्दकिशोर, त्रिकुट गढ़ जैसलमेर, पूर्वोक्त, पृ. 14
75. उक्त, पृ. 43
76. व्यक्तिगत साक्षात्कार, श्री मयंक, स्थानीय निवासी, सोनारगढ़ दुर्ग एवं श्री नन्द किशोर शर्मा, पूर्वोक्त, दि. 16.12.2014
77. माथुर, एल.पी., फोर्ट्स एण्ड स्ट्रोंगहोल्ड्स ऑफ राजस्थान, इन्टर इण्डिया पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1989, पृ. 58
78. शर्मा, नन्दकिशोर, सुनहरा नगर जैसलमेर, पूर्वोक्त, पृ. 18
79. शर्मा, नन्दकिशोर, त्रिकुट गढ़ जैसलमेर, पूर्वोक्त, पृ. 21
80. व्यक्तिगत साक्षात्कार, श्री मयंक जी, स्थानीय निवासी, सोनारगढ़ दुर्ग, दि. 17.12.2014
81. शर्मा, नन्दकिशोर, त्रिकुट गढ़ जैसलमेर, पूर्वोक्त, पृ. 29
82. उक्त, पृ. 30
83. शोधयात्रा, सोनारगढ़ दुर्ग, दि. 15.12.2014
84. साक्षात्कार, श्री नन्द किशोर शर्मा, इतिहासकार एवं स्थानीय निवासी जैसलमेर, दूरदर्शन धारावाहिक : फोर्ट्स ऑफ इण्डिया।
85. शर्मा, नन्दकिशोर, सुनहरा नगर जैसलमेर, पूर्वोक्त, पृ. 11
86. उक्त, पृ. 12
87. शोध यात्रा, सोनारगढ़ दुर्ग, दि. 15.12.2014
88. शर्मा, नन्दकिशोर, त्रिकुट गढ़ जैसलमेर, पूर्वोक्त, पृ. 11
89. उक्त, पृ. 11
90. साक्षात्कार, श्री नन्द किशोर शर्मा, इतिहासकार एवं स्थानीय निवासी जैसलमेर, दूरदर्शन धारावाहिक : फोर्ट्स ऑफ इण्डिया।
91. शोध यात्रा, सोनारगढ़ दुर्ग, दि. 15.12.2014

92. साक्षात्कार, श्री नन्द किशोर शर्मा, इतिहासकार एवं स्थानीय निवासी जैसलमेर, दूरदर्शन धारावाहिक : फोर्ट्स ऑफ इण्डिया।
93. उक्त।
94. व्यक्तिगत साक्षात्कार, श्री मयंक जी एवं श्री योगेश जी, स्थानीय निवासी, सोनारगढ़ दुर्ग, दि. 17.12.2014
95. जैसलमेर किला, पर्यटक सूचना फोल्डर, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, जयपुर मण्डल, जयपुर, 2004, पृ 3
96. साप्ताहिक उदय इण्डिया, समाचार पत्र में प्रकाशित समाचार के आधार पर, 22 जून 2013
97. व्यक्तिगत सर्वेक्षण, सोनारगढ़ दुर्ग, दि. 15.12.2014
98. व्यक्तिगत साक्षात्कार, श्री नन्दकिशोर शर्मा, इतिहासकार एवं संस्थापक जैसलमेर लोक सांस्कृतिक संग्रहालय एवं मरू सांस्कृतिक केन्द्र, गड़ीसर, दि. 16.12.2014

अध्याय अष्टम

राजस्थान के प्रमुख किलों में जल प्रबन्धन का तुलनात्मक अध्ययन एवं महत्त्व

प्रस्तुत अध्याय में अध्ययन क्षेत्र में सम्मिलित राजस्थान के प्रमुख 8 किलों आमेर, जयगढ़, चित्तौड़गढ, गागरोन, भटनेर, जूनागढ़, मेहरानगढ़ तथा सोनारगढ़ के इतिहास, स्थापत्य एवं जल प्रबन्धन सम्बन्धी विभिन्न पक्षों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है, जिसे विभिन्न तालिकाओं में दर्शाया गया है। तालिकाओं में संकेत ✓ एवं ✗ का प्रयोग निम्न अर्थों में किया गया है।

✓ = 'है' या 'सही है' या 'सहमत है'

✗ = 'नहीं है' या 'गलत है' या 'असहमत है' या 'अज्ञात'

सामान्य परिचय								
	आमेर	जयगढ़	चित्तौड़ गढ़	गागरोन	भटनेर	जूनागढ	मेहरान गढ	सोनार गढ़
स्थिति	पूर्वी राज0	पूर्वी राज0	दक्षिणी राजस्थान	दक्षिणी राजस्था न	उत्तरी राजस्था न	उत्तरी राजस्था न	पश्चिमी राजस्थान	पश्चिमी राजस्थान
वर्तमान जिला	जयपुर	जयपुर	चित्तौड़ गढ़	झालावा ड़	हनुमान गढ	बीकानेर	जोधपुर	जैसलमेर
दुर्ग कोटि	गिरी	गिरी, सैन्य	गिरी, सैन्य	गिरी, सैन्य, जल	भूमि, सैन्य, जल	भूमि, सैन्य	गिरी, सैन्य	गिरी, सैन्य
पहाड़ी की ऊँचाई	500 फीट	500 फीट	152 फीट	340 मीटर	——	——	400 फीट	250 फीट
समुद्र तल से ऊँचाई	1500 फीट	602 मीटर	1850 फीट	1654 फीट	200 मीटर		241 मीटर	959 फीट
आकार	मुकुट के समान	चतुष्को णिय	विशाल व्हेल के समान	पहाड़ी के समान	समाना न्तर चतुर्भुज	चतुष्को णिय	मयूरा कृति	त्रिभुजा कार

बनावट	दुर्गनुमा महल	बख्तर बन्द दुर्ग	आवासीय दुर्ग	बख्तर बन्द दुर्ग व महल	बख्तर बन्द दुर्ग	कटोरे के समान	बख्तर बन्द दुर्ग व महल	सुदर्शन चक्र के समान
प्रयुक्त पाषाण	लाल बलुआ, संगमरमर	लाल बलुआ, संगमरमर	स्थानीय पत्थर	काला भूरा पत्थर	पकी हुई ईंटों से निर्मित	लाल बलुआ, संगमरमर	बालुका मय लाल पत्थर	पीला पत्थर
द्वार	जय, सूरज, चाँद , गणेश , सिंह पोल	डूंगर, अवनी एवं खेरी दरवाजा	पाड़ल, भैरव, हनुमान , लक्ष्मण , जोइला , राम पोल	सूरज, गणेश, लाल, भैरव , कृष्ण , नन्द , धूधस	चार द्वार	कर्ण, चाँद, दौलत, रतन, फतेह, ध्रुव पोल	जय, फतेह, लोहा, ध्रुव, सूरज, इमरत, भैरो पोल	अक्षय प्रोल, सूरज प्रोल, गणेश प्रोल, हवा प्रोल
क्षेत्रफल		3 कि.मी. लम्बा एवं 1 कि.मी. चौड़ा	27.5 वर्ग कि.मी.	1कि.मी. लम्बा व 350 मी. चौड़ा	52 बीघा क्षेत्र	163119 वर्ग गज	500 गज लम्बा व 250 गज चौड़ा	11.28 हैक्टर
दुर्ग निर्माता	भारमल के समय से प्रारम्भ (विवादास्पद)	मानसिंह प्रथम द्वारा निर्मित (विवादास्पद)	चित्रांगद मौर्य	डोड़वंशी शासक	भूपत भाटी	रायसिंह	जोधा	जैसल
स्थापना दिवस / वर्ष	1558 में भारमल के समय से	1600 ई0	7 वीं सदी	13 वीं सदी	286 ई0	30 जन. 1589	13 मई 1459	1156 ई0
शासक वर्ग (अधिकांश समय)	कछवाहा राजपूत	कछवाहा राजपूत	गुहिल वंशी	खींची राजपूत	भाटी राजपूत	राठौड़ राजपूत	राठौड़ राजपूत	भाटी राजपूत
नामकरण	अम्बा माता के नाम से आम्बेर	जयसिंह के नाम पर	चित्रांगद मौर्य के नाम पर	डोड़गढ़, धूलरगढ़, गागरूण फिर गागरोन	भाटी शासकों के नाम पर	गुजरात के जूनागढ विजय के कारण	सूर्य (मेहर) के समान आन वाला गढ़	स्वर्ण के समान चमकते पत्थर से निर्मित
विशेषता / महत्त्व / प्रसिद्धि	महलों को ही दुर्ग का रूप देना	रहस्यमयी दुर्ग तथा खजाने की प्राप्ति	राजस्थान का वैल्लोर,	जल दुर्ग के रूप में	भारत की उत्तरी सीमा का प्रहरी	सौन्दर्य शाली महल	राठौड़ों की वीरता व पराक्रम का साक्षी	सोने के समान चमकने के कारण सोणगढ़

ऐतिहासिक महत्त्व	राज0 में मुगलों के सहायक	राज0 में एक मात्र तोप निर्माण कारखाना	दिल्ली से मालवा व गुजरात जाने वाले मार्ग पर	दिल्ली से मालवा जाने वाले मार्ग पर	दिल्ली मुल्तान मार्ग पर स्थित	मध्य एशिया को गुजरात से जोड़ने वाले मार्ग पर स्थित	भारत में जम्मू कश्मीर, हैदराबाद के बाद सबसे बड़ा राज्य	मध्य एशिया, यूरोप व समरकन्द का पैदल मार्ग तथा सिल्क रूट पर
युद्ध	——	——	अलाउद्दीन खिलजी, बहादुरशाह तथा अकबर से प्रमुख	होशंग शाह का आक्रमण प्रमुख	भारत में सर्वाधिक आक्रमण, तैमूर का आक्रमण प्रमुख	कामरान, मालदेव, मानसिंह, बख्तसिंह व अभय सिंह के आक्रमण	बीका, शेरशाह, हसन कुली, जयसिंह, जगत सिंह	अलाउद्दीन फिरोज तुगलक, अमीर अली
जौहर—साके	नहीं	——	तीन	एक	एक	——	——	ढाई
वर्तमान स्थिति	उत्तम	उत्तम	उत्तम	उत्तम	कमजोर	उत्तम	उत्तम	उत्तम
पर्यटन	श्रेष्ठ	श्रेष्ठ	श्रेष्ठ	श्रेष्ठ	कमजोर	श्रेष्ठ	श्रेष्ठ	श्रेष्ठ
संरक्षण	राज्य पुरातत्त्व	ट्रस्ट	भारतीय पुरातत्त्व	राज्य पुरातत्त्व	भारतीय पुरातत्त्व	राज्य पुरातत्त्व	भारतीय पुरातत्त्व	भारतीय पुरातत्त्व
विश्व धरोहर	सम्मिलित	नहीं	सम्मिलित	सम्मिलित	नहीं	नहीं	नहीं	सम्मिलित
धार्मिक स्थल	शिला माता मन्दिर व अन्य	हरिहर, शिव, काल भैरव, दुर्गा, शीतला माता, बालाजी मन्दिर	कुम्भ स्वामी, मीरा, समिद्धेश्वर व जैन मन्दिर प्रमुख	दरगाह, मधुसुदन मन्दिर व अन्य	हनुमान मन्दिर, शिव मन्दिर, जैन मन्दिर व अन्य	———	चामुण्डा माता, नागणेचिया माता, मुरली मनोहर, झरनेश्वर महादेव व अन्य	खुशालराज राजेश्वरी, घण्टियाली देवी, रामदेव, स्वांगिया देवी व जैन मन्दिर
औसत वार्षिक वर्षा	56.38 से.मी.	56.38 से.मी.	77.23 से.मी.	84.43 से.मी.	27.35 से.मी.	24.30 से.मी.	31.37 से.मी.	18.55 से.मी.
जल स्रोत	मावठा झील	सागर झील	84 जल स्रोत वर्तमान में 22 विद्यमान	नदी, कुएं, कुण्ड, बावड़ी	घग्गर नदी एवं 52 कुएं	सूरसागर झील तथा चार कुएं	रानीसर, पद्मसर, चौकेलाव कुँआ, नौसरवा कुँआ	घड़सीसर तथा 7 कुएं

तालिका सं 8.1

तालिका संख्या 8.2 के अन्तर्गत शास्त्रों में वर्णित दुर्ग विधानानुसार दुर्ग कोटि के आधार पर तुलना करने पर गागरोन तथा भटनेर नदियों द्वारा घिरे होने के कारण जल

दुर्ग है, भूमि पर निर्मित होने के कारण भटनेर तथा जूनागढ़ भूमि दुर्ग के तथा शेष सभी दुर्ग गिरी दुर्ग के उदाहरण हैं। सुसज्जित सेना द्वारा सुरक्षित तथा अनेक युद्धों के साक्षी होने के कारण आमेर के अतिरिक्त शेष सभी किले सैन्य दुर्ग कहे जाते हैं। वन अथवा मरूस्थल से घिरे होने के कारण गागरोन, भटनेर, जूनागढ, मेहरानगढ़ व सोनारगढ़ धान्वन दुर्ग के उदाहरण हैं। गागरोन, भटनेर, जूनागढ़, मेहरानगढ़ तथा सोनारगढ़ खाई द्वारा सुरक्षित होने से पारिख दुर्ग के उदाहरण हैं। सभी किलों के खाई, कंटीली झाड़ियों व उबड़–खाबड़ मार्ग हाने तथा परकोटे से सुरक्षित होने के कारण सभी को एरण व पारिध दुर्ग की श्रेणी में रखा गया है।

दुर्ग कोटि								
	आमेर	जयगढ़	चित्तौड़ गढ़	गागरोन	भटनेर	जूनागढ	मेहरानगढ	सोनार गढ़
	पूर्वी राजस्थान		दक्षिणी राजस्थान		उत्तरी राजस्थान		पश्चिमी राजस्थान	
जल दुर्ग	×	×	×	✓	✓	×	×	×
भूमि दुर्ग	×	×	×	×	✓	✓	×	×
सैन्य दुर्ग	×	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
घान्वन दुर्ग	×	×	×	✓	×	✓	×	✓
गिरी दुर्ग	✓	✓	✓	✓	×	×	✓	✓
पारिख दुर्ग	×	×	×	✓	✓	✓	✓	×
एरण दुर्ग	×	✓	✓	✓	✓	✓	×	✓
पारिध दुर्ग	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
तालिका संख्या 8.2								

तालिका संख्या 8.3 के अन्तर्गत किले के महत्त्व के सन्दर्भ में अध्ययन में सम्मिलित सभी दुर्गों की तुलना की गयी। आमेर, जयगढ़, चित्तौड़गढ़, गागरोन, मेहरानगढ़ तथा सोनारगढ़ विश्व धरोहर के रूप में अपना महत्त्व रखते हैं। इतिहास एवं पर्यटन के क्षेत्र में सभी दुर्ग महत्त्वपूर्ण हैं। आमेर, चित्तौड़गढ़, गागरोन तथा भटनेर धार्मिक आस्था केन्द्र के रूप में भी अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं, भटनेर के महलों के नष्ट हो जाने के कारण इसके अतिरिक्त सभी दुर्ग स्थापत्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण हैं। आमेर, गागरोन, जूनागढ़ व मेहरानगढ़ दुर्ग भित्ति चित्रकला के लिए विख्यात हैं।

किले का महत्त्व								
	आमेर	जयगढ़	चित्तौड़ गढ़	गागरोन	भटनेर	जूनागढ	मेहरानगढ	सोनार गढ़
	पूर्वी राजस्थान		दक्षिणी राजस्थान		उत्तरी राजस्थान		पश्चिमी राजस्थान	
विश्व धरोहर	✓	✗	✓	✓	✗	✗	✓	✓
पर्यटन	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
एतिहासिक	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
धार्मिक आस्था केन्द्र	✓	✗	✓	✓	✓	✗	✗	✗
स्थापत्य	✓	✓	✓	✓	✗	✓	✓	✓
चित्रकला	✓	✗	✗	✓	✗	✓	✓	✗
सांस्कृतिक	✗	✗	✓	✓	✓	✗	✓	✓
अभियान्त्रिकी	✓	✓	✓	✗	✗	✗	✓	✗
सामाजिक समन्वय	✗	✓	✓	✓	✓	✗	✓	✓
तालिका सं. 8.3								

जल प्रबन्धन का आधार								
	आमेर	जयगढ़	चित्तौड़ गढ़	गगरोन	भटनेर	जूनागढ	मेहरानगढ	सोनार गढ़
	पूर्वी राजस्थान		दक्षिणी राजस्थान		उत्तरी राजस्थान		पश्चिमी राजस्थान	
वर्षा जल पुनर्भरण	✓	✓	✓	✗	✗	✗	✓	✓
भूगर्भिक जल	✓	✓	✗	✗	✓	✓	✓	✓
प्राकृतिक स्रोत	✓	✓	✓	✓	✓	✗	✓	✓
कृत्रिम स्रोत	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
मानव श्रम	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
पशु बल	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
तालिका सं. 8.4								

तालिका संख्या 8.4 के अन्तर्गत विभिन्न किलों में जल प्रबन्धन के आधार के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन किया गया। गागरोन, भटनेर व जूनागढ़ को छोड़ कर शेष सभी दुर्गों में वर्षा जल पुनर्भरण तकनीक अपनायी गयी। चित्तौड़गढ़ व गागरोन दुर्गों को छोड़कर शेष सभी दुर्गों में भूगर्भिक जल उपलब्ध था। जूनागढ़ में प्राकृतिक जल स्रोतों का अभाव है साथ ही सभी दुर्गों में जल प्राप्ति हेतु मानव श्रम व पशुबल का

भी प्रयोग किया गया था।

किले के जल स्रोत / जलाशय								
	आमेर	जयगढ़	चित्तौड़ गढ़	गागरोन	भटनेर	जूनागढ	मेहरानगढ	सोनार गढ़
	पूर्वी राजस्थान		दक्षिणी राजस्थान		उत्तरी राजस्थान		पश्चिमी राजस्थान	
कुँआ	✗	✗	✗	✓	✓	✓	✗	✓
तालाब	✗	✗	✓	✗	✗	✗	✗	✓
बावड़ी	✗	✗	✓	✓	✗	✗	✓	✗
झील	✓	✓	✗	✗	✗	✓	✗	✗
नदी	✗	✗	✓	✓	✓	✗	✗	✗
कुण्ड	✓	✓	✓	✗	✗	✗	✓	✗
टाँका	✓	✓	✓	✗	✗	✗	✓	✓
झरना	✗	✗	✗	✗	✗	✗	✗	✗
तालिका सं. 8.5								

तालिका संख्या 8.5 के अन्तर्गत विभिन्न दुर्गों के जल स्रोतों के आधार पर तुलना की गयी। गागरोन, भटनेर, जूनागढ़ व सोनारगढ़ में कुँओं से जल प्राप्त किया जाता था। चित्तौड़गढ़, गागरोन व मेहरानगढ़ में बावड़ियाँ तथा आमेर, जयगढ़ एवं जूनागढ़ में झीलें दर्शनीय हैं। चित्तौड़गढ़, गागरोन व भटनेर दुर्ग नदियों द्वारा सुरक्षित थे। गागरोन, भटनेर, जूनागढ़ एवं सोनारगढ़ के अतिरिक्त सभी दुर्गों में कुण्ड पाये गये हैं। गागरोन, भटनेर व सोनारगढ़ के अतिरिक्त सभी दुर्गों में टांके पाए गए हैं। एक मात्र दुर्ग चित्तौड़गढ़ में झरने मौजूद हैं।

जल स्रोतों की स्थिति								
	आमेर	जयगढ़	चित्तौड़ गढ़	गागरोन	भटनेर	जूनागढ	मेहरान गढ	सोनार गढ़
	पूर्वी राजस्थान		दक्षिणी राजस्थान		उत्तरी राजस्थान		पश्चिमी राजस्थान	
आस्था स्थलों के निकट	✓	✗	✓	✓	✓	✗	✓	✓
बुर्जों पर	✗	✗	✗	✗	✓	✗	✗	✓
किले के बाहर	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
महलों के भीतर	✓	✓	✓	✓	✗	✗	✓	✗
उद्यान/ खेत के समीप	✓	✓	✓	✗	✗	✓	✓	✗
अस्तबल / बाड़े के समीप	✗	✗	✗	✗	✗	✓	✓	✗
सैन्य चोकियों के समीप	✓	✓	✓	✓	✗	✗	✓	✗
तालिका सं 8.6								

इसी प्रकार जल स्रोतों की स्थिति के आधार पर (तालिका सं 8.6) तुलना करने पर जयगढ़ व जूनागढ़ के अतिरिक्त शेष सभी किलों के अधिकांश जल स्रोत धार्मिक आस्था केन्द्रों के निकट हैं, भटनेर व सोनारगढ़ के जल स्रोत बुर्जों पर हैं, सभी किलों के कुछ जल स्रोत किले के बाहर भी हैं। आमेर, जयगढ़, चित्तौड़गढ़, गागरोन व मेहरानगढ़ के जल स्रोत महलों के भीतर भी हैं। गागरोन, भटनेर व सोनारगढ़ के अतिरिक्त शेष के जल स्रोत उद्यान/खेतों के समीप भी हैं। जूनागढ़ व मेहरानगढ़ के जल स्रोत अस्तबल/बाड़े के समीप हैं एवं सैन्य चौकियों के समीप के जल स्रोत आमेर, जयगढ़, चित्तौड़गढ़, गागरोन व मेहरानगढ़ दुर्गों में हैं।

जल स्रोतों के महत्त्व के आधार पर तुलना करने पर (तालिका सं. 8.7) ज्ञात हुआ कि जयगढ़ तथा जूनागढ़ के अतिरिक्त अन्य सभी दुर्गों के जल स्रोतों का धार्मिक महत्त्व है साथ ही सभी दुर्गों के जल स्रोतों का पर्यटन, पेयजल, सिंचाई, संस्कृति, कला, अभियांत्रिकी कौशल, इतिहास, समाज व ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में महत्त्व है।

जल स्रोतों का महत्त्व								
	आमेर	जयगढ़	चित्तौड़ गढ़	गागरोन	भटनेर	जूनागढ	मेहरानगढ	सोनार गढ़
	पूर्वी राजस्थान		दक्षिणी राजस्थान		उत्तरी राजस्थान		पश्चिमी राजस्थान	
धार्मिक	✓	✗	✗	✓	✓	✗	✓	✓
पर्यटन	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
पेयजल	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
सिंचाई	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
संस्कृति	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
कला	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
अभियान्त्रिकी	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
इतिहास	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
समाज	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
ज्ञान विज्ञान	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
तालिका सं. 8.7								

जल स्रोतों के आकार के आधार पर तुलना (तालिका सं. 8.8) करने पर जूनागढ़ के अतिरिक्त सभी किलों के जल स्रोत विशाल हैं, गागरोन के अतिरिक्त सभी दुर्गों में मध्यम आकार के भी जल स्रोत हैं। सभी किलों के भीतर लघु आकार के जल स्रोत भी

दर्शनीय हैं।

जल स्रोतों का आकार								
	आमेर	जयगढ़	चित्तौड़ गढ़	गागरोन	भटनेर	जूनागढ	मेहरानगढ	सोनार गढ़
	पूर्वी राजस्थान		दक्षिणी राजस्थान		उत्तरी राजस्थान		पश्चिमी राजस्थान	
विशाल	✓	✓	✓	✓	✓	✗	✓	✓
मध्यम	✓	✓	✓	✗	✓	✓	✓	✓
लघु	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
तालिका सं. 8.8								

विभिन्न किलों के कृत्रिम जल संग्राहकों का तुलनात्मक अध्ययनानुसार (तालिका सं. 8.9) ज्ञात हुआ कि आमेर, जयगढ़, चित्तौड़गढ़, मेहरानगढ़ में पाषाण टंकियों में भी जल संग्रहण किया जाता था। आमेर, चित्तौड़गढ़ व जूनागढ़ में पानी के कुण्ड पाये गये हैं। आमेर, जयगढ़, चित्तौड़गढ़, गागरोन, जूनागढ़, मेहरानगढ़ तथा सोनारगढ़ में धातु के बड़े पात्रों में जल संग्रहण किया जाता था। पाषाण निर्मित मटकों या माटों में जल संग्रहण मेहरानगढ़ तथा सोनारगढ़ में किया जाता था।

किले के कृत्रिम जल संग्रहक								
	आमेर	जयगढ़	चित्तौड़ गढ़	गागरोन	भटनेर	जूनागढ	मेहरानगढ	सोनार गढ़
	पूर्वी राजस्थान		दक्षिणी राजस्थान		उत्तरी राजस्थान		पश्चिमी राजस्थान	
टांका	✓	✓	✓	✗	✗	✗	✓	✓
टंकियाँ	✗	✗	✗	✓	✗	✗	✓	✓
कुण्ड	✓	✗	✓	✗	✗	✓	✗	✗
धातु पात्र	✓	✓	✓	✓	✗	✓	✓	✓
माटे	✗	✗	✗	✗	✗	✗	✓	✓
तालिका सं. 8.9								

तालिका संख्या 8.10 के अन्तर्गत स्रोतों से जल प्राप्ति तकनीक की तुलना करने पर दृष्टव्य है कि आमेर एवं मेहरानगढ़ में रहँट प्रणाली अपनायी गयी थी। सभी दुर्गों में मसक का प्रयोग किया गया था। लाव–चड़स प्रणाली का प्रयोग गागरोन, भटनेर, जूनागढ़, मेहरानगढ़ तथा सोनारगढ़ दुर्गों में किया गया। जल उत्थान प्रणाली आमेर व मेहरानगढ़ में प्रयुक्त की गयी। नहरों का प्रयोग जयगढ़, जूनागढ़ तथा मेहरानगढ़ में किया गया। भटनेर के अतिरिक्त सभी किलों में धातु/सकोरों की पाईप लाईन का प्रयोग किया गया।

स्रोत से जल प्राप्ति तकनीक								
	आमेर	जयगढ़	चित्तौड़ गढ़	गागरोन	भटनेर	जूनागढ	मेहरान गढ	सोनार गढ़
	पूर्वी राजस्थान		दक्षिणी राजस्थान		उत्तरी राजस्थान		पश्चिमी राजस्थान	
रहँट प्रणाली	✓	✗	✗	✗	✗	✗	✓	✗
मसक	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
लाव चड़स	✓	✗	✗	✓	✓	✓	✓	✓
जल उत्थान प्रणाली	✓	✗	✗	✗	✗	✗	✓	✗
नहर	✗	✓	✗	✗	✗	✓	✓	✗
पाइप लाईन	✓	✓	✓	✓	✗	✓	✓	✓
तालिका सं 8.10								

जल के उपयोग के आधार पर तुलना (तालिका सं. 8.11) करने पर ज्ञात हुआ कि सभी किलों में दैनिक कार्यों यथा पेयजल एवं स्नान/शौचादि में जल का उपयोग किया गया। सोनारगढ़ के अतिरिक्त सभी किलों के उद्यान में तथा दुर्ग को सामरिक सुरक्षा प्रदान करने में जल का उपयोग किया गया। जयगढ़ तथा चित्तौड़गढ़ के अतिरिक्त सभी दुर्गों को जल युक्त खाई द्वारा सुरक्षित किया गया। सभी किलों में निर्माण एवं धार्मिक कार्यों में भी जल का उपयोग किया गया।

जल का उपयोग								
	आमेर	जयगढ़	चित्तौड़ गढ़	गागरोन	भटनेर	जूनागढ	मेहरान गढ	सोनार गढ़
	पूर्वी राजस्थान		दक्षिणी राजस्थान		उत्तरी राजस्थान		पश्चिमी राजस्थान	
दैनिक कार्य	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
उद्यान	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✗
सामरिक सुरक्षा	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✗
खाई	✓	✗	✗	✓	✓	✓	✓	✓
निर्माण कार्य	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
धार्मिक कार्य	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
तालिका सं 8.11								

किलों में जल के उपयोगकर्ता के आधार पर तुलना (तालिका सं. 8.12) करने पर ज्ञात हुआ कि सभी किलों में जल का उपयोग शासक वर्ग, राजपरिवार, सैनिक तथा उनके पशुओं द्वारा किया गया। जयगढ़ तथा जूनागढ़ के अतिरिक्त सभी किलों के जल

स्रोतों के उपयोग की अनुमति प्रजा को भी दी गयी।

जल उपयोगकर्ता								
	आमेर	जयगढ़	चित्तौड़ गढ़	गागरोन	भटनेर	जूनागढ	मेहरानगढ	सोनार गढ़
	पूर्वी राजस्थान		दक्षिणी राजस्थान		उत्तरी राजस्थान		पश्चिमी राजस्थान	
शासक वर्ग	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
सैनिक	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
पशु	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
आम जनता	✗	✗	✓	✗	✗	✗	✓	✓

तालिका सं 8.12

जल प्रबन्धन तकनीक/ अभियान्त्रिकी								
	आमेर	जयगढ़	चित्तौड़ गढ़	गागरोन	भटनेर	जूनागढ	मेहरानगढ	सोनार गढ़
	पूर्वी राजस्थान		दक्षिणी राजस्थान		उत्तरी राजस्थान		पश्चिमी राजस्थान	
जल उत्थान	✓	✗	✗	✗	✗	✗	✓	✗
पाइप लाईन	✓	✗	✗	✗	✗	✗	✓	✗
फव्वारा	✓	✗	✗	✓	✗	✓	✓	✓
गरम–ठण्डा करना	✓	✓	✗	✗	✗	✗	✓	✗
भाप स्नान	✗	✓	✗	✗	✗	✗	✗	✗
स्वतः शुद्धिकरण	✓	✓	✗	✗	✗	✗	✓	✗
वर्षा जल पुनर्भरण	✓	✓	✓	✗	✗	✓	✓	✓
जल संग्रहण	✓	✓	✓	✓	✗	✓	✓	✓
गर्मियों में शीतलक	✓	✓	✓	✗	✗	✓	✓	✓
एयर कूलर/ वाटर स्प्रिंग	✓	✓	✗	✗	✗	✗	✗	✗
वाटर कूलर	✗	✓	✗	✗	✗	✗	✗	✗

तालिका सं. 8.13

तालिका संख्या 8.13 के अन्तर्गत अध्ययन क्षेत्र में सम्मिलित विभिन्न किलों का जल प्रबन्धन तकनीक/अभियांत्रिकी का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। पाईपलाईन (धातु/सकोरा) एवं जल उत्थान प्रणाली का प्रयोग आमेर एवं मेहरानगढ़ में किया गया। आमेर, गागरोन, जूनागढ़, मेहरानगढ़ तथा सोनारगढ़ में फव्वारें चलाए गए। जल को

गरम/ठण्डा करने की तकनीक का प्रयोग आमेर, जयगढ़ व मेहरानगढ़ में किया गया। मात्र जयगढ़ में भाप स्नान तकनीक अपनायी गयी। जल को स्वतः शुद्ध करने की तकनीक का प्रयोग आमेर, जयगढ़ व मेहरानगढ़ में किया गया। गागरोन व भटनेर के अतिरिक्त अन्य दुर्गों में वर्षा जल पुनर्भरण तकनीक अपनायी गयी। भटनेर के अतिरिक्त सभी दुर्गों में लम्बे समय तक के लिए जल संग्रहण की विशिष्ट तकनीक प्रयुक्त की गयी। आमेर, जयगढ़, चित्तौड़गढ़, जूनागढ़, मेहरानगढ़ तथा सोनारगढ़ में जल का उपयोग गर्मियों में शीतलक के रूप में प्रयोग किया गया। आमेर एवं जयगढ़ में एयर कूलर या वाटर स्प्रिंग सिस्टम विकसित किया गया। जयगढ़ दुर्ग में लकड़ी का वाटर कूलर प्रयुक्त किया गया।

जल वितरण प्रणाली								
	आमेर	जयगढ़	चित्तौड़ गढ़	गागरोन	भटनेर	जूनागढ	मेहरान गढ	सोनार गढ़
	पूर्वी राजस्थान		दक्षिणी राजस्थान		उत्तरी राजस्थान		पश्चिमी राजस्थान	
पाइप लाईन	✓	✗	✗	✗	✗	✗	✓	✗
धोरे,/नालियाँ	✓	✓	✓	✗	✗	✓	✓	✓
मसक	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
मानव श्रम	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
पशु श्रम	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
नहर	✗	✓	✓	✗	✗	✓	✓	✗
तालिका सं. 8.14								

तालिका संख्या 8.14 के अन्तर्गत विभिन्न किलों की जल वितरण प्रणाली का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। आमेर व मेहरानगढ़ में पाईप लाईन (धातु/सकोरा) के माध्यम से जल वितरित किया गया। गागरोन व भटनेर के अतिरिक्त सभी दुर्गों में धोरे व नालियों से जल वितरित किया गया। सभी दुर्गों में जल वितरण हेतु मसक/डोलची, मानव श्रम तथा पशु श्रम का उपयोग किया गया। जयगढ़, चित्तौड़गढ़, जूनागढ़ व मेहरानगढ़ में नहरों की सहायता से जल वितरित किया गया।

विभिन्न किलों की जल निकास प्रणाली का तुलनात्मक अध्ययन (तालिका संख्या 8.15) किया गया। आमेर व मेहरानगढ़ में पाईप लाईन के माध्यम से जल निष्कासित किया गया। सभी दुर्गों में खुली नालियों से जल का निकास किया गया। चित्तौड़गढ़, गागरोन व भटनेर के अतिरिक्त अन्य सभी दुर्गों में जल निकास हेतु भूमिगत (अण्डरग्राउण्ड) नालियों का प्रयोग किया गया। सोनारगढ़ दुर्ग में आधुनिक सीवरेज

सिस्टम (गुट नालियाँ) की सहायता से जल निष्कासित किया गया। भटनेर दुर्ग में जल निकास हेतु गहरे गर्तों का प्रयोग किया गया।

जल निकास प्रणाली								
	आमेर	जयगढ़	चित्तौड़ गढ़	गागरोन	भटनेर	जूनागढ	मेहरान गढ	सोनार गढ़
	पूर्वी राजस्थान		दक्षिणी राजस्थान		उत्तरी राजस्थान		पश्चिमी राजस्थान	
पाईप लाईन	✓	✗	✗	✗	✗	✗	✓	✗
खुली नालिया	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
भूमिगत नालियाँ	✓	✓	✗	✗	✗	✓	✓	✓
सीवरेज	✗	✗	✗	✗	✗	✗	✗	✓
गहरे गर्त	✗	✗	✗	✗	✓	✗	✗	✗
तालिका सं. 8.15								

जल प्रबन्धन का महत्त्व								
	आमेर	जयगढ़	चित्तौड़ गढ़	गागरोन	भटनेर	जूनागढ	मेहरानगढ	सोनार गढ़
	पूर्वी राजस्थान		दक्षिणी राजस्थान		उत्तरी राजस्थान		पश्चिमी राजस्थान	
पर्यटन	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
धार्मिक	✗	✗	✓	✓	✓	✗	✓	✓
पेयजल	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
संकटकलीन परिस्थिति में	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
सिंचाई	✓	✓	✓	✗	✓	✓	✓	✗
संस्कृति	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
कला	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
अभियांत्रिकी कुशलता	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
इतिहास	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
समाज	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
ज्ञान विज्ञान	✓	✓	✓	✓	✗	✓	✓	✗
तालिका सं. 8.16								

तालिका संख्या 8.16 के अन्तर्गत किलों में जल प्रबन्धन के महत्त्व के आधार पर तुलना की गयी। सभी किलों का जल प्रबन्धन पर्यटन के क्षेत्र में भी अपना अलग महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। चित्तौड़गढ़, गागरोन, भटनेर, मेहरानगढ़ व सोनारगढ़ दुर्गों के

जल प्रबन्धन का धार्मिक महत्त्व है। सभी किलों के जल प्रबन्धन का पेयजल, संकटकालीन परिस्थिति, कला, संस्कृति, इतिहास, समाज, अभियांत्रिकी क्षेत्र में महत्त्व रहा। भटनेर एवं सोनारगढ़ के अतिरिक्त सभी किलों का जल प्रबन्धन ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण रहा।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मरूस्थलीय दुर्गों का जल प्रबन्धन मैदानी दुर्गों के जल प्रबन्धन से श्रेष्ठ था, गिरी दुर्गों का जल प्रबन्धन भूमि दुर्गों से श्रेष्ठ था। सैन्य दुर्गों का जल प्रबन्धन आवासीय दुर्गों की अपेक्षा श्रेष्ठ था। धन्वन दुर्गों का जल प्रबन्धन जल दुर्गों से श्रेष्ठ था। राजधानी दुर्गों का जल प्रबन्धन सामन्तशाही दुर्गों से श्रेष्ठ था।

अध्याय नवम

निष्कर्ष और मूल्यांकन

राजस्थान में अनेक छोटे–बड़े किले हैं। प्रायः प्रत्येक राज्य, रियासत व ठिकानों के अपने–अपने किले थे। ये सभी किले शासकों, सामन्तों, ठिकानेदारों एवं उनकी प्रजा की सुरक्षा पंक्ति के साथ–साथ सीमा पर सैन्य चोकी के रूप में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे। तत्कालीन शासकों व प्रबुद्धजनों ने अनेक कार्य योजनाएँ बनायी, जिन्होंने इतिहास को प्रभावित किया तथा आज भी उनकी अपनी प्रासंगिकता है। इन सभी योजनाओं में जल प्रबन्धन का विशेष महत्त्व है।

9.1 निष्कर्ष

राजस्थान के किलों में स्थानीय परिस्थिति, जलवायु, भूमिगत जल की उपलब्धता के साथ सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक कारणों को ध्यान में रखते हुए जल प्रबन्धन के कार्य किये गए।

राज्य के राजत्व सिद्धान्त के अनुसार राजा धरती पर ईश्वर का प्रतिनिधि है। वह प्रजा को सुखी व सम्पन्न जीवन यापन का अधिकार देता है। जल जीवन की प्राथमिक आवश्यकता है तथा कोई भी प्रजा तब तक सुखी नहीं रह सकती जब तक उसे आवश्यकतानुसार पर्याप्त जल ना मिले। अतः प्रजा के लिए जल की उपलब्धता सुनिश्चित करना राजा का व्यक्तिगत दायित्व था। यदि कोई राजा ऐसा कर पाने में असमर्थ रहता तो प्रजा उसके विरूद्व विद्रोह भी कर सकती थी, जो राजपद के लिए खतरा होता। अतः सभी राजाओं ने प्रजा को जल उपलब्ध कराने का हर सम्भव प्रयास किया।

राजस्थान के अधिकतर बड़े किले आवासीय हैं। संकटकालीन परिस्थितियों में प्रजा को बाह्य आक्रमणकारियों से सुरक्षा प्रदान करने के लिए किलों में शरण दी जाती

थी। अतः प्रजा के लिए जल उपलब्ध कराने हेतु किलों में जल प्रबन्धन की योजनाएँ बनायी गयी।

भारतीय समाज में परिवार, जाति, धर्म, गोत्र, स्त्री–पुरूष, ऊँच–नीच, छोटा–बड़ा आदि सामाजिक मान्यताओं का बड़ा महत्त्व रहा है। इन सभी के आधार पर भेदभाव भारतीय सामाजिक वातावरण एक हिस्सा है तथा इस के अनुसार ही जल स्रोतों पर अधिकार एवं उपयोग के नियम बनाए गए हैं। राजस्थान के किलों के जल स्रोतों के सम्बन्ध में भी उक्त सामाजिक नियम लागू होते हैं। अतः तत्कालीन शासकों ने सभी वर्गों को संतुष्ट करने के लिए किलों में अलग–अलग जल स्रोतों का निर्माण कराया।

हिन्दू धर्म में जल को पंच महाभूतों में एक मानते हुए देवता के रूप में स्वीकार किया गया है। जिस प्रकार देवराज इन्द्र का कर्तव्य वर्षा कराना तथा वरूण देव का कर्तव्य सर्वत्र जल उपलब्ध कराना है उसी प्रकार प्रजा के लिए जल स्रोतों का निर्माण कराना भी राजा का कर्तव्य माना गया है। हमारी धार्मिक मान्यताओं में देव प्रतिमाओं को जल चढ़ाना, उन्हें जल से स्नान कराना, जलाभिषेक करना, देवस्थानों पर यात्रियों व उनके पशुओं हेतु जल का प्रबन्ध कराना पुण्यदायी माना गया हैं। पुराण कहते हैं कि धार्मिक स्थलों पर पानी पिलाने वाले या पानी की व्यवस्था करने वाले जातक को मोक्ष की प्राप्ति होती है। उसे इहलोक के साथ–साथ परलोक में भी सुख मिलता है। अतः राजस्थान के प्रायः सभी शासकों ने स्वयं के कल्याण के साथ–साथ अपने कुटुम्ब, आने वाली पीढ़ी तथा पूर्वजों के पारलौकिक सुख की कामना हेतु जल प्रबन्धन के कार्य किये। इसीलिए राजस्थान के लगभग सभी किलों में धार्मिक स्थलों के समीप जल स्रोत विकसित किये गये हैं।

राजस्थान की संस्कृति में जल का सदैव महत्त्व रहा है। प्रदेश के प्रत्येक क्षेत्र में लगने वाले पारम्परिक मेले, उत्सव, समारोह आदि जल स्रोतों के निकट आयोजित किये जाते हैं। इन्हीं सांस्कृतिक परम्पराओं के अन्तर्गत किलों के भीतर के जल स्रोतों के निकट भी वार्षिक मेलों का आयोजन किया जाता है। अतः राजस्थान के सभी शासकों ने किलों के भीतर जल स्रोतों का निर्माण एवं विकास कराया। यही कारण है कि प्रायः सभी किलों के भीतर अथवा समीप बारहमासी बड़े जल स्रोत पाये जाते है तथा जन सामान्य में उनके प्रति आस्था है।

राजस्थान के अधिकतर बड़े किलों के भीतर तथा समीप इतनी भूमि है कि वहाँ कृषि की जा सके। अतः कृषि को बढ़ावा देने के लिए किलों में जल प्रबन्धन किया

गया।

किला बाहरी आक्रमणकारी से रक्षा हेतु सुरक्षित स्थल था। राजा यहाँ अपनी सेना रखकर साम्राज्य की सुरक्षा करता था। एक सैन्य दुर्ग के लिए आवश्यक था कि उसमें सेना की टुकड़ी सदैव तैनात रखी जाए। राज्य की सेना किले के भीतर तथा बाहर रह कर दुर्ग की रक्षा थी। एक बड़ी सेना के लिए किले के भीतर तथा किले के बाहर समीप ही जल की व्यवस्था किया जाना आवश्यक था। युद्ध के समय लम्बे घेरे की स्थिति में जल की कमी के कारण सेना को आत्मसमर्पण करना पड़ सकता था। अतः सामरिक कारणों से किलों में जल प्रबन्धन किया गया।

अनुसंधान से निष्कर्षतः यह भी ज्ञात हुआ कि राजस्थान के किलों में किया गया जल प्रबन्धन विभिन्न दृष्टिकोण से उपयोगी सिद्ध हुआ।

किलों में जल प्रबन्धन की सर्वप्रमुख उपयोगिता पेयजल की उपलब्धता रही। अधिकांश किले पहाड़ियों पर तथा निर्जल क्षेत्र में निर्मित किये गये थे जहाँ का पारिस्थितिकी तन्त्र तथा मौसमी परिस्थितियाँ जल प्राप्ति के लिए प्रतिकूल थी। ऐसे में किलों में पेयजल की उपलब्धता एक मुश्किल कार्य था किन्तु तत्कालीन शासकों एवं किले के वास्तुकारों ने किलों के भीतर जल प्रबन्धन के विशेष उपाय क्षेत्र विशेष की परिस्थितिनुसार इस तरह अपनाए कि कभी किसी किले में पेय जल की कमी न आ पायी।

जिन किलों में प्राकृतिक व बारहमासी जलदायी स्रोत नहीं थे उनमें इस आशंका को ध्यान में रखकर कि कहीं किसी वर्ष अकाल न पड़ जाए या बरसात कम हो या किले पर लम्बा घेरा पड़ जाए जिससे बाहरी स्रोतों से जल प्राप्त न हो तब भी किले के भीतर बारिश के पानी को कई वर्षों तक संग्रहित रखने के उपाय किये गये। जल प्रबन्धन इस दिशा में सफल सिद्ध हुआ। जल को लम्बे समय तक संग्रहित रखने में बड़े जल संग्राहकों के निर्माण के अतिरिक्त एक बड़ी समस्या यह भी थी उनमें संग्रहित जल शुद्ध, स्वच्छ व कीटाणु रहित बना रहे। ज्ञातव्य है कि उस काल में वर्तमान की तरह आधुनिक दवाइयाँ, किट, कीटाणू नाशी पाउडर, केमिकल्स इत्यादि नहीं थे फिर भी तत्कालीन ज्ञान एवं तकनीक के आधार पर जल को शुद्ध बनाए रखने में जल प्रबन्धन सफल रहा।

ऐसे किले जिनमें शासक अपने परिवार सहित रहता था तथा जिन्हें युद्ध,

आक्रमण विद्रोह जैसी विभिषिका का कोई डर न था वहाँ महल, हवेलियाँ, दीवान, दरबार, मन्दिर, आरामगाह आदि का निर्माण मुक्त हस्त से करवाया गया। किले के भीतर इन सभी के निर्माण में शासक के मान–सम्मान, प्रतिष्ठा व शान का विशेष ध्यान रखा गया। किलों के भीतर जल महल, रॉयल बाथ, भाप स्नान कक्ष, गुप्त मंत्रणा कक्ष, जकूजी टब जैसी सुविधाऐं विकसित कर शासक की प्रतिष्ठा को बढ़ाने में जल प्रबन्धन उपयोगी सिद्ध हुआ।

किले के विभिन्न हिस्सों में जहाँ पानी की आवश्यकता थी वहाँ जल पहुँचाने हेतु एक जल वितरण प्रणाली विकसित की गयी। जिसकी सहायता से किले के भीतर रनिवास, भोजनशाला, अस्तबल, शौचालय, स्नानगार, बाग–बगीचें, फव्वारें, पानी की टंकियाँ, आरामगाह, टांके आदि में जल वितरित किया गया। इस प्रणाली के निर्माण में भी जल प्रबन्धन उपयोगी सिद्ध हुआ।

किले के महलों, हवेलियों, भवनों की छतों से बरसात के पानी, विभिन्न हिस्सों से उपयोग पश्चात् गन्दे पानी तथा अतिरिक्त जल को बाहर निकालने हेतु नालियों, सीवरेज सिस्टम, परनालों, भूमिगत नालों आदि का निर्माण कर एक कारगर जल निकास प्रणाली के विकास में जल प्रबन्धन की महत्ती भूमिका रही।

अनुसंधान से निष्कर्षतः यह भी ज्ञात हुआ कि किलों के जल प्रबन्धन ने इतिहास को प्रभावित किया। जिन किलों का जल प्रबन्धन कमजोर था उनके शासकों को जल की कमी के कारण शत्रु सेना के समक्ष समर्पण अथवा अन्तिम युद्ध के लिए मजबूर होना पड़ा जबकि सुदृढ़ जल प्रबन्धन युक्त किलों के शासकों के समक्ष ऐसी कोई बाध्यता नहीं आयी।

राजस्थान के किलों का भ्रमण कर सुक्ष्म अध्ययन करने पर किले के वास्तु व निर्माण नियोजन के विभिन्न पक्ष सामने आते है। प्रत्येक इमारत, चित्र, मूर्ति आदि अलग–अलग काल में अलग–अलग शासकों द्वारा निर्मित किये गए थे जो तत्कालीन शासकों की व्यक्तिगत उपलब्धि माने जाते हैं। जिन्हें देखकर शासक विशेष की कलागत अभिरूचि, मनोदशा व दूरगामी सोच का पता लगाया जा सकता है। इसी प्रकार किले के भीतर जितने भी जल स्रोत या जल प्रबन्धन की तकनीक विकसित की गयी है वे भी किसी न किसी शासक की उपलब्धी के रूप में गिनाई जाती है जो उनकी व्यक्तिगत अभिरूचि का परिणाम थी।

राजस्थान के किलों के भीतर के जल स्रोत व जल प्रबन्धन प्रणाली को देखकर आज भी पर्यटक आश्चर्यचकित रह जाते हैं। इनके निर्माण व उपयोग में जिन तकनीकों का प्रयोग किया गया वे अपने समय के सर्वश्रेष्ठ ज्ञान पर आधारित थीं तथा इन पर अनेक स्थानों की कला व तकनीकों का प्रभाव था। जो तत्कालीन विज्ञान व अभियान्त्रिकी कौशल का परिचायक है। इनके सूक्ष्म अध्ययन से उस काल की विज्ञान प्रगति व प्रभाव को जाना जा सकता है साथ ही ''इतिहास विज्ञान है'' की धारणा को भी बल मिलता है।

राजस्थान के किलों के जल स्रोत पर्यटन को भी बढ़ावा देते है। किलों के भीतर तथा बाहर इनकी स्थिति तथा बनावट ऐसी है कि किले में भ्रमण करने आने वाले पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। अधिकांश में नौकायन, पैदल ट्रेक, किनारों पर घाट, छतरी तथा बैठने जैसी सुविधाएँ है जहाँ आकर पर्यटक मंत्रमुग्ध हो जाते हैं।

किले के जल स्रोतों का अपना धार्मिक महत्त्व भी है। ये किले में ऐसे स्थानों पर हैं जिनके समीप कोई धार्मिक स्थल है। जहाँ धर्मावलम्बी ईष्टदेव के दर्शन करने से पूर्व जल स्रोतों में स्नान करते हैं तथा इसके पवित्र जल को देवताओं को अर्पित करते हैं। कई स्थानों की हिन्दु–मुस्लिम दोनों धर्मों में मान्यता है। अतः ये धार्मिक सहिष्णुता को भी बढ़ावा देते हैं।

अध्ययन से निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि किलों के जल स्रोत तथा जलप्रबन्धन के उपाय इतिहास में अपना विशेष स्थान रखते हैं अर्थात् ये ऐतिहासिक धरोहर है इन्हें बचाना तथा संजोये रखना हमारा कर्तव्य है।

9.2 परिकल्पनाओं का परीक्षण व परिणाम

शोधार्थी द्वारा अनुसंधान को दिशा प्रदान करने हेतु परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया। अध्ययन के दौरान विद्वानों के साक्षात्कार, प्रश्नावली, अनुसूची आदि विधियों एवं उपलब्ध प्राथमिक व द्वितीय स्रोतों से आवश्यक तथ्य प्राप्त कर परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया। परिणामतः कुछ परिकल्पनाएँ सत्य एवं कुछ असत्य पायी गईं। जिनका विवरण निम्नानुसार है।

प्रथम परिकल्पना की सत्यता की जाँच हेतु किलों से सम्बन्धित इतिहास तथा किले के जल स्रोतों के उपयोग, निर्माण वर्ष, निर्माता शासक आदि के बारे में जानकारी

प्राप्त की गयी। निष्कर्षतः पाया कि राजस्थान के किलों के जल प्रबन्धन ने इतिहास को प्रभावित किया है अतः यह परिकल्पना सत्य है।

द्वितीय परिकल्पना की सत्यता की जाँच हेतु अध्याय आठ में मरूस्थलीय किलों व मैदानी किलों के जलप्रबन्धन की तुलना की गयी। इसमें क्षेत्र विशेष की जलवायु, मौसमी परिस्थितियों के साथ–साथ किले की बनावट, ऊँचाई, जल स्रोत व प्रबन्धन प्रणालियों की विस्तृत जानकारी प्राप्त की गयी। परिणामतः कहा जा सकता है कि दोनों प्रकार के किलों का जल प्रबन्धन परिस्थिति व आवश्यकतानुसार श्रेष्ठ था। अतः परिकल्पना असत्य सिद्ध हुई।

अध्याय आठ में ही जल प्रबन्धन के तुलनात्मक अध्ययन के अन्तर्गत सैन्य दुर्गों व आवासीय दुर्गों के जल प्रबन्धन की तुलना की गयी। परिणामतः तृतीय परिकल्पना भी असत्य पायी गयी।

द्वितीय व तृतीय परिकल्पना के समान ही चतुर्थ परिकल्पना की सत्यता की जाँच अध्याय आठ में तुलनात्मक अध्ययन के अन्तर्गत की गयी। गिरी दुर्गों में भूगर्भिक जल की प्राप्ति न होने से उन्हें वर्षा जल पुनर्भरण जैसी तकनीकों का सहारा लेना पड़ता था जबकि भूमि दुर्गों के साथ जल की कमी जैसी समस्या नहीं थी जिससे गिरी दुर्गों को जल प्रबन्धन के उपाय अधिक अपनाने पड़े। अतः उनका जल प्रबन्धन भूमि दुर्गों की अपेक्षा श्रेष्ठ माना जा सकता है अर्थात् परिकल्पना सत्य सिद्ध हुई।

पंचम परिकल्पना की सत्यता के परीक्षण हेतु किले के जल स्रोतों व जल प्रबन्धन प्रणालियों के निर्माता व विकासकर्ता शासकों के अन्य निर्माण कार्यों व कालगत परिस्थितियों के साथ–साथ उनकी व्यक्तिगत रूची का भी अध्ययन किया गया। निष्कर्षतः परिकल्पना सत्य पायी गयी।

छठी परिकल्पना के अन्तर्गत किले से सम्बन्धित इतिहास व जल स्रोतों के उपयोग का अध्ययन किया गया। निष्कर्षतः पाया कि संकटकालीन परिस्थितियों में जल प्रबन्धन जय पराजय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः परिकल्पना सत्य सिद्ध हुई।

इस प्रकार सभी परिकल्पनाओं की सत्यता की जाँच की गयी तथा जो परिणाम प्राप्त किये गये वे अनुसंधान के निष्कर्ष को प्रकट करते है।

9.3 समस्याएँ

राजस्थान के किलों के जल स्रोत व जल प्रबन्धन तकनीक का इतिहास में

विशेष महत्त्व रहा किन्तु वर्तमान में उनके रखरखाव, सार–सम्भाल, देखरेख, सुधार एवं विकास में अनेक समस्याएँ सामने आ रही है।

आधुनिक संसाधनों यथा बिजली की मोटर, सबमर्सिबल, डीजल पम्प सेट, बोरिंग, पाईप लाईन आदि के प्रचलन से किलों के परम्परागत जल स्रोत व तकनीकें अनुपयोगी हो गयी हैं। लम्बे समय से उपयोग के अभाव में इनकी सार सम्भाल भी नहीं हो रही है तथा सार सम्भाल के अभाव में ये नष्ट होने की कगार पर हैं। जिससे ऐतिहासिक धरोहर एवं अमूल्य पुरा सम्पदा के नष्ट हो जाने का खतरा उत्पन्न हो गया है। इससे पर्यटन को भी नुकसान हो रहा है।

इसके अतिरिक्त सरकार, प्रशासन एवं जिम्मेदार अधिकारियों की उदासीनता भी एक बड़ा कारण है। इनके विकास एवं संरक्षण के लिए विस्तृत कार्य योजना की कमी है, सुधार हेतु पर्याप्त वित्तीय सहायता नहीं मिलती यदि कुछ मिलता भी है तो वह भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ जाता है।

किलों में भ्रमण हेतु आने वाले पर्यटकों की भीड़, इनके समीप प्रसाद माला बोतल आदि बेचने वाले फुटकर व्यापारियों, लपकों, जायरिनों, दर्शनार्थियों आदि के कारण भी जल स्रोतों को नुकसान पहुँच रहा है। जल में बोतलें, माला, प्रसाद डालने, गन्दा पानी पहुँचाने, स्नान शौचादि करने, जल निकासी मार्ग अवरूद्ध होने तथा साफ–सफाई के अभाव में जल स्रोत प्रदुषित हो रहे हैं।

किलों में रजिस्टर्ड गाइड्स की कमी, सूचना पट्ट व चेतावनी बोर्ड्स का अभाव, धरोहर के प्रति जन चेतना का अभाव, शोध की कमी आदि भी इनके सुधार व विकास में एक बड़ी समस्या है।

9.4 सुझाव

किलों के जल स्रोतों व जल प्रबन्धन प्रणालियों को ऐतिहासिक धरोहर व पुरातत्व संरक्षित स्मारक घोषित कर इनके संरक्षण व विकास हेतु विस्तृत कार्य–योजना एवं नीतियों का निर्माण किया जाना चाहिए। इसके साथ ही राजनैतिक हस्तक्षेप बन्द कर कानूनों की सख्त पालना सुनिश्चित की जानी चाहिए।

जल स्रोतों के समीप तारबन्दी व चारदीवारी का निर्माण हो, सुरक्षा गार्ड्स की नियुक्ति तथा चेतावनी बोर्ड्स लगाए जाए तथा सी.सी.टी.वी. या स्वचालित कैमरों से निगरानी रखी जाए। जल स्रोतों की समय–समय पर सफाई की जाए, प्रदूषण मुक्त

रखा जाए तथा स्वच्छता मिशन जैसे कार्यक्रम चलाए जाए। इनके विकास हेतु विकास समिति, स्वच्छता समिति का गठन हो, एन.जी.ओ., स्वयंसेवी संस्थाओं, धार्मिक संस्थाओं की मदद ली जाए, जन चेतना जाग्रत की जाए, नैतिक जिम्मेदारी समझाई जाए। शोध कार्य कराए जाए।

9.5 नीति संगत निर्देश

चित्तौड़गढ़ के तालाबों को आपस में जोड़े जाने के समान ही शहरों के विभिन्न तालाबों को जोड़ा जाऐ साथ ही नदी जोड़ो योजना को क्रियान्वित किया जाए। किलों के जल प्रबन्धन के समान ही नगर, कस्बों, गाँवों में जल प्रबन्धन की कार्य—योजना बनायी जाए। तालाब विकास, झील विकास, स्वच्छता मिशन कार्यक्रम सभी शहरों व गाँवों में चलाए जाए। तरूण भारत संघ, जल भागीरथी फाउण्डेशन जैसी स्वयंसेवी संस्थाओं, एन.जी.ओ., केन्द्र सरकार के राजीव गाँधी जल संरक्षण मिशन, राज्य सरकार की जल मित्र योजना एवं राजस्थान पत्रिका के अमृतं जलं अभियान की मदद से प्रदेश के सभी जल स्त्रोतों का संरक्षण व विकास कराया जाए। जल संरक्षण के कार्यों को मनरेगा योजना में भी शामिल किया जाऐ।

राजस्थान के किलों के ऐतिहासिक व सांस्कृतिक महत्त्व को अन्तर्राष्ट्रीय पहचान दिलाने तथा समग्र विकास व सुरक्षा की आवश्यकता को दृष्टिगत रखकर राज्य सरकार द्वारा इन्हें यूनेस्कों की विश्वविरासत में शामिल कराने हेतु प्रयास किये गये। फलतः कम्बोडिया के नामपेन्ह शहर में यूनेस्कों की विश्वविरासत सम्बन्धी वैश्विक समिति की 37 वीं बैठक में शुक्रवार 21 जून 2013 को राजस्थान के 6 पहाड़ी किलों के विश्वविरासत में शामिल किये जाने की घोषणा की गयी। ये किले आमेर, जैसलमेर, गागरोन, चित्तौड़गढ़, कुम्भलगढ़ व रणथम्बोर हैं। यूनेस्को द्वारा इन छह किलों को विश्वविरासत का दर्जा दिलाने के लिए राज्य सरकार साधूवाद की पात्र है। इन किलों के विश्वविरासत के मापदण्डानुसार विकास व संरक्षण का कार्य भी पुरातत्त्व विभाग द्वारा किया जा रहा है, वह भी सराहनीय है।

सन्दर्भ सूची

(Bibliography)

(i) प्रकाशित अंग्रेजी पुस्तके

1 ए गाइड़ टू द जयगढ़ फोर्ट ऑफ आम्बेर, द जयगढ़ पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट, जयपुर, 2003

2 अग्रवाल, आर.ए., हिस्ट्री, आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ जैसलमेर, आगम कला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997

3 एन इन्टरोडक्शन टू जूनागढ़ फोर्ट बीकानेर, गर्वन्मेंट प्रेस, बीकानेर, 1950

4 दास, सुधीर रंजन, एन एपरोच टू इण्डियन आर्कियोलोजी, पिलग्रिम पब्लिशर्स, 1972

5 दत्त, बी. बी., टाउन प्लानिंग इन एनशियन्ट इण्डिया, न्यू एशियन पब्लिशर्स, कलकत्ता 1925

6 डे, उपेन्द्र नाथ, मेडिवल मालवा, मुंशी लाल मनोहर लाल, नई दिल्ली, 1965

7 धामा, बी.एल., जयपुर एण्ड आमेर, अजन्ता प्रिन्टर्स, जयपुर, 1985

8 डुंडलोद, हरनाथ सिंह, जयपुर एण्ड इट्स एनविरन्स, राजस्थान एजूकेशनल प्रिन्टर्स, जयपुर, 1970

9 गार्डन ऑफ मुगल इण्डिया, ए हिस्ट्री एण्ड ए गाइड़, विकास पब्लिशिंग हाउस देहली, 1973

10 गोट्ज, हरमन, द आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ बीकानेर स्टेट, ऑक्सफोर्ड : ब्रुनो केसाइरर, 1950

11 गुलाटी, बी. आर. एवं पेंढारकर, सेन्सस ऑफ इण्डिया, गागरोन मोनोग्राफ, 1961

12 गुप्ता, टी.एन. एवं खंगारोत आर.एस., आम्बेर जयपुर : ए ड्रीम इन द डेजर्ट, क्लासिक पब्लि. हाउस, 1994

13 हूजा, रीमा, हिस्ट्री ऑफ राजस्थान, रूपा एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2006

14 जैन, कैलाश चन्द, एंशियन्ट सिटीज एण्ड टाउन्स ऑफ राजस्थान : ए स्टडी ऑफ कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1972

15 कार, ई0 एच0, व्हाट इज हिस्ट्री, विन्टेज बुक्स, 2004,

16 केवलिया, ओम, द बोन्टीफुल बीकानेर, टाइम्स ऑफ राजस्थान प्रकाशन, बीकानेर, 1983
17 खान, जफरूल्लाह, द आम्बेर पैलेस, आमेर, 2004
18 खंगारोत, आर.एस. एवं नाथावत पी.एस. जयगढ़ द इन्विन्सिबल फोर्ट, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर, जयपुर,
19 खींची एवं पुरोहित, सर्वे ऑफ खींची चौहान, खींची चौहान शोध संस्थान, 1990
20 माथुर, लक्ष्मण प्रसाद, फोर्ट्स एण्ड स्ट्रोंगहोल्ड्स ऑफ राजस्थान, इन्टर इण्डिया पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1989
21 पन्नीकर, केवलम माधव, सर्वे ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1960
22 रेउ, पं. विश्वेश्वर नाथ, ग्लोरीज ऑफ मारवाड़ एवं ग्लोरियस राठौड़्स, आर्किलोजिकल डिपार्टमेन्ट, जोधपुर, 1947
23 शर्मा, दशरथ, लेक्चर्स ऑन राजपूत हिस्ट्री एण्ड कल्चर, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली, 1966
24 शर्मा, दशरथ, राजस्थान थ्रू द एजेज, राजस्थान स्टेट आर्काइव्ज, बीकानेर, 1966
25 शावर्स, एच. एल., नोट्स ऑन जयपुर (प्रिन्सली स्टेट), यूनिवर्सिटी ऑफ विसकोन्सिन, 1909
26 सोढ़ी, हुकुम सिंह, गाईड टू बीकानेर, बीकानेर
27 सोमानी, रामवल्लभ, महाराणा कुम्भा एण्ड हिज टाइमः ए ग्लोरियस हिन्दू किंग, जयपुर पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 1999
28 टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टिक्यूटिजी ऑफ राजस्थान, एम.एन. पब्लिशर्स, (पुनर्मुद्रित) 1971

(ii) प्रकाशित हिन्दी पुस्तकें

1 आचार्य, जी.एस., चित्तौड़ : दुर्ग का संक्षिप्त इतिहास एवं दुर्ग परिचय, शिव प्रकाशन, 1971
2 अग्रवाल, अनिल एवं नारायण सुनीता, अरावली के किले, सेन्टर फॉर साइन्स एण्ड एनवायरमेन्ट, नई दिल्ली, 1998
3 अग्रवाल, अनिल एवं नारायण सुनीता, बून्दों की संस्कृति, सेन्टर फॉर साइन्स एण्ड एनवायरमेन्ट, नई दिल्ली, 1998
4 आसोपा, रामकरण, मारवाड़ का मूल इतिहास, जोधपुर 1921 ई0

5 भदानी, बी.एल., लोग, राज्य एवं जल, दोहन संग्रहण और उपयोग प्रारम्भ से 17 वीं सदी तक, बीकानेर, 2008

6 भल्ला, एल. आर., सामयिक राजस्थान, कुलदीप प्रकाशन, जयपुर, 2004

7 भारद्वाज, गोपाल, पानी कहे पुकार के, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर

8 भार्गव, वी.एस., मारवाड़ से मुगलों के सम्बन्ध (हिन्दी संस्करण) राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी , जयपुर 1995

9 भार्गव, वी.एस., मध्यकालीन भारतीय इतिहास, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर 1989

10 भार्गव, वी.एस., राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण, रा.हि.ग्र.अका. जयपुर

11 भाटी, हरिसिंह, भटनेर का इतिहास, कवि प्रकाशन, बीकानेर, 2000

12 भाटी, हरिसिंह, गजनी से जैसलमेर भाटियों का पूर्व मध्यकालीन इतिहास, सांखला प्रिन्टर्स, बीकानेर, 1998

13 भाटी, हरिसिंह, पूगल का इतिहास, प्रकाशक दिलीप सिंह भाटी, पुरानी गिन्नानी , बीकानेर 1989 ई0

14 भाटी, हुकुम सिंह, भाटी वंश का गौरवमय इतिहास, भाग प्रथम एवं द्वितीय, इतिहास अनुसंधान संस्थान, चोपासनी, जोधपुर, 2003

15 भाटी, हुकुम सिंह, राजस्थान के मेड़तिया राठोड़ (आईसीएचआर) राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1986

16 भाटी, हुकुम सिंह, मेड़ता राव दूदा एवं उनके वंशज, इतिहास अनुसंधान संस्थान, चोपासनी, जोधपुर 1989

17 भाटी, नारायण सिंह, राजस्थान के ऐतिहासिक ग्रन्थों का सर्वेक्षण, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 1989

18 भाटी, रिडमल सिंह, जैसलमेर का इतिहास, चन्द्रा एण्ड चन्द्रा ऑफसेट, जैसलमेर 2005

19 चूण्डावत, रानी लक्ष्मीकुमारी, सांस्कृतिक राजस्थान, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर

20 देवड़ा, जी.एस.एल., पूर्व मध्यकालीन भारत के अभिज्ञान रूप – तराइन एवं तबरहिन्द, इन्स्ट्यूट ऑफ जे.एस. गहलोत, 1995

21 दूबे, दीनानाथ, भारत के दुर्ग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, 1991

22 गहलोत, जगदीश सिंह, कछवाहों का इतिहास, युनिक ट्रेडर्स, 1991

23 गहलोत, जगदीश सिंह, मारवाड़ राज्य का इतिहास, म.मा.पु.प्र., मेहरानगढ़, 1991

24 गहलोत, जगदीश सिंह, राजपुताने का इतिहास, भाग प्रथम, हिन्दी साहित्य मन्दिर, जोधपुर वि.स. 1994

25 गहलोत, जगदीश सिंह, राजस्थान का सामाजिक जीवन, हिन्दी साहित्य मन्दिर, जोधपुर, वि.स. 1974
26 गहलोत, सुखबीर सिंह, युगयुगीन राजस्थान, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर
27 गहलोत, सुखबीर सिंह, राजस्थान का इतिहास कोष, हिन्दी बुक सेन्टर, 2003
28 गहलोत, सुखबीर सिंह, राजस्थान के इतिहास का तिथिक्रम, हिन्दु साहित्य मन्दिर, जोधपुर, 1967
29 गहलोत, सुखवीर सिंह, जोधपुर का सांस्कृतिक वैभव, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1996
30 गुर्जर, राजकुमार एवं जाट बी.सी., जल संसाधन भूगोल, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2005
31 गुर्जर, आर.के. एवं जाट बी.सी., जल प्रबन्ध विज्ञान, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2001
32 जैन, हुकम चन्द, भारतीय ऐतिहासिक स्थल कोष, जैन प्रकाशन मन्दिर, जयपुर 2003
33 जैसल, हरिवल्लभ, जैसलमेर राज्य का मध्यकालीन इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर
34 जावलिया, बृजमोहन, राजस्थानी लोकजीवन शब्दावली, साहित्य अकादमी, दिल्ली, 2001
35 जोशी, बृजरतन, जल और समाज, पुस्तक संसार, जयपुर, 2005
36 जूदेव, कुंवर कन्हैया, बीकानेर राज्य का इतिहास, बम्बई, 1912
37 कविराजा श्यामलदास कृत वीर विनोद भाग 1 व 2 खण्ड 1 से 4 मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली
38 कविराजा श्यामलदास कृत वीर विनोद : मेवाड़ का इतिहास, भाग 1,2,3,4 राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर
39 खत्री, दीनानाथ, बीकानेर राज्य का संक्षिप्त इतिहास, अनूप संस्कृत पुस्तकालय, 1978
40 खींची, रघुनाथ सिंह, गोपाल सिंह, खींची वंश प्रकाश, जयपुर
41 खींची, आर.एस. एवं तंवर, सांवर लाल, संत पीपाजी एवं सीता स्मृति ग्रंथ
42 कोचर, उपाध्याय चन्द्र एवं कादरी जियाउल हसन, हजार हवेलियों का शहर बीकानेर, कलासन प्रकाशन, बीकानेर 2006,
43 कोठारी, गुलाब सं0, पत्रिका इयर बुक 2010, राजस्थान पत्रिका प्रकाशन

44 कुमारगुप्त, राजस्थान के दुर्ग, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1986
45 कुमार, राजेश, वीरता एवं शौर्य की भूमि चित्तौड़गढ़, टूरिस्ट पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010
46 माहेश्वरी, हरिवल्लभ, जैसलमेर राज्य का मध्यकालीन इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1997
47 मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के खंगारोत कछवाहों का इतिहास, जयपुर, 1995
48 मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, जयपुर क्षेत्र के ऐतिहासिक स्मारक एवं शिलालेख, जयपुर, 1995
49 मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1997
50 माथुर, तेजकुमार एवं शर्मा, दिनेशचन्द्र, मध्यकालीन राजस्थान, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, 1400 से 1708 आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर, 2005
51 मयंक, मांगीलाल, जैसलमेर राज्य का इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर 1984
52 मयंक, मांगीलाल, जोधपुर राज्य का इतिहास, पंचशील प्रकाशन, जयपुर 1975
53 मेहर, जहूर खाँ एवं नगर, महेन्द्र सिंह, जोधपुर का ऐतिहासिक दुर्ग मेहरानगढ़, मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट, जोधपुर, 2007
54 मेहता, पृथ्वीसिंह, हमारा राजस्थान, इलाहाबाद, 1950
55 मिश्र, अनुपम, राजस्थान की रजत बून्दें, गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 1995
56 मिश्र, अनुपम, आज भी खरे है तालाब, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2010
57 मिश्र, अनुपम, साफ माथे का समाज, किशन कालजयी (सं.), पेंगुइन बुक्स इण्डिया, नई दिल्ली, 2006
58 मिश्र, अनुपम, तालाब आज भी खरे हैं, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, दिल्ली
59 मिश्र, रतनलाल, राजस्थान के दुर्ग, साहित्यगार, जयपुर 2008
60 मिशण, सूर्यमल्ल, वंश भास्कर, पं. रामकरण आसोपा (सं.), मरूधर प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर
61 मिश्र, रतनलाल, राजस्थान के दुर्ग, कुशन कुटीर प्रकाशन , झुन्झूनू, 1985
62 नगर, महेन्द्र सिंह, रसीलेराज, मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट, मेहरानगढ़ दुर्ग, 1998

63 नीरज, जयसिंह एवं शर्मा, बी.एल., राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1989
64 ओझा, डी. डी. एवं बसावड़ा, बी. जे., जल की रोचक बातें, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली 2004
65 ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, बीकानेर राज्य का इतिहास भाग प्रथम, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1939
66 ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, बीकानेर राज्य का इतिहास भाग द्वितीय, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1939
67 ओझा, रायबहादुर पं गोरीशंकर हीराचन्द, उदयपुर राज्य का इतिहास, वैदिक यंत्रालय अजमेर, 1927
68 ओझा, रायबहादुर पं गोरीशंकर हीराचन्द, जोधपुर राज्य का इतिहास, वैदिक यंत्रालय अजमेर, 1927
69 ओझा, जे.के., मेवाड़ का इतिहास, एस. चान्द एण्ड कं., नई दिल्ली, 1980
70 ओझा, प्रियदर्शी, पश्चिमी भारत में जल प्रबंधन, सुभद्रा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2012
71 परमार, सावित्रि, लोक संस्कृति के शिखर, श्याम प्रकाशन, जयपुर, 1997
72 पुरोहित, प्रकाश, आज भी प्रासंगिक है परम्परागत जल स्रोत, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2008
73 पुरोहित, पुरूषोत्तम दास, पुष्करणा ब्राह्मणों का इतिहास : जोधपुर किला और पुष्करणा, जोधपुर, 2001
74 राणावत, ईश्वर सिंह, राजस्थान के जल संसाधन, चिराग प्रकाशन उदयपुर 2004
75 राणावत, मनोहर सिंह सं0, चित्तौड़–उदयपुर का पाटनामा, श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ भाग 1 व 2
76 रस्तोगी, साधना, मारवाड़ का शौर्य युग, धनेश लक्ष्मी प्रकाशन, जयपुर 1975
77 राठौड़, भूर सिंह, बीकानेर दर्शन, बीकानेर, 1980
78 रेउ, पण्डित विश्वेश्वर नाथ, मारवाड़ का इतिहास, भाग प्रथम, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1998
79 रेउ, पण्डित विश्वेश्वर नाथ, मारवाड़ का इतिहास, भाग द्वितीय, आर्कियोलोजिकल डिपार्टमेन्ट जोधपुर , 1940
80 रेउ, पण्डित विश्वेश्वर नाथ, भारत के प्राचीन राजवंश, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1998

81 राठौड़, उम्मेद सिंह ठाकुर एवं चूण्डावत, लोकेन्द्र सिंह, ऐतिहासिक गढ़ चित्तौड़, शार्दुल स्मृति संस्थान, धोली, भीलवाड़ा, 2003
82 साईवाल, स्नेह, राजस्थान का भूगोल, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर, 2012
83 शर्मा, गीता, आमेर स्थापत्य एवं चित्रकला, राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2011
84 शर्मा, गोपीनाथ, मेवाड़ मुगल सम्बन्ध, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1983
85 शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान के इतिहास के स्रोत, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1973
86 शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1989
87 शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान का इतिहास, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं. आगरा, 1971
88 शर्मा, हरिशंकर, मध्यकालीन भारत, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर 2004
89 शर्मा, ललित, जलदुर्ग गागरोन, झालावाड़ विकास मंच, झालावाड़, 2013
90 शर्मा, नन्द किशोर, जैसलमेर परिचय, सीमान्त प्रकाशन जैसलमेर, 1992
91 शर्मा, नन्द किशोर, झरोखों की नगरी जैसलमेर, सीमान्त प्रकाशन जैसलमेर, 1992
92 शर्मा, नन्दकिशोर, सुनहरा नगर जैसलमेर, सीमान्त प्रकाशन जैसलमेर, 2011
93 शर्मा, नन्द किशोर, युग युगीन वल्ल प्रदेश, जैसलमेर राज्य का राजनैतिक इतिहास, सीमान्त प्रकाशन जैसलमेर, 1993
94 शर्मा, नन्द किशोर ,जैसलमेर का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, सीमान्त प्रकाशन जैसलमेर, 1993
95 शर्मा, नन्दकिशोर, त्रिकुट गढ़ जैसलमेर, सीमान्त प्रकाशन, 2005
96 शर्मा नन्द किशोर ,जैन तीर्थ जैसलमेर , सीमान्त प्रकाशन जैसलमेर, 1988
97 शर्मा, पद्मजा, जोधपुर के महाराजा मानसिंह एवं उनका काल, जोधपुर, 1995
98 शिवरती, अजातशत्रु, राजपूतो का सामाजिक जीवन, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर 2006
99 श्रीवास्तव, आशीर्वादी लाल, भारत का इतिहास 1000 से 1707, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा 2005
100 सिंह, अमर, प्राचीन भारतीय दुर्ग स्थापत्य, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995
101 सिंह, चन्द्रमणि, राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, 2010

102 सिंह, करनी, बीकानेर के राजघराने का केन्द्रीय सत्ता से सम्बन्ध, आर्ट पब्लिशर्स प्रा. लि. बीकानेर, 1968

103 सिंह, रघुवीर, दुर्गादास राठोड़, बालकराम नागर (अनु), नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली, 1990

104 सिंह, आर.बी., हिस्ट्री ऑफ चाहवान्स, नन्दकिशोर एण्ड संस, चौक वाराणसी, 1964

105 सिंह, वीरेन्द्र, जैसलमेर राजघराने का केन्द्रीय सत्ता से सम्बन्ध, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर

106 सिंह, वाई.डी. राजस्थान में पारम्परिक नहरें, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर

107 सिंह, वाई.डी., राजस्थान के कुँए एवं बावडियाँ, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, मेहरानगढ़ फोर्ट, जोधपुर, 2002

108 सिंह, वाई. डी., राजस्थान की झीले व तालाब, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, मेहरानगढ़ दुर्ग, 2002

109 सौलंकी, कुसुम, भारतीय बावड़ियाँ, सुभद्रा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2013

110 सौलंकी, रामसिंह, राष्ट्रवीर दुर्गादास राठोड, सं0 डॉ0 हुकुम सिंह भाटी, राजस्थानी शोध संस्थान, चोपासनी , जाधपुर 1999

111 सोमानी, रामवल्लभ, वीरभूमि चित्तौड़, मातेश्वरी प्रकाशन, भीलवाड़ा, 1969

112 तँवर, महेन्द्र सिंह, राजस्थान की सांस्कृतिक परम्पराएँ, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर

113 टॉड कृत बीकानेर राज्य का इतिहास, बलदेव प्रसाद मिश्र एवं देवी प्रसाद (अनु.) युनिक ट्रेडर्स, जयपुर, 1994

114 टॉड कृत उदयपुर राज्य का इतिहास, बलदेव प्रसाद मिश्र एवं देवी प्रसाद (अनु.) युनिक ट्रेडर्स, जयपुर, 1994

115 टॉड कृत कोटा राज्य का इतिहास, बलदेव प्रसाद मिश्र एवं देवी प्रसाद (अनु.) युनिक ट्रेडर्स, जयपुर, 1987

116 टॉड कृत जैसलमेर राज्य का इतिहास, बलदेव प्रसाद मिश्र एवं देवी प्रसाद (अनु.) युनिक ट्रेडर्स, जयपुर, 1994

117 टॉड कृत जोधपुर राज्य का इतिहास, बलदेव प्रसाद मिश्र एवं देवी प्रसाद (अनु.) युनिक ट्रेडर्स, जयपुर, 1994

118 टॉड, कर्नल जेम्स, पश्चिमी भारत की यात्रा, गोपाल नारायण बोहरा (सं. व अनु.), राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1965

119 वशिष्ठ, वी.के. (सं), कल्चरल हेरिटेज ऑफ राजस्थान, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, बनस्थली विद्यापीठ, बनस्थली टोंक, 2008

120 वशिष्ठ, विजय कुमार, राजस्थान इतिहास के अभिलेखागारीय एवं निजी स्रोत, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर

121 विजय, मुनि प्रकाश, जैसलमेर पंच तीर्थों का इतिहास, अजमेर, 1973

122 विजयवर्गीय, बृजेश, जलनिधि : हाडौती के पारम्परिक जलाशयों का संकट व समाधान, हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर, 1999

123 व्यास, हरिदत्त गोविन्द, जैसलमेर राज्य का इतिहास, हिमालय प्रेस, बनारस, 1920

124 व्यास, राजेश कुमार, सांस्कृतिक पर्यटन, रा.हि.ग्र.अका.,2009

125 व्यास, राजेश्वर, मेवाड़ की कला और स्थापत्य, राजस्थान प्रकाशन, जयपुर, 1988

(iii) राजस्थानी ग्रंथ

1 भाटी, नारायण सिंह (सं), महाराजा तखतसिंह की ख्यात, राजस्थान ओरियन्टल रिसर्च इन्सट्यूट, जोधपुर, 1979

2 भाटी, नारायण सिंह (सं.) महाराजा मानसिंह री ख्यात, राजस्थान ओरियन्टल रिसर्च इन्सट्यूट, जोधपुर, 1997

3 भाटी, नारायण सिह, जैसलमेर री ख्यात, राजस्थानी शोध संस्थान, चोपासनी, जोधपुर 1981

4 भट्ट बदरी शर्मा की ख्यात, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, मेहरानगढ़ दुर्ग।

5 चारण बांकीदास, बांकीदास री ख्यात सं. नरोत्तमदास स्वामी, राज. प्रा. विद्या, प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1882

6 चूण्डावत, रानी लक्ष्मीकुमारी, मांझलरात, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2015

7 दयालदास की ख्यात, दशरथ शर्मा (अनु.), महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, मेहरानगढ़ दुर्ग

8 देसाई, लल्लू भाई, भीम भाई, चौहान कुल कल्पद्रुम – चौहान राजपूतों की शाखाओं का इतिहास एवं वंश वृक्ष भाग 1 से 2, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 1995

9 गाडण, शिवदास, अचलदास खींची री वचनिका, शम्भू सिंह मनोहर (सं), ओरियंन्टल रिसर्च इन्सट्यूट, जोधपुर, 1972

10 जोधपुर राज्य की ख्यात, महारणा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, मेहरानगढ़

11 मेहता संग्रह की हस्तलिखित ख्यात, महारणा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, मेहरानगढ़ दुर्ग

12 मुरारीदान, राठौड़ो की ख्यात (प्राचीन) प्रा.वि.प्र., जोधपुर (अप्रकाशित)

13 नैणसी मुहणोत, मुहणोत नैणसी री ख्यात, अनु. सं. मनोहर सिंह राणावत, श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ, 1987

14 नैणसी मुहणोत, मारवाड़ रा परगना री विगत सं. डॉ0 नारायण सिंह भाटी , भाग 1, 2, 3 राज. प्रा. वि. प्रति. जोधपुर 1969

15 नैणसी मुहणोत, मुहणोत नैणसी री ख्यात, सं. बदरी प्रसाद साकरिया, भाग प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, राज. प्रा. विद्या. प्रति. जोधपुर, 1984

16 राठौड़ वंश री विगत एवं वंशावली, मुनि जिनविजय (सं), राज. प्रा. विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर 1968

17 कविराजा श्यामलदास कृत वीर विनोद, सिंह, रघुबीर सं0, मयंक प्रकाशन जयपुर, भाग1, 1986,

18 सिंह, रघुवीर एवं सिंह, मनोहर, जोधपुर राज्य की ख्यात, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली एवं पंचशील प्रकाशन, जयपुर 1988

(iv) संस्कृत एवं धार्मिक ग्रंथ (अनुवाद)

1 आप्टे, वामन शिवराम, संस्कृत हिन्दी शब्द कोष, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर।

1 भयमत, उद्वभत् डॉ. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल, भारतीय वास्तु शास्त्र, संस्कृत विभाग, लखनऊ

2 भुवनदेवाचार्य कृत अपराजितपृच्छा, सं एवं अनु. डॉ. श्री कृष्ण जुगनु एवं प्रो0 भँवर शर्मा, भाग 1 से 3, दिल्ली, 2011

3 कोटिल्य कृत अर्थशास्त्र, गंगा प्रसाद शास्त्री (अनु.) नई दिल्ली, 1997

4 मण्डन कृत राजवल्लभ वास्तुशास्त्रम्, जुगनू डॉ0 श्री कृष्ण सं0 एवं व्याख्याकार, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2005

5 मनुस्मृति, भट्ट, कुल्लुक सं0, बम्बई, 1945

6 शुक्रनीति, बांके, पं बलवंत रामचंद्र सं0, रतलाम, 1871

7 सूक्त साहित्य, गुलाब कोठारी (सं.) 1 से 10 वोल्यू., राजस्थान पत्रिका प्रकाशन, 2015

8 वेद : ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद एवं सामवेद एवं संहिताएँ, स्वामी दयानन्द सरस्वती (सं.), अजमेर

(v) उर्दू, फारसी ग्रंथ (अनुवाद)

1 अबुल फजल कृत अकबरनामा, हेनरी बेवरीज (अनु.), भाग 1 से 3, लो प्राइस पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2010

2 ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद कृत तबकाते अकबरी, देव बृजेन्द्र नाथ एवं बेनी प्रसाद (अनु.), भाग 1 से 3, लो प्राइस पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1995

3 खान, एस. आर. सीरत सरकारे मालवा,

4 मुंशी मूलचन्द, तवारिख राज कोटा (उर्दू) हिस्सा अव्वल,

5 शादां, मुंशी बसावन लाल, मैमायर्स ऑफ अमीर खाँ, अरबी फारसी शोध संस्थान, टोंक

(vi) हस्तलिखित दस्तावेज, बही, पोथी, राजकीय संग्रह

1 आमेर रिकॉर्ड, राजस्थान राज्य पुरा अभिलेखागार, बीकानेर

2 हकीकत बही, राजस्थान राज्य पुरा अभिलेखागार, बीकानेर, (ऑनलाईन प्रति, आरएसएडी. राजस्थान.जीओवी.इन)

3 जमा खर्च बही, राजस्थान राज्य पुरा अभिलेखागार, बीकानेर, (ऑनलाईन प्रति, आरएसएडी. राजस्थान.जीओवी.इन)

4 जनानी ड्योढ़ी तालके री बही, सं. 1967, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, मेहरानगढ़

5 कमठाना बही, राजस्थान राज्य पुरा अभिलेखागार, बीकानेर, (ऑनलाईन प्रति, आरएसएडी. राजस्थान.जीओवी.इन)

6 मेवाड़ के तालाबों की विगत, ग्रन्थांक 86, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर

7 सनद परवाना बही, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, मेहरानगढ़

8 सावा मण्डी सदर बही, राजस्थान राज्य पुरा अभिलेखागार, बीकानेर, (ऑनलाईन प्रति, आरएसएडी. राजस्थान.जीओवी.इन)

9 सूरसागर रे तामीर री बही, राजस्थान राज्य पुरा अभिलेखागार, बीकानेर, (ऑनलाईन प्रति, आरएसएडी.राजस्थान.जीओवी.इन)

(vii) शोध पत्रिकाएँ, समाचार पत्र–पत्रिकाएँ

1 भारतीय इतिहास कोष, हिन्दी समिति, लखनऊ
2 दैनिक भास्कर, उदयपुर, जोधपुर, जयपुर संस्करण
3 इतिहास समीक्षा, जयपुर
4 जिज्ञासा, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
5 जौहर साका स्मारिका, जौहर स्मृति संस्थान, चित्तौड़गढ़
6 मज्झामिका, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर
7 मरूभारती, पिलानी, राजस्थान
8 नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वाराणसी
9 परम्परा, राजस्थानी शाोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर
10 प्रबोध भारती, कलकत्ता
11 प्रोसिडिंग वोल्यूम्स, राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस
12 प्रोसिडिंग वोल्यूम्स, इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस
13 पुरासम्पदा, राजस्थान राज्य पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग, जयपुर
14 पुरातत्त्व, नई दिल्ली
15 राजस्थान भारती, सादुल राजस्थानी शोध संस्थान
16 राजस्थान भारती, बीकानेर
17 राजस्थान सुजस, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, जयपुर
18 राजस्थान पत्रिका, उदयपुर, जोधपुर, जयपुर संस्करण
19 रासो (त्रेमासिक) महर्षि दयानन्द सरस्वती वि.वि. अजमेर
20 रिसर्चर, राजस्थान राज्य पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग, जयपुर
21 साप्ताहिक उदय इण्डिया, जयपुर संस्करण
22 शोधक, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
23 शोध–साधना, सीतामऊ
24 शोधश्री, अजमेर
25 वैचारिकी, भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता एवं बीकानेर

(Viii) प्रकाशित शोध पत्र

1 भाटी, रघुवीर सिंह, भाटी वंश का दूसरा साका भटनेर (हनुमानगढ़), शोध पत्र, जौहर साका स्मारिका, 2007, सुशीला लड्ढा (प्र. सं.), जौहर स्मृति संस्थान, चित्तोड़गढ़, 2007

2 चौधरी, सरिता, बीकानेर राज्य में जूनागढ़ का जल प्रबन्धन, शोधश्री, जनवरी–मार्च 2015, पृ 069

3 धमोरा, सवाई सिंह, चित्तौड़गढ़ के तीन साके, जो.सा. स्मारिका, 2011

4 द्विवेदी, अर्चना, गागरोन दुर्ग और उसका अवदान, शोध पत्र, पृ. 3,4

5 गुप्ता, सुरेन्द्र पाल, हनुमागढ़ : कुछ ऐतिहासिक प्रसंग, शोध पत्र, वैचारिकी, बीकानेर, अक्टूबर–दिसम्बर, 2009, भाग 25 अंक 3 पृ 25

6 केलवा, औंकार सिंह, मेवाड़ की प्राचीन धरोहर एवं विरासत गढ़, किले, दुर्ग एवं रावले, जौहर साका स्मारिका 2011, सुशीला लड्ढा (प्र. सं), जौहर स्मृति संस्थान, चित्तौड़गढ़, पृ 106

7 खान, जफरूल्लाह, आमेर महल में रहँट प्रणाली, पुरासम्पदा, राज. पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग, जयपुर, पृ 059–061

8 निजामी, ए. एच., गागरोन फोर्ट–द सेकण्ड साका, शोध पत्र, शोध साधना

9 ओझा, दीनदयाल, जैसलमेर के जौहर साके, शोध पत्र, जौहर साका स्मारिका, जौहर स्मृति संस्थान, चित्तौड़गढ़, पृ. 38

10 व्यास, एस. पी., वाटर कन्जर्वेशन टेक्नीक्स ऑफ मेहरानगढ़ फोर्ट, शोध पत्र, राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस, पृ. 50

11 व्यास, एस. पी., वाटर सप्लाई सिस्टम इन द फोर्ट ऑफ जोधपुर, शोध पत्र, 67 वीं इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, दिल्ली, पृ. 55

(ix) अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, लघु शोध प्रबन्ध

1 गायत्री, वीना, बीकानेर का जूनागढ़ दुर्ग : इतिहास तथा स्थापत्य, लघु शोध प्रबन्ध, बनस्थली विद्यापीठ, बनस्थली, टोंक, 2002

2 गोयल, अश्विनी कुमार, जूनागढ़ दुर्ग का दुर्ग स्थापत्य लघु शोध प्रबन्ध, महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर, 2004

3 खान, मोहम्मद अशरफ, गागरोन दुर्ग एक अध्ययन, टंकित लघुशोध प्रबन्ध

4 राजोरा, नेहा, कल्चरल लेण्डस्केप्स ऑफ आम्बेर, राजस्थान, शोध प्रबन्ध, यूनिवर्सिटी ऑफ इलिनोइस एट अरबाना, केम्पाहेगन, यूएसए, 2013

5 तिवारी, अर्चना, रणथम्बोर किले का ऐतिहासिक एवं कलात्मक अध्ययन, शोध प्रबन्ध, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा, 2013

6 सोलंकी, कुसुम, मध्यकालीन राजपूताना का जल प्रबंधन, शोध प्रबंध, डॉक्टर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

(x) आधुनिक प्रकाशन, सूचना, फोल्डर आदि

1 भटनेर दुर्ग – हनुमानगढ, पर्यटक सूचना फोल्डर, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, जयपुर मण्डल, जयपुर, 2010

2 चित्तौड़गढ़ दुर्ग, पर्यटक सूचना फोल्डर, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, जयपुर मण्डल, जयपुर, 2010

3 जैसलमेर किला, पर्यटक सूचना फोल्डर, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, जयपुर मण्डल, जयपुर, 2004

4 मेहरानगढ़ के जल स्रोतों पर जारी कलेण्डर, मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट, मेहरानगढ़, 2006

(xi) व्यक्तिगत साक्षात्कार

1 श्री विजय कुमार, स्थानीय निवासी एवं सुरक्षा कर्मी, आमेर दुर्ग, दि. 22.05.2014

2 श्री महेन्द्र कुमार, रजिस्टर्ड गाइड़, आमेर दुर्ग, दि. 22.05.2014

3 श्री सुरेन्द्र पाल गुप्ता, प्राचार्य, राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, भटनेर दुर्ग, दि. 15.9.2014

4 डॉ. लोकेन्द्र सिंह चूण्डावत, व्याख्याता इतिहास, चित्तौड़गढ़ एवं निदेशक, रावत शम्भूसिंह स्मृति पुरा अभिलेखागार, ठि. ज्ञानगढ़, दि. 03.01.2014

5 श्री जगदीश, रजिस्टर्ड गाइड एवं स्थानीय निवासी, चित्तौड़गढ़ दुर्ग, दि. 02.01.2014

6 श्री ललित शर्मा, इतिहासकार एवं स्थानीय निवासी, झालावाड़, दि. 05.06.2014

7 श्री देवराज सिंह एवं दलवीर सिंह, प्रबन्धक, जयगढ़ पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट, जयगढ़ दुर्ग, दि. 07.09.2014

8 श्री नन्दकिशोर शर्मा, इतिहासकार एवं संस्थापक जैसलमेर लोक सांस्कृतिक संग्रहालय एवं मरू सांस्कृतिक केन्द्र, गड़ीसर, दि. 16.12.2014

9 श्री मयंक, स्थानीय निवासी एवं रजिस्टर्ड गाइड, सोनारगढ़ दुर्ग दि. 16.12.2014

10 श्री कर्नल देवनाथ सिंह, क्यूरेटर, जूनागढ़ दुर्ग, दि. 06.09.2014

11 डॉ. शिव कुमार भनोट, व्याख्याता एवं इतिहासकार, बीकानेर, दि. 07.09.2014

12 श्री भँवर सिंह, स्थानीय निवासी एवं सुरक्षा गार्ड, मेहरानगढ़ दुर्ग, दि. 06.06.2015

13 डॉ. सुनयना, असि. क्यूरेटर, मेहरानगढ़ दुर्ग, दि. 07.06.2015

*****

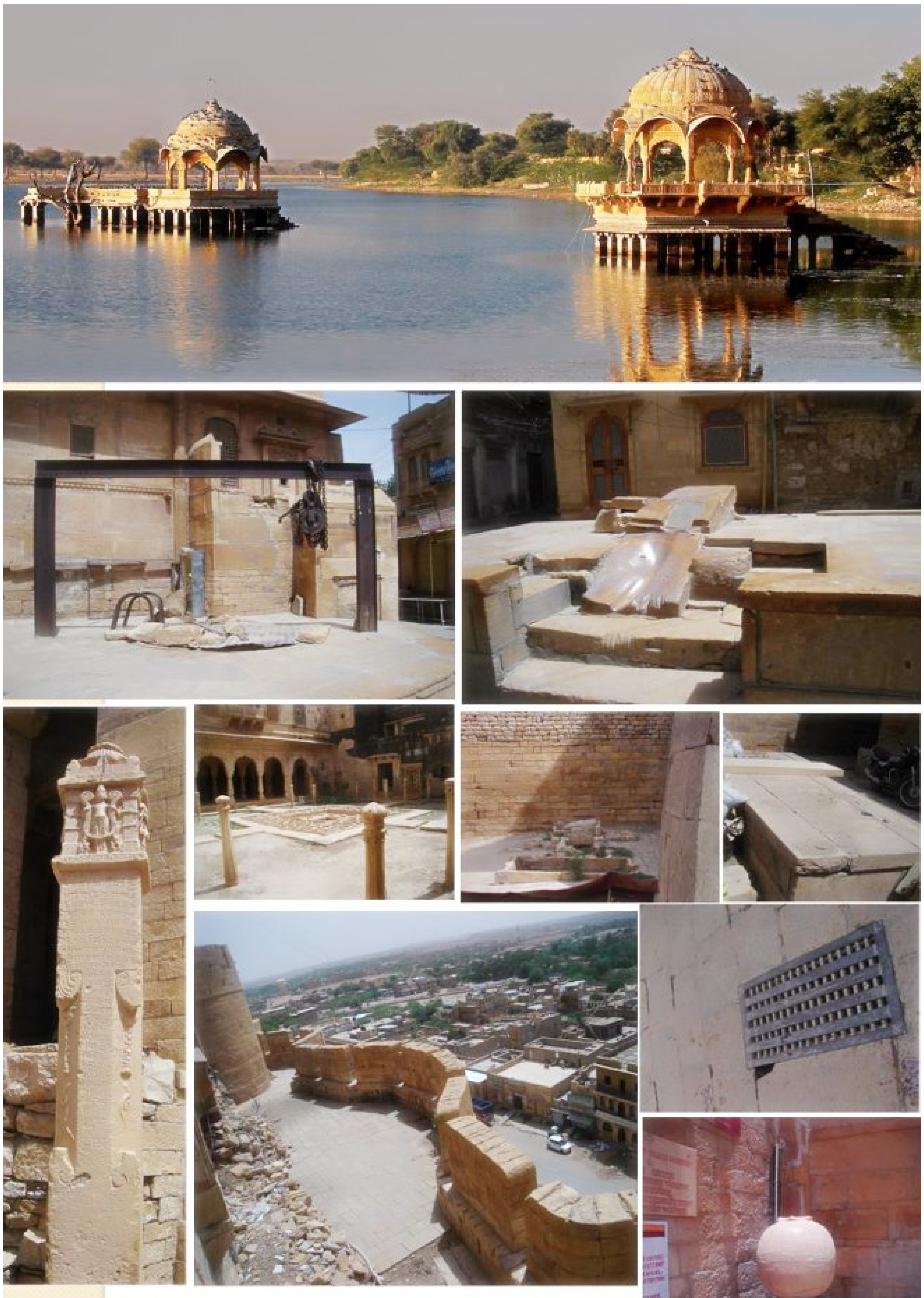

सोनारगढ़ : घड़सीसर तालाब, कुँए, माटे एवं गुट नालियाँ

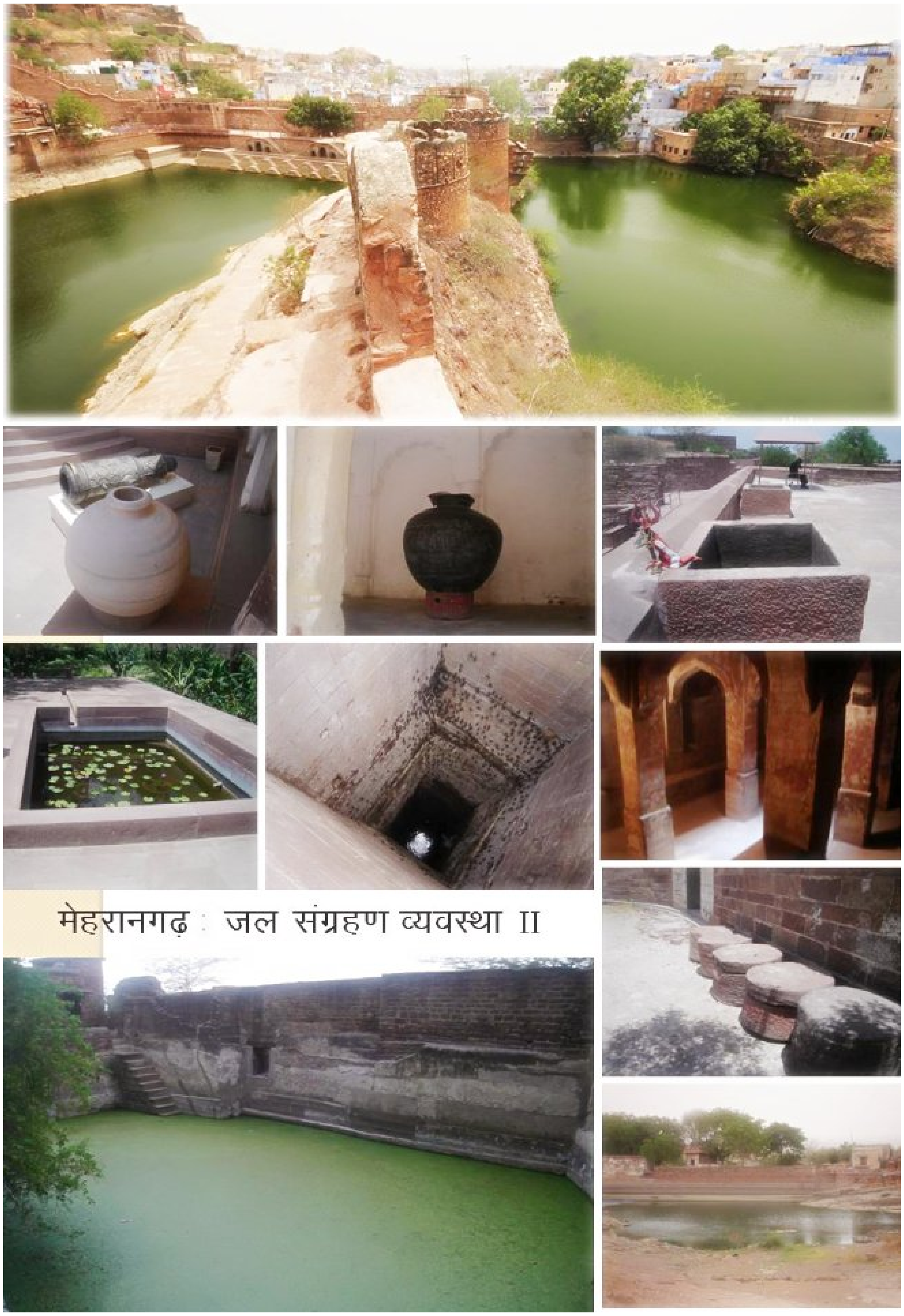

मेहरानगढ़ : जल संग्रहण व्यवस्था II

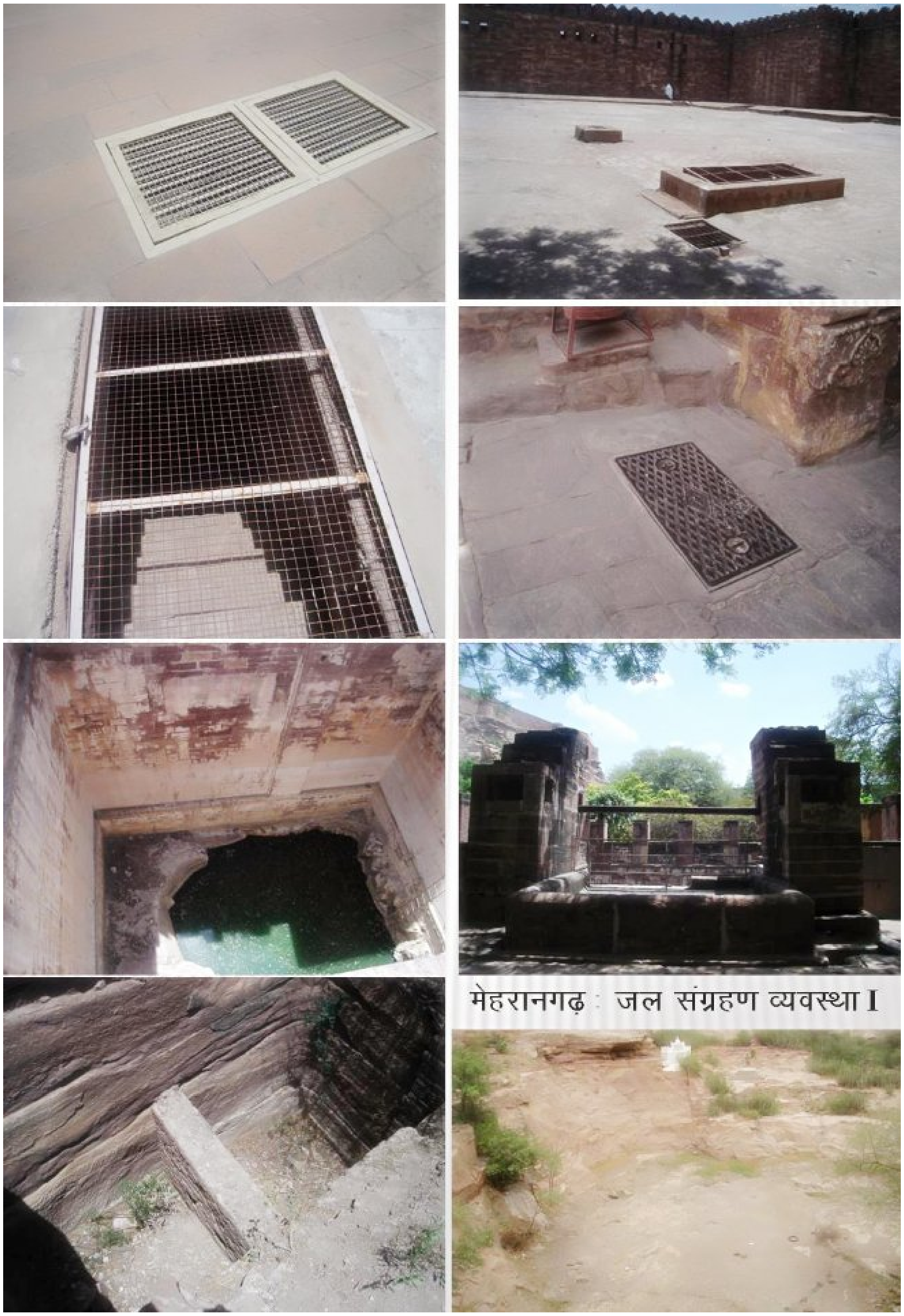

मेहरानगढ़ : जल संग्रहण व्यवस्था I

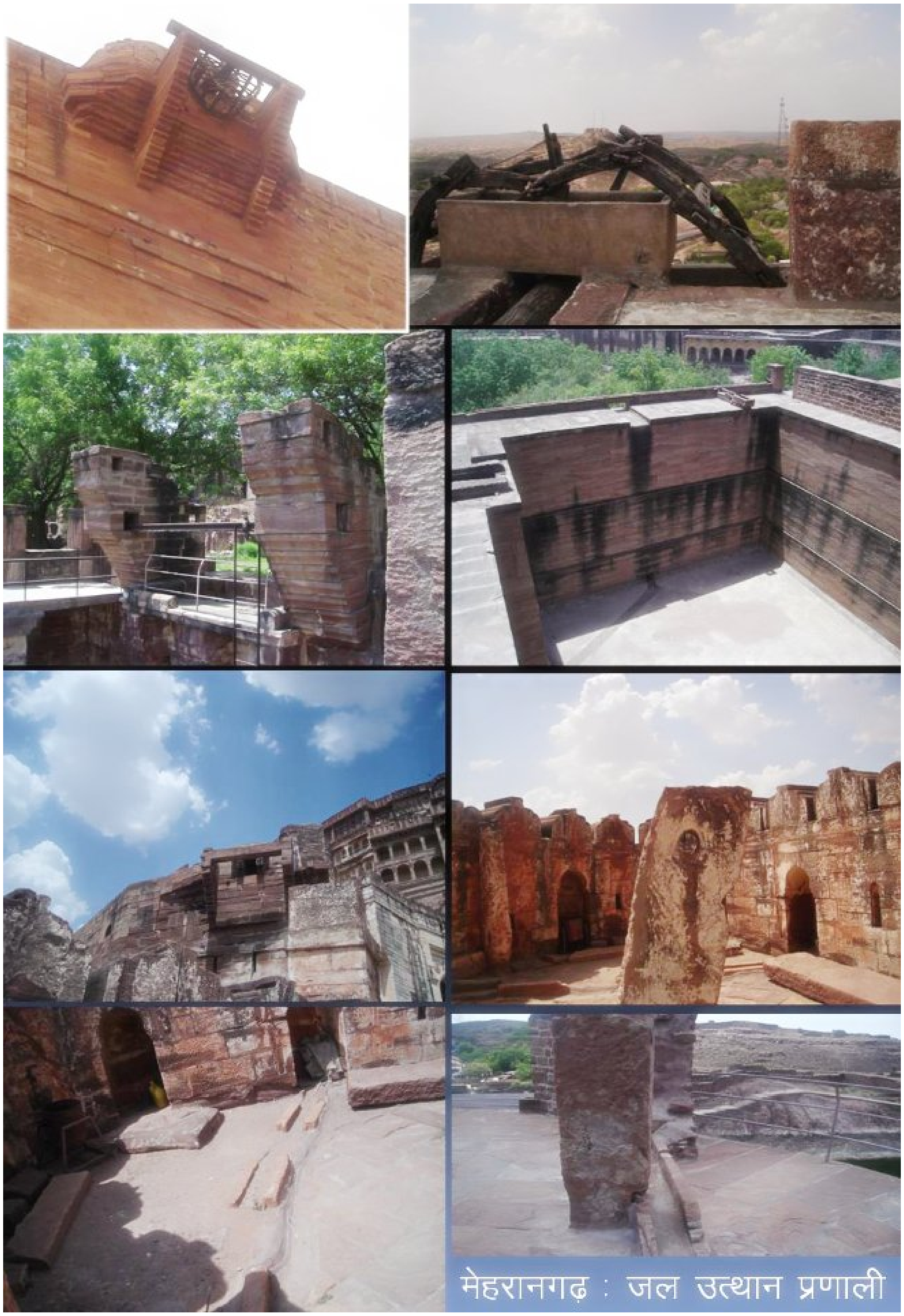

मेहरानगढ़ : जल उत्थान प्रणाली

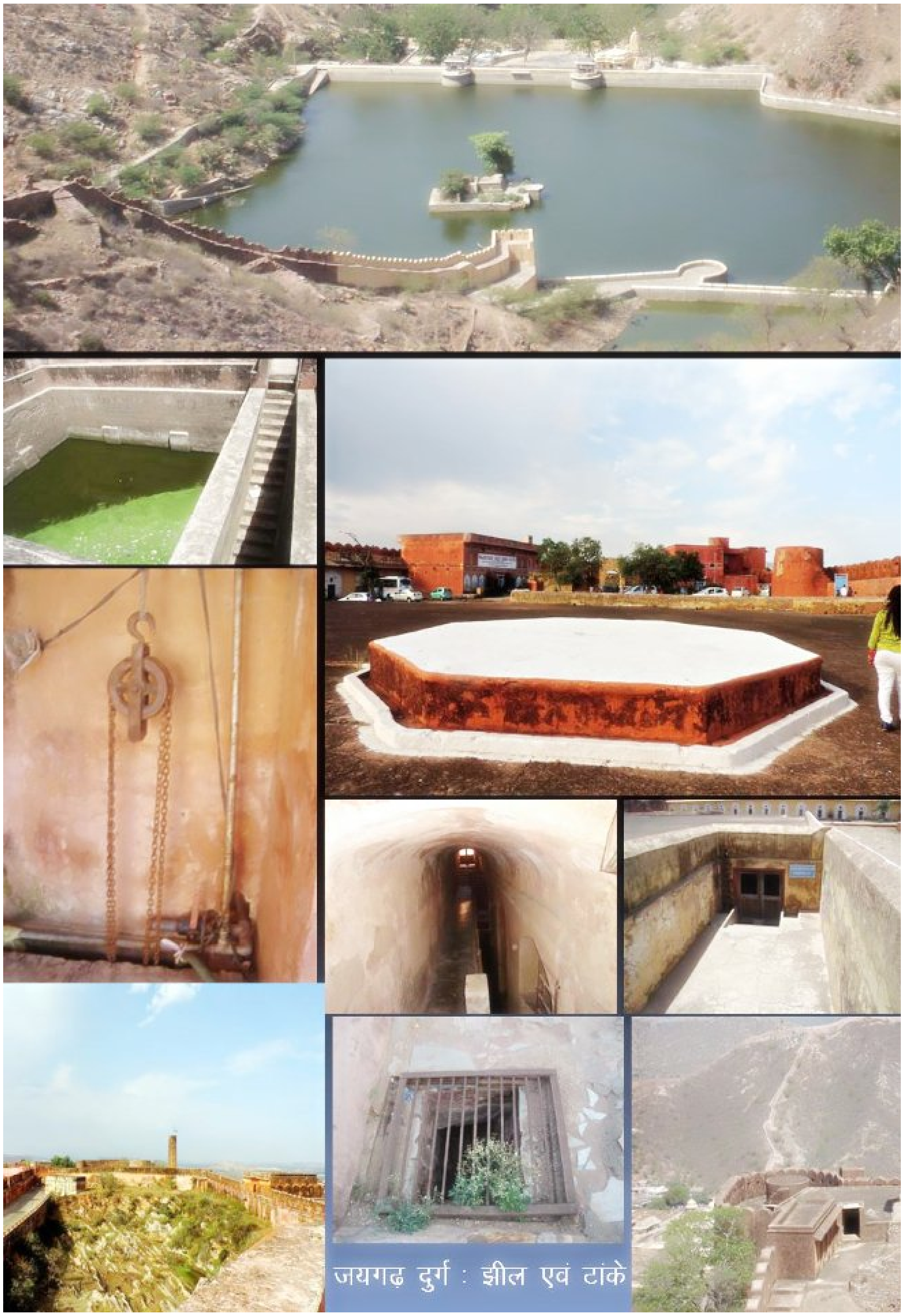

जयगढ़ दुर्ग : झील एवं टांके

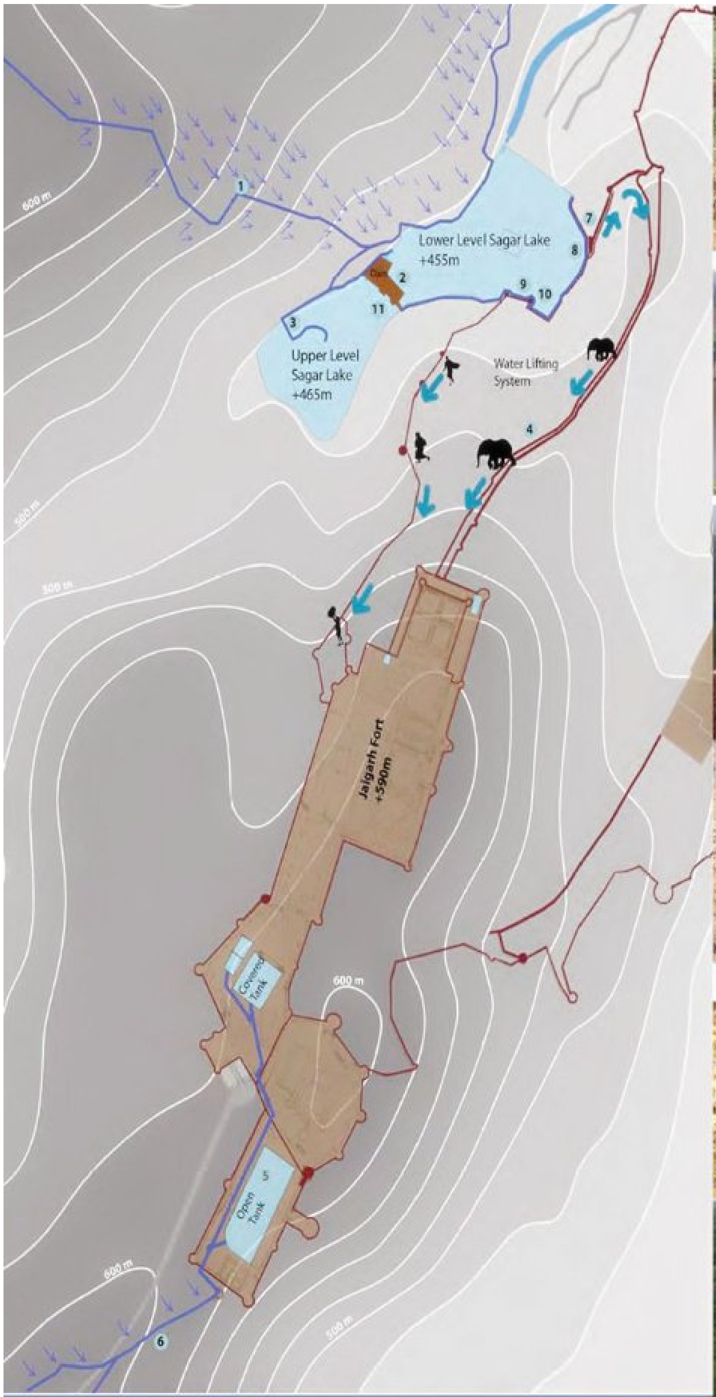

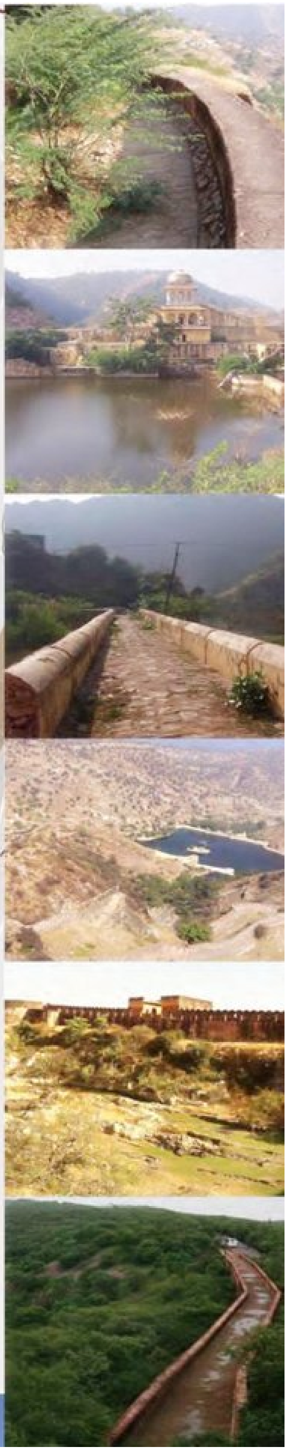

जयगढ़ दुर्ग : वर्षा जल संग्रहण एवं जल उत्थान प्रणाली

आमेर महल के शाही उद्यान एवं जकूजी बाथ

आमेर महल में रहँट (जल उत्थान) प्रणाली

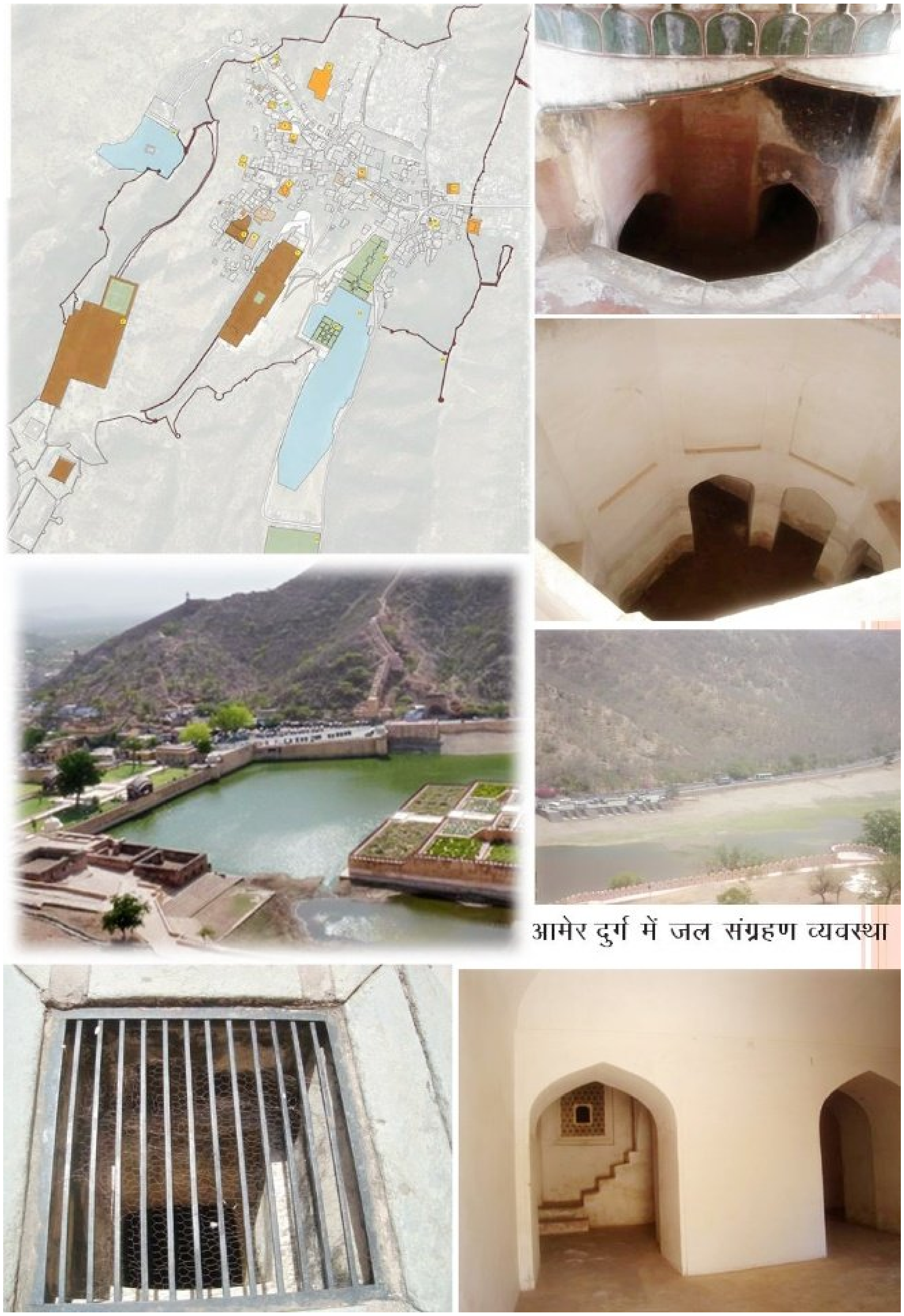

आमेर दुर्ग में जल संग्रहण व्यवस्था

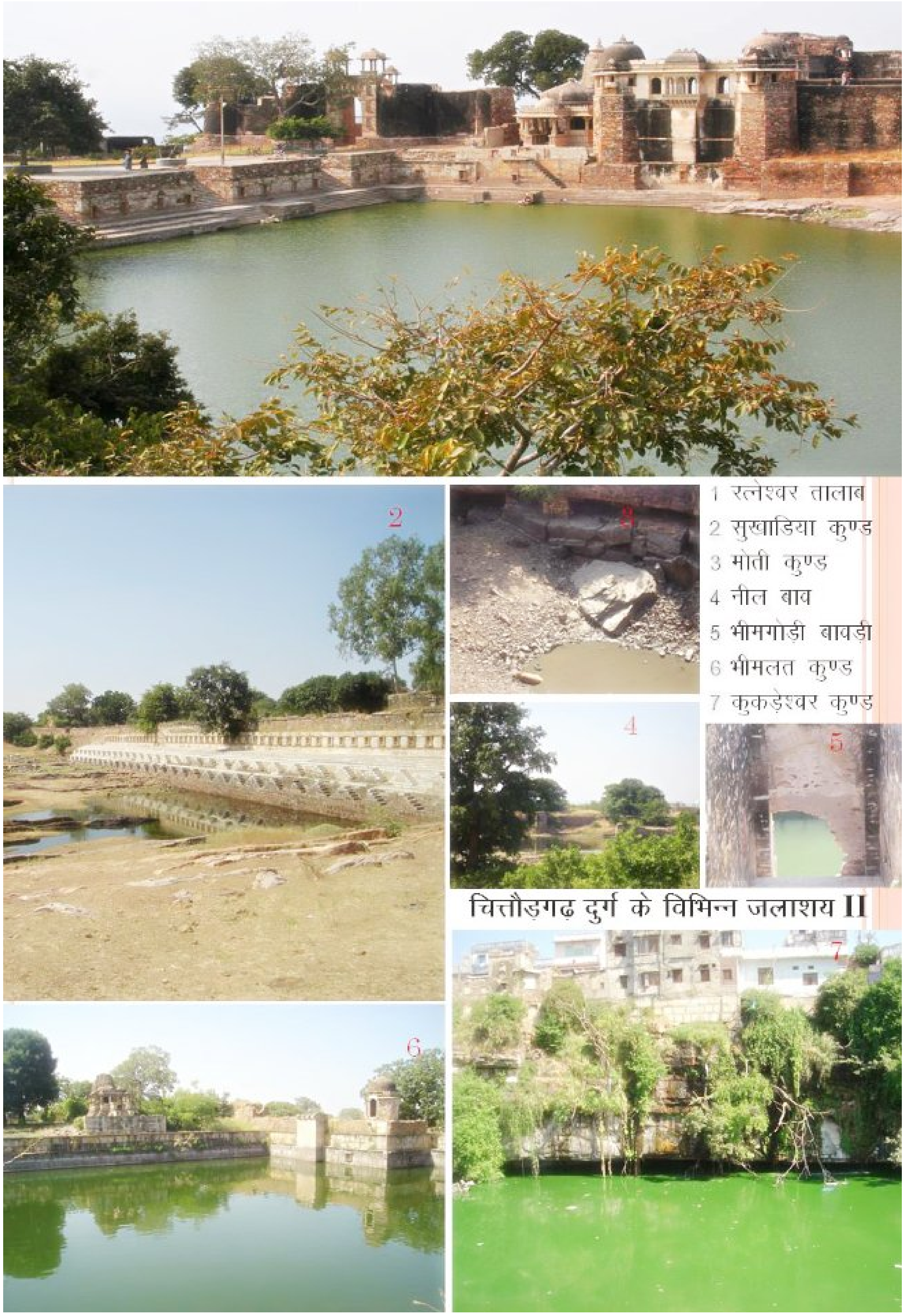

1 रत्नेश्वर तालाब
2 सुखाडिया कुण्ड
3 मोती कुण्ड
4 नील बाव
5 भीमगोडी बावड़ी
6 भीमलत कुण्ड
7 कुकड़ेश्वर कुण्ड

चित्तौड़गढ़ दुर्ग के विभिन्न जलाशय II

1 गोमुख कुण्ड
2 पद्मिनी महल
3 जयमल पत्ता तालाब
4 कातण बावड़ी
5 हाथी कुण्ड
6 चतरंग मोरी तालाब

चित्तौड़गढ दुर्ग के विभिन्न जलाशय I

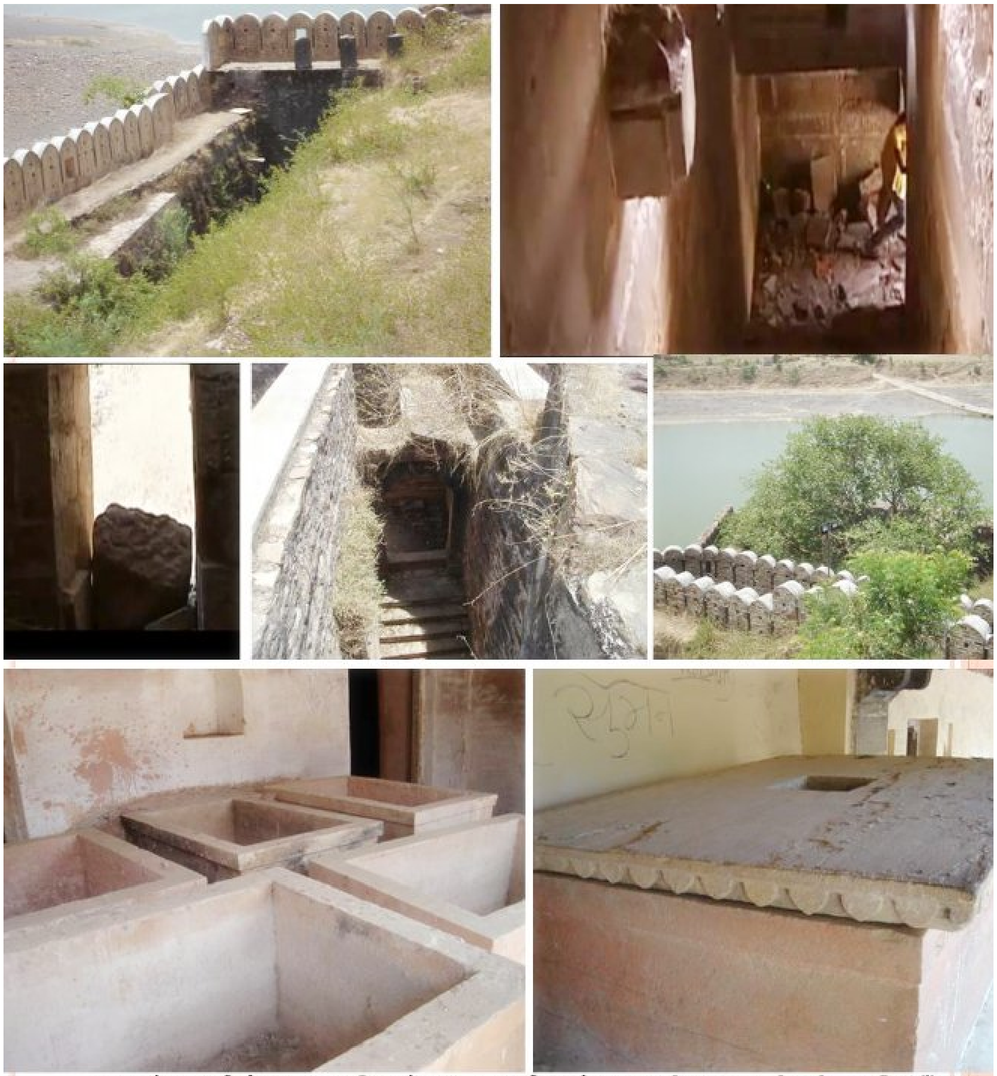

गागरोन दुर्ग में जल प्राप्ति के गुप्त मार्ग, अंधेर बावड़ी एवं पानी की टंकियाँ

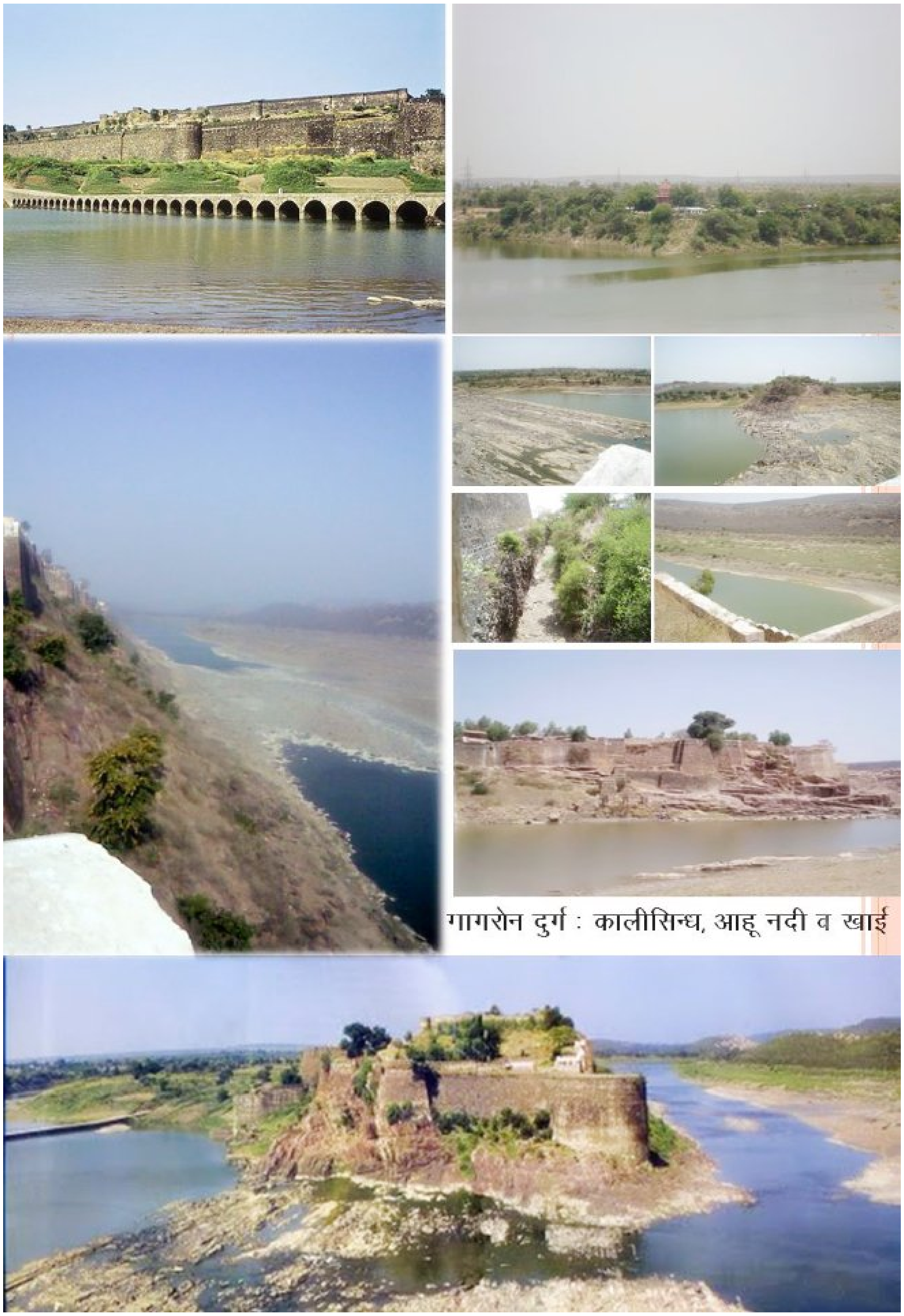

गागरोन दुर्ग : कालीसिन्ध, आहू नदी व खाई

गागरोन दुर्ग के भीतर के विभिन्न कुँए

भटनेर दुर्ग : जल निकास प्रणाली

भटनेर दुर्ग : उद्यान एवं कुँए

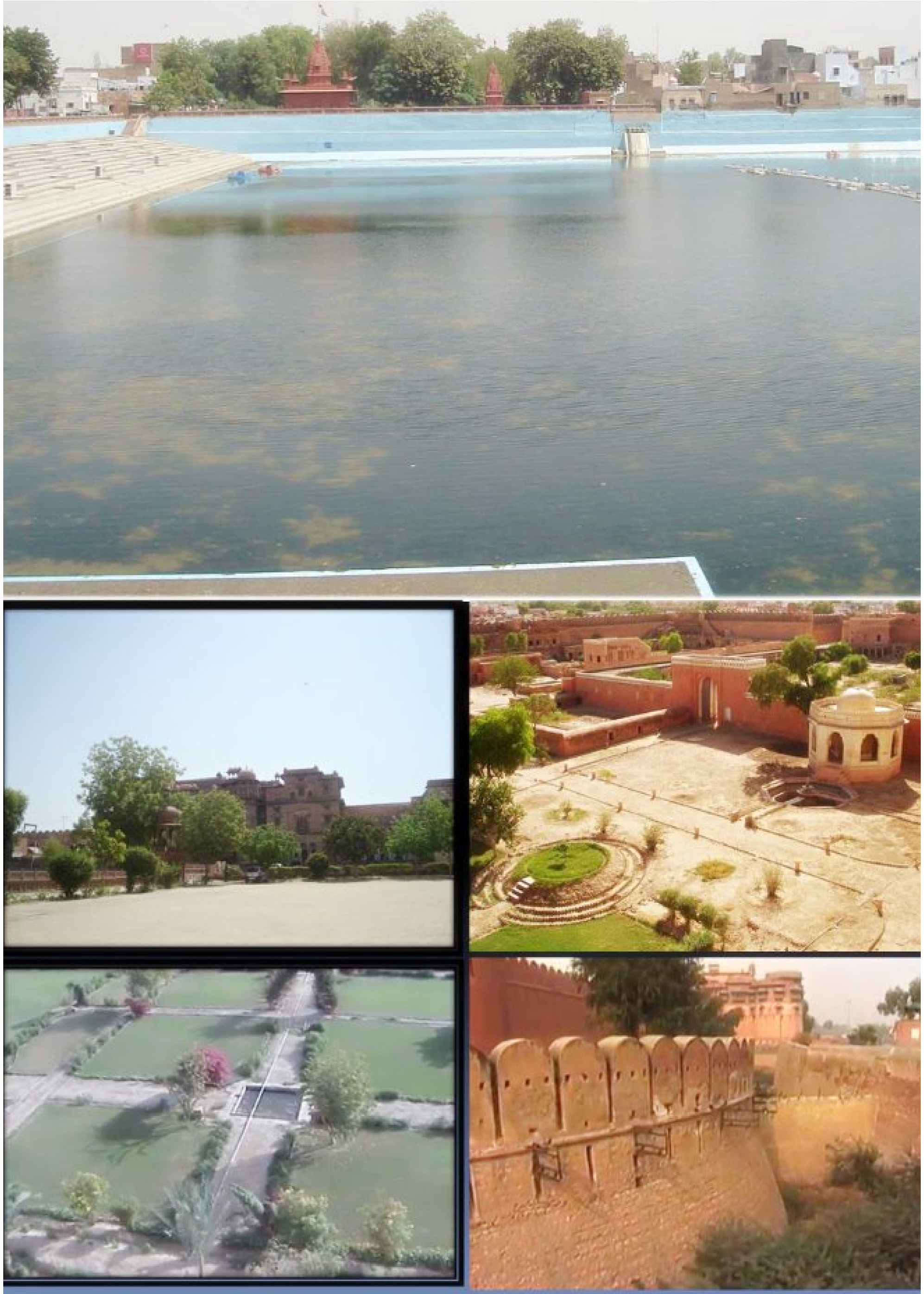

जूनागढ़ दुर्ग : सूरसागर झील, उद्यान, अस्तबल एवं खाई

1 करण पैरोल
2 रामसर कुँआ
3 कल्याणसर कुँआ
4 गजसर कुँआ
5 महल का मुख्य प्रवेश द्वार
6 रानीसर कुँआ
7 उद्यान
8 परिखा
9 चान्द पैरोल
10 सूरसागर झील
11 खाई
⇨ जल वितरण प्रणाली

जूनागढ़ दुर्ग के विभिन्न भाग

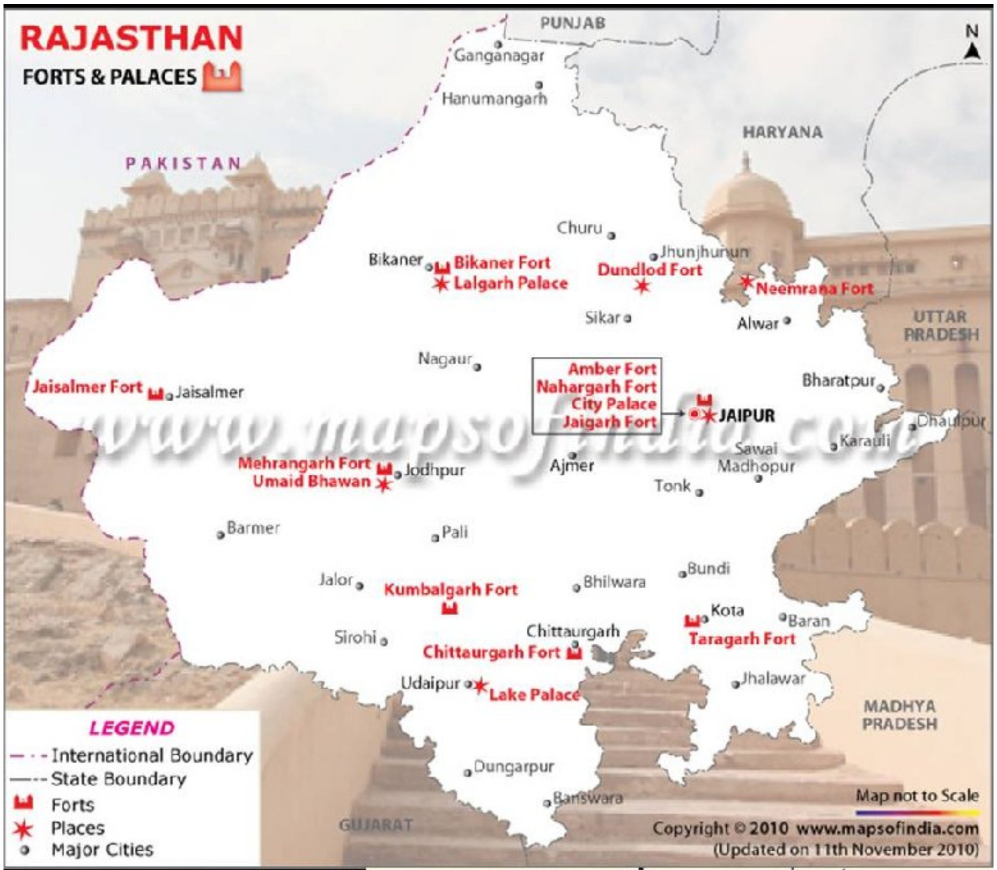

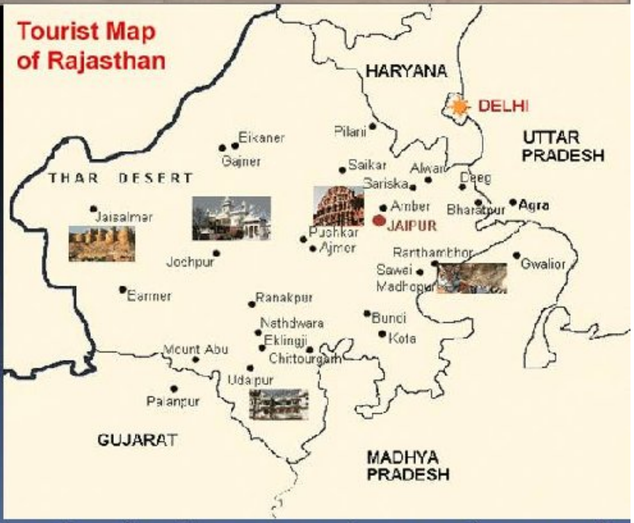

ट्यूरिस्ट मेप ऑफ राजस्थान (राजस्थान के प्रमुख दुर्ग)

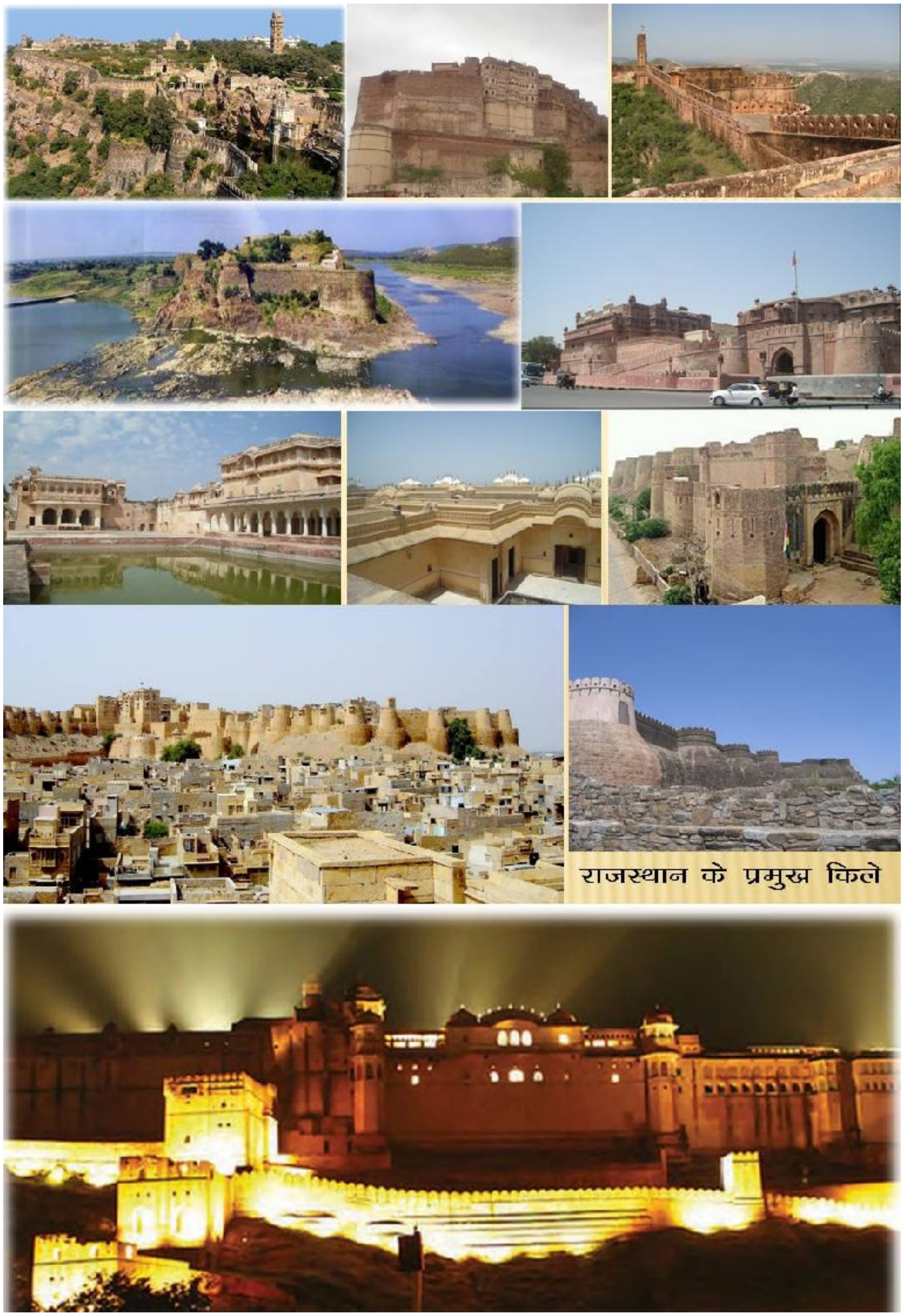

राजस्थान के प्रमुख किले